UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186545
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H590 S56P

Accession No. G.H. 2633

Author स्क्राबेव, व. और रीकोव, न.

Title प्राणि-शास्त्र

This book should be returned on or before the date last marked below.

व॰ शलायेव, न॰ रीकोव

प्राणि-शास्त्र

विदेशी भाषा प्रकाशन गृह
मास्को

अनुवादक: यशवन्त

В. ШАЛАЕВ. Н. РЫКОВ
ЗООЛОГИЯ

पाठकों से

विदेशी भाषा प्रकाशन गृह इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन सम्बन्धी आपके विचारों के लिए आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त कर भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। हमारा पता है:

२१, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।

विषय-सूची

पृष्ठ

भूमिका ६

प्रस्तावना

§ १. प्राणि-जगत् में स्वरूपों की विविधता १३

§ २. प्राणि-शास्त्र का महत्त्व १५

अध्याय १. **प्रोटोज़ोआ**

§ ३. इनफ़ुसोरिया पैरामीशियम १६

§ ४. साधारण अमीबा २३

§ ५. मलेरिया परजीवी २८

अध्याय २. **सीलेण्ट्रेटा**

§ ६. हाइड्रा – ताज़े पानी का शिकारभक्षी प्राणी ३२

§ ७. हाइड्रा – बहुकोशिकीय प्राणी ३४

§ ८. छत्रक-मछली ३८

अध्याय ३. **कृमि**

§ ९. केंचुए का स्वरूप और जीवन-प्रणाली ४३

§ १०. केंचुए की भीतरी इंद्रियां ४६

§ ११. एस्कराइड और आंकड़ा-कृमि ४६

§ १२. ट्राइकिन और नहरुआ ५२

पृष्ठ

§ १३. सूअर फ़ीता-कृमि ५४
§ १४. परजीवी कृमि विरोधी उपाय ५७

अध्याय ४. **मोलस्क**

§ १५. मोतिया शिपला ६०
§ १६. अंगूरी घोंघा ६३
§ १७. मोलस्कों से हानि-लाभ ६६

अध्याय ५. **आरथ्रोपोडा**

§ १८. नदी की क्रे-मछली के बाह्य लक्षण और जीवन-प्रणाली . ७१
§ १९. क्रे-मछली की अंदरूनी इन्द्रियां ७४
§ २०. क्रस्टेशिया ७८
§ २१. क्रॉसधारी मकड़ी ८०
§ २२. तैगा चिचड़ी – एनसेफ़ालिटिस के वाहक ८३
§ २३. भारत के अरैकनिडा ८५
§ २४. काकचेफ़र के बाह्य लक्षण और जीवन-प्रणाली ८७
§ २५. काकचेफ़र की अन्दरूनी इंद्रियां ८९
§ २६. काकचेफ़र का परिवर्द्धन और उसके विरुद्ध उपाय . . . ९२
§ २७. गोभी की तितली ९४
§ २८. एशियाई अथवा प्रवासी टिड्डी ९७
§ २९. अनाजभक्षी भुनगी ९९
§ ३०. कोलोरैडो या आलू का बीटल १००
§ ३१. कृषिनाशक कीट विरोधी उपाय १०२
§ ३२. रोग-उत्पादकों के कीट-वाहक १०६
§ ३३. शहतूत का रेशमी कीड़ा ११२
§ ३४. मधुमक्खी परिवार का जीवन ११४
§ ३५. मधुमक्खी-पालन १२०
§ ३६. भारत का कीट-संसार १२३

पृष्ठ

रीढ़धारी

अध्याय ६. मछली वर्ग

§ ३७. ताज़े पानी की पर्च-मछली की जीवन-प्रणाली और बाह्य लक्षण १२६
§ ३८. पर्च-मछली की पेशियां, कंकाल और तंत्रिका-तंत्र १३२
§ ३९. पर्च-मछली की शरीर-गुहा की इंद्रियां १३५
§ ४०. पर्च-मछली का जनन और परिवर्द्धन १४०
§ ४१. मछलियों की आकार-भिन्नता १४३
§ ४२. सोवियत संघ में मछलियों का शिकार १५१
§ ४३. भारत में मछलियों का शिकार १५५
§ ४४. मत्स्य-संवर्द्धन १५८

अध्याय ७. जल-स्थलचर वर्ग

§ ४५. हरे मेंढ़क की जीवन-प्रणाली और बाह्य लक्षण १६१
§ ४६. मेंढ़क की पेशियां, कंकाल और तंत्रिका-तंत्र १६४
§ ४७. मेंढ़क की शरीर-गुहा की इंद्रियां १६७
§ ४८. मेंढ़क का जनन और परिवर्द्धन १७०
§ ४९. जल-स्थलचरों की विविधता १७४

अध्याय ८. उरग वर्ग

§ ५०. रेत की छिपकली १८०
§ ५१. सांप १८३
§ ५२. उरगों की आयु १८६
§ ५३. भारत के उरग १९०

अध्याय ९. पक्षी वर्ग

§ ५४. रूक का जीवन और बाह्य लक्षण १९९
§ ५५. रूक की पेशियां, कंकाल और तंत्रिका-तंत्र २०२
§ ५६. रूक की शरीर-गुहा की इंद्रियां २०६

पृष्ठ

§ ५७. पक्षियों का जनन और परिवर्द्धन २१०
§ ५८. पक्षियों का मूल २१३
§ ५९. पक्षियों की विविधता २१६
§ ६०. भारतीय पक्षियों की विविधता २२३
§ ६१. पक्षियों का नीड़-वास और प्रवसन २२९
§ ६२. पक्षियों की उपयोगिता और रक्षा २३४
§ ६३. पालतू मुर्गियां २३९
§ ६४. मुर्गियों की देखभाल और चुगाई २४१
§ ६५. कलहंस, बत्तख़ और टर्की २४५
§ ६६. पोल्ट्री-पालन २४८

अध्याय १०. **स्तनधारी वर्ग**

§ ६७. शशक की जीवन-प्रणाली और बाह्य लक्षण २५१
§ ६८. शशक की पेशियां, कंकाल और तंत्रिका-तंत्र २५४
§ ६९. शशक की शरीर-गुहा की इंद्रियां २५७
§ ७०. शशक का जनन और परिवर्द्धन २६०
§ ७१. अंडज स्तनधारी २६२
§ ७२. मारस्यूपियल स्तनधारी २६४
§ ७३. कीटभक्षी स्तनधारी २६६
§ ७४. काईराप्टेरा (कर-पंखी स्तनधारी) २६८
§ ७५. कुतरनेवाले प्राणी २७१
§ ७६. शिकारभक्षी प्राणियों की श्रेणी २८१
§ ७७. भारत के शिकारभक्षी प्राणी २८७
§ ७८. पिन्नीपेडा और सिटेसिया श्रेणियां २९२
§ ७९. समांगुलीय और विषमांगुलीय स्तनधारियों की श्रेणियां . . २९६
§ ८०. सूंडधारी श्रेणी ३०२
§ ८१. प्राइमेट श्रेणी ३०४
§ ८२. फ़रदार प्राणियों का शिकार और पालन ३०९

पृष्ठ

अध्याय ११. कृषि क्षेत्र के प्राणी

§ ८३. ढोर ३१४

§ ८४. ढोरों की नस्लें ३१८

§ ८५. ढोरों की देखभाल ३२३

§ ८६. ढोरों की खिलाई ३२५

§ ८७. ढोरों की चिंता और पशुरोग विरोधी उपाय ३२७

§ ८८. कोस्त्रोमा नस्ल का विकास कैसे किया गया ३२९

§ ८९. सूअर ३३३

§ ९०. भेड़ ३३६

§ ९१. घोड़े ३४०

§ ९२. सोवियत संघ में पशु-पालन का विकास ३४१

उपसंहार

§ ९३. प्राणि-जगत् की सामान्य रूप-रेखा ३४४

§ ९४. प्राणि-जगत् की विविधता और उसके स्रोत ३४७

§ ९५. प्राणि-जगत् का विकास ३५२

§ ९६. मनुष्य और प्राणियों के बीच साम्य-भेद ३५४

§ ९७. मनुष्य का मूल ३५८

§ ९८. मनुष्य द्वारा प्राणि-जगत् में परिवर्तन ३५९

भूमिका

(अध्यापक के लिए)

इस पाठ्य पुस्तक में प्रोटोज़ोआ से लेकर प्राइमेट तक प्राणि-जगत् के मुख्य समूहों की प्रणालीबद्ध रूप-रेखा दी गयी है। प्राणि-शास्त्र के निम्नलिखित विविध क्षेत्रों की सामग्री का उपयोग करते हुए इस पुस्तक की रचना की गयी है— बाह्याकारिकी (morphology), कायिकी (physiology), पारिस्थितिकी (ecology), भ्रूण-विज्ञान (embryology), लुप्त-जीव-विज्ञान (paleontology) और प्राणियों का वर्गीकरण।

लेखकों के सम्मुख निम्नलिखित शैक्षणिक उद्देश्य हैं—

(क) संरचना, वासस्थान, जीवन-स्थिति, जनन और परिवर्द्धन की दृष्टि से प्राणियों की विविधताओं से छात्रों को परिचित कराना;

(ख) क्रम-विकास के सिद्धान्त के आधार पर प्राणि-जीवन विषयक भौतिक विचार का विवेचन करना;

(ग) मनुष्य की व्यावहारिक गतिविधियों की दृष्टि से प्राणि-शास्त्र का महत्त्व कथन करना;

(घ) उपयुक्त प्राणियों का संरक्षण और हानिकर प्राणियों की समाप्ति का तत्त्व स्वीकार करते हुए छात्रों के बीच प्राणियों के प्रति सचेत और तर्कसंगत प्रवृत्ति जागृत करना।

पाठ्यक्रम के बुनियादी तत्त्व हैं प्राणियों का क्रम-विकास (ऐतिहासिक परिवर्द्धन) और सिद्धान्त तथा व्यवहार का समन्वय।

प्राणि-जगत् के क्रम-विकास की कल्पना छात्रों के मन में चढ़ते क्रम से अर्थात् एककोशिकीय प्राणियों से लेकर बहुकोशिकीय प्राणियों तक, निम्न प्रकार के प्राणियों से लेकर उच्च प्रकार के प्राणियों तक के क्रम से प्रविष्ट की गयी है। इससे, क्रम-विकास की प्रक्रिया में प्राणियों की संरचना में जो जटिलता बढ़ती गयी उसे समझ लेने में छात्रों को सहायता मिलती है।

प्राणियों का परीक्षण उनकी जीवन-स्थितियों पर ध्यान देते हुए किया गया है। प्रत्येक प्राणी के वर्णन के साथ साथ उसके वासस्थान, ग्रावश्यक जीवन-स्थिति ग्रौर वातावरण के ग्रनुसार उसकी संरचना ग्रौर बर्ताव के ग्रनुकूलन का विवरण दिया गया है। ग्रंगों की संरचना का परीक्षण उनके कार्यों पर ध्यान देते हुए किया गया है।

विशिष्ट समह के लिए ग्रसाधारण जीवन-स्थितियों में विशिष्ट ग्रनुकूलन दिखानेवाले प्राणियों (उदाहरणार्थ, स्तनधारियों में से चमगादड़, सील ग्रौर ह्वेल) ग्रौर विभिन्न ग्रंगों के व्यवहार तथा व्यवहाराभाव (उदाहरणार्थ, दौड़ता हुग्रा शुतुर्मुर्ग़) के प्रभाव के ग्रन्तर्गत परिवर्तनों का वर्णन काफ़ी विस्तार के साथ दिया गया है।

कुछ फ़ौसिल प्राणियों का भी वर्णन दिया गया है। इनका परिचय प्राप्त कर लेने से छात्र को प्राणि-जगत् (लुप्त उरग, ग्रारकिग्रोप्टेरिक्स) का ऐतिहासिक परिवर्द्धन समझ लेने में सहायता मिलेगी।

पाठ्य पुस्तक में जल-स्थलचर, उरग, पक्षी ग्रौर स्तनधारी प्राणियों की उत्पत्ति से सम्बन्धित तथ्य इस प्रकार दिये गये हैं कि छात्र उन्हें सुगमता से समझ सकें।

उपसंहार में प्राणि-जगत् के क्रम-विकास सम्बन्धी सामग्री संकलित की गयी है। इसमें प्राणि-जगत् के ऐतिहासिक परिवर्द्धन तथा वर्गीकरण का सारांश, डार्विन के सिद्धान्त की साधारण कल्पना ग्रौर मनुष्य की उत्पत्ति की समस्या से सम्बन्धित चर्चा संगृहीत है।

पूरे पाठ्यक्रम में सिद्धांत तथा व्यवहार के समन्वय के तत्त्व का भी पालन किया गया है।

उदाहरणार्थ :

(क) प्राकृतिक स्रोतों (मछलियों, व्यापारिक पक्षियों ग्रौर फ़रदार जानवरों का शिकार, उपयुक्त पक्षियों का संरक्षण एवं ग्राकर्षण, रक्षित उपवन) के तर्कसंगत उपयोग ग्रौर सुरक्षा का परिचय कराते समय;

(ख) रोग के उत्पादकों तथा वाहकों की बायोलोजी के ग्रध्ययन में, जहां उनके वर्णन के साथ साथ उनके मलेरिया परजीवी, परजीवी कृमि, ग्रौर कीट* विरोधी उपाय भी दिये गये हैं;

---

*जो रोग-उत्पादकों के वाहक हैं ग्रौर कुतरनेवाले जंतु – जो प्लेग-पिस्सू के वाहक हैं।

(ग) विभिन्न कृषिनाशक जंतुओं (कीट , कुतरनेवाले तथा मांसाहारी जंतु) के वर्णन में ;

(घ) प्राणि-पालन की – मधुमक्खी-पालन , रेशमी कीट-पालन , मछलियों का शिकार , पोल्ट्री , मवेशी-पालन – विभिन्न शाखाओं के जीव वैज्ञानिक तत्वों का परिचय कराते समय । मवेशी आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं अतः एक विशेष अध्याय में उनका परीक्षण किया गया है।

उक्त सारी 'व्यावहारिक' सामग्री इस प्रकार प्रस्तुत की गयी है कि छात्र न केवल वैज्ञानिक जानकारी के व्यावहारिक उपयोग से परिचित होंगे बल्कि प्राणियों की संरचना तथा जीवन के सम्बन्ध में अपना ज्ञान और विस्तृत तथा गहरा कर पायेंगे।

पाठ्यक्रम की आधारभूत कल्पनाएं क्रमशः और धीरे धीरे विकसित की गयी हैं । इस प्रकार शरीर के परमावश्यक कार्यों का वर्णन (पोषाहार , श्वसन , उत्सर्जन) आरंभिक अध्यायों में दिया गया है जबकि उपापचय (metabolism) की प्रारंभिक साधारण कल्पना पहली बार आरथ्रोपोडा विषयक अध्याय में ही दी गयी है। बाद में मछलियों तथा रीढ़धारियों के अनुगामी वर्गों की विशेषता बताते समय यह कल्पना अधिक गहराई के साथ स्पष्ट की गयी है।

प्राणियों और वातावरण के बीच के संबंधों के स्वरूप पर भी क्रमशः ध्यान दिया गया है। हाइड्रा का वर्णन करते समय अनियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाएं समझायी गयी हैं और केंचुए तथा उसके अनुगामी प्राणियों के वर्णनों में उनके प्रमाण दिये गये हैं । सहज प्रवृत्तियां एक प्रकार की जटिल अनियमित प्रतिवर्ती क्रियाएं होती हैं यह दिखाने के लिए कीटों का उपयोग किया गया है। केवल रीढ़धारियों वाले अध्यायों में ही यह पाठ्य पुस्तक नियमित प्रतिवर्ती क्रियाओं को अस्थायी संबंधों के रूप में प्रस्तुत करती है।

प्राणियों के वर्गीकरण की कल्पना भी धीरे धीरे समझायी गयी है। आरथ्रोपोडा वाले अध्याय से पहले वर्गीकरण की समस्या का विवेचन नहीं किया गया है। आरथ्रोपोडा का वर्णन करते समय समूह और वर्ग के अभिप्राय समझाये गये हैं । रीढ़धारियों का वर्णन वर्गानुसार दिया गया है। श्रेणी , कुल , जाति और प्रकार का स्पष्टीकरण , कुतरनेवाले जंतुओं के उदाहरण से सम्बन्धित एक विशेष परिच्छेद में दिया गया है।

इस पाठ्य पुस्तक की रचना में लेखकों ने जो प्रणाली अपनायी है उससे प्राणि-शास्त्र विषयक पाठ्यक्रम की आधारभूत धारणाओं का क्रमिक विकास संभव है। इसी लिए अनुवाद का रूप वही रखा गया है जो रूसी में प्रकाशित मूल पुस्तक का है। फिर भी भारतीय छात्रों के लिए अधिक रोचक बनाने की दृष्टि से पुस्तक को परिवर्द्धित किया गया है और उसमें भारतीय प्राणि-समूह के विशिष्ट प्राणियों का समावेश किया गया है। इनका वर्णन भी उसी प्रकार दिया गया है जिस प्रकार बाक़ी प्राणियों का। इसलिए नये परिच्छेदों का उपयोग या तो मुख्य पाठ्यक्रम की पूर्ति के रूप में किया जा सकता है और या तो पाठ्यक्रम के मुख्य भाग में वर्णन किये गये प्राणियों के स्थान में।

आम तौर पर इस पाठ्यक्रम का उपयोग करते समय किसी विशेष समूह के प्रतिनिधि प्राणियों के स्थान में ऐसे दूसरे प्राणी लिये जा सकते हैं जो स्कूलवाले इलाक़े की स्थितियों में पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ, मछलियों की संरचना का अध्ययन करते समय यह किसी प्रकार अनिवार्य नहीं है कि पर्च-मछली को ही लिया जाये। उसके स्थान में दूसरी कोई भी अस्थिल मछली ली जा सकती है। कीटों के प्रतिनिधि के रूप में काकचेफ़र जैसे कीट के स्थान में अन्य बड़े कीट (उदाहरणार्थ तिलचटे) को और रूक के स्थान में कौए, कबूतर इत्यादि को लिया जा सकता है।

पाठ्य पुस्तक की रचना संक्षिप्त रूप में की गयी है ताकि अध्यापक द्वारा क्लास में दी गयी जानकारी का अनुशीलन करने में उसका उपयोग हो सके। अध्ययन-सामग्री के साथ छात्रों का परिचय केवल अध्यापक के कथन और पाठ्य पुस्तक के पठन तक ही सीमित न रहे बल्कि उसे ज़िन्दा प्राणियों के प्रदर्शन, शिक्षा के भिन्न भिन्न दर्शनीय साधनों (संग्रह, उपकरण, मसाला भरे हुए प्राणी, सारणियां), फ़िल्मों, प्रयोगशाला के पाठों, सैर-सपाटों और स्कूल के बाहर प्राणियों के निरीक्षणों का साथ दिया जाये।

इस पाठ्य पुस्तक का उपयोग करनेवाले सभी लोगों से लेखकों की प्रार्थना है कि वे निम्नलिखित पते पर पुस्तक के संबंध में अपनी सम्मतियां और परामर्श भेज दें – विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, २१, ज़ूबोव्स्की बुलवार, मास्को, सोवियत संघ।

व० शलायेव
न० रीकोव

प्रस्तावना

§ १. प्राणि-जगत् में स्वरूपों की विविधता

जिस प्रकार वनस्पति-शास्त्र वनस्पतियों का अध्ययन करता है उसी प्रकार प्राणि-शास्त्र प्राणियों के जीवन तथा संरचना का अध्ययन करता है।

संसार में प्राणी शीतध्रुवीय प्रदेशों से लेकर उष्णकटिबन्धीय देशों तक और पहाड़ों की चोटियों से लेकर महासागरों की गहराइयों तक सब जगह पाये जाते हैं। प्राणियों के अनुकूल वातावरण या उनके वासस्थान की प्राकृतिक स्थितियां बहुत ही भिन्न होती हैं और उसी प्रकार उनका भोजन भी। परिणामतः प्राणियों की जीवन-प्रणाली और उनकी संरचना में भी बहुत बड़ी भिन्नता होती है।

उदाहरणार्थ, उत्तरी समुद्र-तटों पर और आर्कटिक महासागर के तैरते हुए हिमक्षेत्रों पर सफ़ेद भालू मिलते हैं (रंगीन चित्र १)। यह एक बहुत बड़ा जानवर है। इसके शरीर पर मोटी सफ़ेद फ़र होती है जो ठंड से उसकी अच्छी तरह रक्षा करती है। सफ़ेद रंग के कारण इस जानवर को बर्फ़ पर अलग से पहचान लेना मुश्किल होता है। ध्रुव-प्रदेशीय भालू का भोजन है सील। जब सील पानी से निकलकर बर्फ़ पर आते हैं, ये भालू वहीं उनका शिकार करते हैं। अलावा इसके वह बहुत अच्छी तरह तैर सकता है और ग़ोते भी लगा सकता है। पानी में से वह चोरी चोरी सीलों के पास पहुंच जाता है।

भूरे भालू (रंगीन चित्र २) का वासस्थान और भोजन भिन्न है। यह जानवर घने जंगलों में रहता है और उसका कोट काले-भूरे रंग का होता है। उसका भोजन विविध प्रकार होता है। वैसे तो यह बेरियां और घास तथा पक्षियों के अंडे खाता है, पर बारहसिंगों और जवान गोज़नों जैसे बड़े शिकार

पर ग्रौर मवेशियों तथा भेड़ों जैसे पालतू जानवरों पर भी मुंह मार सकता है।

स्तेपियों में गोफर नामक छोटे छोटे प्राणी रहते हैं (रंगीन चित्र ३)। ये प्राणी ज़मीन में मांद बनाते हैं ग्रौर ग्रादमी की ग्राहट पाते ही फ़ौरन उनमें छिप जाते हैं। गोफर केवल शाकाहारी भोजन पर रहते हैं। वे गेहूं तथा दूसरे ग्रनाज खाते हैं ग्रौर इसी लिए उनसे खेती को बड़ा नुक़सान पहुंचता है।

नदियों ग्रौर सागरों में भिन्न भिन्न प्रकारों की मछलियां रहती हैं। इनमें से एक पर्च-मछली (रंगीन चित्र ४) है जो रूस की नदियों में ग्राम तौर पर पायी जाती है। पर्च-मछली का ग्राहार मुख्यतया छोटी मछलियां ग्रौर दूसरे जलचर प्राणी हैं।

प्राणी ज़मीन के ग्रंदर भी रहते हैं जहां सूरज की किरण पहुंच नहीं पाती। इनमें से एक ग्राम प्राणी है केंचुग्रा जो बरसात के बाद ज़मीन की सतह पर रेंगकर ग्राता है। इनका भोजन वनस्पतियों के सड़े-गले ग्रंश होता है ग्रौर वे गिरी हुई पत्तियों को ग्रपने बिलों में खींच ले जाते हैं (ग्राकृति १८)।

प्राणियों के वासस्थान, जीवन-प्रणाली ग्रौर स्वरूप कितने भिन्न होते हैं यह दिखाने के लिए उक्त पांच प्राणियों के उदाहरण पर्याप्त हैं। पर ध्यान रहे कि ये केवल सीमित उदाहरण हैं। प्रकृति में प्राणियों की विविधता बहुत विशाल है।

कौए, गौरैयां, ग्रबाबील, कठफोड़वे ग्रौर ग्रन्य कई पंछियों को कौन नहीं जानता? कीटों की विविधता तो ग्रौर भी बड़ी है। इनमें तितलियां, गोबरैले, मच्छर, मक्खियां, चींटियां, मधुमक्खियां, बर्रें ग्रौर बहुत-से ग्रन्य कीट शामिल हैं। ये भी प्राणी ही हैं।

प्राणियों के ग्राकार भी भिन्न भिन्न होते हैं। उनमें से कुछ हाथी जैसे बहुत बड़े होते हैं। उनकी ऊंचाई ३ मीटर तक ग्रौर वज़न चार टन से ग्रधिक होता है। सागरों ग्रौर महासागरों में रहनेवाले ह्वेल तो इनसे भी बड़े होते हैं। नीले ह्वेल की लम्बाई ३० मीटर तक ग्रौर वज़न १५० टन तक होता है। पर ऐसे भी ग्रनगिनत प्राणी हैं जिनको केवल माइक्रोस्कोप द्वारा ही देखा जा सकता है।

पृथ्वी की परत की सतहों में हमें कुछ प्राणियों के अवशेष (हड्डियां, सींप-कौड़ी इत्यादि) मिलते हैं जो कुछ अंशों में आधुनिक प्राणियों के जैसे होते हुए भी उनसे काफ़ी भिन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, हमें हाथी से मिलते-जुलते **मैमथ** (बृहत् गज) नामक एक विशालकाय जानवर की हड्डियां मिलती हैं (आकृति १६१)। सोवियत संघ के उत्तर में ज़मीन की सदैव जमी परत में एक पूरा का पूरा मैमथ मिला जो दसियों हज़ार वर्षों से वहां जमा हुआ पड़ा था। मैमथ ठंडे जलवायु में रहते थे और हाथी से इस माने में भिन्न थे कि उनके शरीर पर मोटा बालदार कोट-सा हुआ करता था।

मैमथ और कई अन्य फ़ौसिल प्राणी बहुत प्राचीन समय में रहते थे लेकिन आगे चलकर लोप हो गये – बिल्कुल फ़र्न जैसी वनस्पतियों की तरह जिनके फ़ौसिलीय अवशेष कोयलों में पाये जाते हैं। ग़रज़ यह कि प्राणि-जगत् सदा से वैसा ही नहीं रहा है जैसा वह आज है। जो लोग कहते हैं कि प्राणी अपरिवर्तनीय हैं, वे ग़लत हैं। विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि धरती पर का प्राणि-जगत् परिवर्तित और परिवर्द्धित होता आया है।

'प्रस्तावना' के बाद हम विभिन्न प्राणियों का अध्ययन करेंगे। केवल माइक्रोस्कोप द्वारा देखे जा सकनेवाले बिल्कुल सरल प्राणियों से आरम्भ करते हुए हम बंदरों जसे सबसे सुसंगठित प्राणियों तक पहुंचेंगे। अध्ययन के इस क्रम से हमें प्राणि-जगत् का परिवर्द्धन-क्रम समझ लेने में सहायता मिलेगी।

प्रश्न – १. सफ़ेद भालू, भूरे भाल, गोफर, पर्च-मछली और केंचुए कौनसे वासस्थान में रहते हैं? २. इन प्राणियों का भोजन क्या है? ३. तुम्हारे सजीव प्रकृति-संग्रह में कौनसे प्राणी हैं और वे क्या खाते हैं? ४. पाठ्यक्रम में वर्णित प्राणियों के अलावा और कौनसे वन्य प्राणियों को तुम जानते हो? वे कहां रहते हैं और क्या खाते हैं?

§ २. प्राणि-शास्त्र का महत्त्व

बहुत-से प्राणी और विशेषकर घरेलू प्राणी (गायें, भेड़ें, सूअर, मुर्ग़ियां, इत्यादि) उपयोगी होते हैं। ये प्राणी हमें खाद्य-पदार्थ (मांस, दूध, अंडे) **और** कपड़ों तथा जूतों के लिए कच्चा माल (ऊन, प्राकृतिक रेशम, फ़र, चमड़ा) देते

हैं। घोड़ों, गदहों, बैलों और भैंसों का उपयोग यातायात और खेती के काम में किया जाता है।

बहुत-से वन्य प्राणी भी उपयोगी होते हैं।

मछली, और कुछ वन्य पक्षियों (बत्तखों, हंसों) का मांस खाने में प्रयोग किया जाता है। फ़रदार प्राणियों (गिलहरियों, लोमड़ियों, सैबलों) से हमें

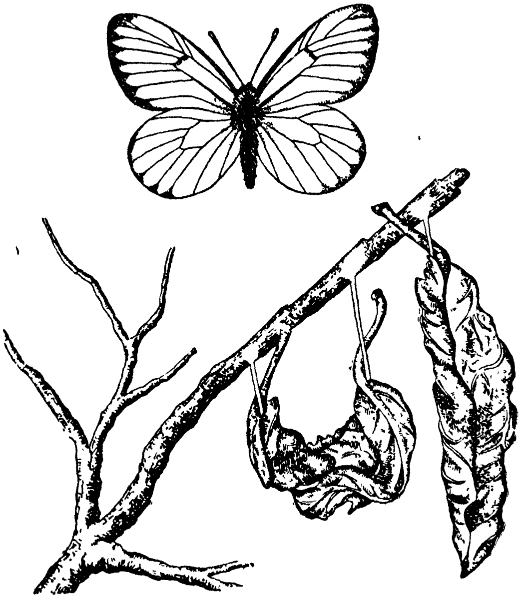

आकृति १ – कैंकर-तितली और इसकी इल्लियों के शीतकालीन घोंसले।

गरम, खूबसूरत फ़र मिलती है। बहुत-से पक्षी (सारिका, अबाबील, टामटिट) हानिकर कीटों का नाश कर देते हैं।

प्राणियों का सफल उपयोग करने के लिए उनकी आवश्यकताएं जानना ज़रूरी है। उदाहरणार्थ, वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि मुर्ग़ी के अंडों का कवच तभी सख्त हो सकता है जब मुर्ग़ी की खुराक में चूने का अंश हो। यह सिद्ध किया गया है कि केवल अनाज मुर्ग़ियों के लिए काफ़ी खुराक नहीं है; उन्हें प्राणिज खुराक (केंचुआ, सूखा मांस) भी मिलनी चाहिए। तभी मुर्ग़ियां काफ़ी अंडे दे सकती हैं।

सोवियत संघ ही वह पहला देश रहा जिसने सैबल (आकृति १६५) क कृत्रिम संवर्द्धन आरंभ किया। यह प्राणी अपनी अत्यंत मूल्यवान् फ़र के लिए प्रसिद्ध है। वैज्ञानिकों ने सैबल के जीवन का अध्ययन किया और उनकी खुराक का ठीक ठीक पता लगाया। तभी जाकर यह संवर्द्धन संभव हुआ।

उपयोगी प्राणियों के साथ साथ बहुत-से हानिकर प्राणी भी हैं। उदाहरणार्थ, भेड़िये भेड़ों और बछड़ों का शिकार करते हैं; गोफर अनाज और उपयुक्त घासों का सफ़ाया करते हैं। खेतों में उगाये गये पौधों पर अपनी जीविका चलानेवाले विभिन्न कीटों के कारण खेती को बड़ा भारी नुक़सान पहुंचता है। हम जानते ही हैं कि गोभी-तितली की इल्लियां गोभी के पत्तों को खा जाती हैं। दूसरी एक तितली – कैंकर-तितली – की इल्लियां कभी कभी फलदार पेड़ों की सभी पत्तियां नष्ट कर देती हैं। सेब के अंदर घुसनेवाली काडलिन पतंग की इल्लियों को हर कोई जानता है। इस प्रकार के हानिकर कीटों की संख्या बहुत बड़ी है।

कीटों में ऐसे कई परजीवी कीट भी हैं जो मनुष्य तथा घरेलू प्राणियों को नुक़सान पहुंचाकर जीवित रहते हैं। एस्कराइड एक एसा कीट है।

मनुष्य हानिकर प्राणियों के विरुद्ध डटकर संघर्ष कर रहा है। इस संघर्ष को सफलतापूर्वक जारी रखने के लिए हमें इन प्राणियों की संरचना, जीवन और परिवर्द्धन का अध्ययन करना चाहिए। निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होगा कि ऐसी जानकारी कितनी लाभदायक है। कैंकर-तितली के अध्ययन से पता चला कि उसकी नन्हीं नन्हीं इल्लियां जाड़ों के दिन पेड़ों पर बची हुई सूखी पत्तियों में बिताती हैं (आकृति १)। यदि इन घोंसलों को शरद के आख़िरी दिनों में या जाड़ों में हटाकर जला दिया जाये तो फलबाग़ को इन नुक़सानदेह कीटों से बचाया जा सकता है।

इस प्रकार प्राणि-शास्त्र न केवल प्राणियों के जीवन, संरचना और परिवर्द्धन के सम्बन्ध में सही धारणा बना लेने की दृष्टि से बल्कि प्राप्त किये गये ज्ञान के आधार पर हानिकर प्राणियों के विरुद्ध संघर्ष करने, उपयोगी प्राणियों की रक्षा

करने और घरेलू प्राणियों का उचित ढंग से पालन तथा संवर्द्धन करने की दृष्टि से भी हमारी सहायता करता है।

प्रश्न—१. घरेलू प्राणियों से हमें क्या फ़ायदा मिलता है? २. स्कूल के प्रायोगिक फ़ार्म में तुम्हें कौनसे हानिकर प्राणी मिले? उनका सामना कसे किया जाता था? ३. मनुष्य ने सैबल का कृत्रिम संवर्द्धन करना सीखा इसका श्रेय किसको है? ४. कैंकर-तितली के परिवर्द्धन से सम्बन्धित ज्ञान उसका सामना करने में किस प्रकार सहायक होता है? ५. प्राणि-शास्त्र का महत्त्व क्या है?

अध्याय १

प्रोटोजोआ

§ ३. इनफ़ुसोरिया पैरामीशियम

प्रोटोज़ोआ की खोज

लगभग ३०० वर्ष पहले सुप्रसिद्ध डच वैज्ञानिक ऐंथोनी लेवेनहुक ने प्रोटोज़ोआ की खोज की। लेवेनहुक जीवन-भर वृहदाकारक शीशे तैयार करने के कार्य में व्यस्त रहे। बहुत ही उद्योगशील और जिज्ञासु होने के कारण उन्होंने जो भी चीज़ हाथ लगी उसका परीक्षण अपने शीशों द्वारा किया। एक दिन वह एक तेज़ खुर्दबीन के ज़रिये बरसात के पानी की एक बूंद की ओर देख रहे थे। यह पानी कुछ समय से एक पीपे में पड़ा हुआ था। इसी बूंद में उन्हें ऐसे सूक्ष्म प्राणियों का पता लगा जो उस समय तक अज्ञात थे। उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। आज इनमें से सबसे परिचित प्राणी है पैरामीशियम। इसी के साथ हम प्रोटोज़ोआ अर्थात् सबसे सरल संरचनावाले प्राणियों का परिचय प्राप्त करना आरम्भ करेंगे।

पैरामीशियम – एककोशिकीय प्राणी

पैरामीशियम (आकृति २) मुख्यतया ऐसे ताज़े जलाशयों में रहते हैं जहां उथला और बंधा हुआ पानी संचित हो। ऐसे जलाशयों में तृण-कीटाणु (hay bacilli) नामक अनगिनत बैक्टीरिया ख़ूब पलते हैं। यही कीटाणु पैरामीशियम का भोजन हैं। प्रयोगशालाओं में पैरामीशियम का संवर्द्धन सूखी घास के काढ़े में किया जाता है। इसी लिए वे इनफ़ुसोरिया अर्थात् क्वाथ कीटाणु कहलाते हैं।

पैरामीशियम का शरीर लम्बा-सा और नन्हे-से स्लिपर के आकार का होता है। वह जीवद्रव्य (protoplasm) नामक जेलीनुमा अर्द्धपारदर्शी पदार्थ का बना हुआ होता है और उसमें दो वृत्ताकार कणिकाएं होती हैं। ये हैं बड़ा और छोटा नाभिक। जीवद्रव्य की ऊपरी परत गाढ़ी होती है और उसी से बाह्यत्वक बनता है जिससे पैरामीशियम के शरीर का स्थायी आकार बना रहता है।

जीवद्रव्य, नाभिक और बाह्यत्वक से मिलकर एक कोशिका बनती है। अतः संरचना की दृष्टि से पैरामीशियम एक एककोशिकीय जीव है।

पोषण

पैरामीशियम का पूरा शरीर अनगिनत रोमिकाओं से आवृत होता है। अपनी झूलती हुई गति के कारण ये रोमिकाएं नन्हे नन्हे डांड़ों का काम देती हैं जिससे यह प्राणी तैर सकता है। पैरामीशियम तैरते हुए सतत अपने शरीर की लम्बी धुरी के चारों ओर चक्कर खाता रहता है।

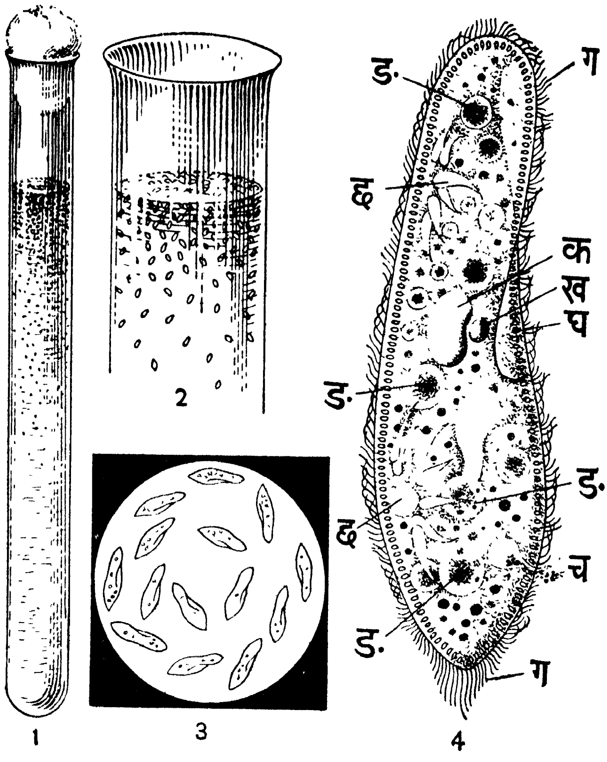

आकृति २ – पैरामीशियम

१ (1). पोषक घोल सहित टेस्ट-ट्यूब में पैरामीशियम; २ (2). खुर्दबीन द्वारा उसी टेस्ट-ट्यूब का ऊपरी सिरा यों दिखाई देता है; ३ (3). माइक्रोस्कोप के नीचे पैरामीशियम, कुछ बड़े आकार में; ४ (4). पैरामीशियम की संरचना – बहुत बड़े आकार में; (क) बड़ा नाभिक; (ख) छोटा नाभिक; (ग) रोमिका; (घ) वक्त्रीय खांच; (ङ) भोजन रसधानियां; (च) अनपचे शेषांश का उत्सर्जन; (छ) विकिरक नालियों सहित संकुचनशील रसधानियां।

पैरामीशियम का मुख-द्वार वक्त्रीय खांच में होता है। वक्त्रीय खांच को घेरनेवाली रोमिकाओं की गति के कारण पानी का एक अखंडित प्रवाह जारी रहता है। यह पानी बैक्टीरिया सहित सब प्रकार के कणों को पैरामीशियम के मुख-द्वार तक लाता है।

जब वक्त्रीय खांच की गहराई में बहुत-से बैक्टीरिया इकट्ठा हो जाते हैं तो पैरामीशियम उन्हें निगल जाता है। भोजन का थक्का जीवद्रव्य में प्रवेश करता है। यहां एक पाचक रस का स्राव होता है जो भोजन को घेरे रहता है। इस प्रकार भोजन रसधानी का उदय होता है। भोजन के नये थक्के फिर दूसरी, तीसरी और इसी प्रकार एक के बाद एक कई रसधानियों से घेरे जाते हैं। वे एक के बाद एक जीवद्रव्य में घूमते रहते हैं। रसधानियों का भोजन पच जाता है। पचा हुआ भोजन बराबर पैरामीशियम के शरीर-द्रव्यों में परिवर्तित होता रहता है। भोजन के अनपचे शेषांश का शरीर के एक निश्चित स्थान से उत्सर्जन होता है (आकृति २, च)।

श्वसन

यदि पैरामीशियम को उबालकर ठंडे किये हुए और घुली हुई हवा से खाली पानी में डाल दिया जाये तो वह नष्ट हो जायेगा। इसका अर्थ यह है कि उसे जीवित रहने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता है – अर्थात् पैरामीशियम श्वसन करता है।

पैरामीशियम अपने शरीर की सारी सतह के द्वारा श्वसन करता है। जीवद्रव्य में तैयार होनेवाले कारबन डाइ-आक्साइड का उत्सर्जन होता है।

उत्सर्जन

पैरामीशियम के शरीर में नये द्रव्यों के सतत निर्माण के साथ साथ विघटन की क्रिया जारी रहती है। इसी के दौरान जीवद्रव्य में धीरे धीरे पानी एकत्रित होता है जिसमें हानिकर द्रव्य घुले हुए होते हैं। इसे दो संकुचनशील रसधानियां शरीर से बाहर कर देती हैं।

प्रत्येक रसधानी एक कोष देती है जिसमें नालियां जीवद्रव्य में तैयार होनेवाले हानिकर द्रव्य पहुंचा देती हैं। आगे चलकर हम इन पदार्थों को तरल उत्सर्जन कहेंगे। जब इनसे कोष भर जाता है तो वह संकुचित होता है और उसमें संचित पदार्थ शरीर से बाहर फेंका जाता है।

उद्दीपन और उत्तेजन

कई बार घास के काढ़े की सतह पर एक झिल्ली तैयार हो जाती है जो तृण-कीटाणु नामक बैक्टीरिया की बड़ी भारी संख्या से बनी हुई होती है। यदि ऐसी झिल्ली का कोई हिस्सा पैरामीशियम सहित पानी की बूंद में रखा जाये तो शीघ्र ही सारे इनफ़ुसोरिया उसके चारों ओर इकट्ठे हो जायेंगे। वे उक्त हिस्से के किनारे किनारे तैरते रहेंगे और उससे अलग होनेवाले नन्हे नन्हे टुकड़ों को निगलते जायेंगे।

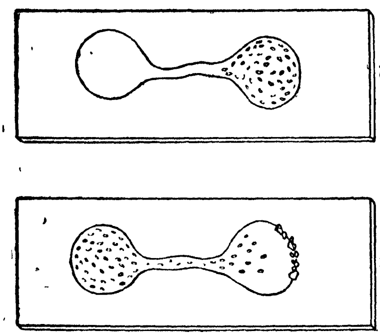

क

ख

आकृति ३–पैरामीशियम की उत्तेजनशीलता
क – सूखी घास के काढ़े की दाहिनी ओरवाली बूंद में एकत्रित पैरामीशियम ; ख– दाहिनी ओर की बूंद में नमक के केलास रखने पर पैरामीशियम बायीं ओर की बूंद में चले जाते हैं जो नमक से ख़ाली है।

इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पैरामीशियम पर भोजन का कुछ असर पड़ता है और वह उसे अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

हम पैरामीशियम सहित पानी की दो बूंदें ऑब्जेक्ट ग्लास पर रखकर देखें (आकृति ३)।

यदि एक बूंद में नमक का केलास रखा जाये तो पैरामीशियम नाली के जरिये तैरकर दूसरी बूंद में चले जायेंगे। ग़रज़ यह कि नमक भी इनफ़ुसोरिया पर प्रभाव डालता है लेकिन यह भोजन के प्रभाव से भिन्न होता है – पैरामीशियम नमक से दूर हटते हैं।

प्राणि-शास्त्रियों द्वारा किये गये प्रयोगों से स्पष्ट हुआ है कि पैरामीशियम केवल भोजन और नमक से ही नहीं बल्कि ऑक्सीजन, प्रकाश और पानी के तापमान से भी प्रभावित होते हैं।

जीवित शरीर पर पड़नेवाले ये सभी प्रभाव उद्दीपन कहलाते हैं। उद्दीपन के कारण जीवद्रव्य में उत्तेजन उत्पन्न होता है अर्थात् वह सक्रिय अवस्था में परिवर्तित होता है। जीवद्रव्य में उत्पन्न होनेवाला उत्तेजन पैरामीशियम की गतियों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

जनन

जब जलाशय में पर्याप्त भोजन होता है और पानी का तापमान १४ सेंटीग्रेड के ऊपर होता है उस समय पैरामीशियम तेजी के साथ बड़े होते हैं और विभाजन के द्वारा उनका जनन होता है। पहले पहल नाभिकों का विभाजन होता है जिनके हिस्से शरीर के किनारों की ओर हट जाते हैं। इसके बाद शरीर पर एक तिरछी सिकुड़न पैदा होती है जो अधिकाधिक गहरी होती जाती है। जब आखिरकार वह टूट जाती है तो मातृ-कोशिका से दो नये पैरामीशियम बन जाते हैं (आकृति ४)।

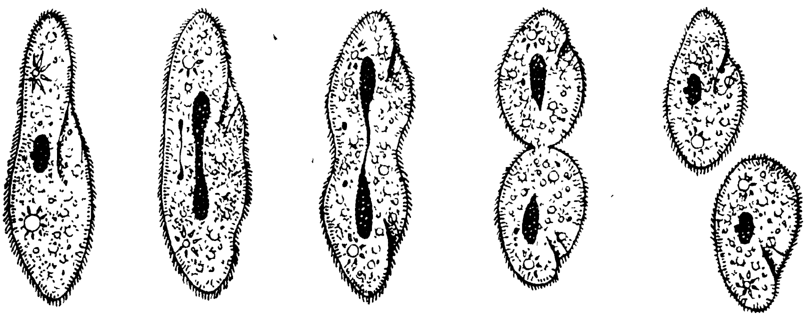

आकृति ४ – पैरामीशियम का विभाजन।

प्रश्न – १. पैरामीशियम के जीवन के लिए कैसी स्थितियां आवश्यक हैं? २. पैरामीशियम की संरचना का वर्णन करो। ३. पैरामीशियम किस प्रकार खाता है, श्वसन करता है और गति प्राप्त करता है? ४. पैरामीशियम में उत्सर्जन-क्रिया कैसे चलती है? ५. पैरामीशियम का जनन कैसे होता है?

व्यावहारिक अभ्यास – स्मरण से पैरामीशियम का चित्र खींचने का प्रयत्न करो।

§ ४. साधारण अमीबा

अमीबा – एककोशिकीय प्राणी

अमीबा (आकृति ५) गरमियों में अच्छी तरह गरम हुए तालाबों और पोखरों में और आम तौर पर उथले, बंधे हुए पानी में पाये जाते हैं। अमीबा में जीवद्रव्य और एक अंडाकृति नाभिक होता है। पैरामीशियम की तरह यह भी एक एककोशिकीय प्राणी है पर इसकी संरचना और भी सरल है।

जब पानी सूख जाता है तो इनफ़ुसोरिया की तरह अमीबा के शरीर पर एक ठोस झिल्ली का आवरण उत्पन्न होता है—एक पुटी तैयार होती है। पुटी की अवस्था में यह प्राणी सूखे, निम्न तापमान और अन्य प्रतिकूल स्थितियों के बावजद आसानी से ज़िंदा रह सकता है। जब हवा पुटी को पानी में उड़ा देती है, अमीबा उससे बाहर निकलता है।

गति

अमीबा कूटपादों—उसके शरीर पर बने हुए जीवद्रव्य के उभारों—के सहारे चलता है। ये कूटपाद गति की दिशा में क्रमशः बाहर निकल आते हैं। प्राणी का शरीर धीरे से रेंगता हुआ आगे बढ़ता है—मानो कूटपादों में घस रहा हो। इसी बीच कुछ कूटपाद अदृश्य हो जाते हैं और

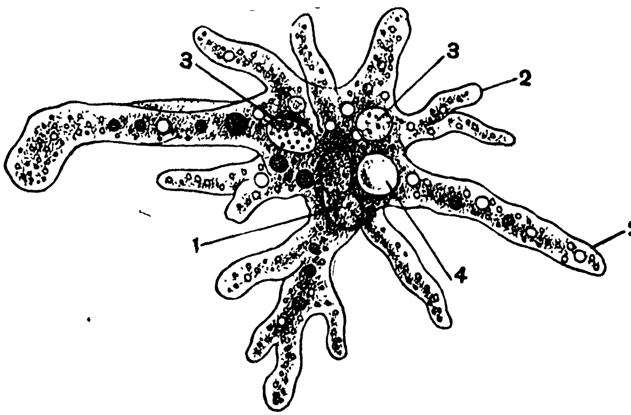

आकृति ५—साधारण अमीबा

१ (1). नाभिक; २ (2). कूटपाद; ३ (3). भोजन रसधानियां; ४ (4). संकुचनशील रसधानी।

दूसरे नये से निकल आते हैं। प्राणी का बाह्य रूप बराबर बदलता रहता है। इसी कारण इस प्राणी को अमीबा कहा जाता है। यूनानी भाषा में इस शब्द का अर्थ है परिवर्तनशील।

पोषण और पचन-क्रिया

पैरामीशियम की तरह अमीबा भी कारबनीय भोजन और मुख्यतया एककोशिकीय जल-मोथे खाते हैं। अमीबा धीरे धीरे जल-मोथे को चारों ओर से ढंक देता है और फिर उसे अपने शरीर में खींच लेता है (आकृति ६)। यहां

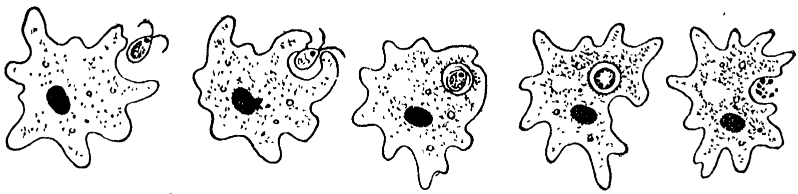

आकृति ६—गति और अन्तर्ग्रहण के समय अमीबा के शरीर में परिवर्तन।

भोजन जीवद्रव्य से स्रवित पाचक रस से घिरा हुआ है। इस प्रकार एक कोष या भोजन रसधानी तैयार होती है (आकृति ५, ६) जिसमें भोजन-कण विलेय द्रव्यों में परिवर्तित होते हैं। ये द्रव्य सारे शरीर में बंट जाते हैं। इन्हीं के कारण अमीबा बड़ा होता है। भोजन के अनपचे शेषांश शरीर से बाहर फेंके जाते हैं और फिर भोजन रसधानी अदृश्य हो जाती है।

पैरामीशियम से अलग अमीबा के शरीर के किसी भी हिस्से में अन्तर्ग्रहण और अनपचे शेषांश का उत्सर्जन हो सकता है।

श्वसन और उत्सर्जन

अमीबा श्वसन करता है। वह ऑक्सीजन का अवशोषण कर लेता है और कारबन डाइ-आक्साइड को छोड़ देता है। पैरामीशियम की तरह यह भी अपने शरीर की पूरी सतह से श्वसन करता है। ठीक पैरामीशियम की तरह अमीबा के शरीर में भी तरल उत्सर्जन तैयार होते है और संकुचनशील रसधानी से बाहर कर दिये जाते हैं।

संकुचनशील रसधानी पारदर्शी तरल द्रव्य सहित एक कोष देती है। हानिकर द्रव्यों के प्रवेश के कारण रसधानी धीरे धीरे फैलती जाती है। एक विशिष्ट मात्रा तक के फैलाव के बाद रसधानी संकुचित हो जाती है और उसमें संचित द्रव शरीर से बाहर फेंका जाता है।

उद्दीपन और उत्तेजन

यदि अमीबा सहित पानी की आधी बूंद माइक्रोस्कोप के नीचे प्रकाशित की जाये तो प्राणी रेंगकर बूंद के अप्रकाशित हिस्से की ओर जायेंगे। इससे स्पष्ट होता है कि अमीबा प्रकाश-उद्दीपन से प्रभावित होते हैं। यदि अमीबा सहित पानी की बूंद में नमक का एक केलास डाल दिया जाये तो अमीबा की गति मन्द हो जाती

है, शरीर ज़्यादा गोल हो जाते हैं और कूटपाद अधिक मोटे तथा छोटे। इससे स्पष्ट होता है कि अमीबा रासायनिक उद्दीपन से भी प्रभावित होते हैं।

प्रकाशोत्पन्न और रासायनिक उद्दीपनों के कारण अमीबा का जीवद्रव्य उत्तेजित होता है। परिणामतः अमीबा में ऐसी गतियां उत्पन्न होती हैं जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रखर प्रकाश इन प्राणियों को शीघ्र ही मार डालता है। जो प्राणी रेंगते हुए छांव में चले जाते हैं वे बचते हैं। घोल में नमक की अधिकता भी अमीबा के लिए प्राणघातक होती है। अपने कूटपादों को अंदर खींचकर और गेंद का सा रूप धारण कर यह प्राणी अपने शरीर की सतह कम कर लेता है ताकि वह हानिकर घोल के प्रभाव से बच सके।

जनन

अमीबा के लिए भोजन, ऑक्सीजन और उष्णता आवश्यक हैं। यदि ये चीज़ें उसे पर्याप्त मात्रा में मिल जाती हैं तो वह बड़ा होता है और जनता है।

जनन की क्रिया विभाजन द्वारा होती है। शरीर लम्बाई में फैलता है और दीर्घ आकार धारण कर लेता है। नाभिक भी फैलता है और कुछ देर बाद दो हिस्सों में बंट जाता है। ये हिस्से एक दूसरे से दूर हटने लगते हैं। जीवद्रव्य में एक सिकुड़न पैदा होती है जो गहरी होती जाती है और जीवद्रव्य को दो बराबर हिस्सों में बांट देती है। इस प्रकार एक पुराने अमीबा से दो नये अमीबा उत्पन्न होते हैं।

आमातिसारकारी अमीबा

जब वैज्ञानिकों ने रक्त तथा उत्सर्जन का और रोगियों के शरीर पर निकले हुए विभिन्न फोड़ों में तैयार होनेवाले द्रवों का माइक्रोस्कोप से परीक्षण आरंभ किया तो उन्हें बहुत-से रोगजनक प्रोटोज़ोआ का पता लगा।

सन् १८७५ की बात है। पीटर्सबर्ग में रूसी चिकित्सक प्रोफ़ेसर लेश के पास रक्तातिसार से पीड़ित एक रोगी आ पहुंचा। डॉक्टर लेश ने माइक्रोस्कोप की सहायता से रोगी के तरल उत्सर्जन की एक बूंद का परीक्षण किया तो उन्हें उसमें अत्यन्त गतिशील सूक्ष्म अमीबा नज़र आये। यह निश्चित रूप से जानने के लिए कि कहीं ये प्राणी ही तो रोगी की पीड़ा के कारण नहीं हैं, लेश ने रोगी का तरल उत्सर्जन रबड़ की पिचकारी के ज़रिये एक कुत्ते की आंत में डाल दिया। शीघ्र ही वह कुत्ता भी रक्तातिसार से बीमार पड़ा।

इस प्रकार लेश ने अमीबा द्वारा उत्पन्न होनेवाले एक विशेष प्रकार के अतिसार का अस्तित्व सिद्ध कर दिया। मनुष्य को किसी प्रकार की हानि न पहुंचानेवाले साधारण अमीबा के अलावा आमातिसारकारी अमीबा का भी अस्तित्व है। यह रोगजनक प्राणी आंत की भित्ति में फोड़े पैदा कर देता है।

अमीबा जनित अतिसार एक महाभयंकर रोग है। आज भी इससे पीड़ित हर दस रोगियों में से औसत चार की मृत्यु हो जाती है। यह रोग विशेषकर मिस्र, भारत, ब्रह्मा, इंडोनेशिया, चीन इत्यादि उष्ण जलवायुवाले देशों में फैला हुआ है।

उक्त रोग से पीड़ित रोगी के उत्सर्जन में हर रोज़ रोगजनक अमीबा की हज़ारों पुटियां बाहर पड़ती हैं और ज़मीन, पानी और निवासों में फैल जाती हैं। अतः यह रोग अक्सर ऐसी जगहों में उत्पन्न होता है जहां पाखानों का कोई बंदोबस्त नहीं है और लोग अपने घरों के इर्द-गिर्द ही मल-मूत्र विसर्जन करते हैं। एक और बुरी आदत यह है कि कुछ लोग सीधे पानी में मल-मूत्र विसर्जन करते हैं।

अतिसार की रोक-थाम के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपाय ये हैं – पाखानों का बंदोबस्त, जलाशयों का गंदगी से बचाव और हाथों को सदा साफ़ रखने की आदत। अग्नि प्राचीन काल से मानव का एक शक्तिशाली सहायक बनी हुई है। पानी को उबालने से अमीबा की पुटियां मर जाती हैं। पकाये और तले-भूने भोजन में भी इनका अस्तित्व नहीं होता।

आमातिसारकारी अमीबा की खोज हुए कई वर्ष बीत चुके हैं। इस अवधि में चिकित्सकों ने अतिसार की न केवल रोक-थाम के बल्कि समाप्ति के भी उपाय सीख लिये हैं। उन्होंने ऐसी दवाएं खोज निकाली हैं जो अमीबा को मनुष्य की आंत के अंदर ही नष्ट कर देती हैं।

प्रश्न – १. अमीबा को अपने जीवन के लिए क्या क्या आवश्यक है? २. अमीबा और पैरामीशियम के शरीरों में कौनसी समानता है और कौनसी भिन्नता? ३. अमीबा किस प्रकार गति प्राप्त करता है? ४. अमीबा किस प्रकार भोजन और श्वसन करता है? ५. अमीबा में उत्सर्जन-क्रिया कैसे होती है? ६. अमीबा पर उद्दीपन का प्रभाव कैसे पड़ता है? ७. अमीबा का जनन कैसे होता है? ८. आमातिसारकारी अमीबा क्यों भयंकर होता है और उसकी रोक-थाम कैसे की जा सकती है?

व्यावहारिक अभ्यास – स्मरण से अमीबा का चित्र बनाओ।

§ ५. मलेरिया परजीवी

मलेरिया का उत्पादक

मलेरिया एक ऐसा बुख़ार है जिसका कारण काफ़ी समय तक ज्ञात न था। मलेरिया एक इतालवी शब्द है जिसका अर्थ है ख़राब हवा। पहले ऐसा माना जाता था कि यह रोग दलदल से आनेवाली हानिकारक भाप के कारण उत्पन्न होता है।

पिछली शताब्दी के अन्त में वैज्ञानिकों ने मलेरियाग्रस्त रोगियों के रक्त की माइक्रोस्कोप की सहायता से जांच की। उस समय यह ज्ञात हो चुका था कि मनुष्य

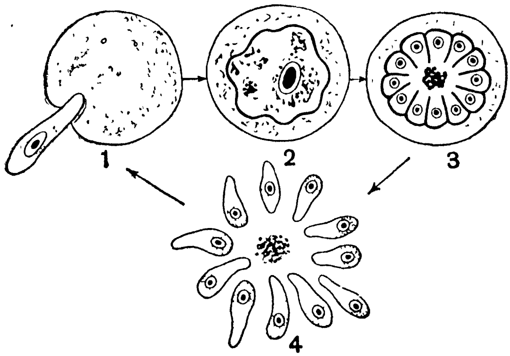

आकृति ७ – मलेरिया परजीवी का परिवर्द्धन
१ (1). लाल रक्तकणिका में प्रवेश करता हुआ परजीवी; २ (2). लाल रक्तकणिका में बढ़ता और परिवर्द्धित होता हुआ परजीवी; ३ (3). परजीवी के विभाजन का आरम्भ; ४(4). एक से कई परजीवी उत्पन्न होते हैं, लाल रक्तकणिका नष्ट हो जाती है।

के रक्त में सूक्ष्म लाल रक्तकणिकाएं होती हैं। मलेरियाग्रस्त रोगियों की लाल रक्तकणिकाओं में अमीबा जैसे एककोशिकी प्राणी पाये गये। इस प्राणी को मलेरिया परजीवी नाम दिया गया।

यह परजीवी लाल रक्तकणिका में प्रवेश करता है और उसी को अपना भोजन बनाता है। वह बढ़कर कणिका को व्याप्त कर लेता है और फिर अमीबा की तरह बंट जाता है – पर दो हिस्सों में नहीं, कइयों में। नये प्राणी उत्पन्न होते हैं जो रक्तकणिका से बाहर आते हैं (आकृति ७)।

उस समय परजीवी का कणिका में एकत्रित तरल उत्सर्जन रक्त में प्रवेश करता है। इससे मनुष्य का शरीर विषाक्त हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप सिरदर्द और कंपकंपी शुरू होती है और शरीर के तापमान में तीव्र वृद्धि होती है। इस तरह बुख़ार का दौरा आता है। कई बार तो रोगी उन्मत्त हो जाता है। लाल रक्तकणिकाओं से परजीवी हर ४८ या ७२ घंटों बाद बाहर आते हैं। मलेरिया के बुख़ार के दौरे भी उसी समय आते हैं।

रक्त में प्रवेश करनेवाले नवजात परजीवी नयी रक्तकणिकाओं में घुस जाते हैं और उन्हें नष्ट कर देते हैं। हर विभाजन के समय रक्त के परजीवियों की संख्या कई गुना बढ़ जाती है। वे भारी संख्या में लाल रक्तकणिकाओं को नष्ट कर देते हैं। इसके परिणाम बड़े गंभीर होते हैं।

मलेरिया परजीवी का वाहक

परजीवियों को एक से दूसरे आदमी तक ले जाने का काम मलेरिया मच्छर की मादाएं करती हैं (§ ३२ देखिये)। जब मच्छर की मादा रोगी व्यक्ति का खून चूस लेती है तो परजीवी उसके शरीर में भी प्रवेश करते हैं। वहां बड़ी तेज़ी से उनकी संख्या बढ़ जाती है और कुछ ही दिन बाद लार में उनके झुंड दिखाई देने लगते हैं। फिर यदि यह मच्छर अपनी सूंड से किसी स्वस्थ आदमी को काट लेता है तो मलेरिया के परजीवी उक्त व्यक्ति के रक्त में घुस जाते हैं।

सोवियत संघ में मलेरिया का मुक़ाबिला

ज़ारशाही रूस में हज़ारों लोगों को मलेरिया के शिकार होना पड़ता था। कोलख़ीदा (काकेशिया) जैसे कुछ दक्षिणी इलाक़ों में तो पूरे गांव के गांव बरबाद हो चुके थे। सोवियत सरकार मलेरिया की रोक-थाम के लिए विस्तृत उपाय लागू करती आयी है।

मच्छरों के डिम्भों का परिवर्द्धन पानी में होता है। अतः उक्त कोलख़ीदा जैसे एक समय के मलेरियाग्रस्त इलाक़ों में सभी दलदलयुक्त निम्न भूमियों को सुखाया गया है। गम्बूशिया (आकृति ८) और कार्प-मछली (आकृति ७६) जैसी मछलियों का संवर्द्धन भी मलेरिया की रोक-थाम में सहायक होता है क्योंकि ये मछलियां जिन जलाशयों में रहती हैं वहां के डिम्भों को खा जाती हैं।

वयस्क मच्छरों को नष्ट करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। ये मच्छर जाड़ों के अधिकांश दिन तहख़ानों में बिताते हैं। उनके विनाश का काम उक्त स्थानों में 'डी० डी० टी०' जैसे

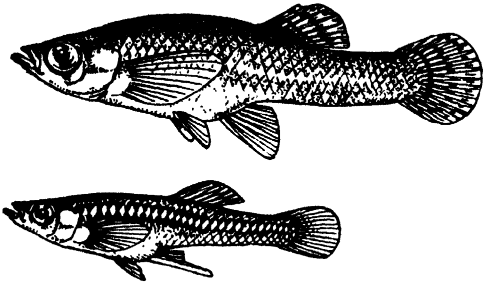

आकृति ८ – गम्बूशिया
ऊपर – मादा, नीचे – नर।

विषैले पाउडरों के छिड़काव द्वारा किया जाता है। ये पाउडर कीटों के ऊपरी आवरणों के ज़रिये अपना असर डालकर उन्हें मार डालते हैं।

डिम्भों के नाश और वयस्क मच्छरों के शीतकालीन आश्रयस्थानों में पाउडरों के छिड़काव के फलस्वरूप कई जगहों में मलेरिया का नामोनिशान तक नहीं रहा।

मलेरिया के रोगियों से ही मच्छरों को परजीवियों की प्राप्ति होती है। अतः ऐसे रोगियों के इलाज पर विशेष ध्यान दिया जाता है। पहले मलेरिया के विरुद्ध एक ही मुख्य दवा कुनैन का प्रयोग किया जाता था। यह दवा रोगी के खून में प्रवेश कर परजीवियों को मार डालती है। चूंकि कुनैन का पेड़ सोवियत संघ में उगता नहीं इसलिए सोवियत सरकार ने वैज्ञानिकों को मलेरिया परजीवियों को नष्ट करनेवाले किसी और साधन की खोज करने का काम सौंप दिया। शीघ्र ही एक्रिकाइन नामक द्रव्य प्राप्त हुआ जो कुनैन जितना ही अच्छा है। इसका बड़े पैमाने पर उत्पादन आरम्भ हुआ।

इस प्रकार मलेरिया विरोधी लड़ाई दो मोर्चों पर लड़ी जा रही है – रोग के वाहक मच्छरों को समाप्त करके और खुद परजीवियों को नष्ट करके।

आज सोवियत संघ में बड़े पैमाने की बीमारी के रूप में मलेरिया का अस्तित्व नहीं है। जिन देशों में बड़े पैमाने पर मलेरिया विरोधी कार्रवाइयां नहीं की जातीं वहां लोग बड़ी संख्या में इस रोग से ग्रस्त हो जाते हैं और मर जाते हैं। तुर्की, ईरान और इंडोनेशिया विशेष रूप से मलेरियाग्रस्त हैं।

अभी हाल ही में, जब भारत एक उपनिवेश था, वहां बड़े सख्त उष्णकटिबन्धीय मलेरिया ने लगभग १०,००,००,००० लोगों को घेर लिया जिनमें से क़रीब १० लाख लोगों को मौत का शिकार होना पड़ा। स्थानीय जनता के स्वास्थ्य का स्तर ऊंचा उठाने में उपनिवेशवादियों की कभी कोई रुचि नहीं थी। पर उनसे

स्वाधीनता प्राप्त कर लेने के बाद स्वास्थ्य-सेवा और चिकित्सा-शिक्षा के क्षेत्र में काफ़ी तरक़्क़ी की गयी। नवोदित भारतीय गणराज्य ने मलेरिया विरोधी संघर्ष में काफ़ी सफलताएं प्राप्त कर ली हैं।

प्रोटोज़ोआ समूह

अपनी संरचनाओं की भिन्नता के बावजूद अमीबा, पैरामीशियम और मलेरिया परजीवी में एक समान विशेषता है – वह यह कि इन सभी प्राणियों के शरीर एककोशिकीय होते हैं। सभी एककोशिकीय प्राणियों को प्रोटोज़ोआ नामक समह में एकत्रित किया जाता है।

प्रोटोज़ोआ की सरल संरचना ही इस प्राणि-समूह की अतिप्राचीनता की साक्षी है। वैज्ञानिकों की मान्यता है कि धरती पर प्रोटोज़ोआ का जन्म लगभग डेढ़ अरब वर्ष पहले हुआ।

प्रश्न – १. मलेरिया के दौरे क्यों होते हैं? २. आदमी कैसे मलेरियाग्रस्त हो जाता है? ३. मलेरिया विरोधी लड़ाई कैसे लड़ी जाती है? ४. प्रोटोज़ोआ के विशेष लक्षण क्या हैं?

*

*

अध्याय २

सीलेण्ट्रेटा

§ ६. हाइड्रा – ताज़े पानी का शिकारभक्षी प्राणी

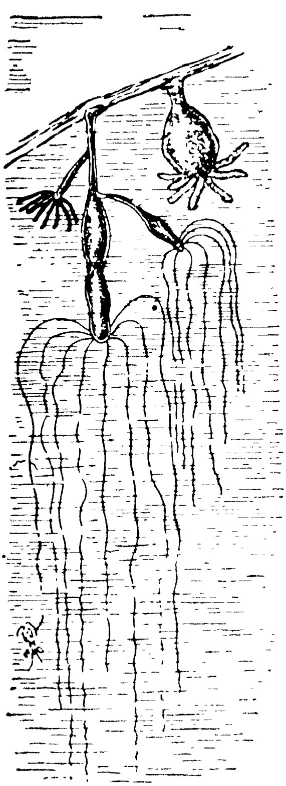

आकृति ६ – हाइड्रा का स्वरूप (विशालीकृत)
बायें – प्रलम्बित, दायें – संकुचित।

स्वरूप

हाइड्रा (आकृति ६) ग्रीष्म और शरद ऋतुओं में झीलों, तालाबों और स्थिर बंधे हुए पानी में पाया जाता है। यह प्राणी बहुत ही कम चलता है। नियमत. यह जल-वनस्पतियों के आधार से रहता है। अपने शरीर के एक सिरे के सहारे वह वनस्पति से चिपका रहता है। यह सिरा आधार-मण्डल कहलाता है।

हाइड्रा का पता लगाने के लिए किसी तालाब के अलग अलग हिस्सों से कुछ पौधे लाकर एक जल-पात्र मे डालो। यदि पानी स्थिर रखा जाये तो कुछ ही देर में हाइड्रा दिखाई देने लगेंगे। वे नन्हे भूरे या कुछ हरे-से डंठलों जैसे लगते है। इनकी लम्बाई लगभग १.५ सेंटीमीटर होती है और वे बहुत सूक्ष्म स्पर्शिकाओं का मुकुट धारण किये होते है। बाह्यत: हाइड्रा, प्राणी की अपेक्षा वनस्पति ही अधिक लगते है।

प्राणिविषयक विशेषताएं

यह निश्चित रूप से समझने के लिए कि हाइड्रा प्राणी ही है, हमें कुछ देर बारीकी से देखते रहना होगा। पहले पहल हम जो कुछ देखते है वह है उनकी स्पर्शिकाओं की गति। हाइड्रा उन्हे धीरे से झुकाकर विभिन्न दिशाओं

में लहराता है। यदि हम जल-पात्र को कुछ हिला दें या सूई से हाइड्रा का स्पर्श कर दें तो इस प्राणी का शरीर संकुचित होकर एक छोटा-सा पिण्ड बन जाता है।

आगे देखते रहने पर हमें पौधे पर हाइड्रा की गति दिखाई देती है। वह बारी बारी से अपने शरीर के सिरे पौधे पर टिकाकर चलता है (आकृति १०)।

यदि हम जल-पात्र में डैफ़नीया नामक नन्हीं नन्हीं मछलियों सहित पानी डाल दें तो हाइड्रा उन्हें अपनी स्पर्शिकाओं से पकड़कर निगल जायेगा। यहां हमें शरीर के खुले सिरे पर स्पर्शिकाओं के मुकुट के बीच हाइड्रा का मुह दिखाई देगा।

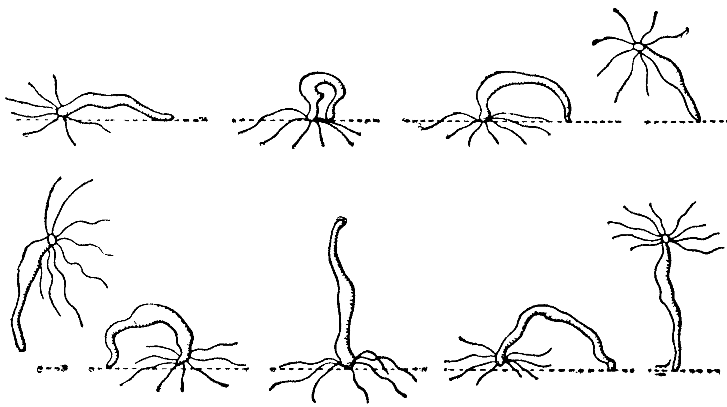

आकृति १० – हाइड्रा की गति (दायें से बायें)।

मुह जठर संवहनीय गुहा में खुलता है जहां निगली हुई डैफ़नियां पहुंच जाती हैं। हाइड्रा इन्हें अपना मुंह पूरी तरह खोलकर पूरी की पूरी निगल जाता है। यह परले सिरे का पेटू होता है और एकसाथ पांच पांच, छः छः डैफ़नियों को चट कर जाता है। उसका शरीर फैल सकता है और इसलिए वह अपनी जठर संवहनीय गुहा में अपने शरीर से काफी बड़े आकारवाली छोटी-सी मछली, छोटी-सी बेंगची या छोटे-से कृमि को खींच सकता है।

इस प्रकार जल-पात्र में किये गये हाइड्रा के निरीक्षण से स्पष्ट होता है कि वह एक प्राणी है और है शिकारभक्षी।

कलिकाना और पुनर्जनन

ग्रीष्म ऋतु में, जब भोजन समृद्ध मात्रा में उपलब्ध है, हाइड्रा के शरीर पर नन्हे नन्हे उभाड़ पैदा होते हैं जो कलिकाएं (आकृति ९) कहलाते हैं। धीरे धीरे ये बड़े हो जाते हैं और फिर डंठलों का आकार धारण करते हैं जिनके ऊपरवाले सिरे पर स्पर्शिकाओं से घिरा हुआ मुख-द्वार निकल आता है। इस प्रकार नया हाइड्रा परिवर्द्धित होता है।

शुरू शुरू में मां और बच्चे की जठर संवहनीय गुहाएं सम्बद्ध रहती हैं। फिर नवजात हाइड्रा का आधार-मण्डल तैयार हो जाता है और वह मातृ-शरीर से अलग हो जाता है। इस प्रकार कलिकाने के द्वारा अलिंगी जनन होता है।

यदि हाइड्रा के दो टुकड़े किये जायें तो हर आधा टुकड़ा शरीर का बाक़ी हिस्सा फिर से प्राप्त कर लेता है। इस प्राणी के कई टुकड़े भी किये जा सकते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में ये सब के सब टुकड़े हाइड्रा में परिवर्द्धित हो जायेंगे। ऐसी घटना को पुनर्जनन कहते हैं।

प्रश्न – १. हाइड्रा कैसे दिखाई देते हैं? २. हाइड्रा कैसे और क्या खाते हैं? ३. हम यह कैसे सिद्ध कर सकते है कि हाइड्रा प्राणी हैं? ४. हाइड्रा का अलिंगी जनन कैसे होता है? ५. पुनर्जनन क्या होता है?

व्यावहारिक अभ्यास – १. ग्रीष्म ऋतु में तालाब के विभिन्न हिस्सों से कई पौधे लाकर एक जल-पात्र में डालो। कुछ देर बाद खुर्दबीन लेकर पौधों या जल-पात्र के अंदर के हिस्से पर हाइड्रा को खोजने की कोशिश करो। २. हाइड्रावाले जल-पात्र में कुछ डैफ़नियां डालो। देखो हाइड्रा किस प्रकार खाते हैं। ३. सूई से स्पर्श करने पर हाइड्रा क्या करता है, देखो। ४. हाइड्रा के कलिकाने की क्रिया देखो। ५. हाइड्रावाला जल-पात्र शरद तक अपने पास रखो और फिर उसे स्कूल ले आओ।

§ ७. हाइड्रा – बहुकोशिकीय प्राणी

पेशीय आवरण-कोशिकाएं

हाइड्रा के शरीर की तुलना एक ऐसी थैली के साथ की जा सकती है जिसके अंग कोशिकाओं की दो परतों से बने हुए हों – एक बाह्य आवरण अथवा एक्टोडर्म और दूसरी अंदरूनी या पाचक परत – एण्टोडर्म (आकृति ११)। इन दो परतों के बीच एक आधार-पट्टिका – मेसोग्ली होती है। इस पट्टिका की संरचना अकोशिकीय होती है।

बाह्य आवरण-कोशिकाओं के जरिये हाइड्रा ऑक्सीजन का अवशोषण करता है और कारबन डाइ-आक्साइड को बाहर छोड़ता है। हाइड्रा के विशेष श्वसन-अंग नही होते।

बाह्य आवरण की कुछ कोशिकाओं में आधार-पट्टिका के सामने की ओर संलग्न अंग होते है। ये संलग्न अंग उद्दीपन पाकर संकुचित होते है यानी उनका आकार घट जाता है। जब ये सब के सब एकसाथ संकुचित हो जाते हैं तो प्राणी का शरीर

छोटा हो जाता है। इस प्रकार के संलग्न अंगों वाली कोशिकाएं पेशीय आवरण-कोशिकाएं कहलाती हैं। ये वही काम करती हैं जो मानव शरीर में पेशियां।

दंशक कोशिकाएं बाह्य आवरण में दंशक कोशिकाएं भी होती हैं। ये सबसे बड़ी संख्या में स्पर्शिकाओं पर समूहों में अवस्थित होती हैं।

हर दंशक कोशिका में एक कोप होता है जिसमें कुंडल में लिपटा हुआ एक लचीला तन्तु होता है। कोशिका की सतह पर एक अत्यन्त संवेदनशील प्रवर्द्ध होता है (आकृति १२)।

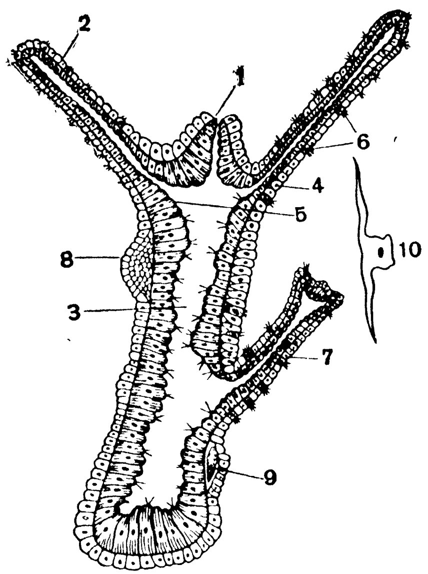

आकृति ११ — लम्बाई के काट मे दर्शित हाइड्रा (रूप-रेखा)

१ (1). मुह ; २ (2). स्पर्शिका ; ३ (3). जठर संवहनीय गुहा ; ४(4). बाह्य आवरण ; ५ (5). अंदरूनी परत ; ६ (6). दंशक कोशिकाएं ; ७ (7). गुरदा ; ८ (8). वृषण ; ९ (9). अण्ड-कोशिका ; १० (10). पेशीय आवरण-कोशिका।

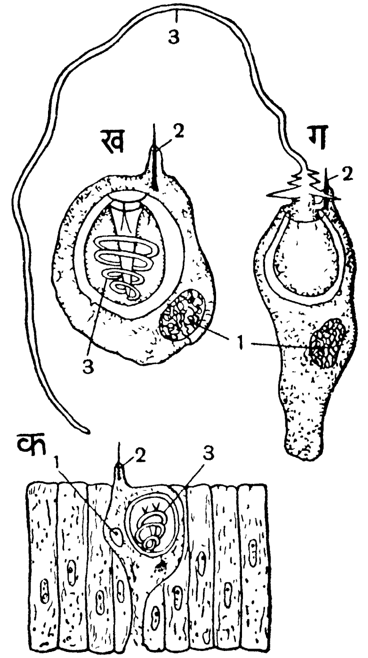

आकृति १२ — हाइड्रा की दंशक कोशिकाएं
क — आवरण-कोशिकाएं जिनमें **दंशक** कोशिका रहती है ; ख — कुण्डल **में** लिपटे हुए तन्तु सहित दंशक कोशिका; ग — वही, फेंके हुए तन्तु के साथ ; १ (1). दंशक कोशिका का नाभिक ; २ (2). संवेदनशील प्रवर्द्ध ; ३ (3). कुण्डलाकृति तन्तु।

यदि इस प्रवद्ध के समीप से तैरती हुई डैफ़निया या कोई दूसरा छोटा-सा प्राणी उसका स्पर्श कर दे तो उक्त तन्तु बड़े ज़ोर से खुल जाता है और कोशिका से बाहर फेंका जाता है। वह अपने शिकार को ज़ख्मी कर देता है। उक्त तन्तु में से एक विषला द्रव निकलकर ज़ख्म में गिर जाता है। यह विष शीघ्र ही शिकार को हतबल कर देता है और शिकार स्पर्शिकाओं से चिपका हुआ सा नज़र आता है। फिर स्पर्शिकाएं उसे मुह में डाल देती हैं।

दंशक कोशिकाएं रक्षक अंगों का भी काम देती हैं। जल-पात्र में हाइड्रा का निरीक्षण करते समय हम देख सकते हैं कि छोटी छोटी मछलियां कितनी जल्दी से हाइड्रा से दूर भाग जाती हैं। यह तभी होता है जब हाइड्रा अपनी दंशक कोशिकाओं में से विपैले तन्तु निकालता है। बड़े प्राणियों और आदमियों को इन कोशिकाओं से कोई हानि नही पहुंचती।

तन्त्रिका-कोशिकाएं

बाह्य आवरण के नीचेवाली आधार-पट्टिका पर तन्त्रिका-कोशिकाएं (nerve-cells) होती हैं। ये कोशिकाएं तारे के आकार की होती हैं जिनमें से चारों ओर पतले तन्तु निकलते है। इन तन्तुओं के सहारे एक दूसरे से सम्बद्ध होकर इन तन्त्रिका-कोशिकाओं का एक तन्त्रिका-जाल वनता है (आकृति १३) – यह प्राणी का सरलतम संरचनावाला तन्त्रिका-तन्त्र (nervous system) है।

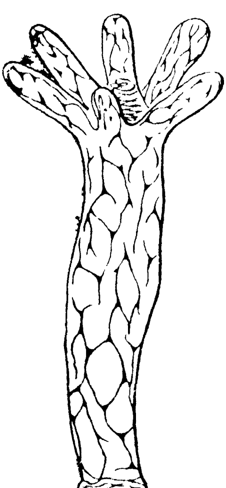

आकृति १३ – हाइड्रा का तन्त्रिका-जाल।

तन्त्रिका-कोशिकाएं बहुत ही उत्तेजनशील होती हैं। अतः यदि पास से गुज़रनेवाली डैफ़नियां हाइड्रा की स्पर्शिका को छू दें तो हाइड्रा की तन्त्रिका-कोशिकाएं उत्तेजित हो उठती है। उत्पन्न उत्तेजना फौरन सारे तन्त्रिका-तन्त्र में फैल जाती है और पेशीय आवरण-कोशिकाओं तक पहुंचायी जाती है। उनके संलग्न अंग संकुचित हो जाते हैं और स्पर्शिकाएं शिकार की दिशा में मुड़ती है। स्पर्शिकाओं को छूने से दंशक कोशिकाएं भी क्रियाशील बनती हैं जिससे डैफ़नियां फ़ौरन हतबल हो जाती है।

तन्त्रिका-तन्त्र की सहायता से जीव द्वारा उद्दीपन का प्रभाव दर्शन-प्रतिवर्ती क्रिया कहलाता है। डैफ़नियों को पकड़ना हाइड्रा का भोजन-प्रतिवर्ती है।

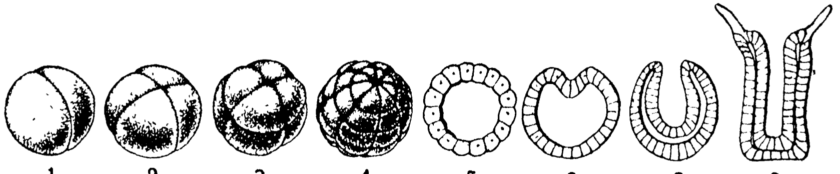

आकृति १४ – अण्डे से हाइड्रा का परिवर्द्धन
१ – ४ बाहरी स्वरूप ; ५ – ८ काट में दर्शित बाद की अवस्थाएं।

पाचक कोशिकाएं

हाइड्रा की अंदरूनी परत जठर संवहनीय गुहा के सामने की ओरवाले लम्बे बालनमा प्रवर्द्धों से बनी हुई होती है। उनकी गति जठर संवहनीय गुहा में आनेवाले भोजन-कणों को उठाती है।

जब भोजन कोशिकाओं का स्पर्श करता है तब वे पाचक रस स्रवने लगती हैं। पचा हुआ भोजन अवशोषित होकर शरीर की सभी कोशिकाओं में वितरित होता है। अनपचे भोजनांश मुख-द्वार से बाहर फेंके जाते हैं।

लैंगिक कोशिकाएं

शरद के आरंभ में पानी ठंडा होने लगता है। हाइड्रा के भोजन के काम आनेवाले प्राणियों की संख्या कम होने लगती है। परिस्थिति हाइड्रा के जीवन के लिए उतनी अनुकूल नहीं रहती। इस समय हाइड्रा के बाह्य आवरण पर कुछ उभाड़ उत्पन्न होते है जो कलिकाओं से बिल्कुल भिन्न होते है। इनमें से कुछ उभाड़ों में बड़ी अण्ड-कोशिकाएं या स्त्री-लिंग कोशिकाएं तैयार होती हे। एक उभाड़ में यह एक ही होती है। अन्य उभाड़ों में बहुत-सी छोटी छोटी पुरुष-लिंग कोशिकाएं अर्थात् शुक्राणु (spermatozoa) दिखाई देने लगते है। चूंकि हर हाइड्रा में अण्ड-कोशिकाएं और शुक्राणु दोनों निकल आते है इसलिए इन प्राणियों को द्विलिंगी प्राणी कहते हैं।

परिपक्व शुक्राणु चल सकते हैं। वे पानी में चले आते है और दूसरे हाइड्रा की अण्ड-कोशिकाओं में घुस जाते है। यह प्रक्रिया संसेचन कहलाती है। संसेचन के बाद हाइड्रा मर जाते है।

हाइड्रा का संसेचित अण्डा विभक्त होने लगता है (आकृति १४)। दो कोशिकाएं तैयार होती है जो विभक्त अमीबा के हिस्सों की तरह पृथक नहीं होती बल्कि एकत्र रहती है। इसी प्रकार ये दो कोशिकाएं चार आठ, सोलह इत्यादि की संख्या में और

कोशिकाओं को जन्म देती हैं। विभाजक अण्डा एक संरक्षक आवरण परिवर्द्धित कर लेता है और तालाब के तल में जा गिरता है। यहां वसन्त के आगमन तक उसका परिवर्द्धन रुका रहता है। वसन्त में यह अण्डा तब तक विभक्त होता रहता है जब तक नये हाइड्रा के बहुकोशिकीय शरीर तैयार न हो जायें।

ऊतक बहुकोशिकीय जीव में कोशिकाओं के भिन्न भिन्न समूह भिन्न भिन्न कार्य करते हैं। एक जैसी संरचनावाले और एक ही निश्चित कार्य करनेवाले कोशिका समूह ऊतक कहलाते हैं। हाइड्रा में हमें इन ऊतकों के पृथक्करण का आरम्भ दिखाई देता है जैसे – तन्त्रिकीय, आवरणीय और पेशीय।

प्रश्न – १. हाइड्रा में कौन कौनसी विशेष कोशिकाएं होती हैं और वे क्या क्या कार्य करती हैं? २. ऊतक क्या होता है? ३. हाइड्रा के तन्त्रिका-तन्त्र की संरचना कैसी होती है और वह क्या कार्य करता है? ४. प्रतिवर्ती क्रिया किसे कहते हैं? ५. हाइड्रा का लैंगिक जनन कैसे होता है?

§ ८. छत्रक-मछली

सागरों और महासागरों में अक्सर छत्रक-मछली रहती है। यह एक बहुत ही विशिष्ट सीलेण्ट्रेटा प्राणी है जो आकृति १५ में दिखाया गया है। उसका अर्द्धपारदर्शी शीशानुमा शरीर एक छाते जैसा लगता है जिसका नीचे की ओर निकला हुआ प्रवर्द्ध मुख-दण्ड कहलाता है। मुख-दण्ड के सिरे में एक छेद होता है जो जठर की गुहा में खुलता है।

आकृति १५ – छत्रक-मछली।

आम तौर पर छत्रक-मछली का शरीर पानी में लटका-सा रहता है, लहरों के कारण हिलता-डुलता है और धारा के साथ बहता जाता है। जब कोई शिकारभक्षी प्राणी उसपर धावा बोल देता है तो वह अपने छाते के नीचे से बड़े ज़ोर से पानी छोड़ देता है। परिणामतः वह झटके के साथ उल्टी दिशा में चलता है। जब ये झटके

एक के बाद एक बराबर जारी रहते हैं तो छत्रक-मछली तैरती है और काफ़ी तेज़ तैरती है। इस समय उसकी उन्नत सतह सबसे आगे होती है।

जब छोटी-सी मछली जैसा कोई प्राणी धीरे से और दीखता न दीखता हुआ छत्रक-मछली के पास पहुंचता है और उसके छाते के किनारे की अनगिनत स्पर्शिकाओं का स्पर्श करता है तो दंशक तन्तु फैला दिये जाते हैं। ये तन्तु सम्बन्धित प्राणी को हतबल कर देते हैं। फिर वह जठर की गुहा में खींच लिया जाता है। बड़ी छत्रक-मछली कभी कभी एक मीटर से अधिक लम्बी होती है। उसकी दंशक कोशिकाएं, मनुष्य के शरीर में उसी प्रकार की तेज़ चुभन पैदा करती है जिस प्रकार बिच्छू घास को छूने पर पैदा होती है। पहले बड़ी छत्रक-मछलियां समुद्री बिच्छू घास कहलाती थी। इनका डंक आदमी के लिए ख़तरनाक होता है।

छत्रक-मछली और हाइड्रा की संरचना की तुलना की जाये तो छत्रक-मछली नीचे को मुह किये हुए बड़े हाइड्रा जैसी दिखाई देती है। इस 'हाइड्रा' का आधार-मण्डल ऊपर की ओर मुंह किये और फैलकर छाते में परिवर्द्धित हुआ होता है। यह तैराकी अंग का काम देता है।

समूह-जीवी प्रवाल बहुपाद

प्रवाल बहुपाद (आकृति १६) मुख्यतया समुद्र के कुनकुने पानी में रहते हैं। सागर-तल में अक्सर इनकी बड़ी बड़ी झाड़ियां-सी बनी रहती हैं जो सौन्दर्य एवं रंग के विषय में धरती पर की झाड़ियों से होड़ लगाती है। धरती पर के उष्णकटिबन्धीय फूल-पौधे कितने भी सुन्दर क्यों न हों सागर-तलस्थ बहुपाद प्रवालों का संसार उन्हें रंग और रूप की छटा की दृष्टि से मात कर देता है।

आकृति १६ – लाल मूंगा।

सागर-तल में समूह-जीवी प्रवाल बहुपाद एक एक करके नहीं बल्कि समूहों में रहते हैं (आकृति १७)। ये प्रवाल-समूह कैसे बनते हैं यह जानने के लिए हमें कलिकाने की प्रक्रिया में हाइड्रा को स्मरण करना चाहिए जिसमें कई अपृथक् अपत्यवत् हाइड्रा होते हैं। प्रवाल बहुपाद के कलिकानेवाले अपत्य मातृ-शरीर से कभी भी पृथक् नहीं होते बल्कि हमेशा उसके साथ रहते हैं। जीवन-भर उनकी जठर-गुहाएं सम्बद्ध

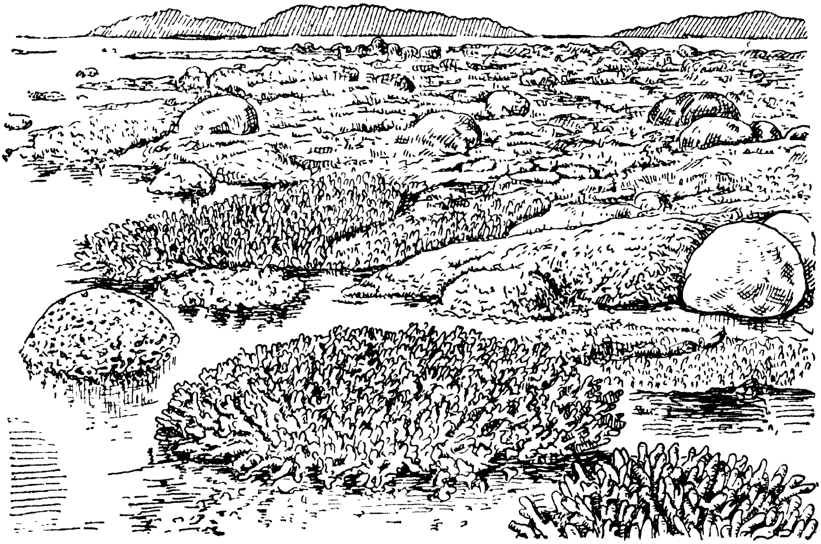

आकृति १७—प्रवाल बहुपाद।

रहती हैं। इस कारण एक बहुपाद द्वारा पकड़े गये भोजन का उपयोग सारा समूह कर लेता ह।

सुविख्यात रक्त प्रवाल (लाल मूंगा) समूह के गुलाबी या लाल चूने का शाखायुक्त कंकाल होता है। यह कंकाल प्रवाल-समूह के आधार का काम देता है और शिकारभक्षी प्राणियों से उसकी रक्षा करता है। प्रवाल-समूह की ऊपरी सतह पर हमें अनगिनत सफ़ेद सितारे दिखाई देते हैं—ये हैं पृथक् बहुपादों के स्पर्शिका-मुकुट। अपने सम्पूर्ण रूप में हर प्रवाल-समूह लाल तने और सफ़ेद फूलों वाले पेड़ जैसा लगता है। फिर भी ये 'फूल' कभी कभी अपनी 'पंखुड़ियां' अर्थात् स्पर्शिकाएं झुका लेते हैं और पास से गुज़रनेवाले किसी प्राणी को पकड़ लेते हैं।

रक्त प्रवाल के कंकालों से सुन्दर गलहार बनाये जाते हैं। प्रवालों का शिकार गरम सागरों की ६० से २०० मीटर तक की गहराइयों में किया जाता है। मूंगे के शिकारी समुद्र पर कुछ देर अपनी नावों के पीछे वज़नदार जालों को घसीटते जाते

हैं। मूंगों के पेड़नुमा समूहों के टुकड़े कटकर जाल में फंस जाते हैं। मूंगे के कंकाल का बहुपादवाला मुलायम बाहरी ग्रावरण उतार दिया जाता है ग्रौर फिर उसे तोड़कर पालिश की जाती है। तथाकथित चट्टानी प्रवाल बहुपादों के ऐसे कंकाल होते हैं जो जहाज़रानी में बाधा डालते है। रक्त प्रवाल के उल्टे, ये केवल वहीं रह सकते हैं जहां भारी मात्रा में रोशनी ग्रौर ग्रॉक्सीजन हो। ऐसी हालतें किनारे के पास उन कम गहरे क्षेत्रों में पायी जाती है जहां ज्वार का पानी धुन धुनकर महीन फ़व्वारों में परिवर्तित हो जाता है ग्रौर इसी कारण वह वायुमण्डलीय ग्रॉक्सीजन से परिपूर्ण होता है। पतली सुकुमार शाखाग्रों वाले पेड़नुमा कंकालों का ऐसे स्थानों में लहरों के ज़ोरदार चपेटों के ग्रागे बच पाना ग्रसम्भव ही है। इसी लिए ग्राम तौर पर चट्टानी मूगों के मज़बूत, भारी-भरकम चूने के कंकाल होते है जिनकी सतह पर नन्हे नन्हे जीवित बहुपाद छोटी छोटी प्यालियों में जड़े हुए से होते हैं। मर जाने के बाद चट्टानी मूंगों के समूह दो मीटर तक व्यासवाले चूने के कंकाल छोड़ देते हैं। उष्णकटिबन्धीय समुद्र के तटवर्ती पानी में डेरा डाले हुए ये बहुपाद क्रमशः ग्रनगिनत जलमग्न चट्टानों की सृष्टि करते है जो जहाज़रानी में रुकावट डालती है। महासागरों के कुछ टापू तो केवल मृत मूंगों के समूहों के खनिज कंकालों के बने हुए हैं।

सामान्य विशेषताएं

हाइड्रा, छत्रक-मछली ग्रौर प्रवाल बहुपाद उस समूह के प्राणी है जो सीलेण्ट्रेटा समूह कहलाता है। सभी सीलेण्ट्रेटा बहुकोशिकीय प्राणी है। उनका शरीर कोशिकाग्रों की दो परतों से बनी हुई थैली-सा होता है। शरीर के ग्रंदर एक जठर संवहनीय गुहा होती है जिसके एक ही बाहरी द्वार होता है। ग्रधिकांश सीलेण्ट्रेटा सुस्ती में जीवन बिताते है।

मूल

पहले सीलेण्ट्रेटा प्राचीन प्रोटोज़ोग्रा के वंशज के रूप में उत्पन्न हुए। ग्रण्डे में हाइड्रा के परिवर्द्धन का ग्रध्ययन करते समय हम उस प्रक्रिया का चित्र ग्रंकित कर सकेंगे जिसके कारण एककोशिकीय प्राणी बहुकोशिकीय प्राणियों में रूपान्तरित हुए।

यह स्पष्ट है कि प्रोटोज़ोग्रा समूह में प्रथमतः ऐसे प्राणियों का उदय हुग्रा जिनके जनन में नवरचित कोशिकाएं पृथक् नही होती थी। इस प्रकार धरती पर दो, चार ग्रौर ग्राठ कोशिकाग्रों वाले प्राणी पैदा हुए।

क्रमशः ऐसे प्राणियों में कोशिकाओं की संख्या बढ़ती गयी। इसी के फलस्वरूप कोशिकाओं के बीच विभिन्न कार्य बंट गये, ऊतकों की रचना हुई और बहुकोशिकीय प्राणियों का अवतार हुआ।

प्रश्न – १. छत्रक-मछली और हाइड्रा के बीच क्या समानता है? २. स्वरूप की दृष्टि से हाइड्रा और छत्रक-मछली से प्रवाल किस प्रकार भिन्न है? ३. मनुष्य द्वारा कौनसे प्रवाल बहुपादों का उपयोग किया जाता है और किस लिए? ४. जहाजरानी के लिए कौनसे प्रवाल बहुपाद खतरनाक होते हैं? ५. सीलेण्ट्रेटा की संरचना के विशेष लक्षण क्या हैं? ६. प्रोटोज़ोआ से बहुकोशिकीय प्राणियों के परिवर्द्धन का चित्र हम कैसे बना सकते हैं?

अध्याय ३

कृमि

§ ६. केंचए का स्वरूप और जीवन-प्रणाली

जीवन-प्रणाली

अन्य सभी प्राणियों की तरह केंचुआ (आकृति १८) भी विशिष्ट जीवन-स्थितियों में ही ज़िंदा रह सकता है। केंचुए के लिए ऐसी स्थितियां है – ढीली मिट्टी जिसमें यह सहारा लेता है ; सड़ती हुई वनस्पतियां जो उसका भोजन हैं ; नमी और हवा ; गरमी।

रात में जब ओस पड़ती है उस समय केंचुए धरती की सतह पर निकल आते है। दिन में वे बिलों में छिपे रहते है। वसंत या ग्रीष्म मे कुनकुनी बारिश के बाद जब ज़मीन पानी से तर रहती है उस समय केंचुए दिन में भी ऊपर निकल आते हैं। इसी कारण उनका एक नाम वर्षा-कृमि भी है।

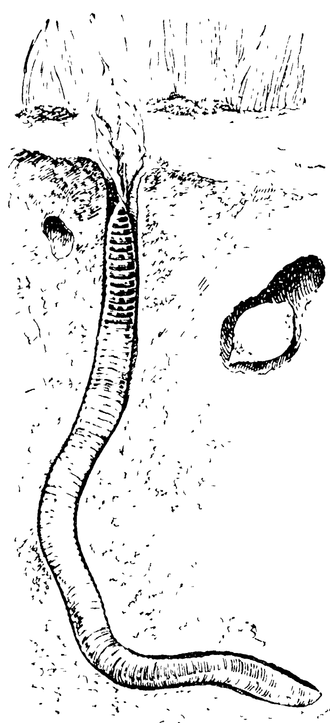

आकृति १८ – केंचुआ और उसका कोआ बिल में (दायें)।

स्वरूप

केंचुए का नलिका सदृश शरीर बहुत-से छल्लों में बटा हुआ होता है। शरीर के अगले सिरे में मुख-द्वार होता है और पिछले सिरे में गुदा। अगले सिरे से केंचुआ मिट्टी के कण दूर हटाता है। उदर का हिस्सा सपाट होता है और पीठ का हिस्सा फूला हुआ। शरीर के अगले हिस्से के पास एक पेटीनुमा सूजन होती है।

गति

हाइड्रा की तरह केंचुआ भी बहुकोशिकीय प्राणी है। उसकी नम त्वचा एपीथीलियम नामक आवरण ऊतक की बनी होती ह जिसमें कोशिकाओं की एक परत होती है। हाइड्रा से भिन्न इस कृमि में पेशीय ऊतक भी होता है जो एपीथीलियम से पृथक् होता है। पेशीय ऊतक की कोशिकाएं लंबे तकुएनुमा रेशों-सी लगती हैं। इनमें से कुछ जो त्वचा में से दिखाई देती हैं छल्लों में व्यवस्थित होती हैं। इन रेशों के संकुचन के कारण इस कृमि का शरीर अधिक लंबा और पतला हो जाता है। पेशीय छल्लों के नीचे लंबाई के रुख में पेशीय रेशे होते हैं जिनके संकुचन के कारण शरीर अधिक छोटा और मोटा हो जाता है।

पेशियों के संकुचन के कारण यह कृमि चल सकता है।

केंचुए की गति मे अनगिनत नन्हे नन्हे कड़े बाल सहायक होते हैं। इसके उदर के हिस्से पर उंगली फेरने से इन बालों का आसानी से पता लगता है।

वृत्ताकार पेशियों के संकुचन के समय कड़े बाल शरीर का पिछला हिस्सा अचल रखते हैं और अगला सिरा आगे फैलता है। जब अगला सिरा अपने बालों को मिट्टी के खुरदरे हिस्सों में थाम देता है तो लंबान की पेशियां संकुचित होती हैं और पिछला सिरा आगे सरकता है। वृत्ताकार पेशियां फिर संकुचित होती है और यही क्रम जारी रहता है।

यदि मिट्टी ढीली हो तो केंचुए का अगला सिरा पच्चड़ का काम देता हुआ मिट्टी के कणों को दूर हटाता है। सख्त मिट्टी में यह कृमि मिट्टी खाकर अपनी राह बना लेता है। वह मिट्टी निगलता है, अपनी आंत में से उसे गुजरने देता है और गुदा से बाहर फेंक देता है।

वातावरण से संपर्क

यदि हम केंचुए के शरीर का स्पर्श करें तो वह फ़ौरन रेंगने लग जाता है। इसका अर्थ यह है कि इस कृमि की त्वचा में ऐसी संवेदनशील इन्द्रिया है जो स्पर्श से प्रभावित होती हैं। इन्हें स्पर्श-तन्त्रिका-कोशिकाएं कहते हैं। इस कृमि का स्पर्शज्ञान इतना सुविकसित होता है कि मिट्टी में ज़रा-सा कम्पन होते ही वह रेंगकर अपने बिल में या किसी चीज़ के नीचे आश्रयार्थ चला जाता है। शरीर का अगला हिस्सा विशेष संवेदनशील होता है। रास्ते में पड़नेवाली विभिन्न चीज़ों का वास्ता सबसे पहले इसी हिस्से से पड़ता है।

विख्यात ब्रिटिश वैज्ञानिक चार्लस डार्विन ने सिद्ध कर दिया था कि कृमि अपने भोजन की पत्तियां उनकी गंध से पहचान सकते हैं। इसका अर्थ यह है कि कृमियों के घ्राणेंद्रियां होती हैं। इसके अलावा कृमियों के रसनेंद्रियां भी होती हैं। उनके आंखें नही होती और न वे चीज़ों को देख सकते है। पर उजाले और अंधेरे का फ़र्क़ वे जान सकते हैं। केंचुआ सुन नहीं सकता। केंचुए के भूमिगत अस्तित्व में दृष्टि और श्रवण का कोई महत्त्व नहीं और इसी लिए ये इंद्रियां अविकसित होती हैं। इसके उल्टे गंध, स्पर्श और रस की ज्ञानेंद्रियां, जिनके सहारे वे अंधेरे में चीज़ों को पहचान सकते है, इन कृमियों में बहुत ही विकसित होती हैं। इसके फलस्वरूप कृमियों में अपने को इर्द-गिर्द की परिस्थितियों के अनुकूल बना लेने की अच्छी शक्तियां होती है। भोजन की खोज में और शत्रुओं से छुटकारा पाने में उन्हें किसी प्रकार की कठिनाई नही होती और वे ज़मीन के सूखे हिस्से से रेंगकर नम हिस्से में चले जाते हैं।

केंचुए का उपयोग

केंचुए अपने भोजन के काम आनेवाली पत्तियां अपने बिलों में खीच लाते है। इसके फलस्वरूप वे ज़मीन में कार्बनीय पदार्थों की मात्रा बढ़ाते है। ज़मीन के अंदर घूमते-घामते हुए वे उसे ढीली कर देते है और उसके स्तरों को उलट-पुलटकर मिला देते है। कृमियों द्वारा पीछे छोड़ी गयी सुरंगें जमीन में हवा और पानी के प्रवेश के लिए बहुत ही सुविधाजनक होती है। इस प्रकार भूमि-रचना में केंचुए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं जिससे धरण संचय में सहायता मिलती है।

चार्लस डार्विन ने कृमियों के भूमि-रचना कार्य की तुलना हल के काम से की थी। उन्होंने लिखा था कि मनुष्य द्वारा हल का प्रयोग किया जाने से पहले कृमियों द्वारा जमीन की 'जोताई' होती थी और अनंत काल तक होती रहेगी।

प्रश्न – १. केंचुए के लिए कौनसी जीवन-स्थितियां आवश्यक है? २. केंचुए की बाह्य संरचना का वर्णन करो। ३. केंचुआ किस प्रकार चलता है? ४. केंचुए का उपयोग क्या है?

व्यावहारिक अभ्यास – १. शीशे के एक बर्तन को दो तिहाई हिस्से तक पहले काली मिट्टी के, फिर बालू के और फिर एक बार काली मिट्टी के स्तर से भर दो। बर्तन में कई केंचुए छोड़ दो और देखो वे किस प्रकार बालू और मिट्टी को मिला देते हैं। प्रयोग से निष्कर्ष निकालो। २. केंचुए को देखकर उसका चित्र बनाओ। ३. केंचुए की गति का निरीक्षण करो।

§ १०. केंचुए की भीतरी इंद्रियां

पचनेंद्रियां

यदि केंचुए के शरीर को त्वचा और पेशियों के साथ खड़ा चीर दिया जाये तो इससे उसकी द्रवपूर्ण शरीर-गुहा दिखाई देगी जिसमें उसकी भीतरी इंद्रियां होती हैं (आकृति १६)। यह गुहा खड़े विभाजकों से ऐसे हिस्सों में बंटी हुई होती है जो शरीर के बाहरी वृत्तखंडीय विभाजन से मेल खाते हैं। आंत और अन्य भीतरी इंद्रियां इन हिस्सों में से गुज़रती है। शरीर-गुहा का आवरण त्वचा और पेशीय ऊतक का बना होता है।

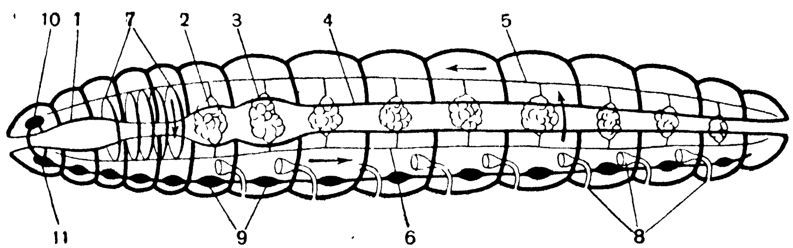

आकृति १६ – केंचुए के शरीर की संरचना

१ (1). गला ; २ (2). अन्नग्रह ; ३ (3). जठर ; ४ (4). आंत ; ५ (5). पृष्ठीय रक्त-वाहिनी ; ६ (6). औदरिक रक्त-वाहिनी (बाण रक्त-प्रवाह की दिशा सूचित करते हैं) ; ७ (7). वृत्ताकार वाहिनियां ; ८ (8). उत्सर्जन नलिकाएं ; ९ (9). औदरिक तंत्रिका-रज्जु की गुच्छिका ; १० (10). अधिग्रसनीय तंत्रिका-गुच्छिका ; ११ (11). उपग्रसनीय तंत्रिका-गुच्छिका।

केंचुए के पचन तंत्र में एक नलिका होती है जो मुख-द्वार से आरंभ होकर पेशीय गले तक जाती है। इसके बाद आती है पतली ग्रसिका और फिर बड़ा अन्नग्रह जिसमें भोजन एकत्रित और आर्द्र होता है। अन्नग्रह से भोजन मोटे आवरणवाले पेशीय पेट में चला जाता है। यहां पिस जाने के बाद वह आंत में चला जाता है। पाचक रसों के प्रभाव से आंत में भोजन का पाचन होता है, और उसके आवरण द्वारा अवशोषित होकर वह रक्त में चला जाता है। भोजन के अनपचे अवशेष गुदा से बाहर फेंके जाते हैं।

हाइड्रा में केवल एक जठर संवहनीय गुहा होती है पर केंचुए के कई पाचक इंद्रियां होती है जो निश्चित रूप से व्यवस्थित होती हैं। यही उसकी पचनेंद्रियां हैं।

श्वसन और रक्त-परिवहन इंद्रियां केंचुए की त्वचा बहुत ही पतली, श्लेष्म से आवृत और रक्त से भरपूर होती है। त्वचा ही श्वसनेंद्रिय का काम देती है और उसके द्वारा ऑक्सीजन का अवशोषण और कारबन डाइ-आक्साइड का उत्सर्जन होता है।

केंचुए का रक्त एक लाल द्रव होता है जो इंद्रियों के बीच के संचार-साधन का काम देता है। रक्त आंत से आनेवाले पोषक पदार्थों और त्वचा द्वारा प्राप्त ऑक्सीजन को शरीर में वितरित कर देता है। इसी के साथ साथ रक्त ऊतकों में से कारबन डाइ-आक्साइड लेकर त्वचा में पहुंचा देता है।

रक्त-परिवहन तंत्र में दो मुख्य खड़ी नलिकाएं होती हैं। ये हैं—पृष्ठीय और औदरिक रक्त-वाहिनियां। इन वाहिनियों से अनगिनत छोटी छोटी शाखाएं निकलकर सभी इंद्रियों तक पहुंचती हैं। ग्रसिका को घेरी हुई बड़ी वृत्ताकार वाहिनियों अथवा तथाकथित हृदयों के संकोच के फलस्वरूप रक्त का परिवहन होता है।

उत्सर्जन इंद्रियां केंचुए के शरीर के लगभग प्रत्येक वृत्तखंड में मरोड़ी हुई नलिकाओं का एक जोड़ा होता है। यही इंद्रियां केंचुए का उत्सर्जन तंत्र हैं। ये नलिकाएं शरीर-गुहा में कीप के आकार के एक उभार से शुरू होती हैं जिसके किनारों पर चारों ओर रोमिकाएं होती हैं। हर नलिका का दूसरा सिरा शरीर के औदरिक हिस्से पर बाहर की ओर खुलता है। रोमिकाओं की गति के कारण शरीर-गुहा से द्रव का प्रवाह निकलकर कीप में गिरता है और वहां से नलिकाओं के ज़रिये बाहर फेंका जाता है। इस प्रकार शरीर में एकत्रित होनेवाले तरल पदार्थों का उत्सर्जन होता है।

तंत्रिका-तंत्र हाइड्रा के उल्टे केंचुए की तंत्रिका-कोशिकाएं सारे शरीर में बिखरी हुई नहीं होतीं बल्कि तंत्रिका-गुच्छिकाओं में व्यवस्थित होती हैं। इनमें से सबसे बड़ी गुच्छिका गले के ऊपर होती है और अधिग्रसनीय तंत्रिका-गुच्छिका कहलाती है। यहां से बड़ी भारी संख्या में पतली तंत्रिकाएं फूट निकलती हैं। इसी कारण शरीर का अगला सिरा बहुत ही संवेदनशील होता है। अधिग्रसनीय गुच्छिका उपग्रसनीय गुच्छिका से संबद्ध रहती है और इस प्रकार परिग्रसनीय तंत्रिका-मंडल तैयार होता है। उपग्रसनीय गुच्छिका से औदरिक तंत्रिका-रज्जु निकलती है जो आंत के नीचे रहती है। यह बहुत-सी परस्पर संबद्ध तंत्रिका-गुच्छिकाओं से बनी

हुई होती है। गुच्छिकाओं से तंत्रिकाएं निकलकर शरीर की हर इंद्रिय में पहुंचती हैं (आकृति २०)।

हम तंत्रिका-तंत्र की कार्यविधि दिखानेवाले एक उदाहरण को जांचकर देखें। यदि हम सूई से केंचुए के शरीर का स्पर्श करें तो बाहरी उद्दीपन त्वचा में अवस्थित तंत्रिकाओं के सिरों को उत्तेजित कर देगा। यहां से उत्तेजन तंत्रिकाओं के ज़रिये औदरिक तंत्रिका-रज्जु की एक गुच्छिका में पहुंच जायेगा। गुच्छिकाओं से यह उत्तेजन तंत्रिकाओं के ज़रिये पेशियों में पहुंचेगा। उत्तेजन के पहुंचते ही पेशियों में संकोच होगा। फिर केंचुआ सूई से दूर हटने लगेगा। इस प्रकार संरक्षक प्रतिवर्ती क्रिया आरंभ होगी।

हाइड्रा की अपेक्षा तंत्रिका-तंत्र और ज्ञानेंद्रियों के ज़्यादा अच्छे विकास के कारण केंचुए का वर्ताव अधिक जटिल होता है।

जनन

हर केंचुए के दो लैंगिक ग्रंथि-समूह होते हैं – अंडाशय जिसमें अंड-कोशिकाएं विकसित होती ह, और वृपण जिनमें शुक्राणुओं का विकास होता है। इस प्रकार केंचुआ भी हाइड्रा की तरह द्विलिंगी प्राणी है।

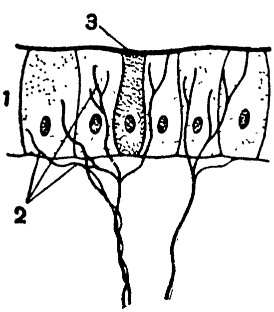

आकृति २० – केंचुए की त्वचा में अवस्थित तंत्रिकाओं के सिरे
१ (1). त्वचा की कोशिकाएं; २ (2). तंत्रिकाओं के सिरे; ३ (3). श्लेष्मिक ग्रंथि।

मंसेचित अंड-कोशिकाएं एक लसलसे पदार्थ से बनी हुई मज़बूत आस्तीन में रखी रहती है। यह आस्तीन केंचुए के शरीर से खिसक जाती है, उसके दोनों सिरे मिलकर चिपक जाते हैं और अंडे अपने को नीबू के आकारवाले एक पक्के कोए में पाते हैं (आकृति १८)। कोआ ज़मीन के अंदर रहता है। ठीक हाइड्रा की तरह इनमें से प्रत्येक अंडा क्रमशः दो, चार, आठ कोशिकाओं में और इसी प्रकार आगे विभाजित होता है। यथाक्रम ऊतक और इंद्रियां दिखाई देने लगती हैं और एक नन्हे-से केंचुए का बहुकोशिकीय शरीर विकसित होने लगता है।

हाइड्रा की तरह केंचुए में अलिंगी जनन नहीं है। फिर भी उसके शरीर के अलग अलग हिस्सों से पूरा नया शरीर तैयार हो सकता है। अतः यदि संयोगवश हम फावड़े से किसी केंचुए का शरीर तोड़ डालें तो

भी उसके दोनों हिस्सों में खोया हुआ हिस्सा विकसित होगा (अगला हिस्सा जल्दी से और पिछला कुछ धीरे से) और दोनों हिस्से जीवित रहेंगे।

प्रश्न – १. पाचन तंत्र में कौनसी इंद्रियां होती हैं? २. केंचुए की श्वसन-क्रिया का वर्णन करो। ३. रक्त का क्या महत्त्व है? ४. किस संरचना में रक्त-परिवहन तंत्र होता है? ५. किस संरचना में उत्सर्जन-तंत्र होता है? ६. केंचुए के शरीर में तंत्रिका-तंत्र का क्या स्थान है? ७. केंचुए के सूई के पास से हट जाने की क्रिया को हम प्रतिवर्ती क्रिया क्यों कहते है? ८. केंचुओं में जनन कैसे होता है?

§ ११. एस्कराइड और आंकड़ा-कृमि

एस्कराइड की संरचनात्मक विशेषताएं

स्वतंत्रता से जीवन बितानेवाले कृमियों के अलावा ऐसे कृमियों का एक बड़ा समूह है जो मनुष्य और अन्य प्राणियों के शरीर में रहते है। इन्हे परजीवी कृमि कहते है। जिस प्राणी का वे आश्रय करते हैं वह 'मेजबान' कहलाता है। परजीवी कृमि मेजबान को नुकसान पहुंचाकर खाते-पीते और जीते हैं। वे मेजबान को काफी नुकसान पहुंचाते है। परजीवी कृमियों में एस्कराइड (आकृति २१) शामिल है जो मनुष्य की आंत में रहता है और इर्द-गिर्द का अधपचा अन्न खाकर अपनी जीविका चलाता है। एस्कराइड मनुष्य शरीर की उष्णता भी बांट लेता है और अपने शत्रुओं के विरुद्ध एक आश्रय के रूप में उसका प्रयोग करता है। एस्कराइड का वृत्तखंडरहित, ठोस और लचीला शरीर लगभग २० सेंटीमीटर लंबा, गुलाबी रंग का और आगे और पीछे की ओर नुकीला होता है। यह दोनों सिरों में अच्छी नोकों वाली गोल पेन्सिल जैसा दीख पड़ता है। ऐसे कृमि उनके शरीरों के आकार के कारण गोल कृमि कहलाते हैं। अपने शरीर को मरोड़कर एस्कराइड आंत में आसानी से आगे-पीछे सरक सकता है। पाचक रसों के प्रभाव से उसकी त्वचा उसके शरीर की अच्छी तरह रक्षा करती है।

संक्रमण

एस्कराइड की विशेषता है उसकी विशाल उर्वरता। मादा एस्कराइड मनुष्य की आंत में २,००,००० तक सूक्ष्म अंडे देती है। इन अंडों पर एक मोटा-सा आवरण होता है और विष्ठा के साथ उनका

उत्सर्जन होता है। जब साग-सब्ज़ी के बगीचों में विष्ठा-द्रव की खाद डाली जाती है उस समय नियमतः ये अंडे बड़ी भारी संख्या में ज़मीन में चले जाते हैं। यदि कोई आदमी इन बगीचों की साग-सब्ज़ी या बेर-बेरियों को बिना धोये खाये तो उनके साथ साथ ये अंडे भी उसके पेट में चले जायेंगे। एस्कराइड का संक्रमण अस्वच्छ लोगों के संपर्क से भी हो सकता है।

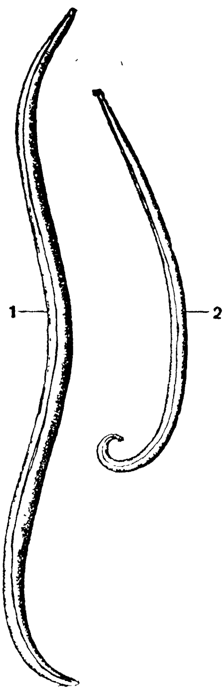

आकृति २१—एस्कराइड १ (1)—मादा, २ (2)—नर।

इस संक्रमण में कुछ हद तक घरेलू मक्खियों (आकृति ५७) का भी हाथ होता है। खुले पाखानों में अंडे देनेवाली ये मक्खियां अक्सर अपने पैरों पर एस्कराइड के अंडे ले जाती हैं। फिर बाज़ारों, रिहाइशी घरों, भोजनशालाओं और दूकानों का चक्कर काटते हुए वे इन अंडों को भोजन-पदार्थों पर छोड़ देती हैं।

निगले हुए अंडों से मनुष्य की आंत में डिंभ तैयार होते हैं। ये डिंभ यहीं नहीं रहते बल्कि आंत की दीवाल में सूराख बनाकर घुस जाते हैं और फिर रक्त-वाहिनियों में पैठ जाते हैं। रक्त-प्रवाह इन डिंभों को फेफड़ों में ले जाता है जहां वे कुछ समय रहते हैं। यहां उन्हें काफ़ी मात्रा में ऑक्सीजन मिलता रहता है और वे रक्त ही को अपना आहार बनाये रहते हैं। फिर ये डिंभ श्वास-वाहिनियों के जरिये गले में पहुंच जाते हैं, लार के साथ निगले जाते हैं और फिर जठर में और उसके बाद आंत में पहुंचते हैं। यहीं अपना स्थायी निवास बनाकर वे बड़े कृमियों में विकसित होते हैं।

बहुत-से अंडे मेजबान के शरीर में नहीं पहुंच पाते और मर जाते हैं। फिर भी दिये हुए अंडों की मात्रा इतनी विशाल होती है कि एस्कराइड का अस्तित्व सुनिश्चित हो जाता है।

एस्कराइड विरोधी उपाय

एस्कराइड अक्सर बच्चों को तंग करते हैं। बच्चा पीला पड़ जाता है, सुस्त हो जाता है; नींद में उसकी लार टपकने लगती है, वह अपने दांतों को पीसने लगता है और बेचैन-सा सोता है। एस्कराइड से पीड़ित बच्चे देर तक काम नहीं कर सकते। इसका

कारण यह है कि एस्काराइड ऐसे पदार्थ उगलते हैं जो शरीर को विषाक्त कर देते हैं। गंभीर मामलों में ये एस्काराइड आंत में बाधा उत्पन्न करते हैं या आंत की दीवाल को फाड़ डालते हैं जिसके कारण रोगी की मृत्यु हो सकती है।

इसी लिए कमरे और बर्तन-भांडों को साफ़-सुथरा रखना, भोजन करने से पहले हाथ धो लेना, ठीक से न धोयी हुई साग-सब्जियां और बेर-बेरिया न खाना और खाने की चीज़ों को मक्खियों से बचाये रखना अत्यावश्यक है।

जब कभी तुम्हें पेट में दर्द महसूस होगा, फ़ौरन डॉक्टर के पास जाओ। छूत के मामले में माइक्रोस्कोप के सहारे विष्ठा का निरीक्षण करने से एस्काराइड के अंडे दिखाई देते हैं। कृमियों के लिए विषैली दवाओं के उपयोग से उन्हें मनुष्य की आंत से बाहर कर दिया जा सकता है।

आंकड़ा-कृमि

एस्काराइड के अलावा मनुष्य के – विशेषकर बच्चों के – शरीर में निवास करनेवाला एक और परजीवी कृमि है – आंकड़ा-कृमि। ये एस्काराइड की ही शकल के छोटे छोटे सफ़ेद कृमि होते हैं। रात में ये रेंगकर आंत से बाहर आकर त्वचा पर अंडे डालते हैं। इससे गुदा के पास तेज खुजली होने लगती है। जब सोया हुआ बच्चा दाह होती हुई त्वचा को खुजलाने लगता है तो इन कृमियों के अंडे उसके नाखूनों में इकट्ठे होते हैं। यदि बच्चा खाना खाने से पहले अपने हाथ धो न ले तो ये अंडे भोजन के साथ उसकी आंत में प्रवेश करते हैं।

गंदी आदतों वाले बच्चे हमेशा खुद पीड़ित रहते है और दूसरों को पीड़ित कर देते है।

परजीवी कृमियों को गरम पानी और थोड़े-से एसेटिक एसिड की पिचकारी के सहारे आंत से बाहर कर दिया जा सकता है।

छूत से बचने का सबसे निश्चित उपाय है स्वच्छता। साफ़-सुथरी आदतों वाले बच्चे कभी भी एस्काराइड और आंकड़ा-कृमियों से पीडित नही होते।

प्रश्न – १. एस्काराइड क्या नुक़सान पहुंचाते है? एस्काराइड और आंकड़ा-कृमियो की छूत से बचने के लिए कौनसे उपाय अपनाये जाते है?

§ १२. ट्राइकिन और नहरुआ

कुण्डलाकार ट्राइकिन एक लंबे अरसे से देखा गया है कि सूअर का मांस खानेवाले लोग कभी कभी बहुत बीमार पड़ते हैं। उनका तापमान तेज़ी से चढ़ जाता है और उन्हें अपनी पेशियों में दर्द महसूस होने लगता है।

अब यह निःशंक रूप से सिद्ध किया गया है कि ट्राइकिनवाला सूअर का मांस खाने के बाद ही लोग बीमार पड़ते है। ये ट्राइकिन छोटे छोटे गोल कृमि होते हैं जिनकी लंबाई ३-४ मिलीमीटर से अधिक नही होती। ये कृमि चूहों, सूअरों और मनुष्य के शरीर में रहते है। जब कूड़े-करकट में मुह मारते हुए सूअर रोगग्रस्त चूहे का मृत शरीर निगल जाता है तो वह ट्राइकिन से पीड़ित होता है। ये ट्राइकिन सूअर से मनुष्य के शरीर में स्थानांतरित होते है।

सूअर के मांस के अंदर ट्राइकिन के डिंभ चूने के नन्हे नन्हे कैपसुलों से आवृत कुण्डलियों में पड़े रहते है। मनुष्य के शरीर में ये कैपसुलों से बाहर आकर बड़े कृमियों में विकसित होते है। ये कृमि पहले मनुष्य की छोटी आंतों में रहते है और फिर उनकी दीवालों में पैठ जाते हैं। यहां मादा-कृमि बड़ी भारी संख्या में नन्हे डिंभों को जन्म देते हैं। रक्त-प्रवाह के साथ ये डिंभ पेशियों में चले जाते है। यहां डिंभों के चारों ओर चूने के कैपसुलों का आवरण बन जाता है।

आज हमें पता चला है कि मनुष्य को ट्राइकिन किस प्रकार पीड़ित करते है और अब भोजन में सूअर के मांस का उपयोग करना खतरनाक नहीं रहा है। बूचड़खानों में माइक्रोस्कोप के जरिये मांस के टुकड़ों का निरीक्षण किया जाता है और उसमें यदि कोई ट्राइकिन हों तो वे आसानी से पहचाने जा सकते हैं। ट्राइकिनग्रस्त मांस बेचने की मनाही है। और यदि सूअर के मांस में कोई ट्राइकिन डिंभ हों भी तो खाना पकाते समय वे मर जाते हैं।

नहरुआ एशिया के दक्षिणी हिस्सों में – उदाहरणार्थ भारत में – कभी कभी नहरुआ नामक गोल कृमियों के कारण एक रोग का प्रादुर्भाव होता है। नहरुए से पीड़ित व्यक्ति के शरीर के विभिन्न हिस्सों में और वशेषकर हाथ-पैरों में सूजन पैदा होती है। यह सूजन आगे फोड़ों का रूप धारण करती है जिनमें से नहरुए के सिरे बाहर झांकने लगते हैं। फोड़े तब तक चंगे नहीं हो सकते जब तक कि नहरुआ उसमें से हट न जाये। इसके लिए कृमि को एक छड़ी

पर लपेटते हुए हर रोज़ तीन-चार सेंटीमीटर के हिसाब से धीरे धीरे फोड़े से बाहर निकाला जाता है। इस प्रकार मनुष्य के शरीर से निकाला गया कृमि १५० सेंटीमीटर तक लंबा और १.५ मिलीमीटर तक मोटा हो सकता है (आकृति २२)।

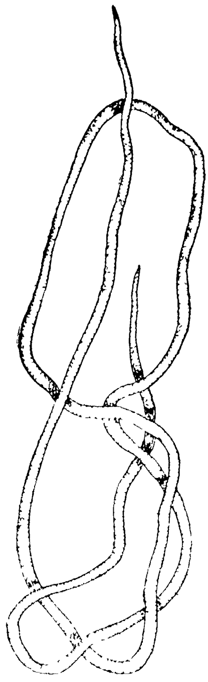

आकृति २२—नहरुआ।

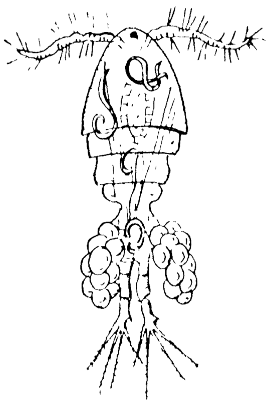

आकृति २३ – साइक्लाप के शरीर में नहरुआ-डिंभ।

नहरुआ लोगों को किस प्रकार ग्रस्त कर देता है इसपर एक रूसी वैज्ञानिक अ० प० फ़ेदचेन्को ने सन् १८६८ में बुखारा के दौरे के दौरान में रोशनी डाली। उन्होंने देखा कि वहां के लोग जहां से पीने और घरेलू कामों के लिए पानी लाते हैं वहीं नहाते भी हैं। उस पानी में नहानेवालों में ऐसे लोग भी थे जो घावों से पीड़ित थे।

फेदचेन्को ने यह सिद्ध कर दिया कि लोगों के घावों में से नहरुओं के डिंभ निकलकर पानी में मुक्त रूप से प्रवेश करते हैं। जैसा कि बाद में देखा गया, साइक्लाप (आकृति २३) नामक सूक्ष्म क्रस्टेशिया इन डिंभों को निगल लेते है। साइक्लाप के शरीर मे ये डिंभ १ मिलीमीटर लंबे हो जाते है। यहा वे तब तक रहते हैं जब तक मनुष्य उन्हें पानी के साथ निगल न ले। मनुष्य के शरीर में प्रवेश करने के बाद वे उसकी आंत की दीवाल में सूराख बनाकर रक्त-वाहिनियों में पैठ जाते हैं और इन

वाहिनियों में से सरकते हुए त्वचा के नीचेवाली चरबी की परतों में पहुंच जाते हैं। यहीं वे बड़े कृमियों में परिवर्द्धित होते हैं।

सन् १८६८ में ही यह सब खोजबीन की गयी और बुख़ारा के खुले तालाबों को ख़त्म कर डालने का सवाल उठा। पर महान् अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद ही वहां पानी के नल बिछाये गये। पानी में नहरुआ डिंभों का संक्रमण रुक गया। इसके बाद बुख़ारा में कोई भी नहरुए की बीमारी का शिकार नहीं हुआ।

इस प्रकार विज्ञान के विकास और जीवन-स्थितियों के परिवर्तन के द्वारा मनुष्य ने प्रकृति पर एक और महान् विजय प्राप्त की।

प्रश्न – १. ट्राइकिन का संक्रमण कैसे होता है? २. ट्राइकिन के उद्भव की रोक-थाम कैसे की जा सकती है? ३. लोग नहरुए के शिकार कैसे हो जाते हैं और इस रोग की रोक-थाम कैसे की जा सकती है?

§ १३. सूअर फ़ीता-कृमि

फ़ीता-कृमि की परजीवी विशेषताएं

मनुष्य की आंत में पाया जानेवाला एक और कृमि है सूअर फ़ीता-कृमि (आकृति २४)। यह बहुत लंबा होता है और सफ़ेद फ़ीते की पट्टी जैसा लगता है। इस प्रकार के कृमियों को चपटा कृमि कहते हैं। सूअर फ़ीता-कृमि २-३ मीटर या इससे भी अधिक लंबा हो सकता है। आगे के सिरे पर उसका गोल सिर होता है जिसका व्यास लगभग २ मिलीमीटर होता है। सिर में क्रॉस की शकल के चार चूषक होते हैं और आंकड़ों का दोहरा वृत्त। अपने आकड़ों और चूषकों को यह परजीवी आंत की दीवाल में गड़ाकर वहां मज़बूती से चिपका रहता है। सिर के बाद आती है गरदन और उसके बाद शरीर जिसमें बहुत-से वृत्तखण्ड होते हैं। फ़ीता-कृमि की आयु के साथ वृत्तखण्डों की संख्या बढ़ती जाती है और १,००० तक पहुंच सकती है। गरदन के पीछे की ओर नये वृत्तखण्ड तैयार होते हैं।

आंत के अंदर फ़ीता-कृमि पचे हुए मानवीय भोजन में गड़ा हुआ पड़ा रहता है और अपने सपाट शरीर की सारी सतह से यह भोजन चूस लेता है।

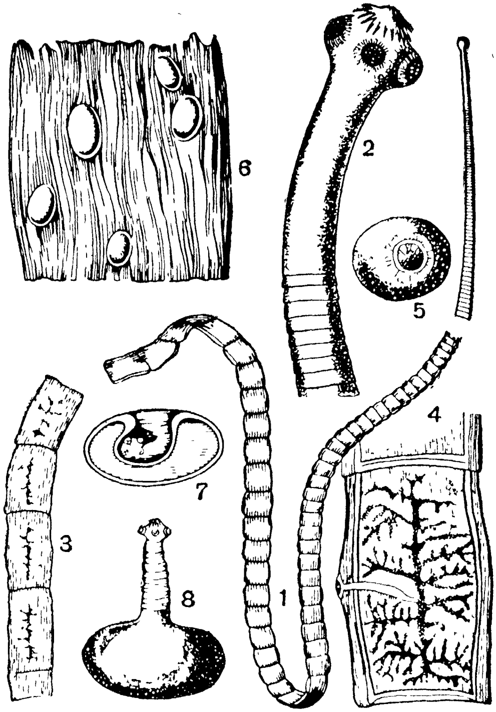

आकृति २४ – सूअर फ़ीता-कृमि

१ (1). वयस्क फ़ीता-कृमि ; २ (2). फीता-कृमि का विशालीकृत अगला सिरा (सिर पर आंकड़े और चूषक दिखाई दे रहे हैं) ; ३ (3). और ४(4). परिपक्व वृत्तखण्ड (४ – विशालीकृत), अंडों से ठसाठस भरे गर्भाशय पर ध्यान दो ; ५(5). डिंभ ; ६(6). मांस में ब्लेडर कृमि ; ७ (7). अंदर की ओर सिर घुमाये हुए ब्लेडर कृमि ; ८ (8). बाहर की ओर सिर निकाले हुए ब्लेडर कृमि।

अनगिनत पीढ़ियों से इस हालत में रहते रहने के कारण फ़ीता-कृमि में पाचक इन्द्रियों का लोप हो गया है। परजीवियों में ऐसा अक्सर हुआ करता है और यही उन्हें स्वतन्त्र रूप से जीनेवाले कृमियों से भिन्न कर देता है।

दूसरी ओर फ़ीता-कृमि की लिंगेन्द्रियां बहुत ही विकसित होती हैं। हर वृत्तखण्ड में ५०,००० तक अंडे तैयार होते हैं। एकदम पीछे की परिपक्व अंडों वाली संधियां कृमि के शरीर से कट जाती हैं और विष्ठा के साथ मनुष्य की आंतों से बाहर निकलती हैं।

फ़ीता-कृमि का परिवर्द्धन

जब कूड़े-करकट में मुंह मारता हुआ सूअर ऐसे अंडों वाले वृत्तखण्ड को निगल जाता है तो सूअर की आंत में ये अंडे सेये जाकर उनसे छोटे छोटे गोल डिंभ तैयार होते हैं। हर डिंभ के छः तेज़ आंकड़े होते हैं जिनसे आंत की दीवाल को खोदकर वह अंदर जाता है और रक्त में पैठ जाता है। रक्त-प्रवाह डिंभों को सारे शरीर में फैलाता है और वे विभिन्न इन्द्रियों में और विशेषकर पेशियों में डेरा डालते है। कुछ समय बाद ये डिंभ सफ़ेद-से, अर्द्धपारदर्शी और मटर के आकार के बुलबुलों में परिवर्तित होते हैं। ये हैं ब्लेडर कृमि जो काफ़ी देर पेशियों में जमे रहते हैं।

यदि ऐसा मांस अधपका या अधभूना रह जाये और आदमी उसे खा जाये तो वह फ़ीता-कृमियों से ग्रस्त हो जाता है। मनुष्य शरीर की उष्णता और पाचक रसों के परिणामस्वरूप डिभ से कृमि का सिर बाहर निकल आता है। आंत की दीवालों में अपने चूपकों और आकड़ों को गड़ाकर चिपका हुआ यह कृमि मनुष्य द्वारा पचाया गया भोजन अवशोषित करता है और पलता-पुसता है। जिस बुलबुले से कृमि का सिर निकल आता है वह बुलबुला धीरे धीरे गल जाता है। इसके बाद गरदन पर वृत्तखण्ड बनने लगते हैं। तीन या चार महीने मे फ़ीता-कृमि २-३ मीटर लंबा हो जाता है।

फ़ीता-कृमि के परिवर्द्धन के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि एस्कराइड के उलटे यह कृमि दो मेजवानों के शरीरों में रहता है। ये है मनुष्य और सूअर। मनुष्य, जिसके शरीर में फीता-कृमि की संख्या बढ़ती है, अन्तिम मेज़बान कहलाता है जबकि सूअर – मध्यस्थ मेजबान।

दो मेज़बानों के आश्रय से रहने के कारण एस्कराइड की अपेक्षा फीता-कृमि का जनन अधिक कठिन होता है। इसी से फीता-कृमि की और भी बड़ी उर्वरता का स्पष्टीकरण मिलता है।

फ़ीता-कृमियों को विशेष औषधियों की सहायता से मनुष्य की आंत से बाहर कर दिया जा सकता है। बहुत बार ऐसा होता है कि कृमि का शरीर आत के अंदर

टूट जाता है और इससे इस परजीवी का मज़बूती से चिपका हुआ सिर वहीं का वहीं रह जाता है। ऐसे मामलों में गरदन से नये वृत्तखण्ड तैयार होते हैं और फ़ीता-कृमि फिर बढ़कर पहले जितना लंबा हो जाता है।

कृमियों की साधारण विशेषताएं

केंचुए, एस्कराइड, आंकड़ा-कृमि और फ़ीता-कृमि के बीच महत्त्वपूर्ण संरचनात्मक अन्तर के होते हुए भी हमें इनमें कुछ साधारण विशेषताएं भी दिखाई देंगी। इन्हीं विशेषताओं के अनुसार उन्हें कृमियों के समूह में रखा जाता है जिनमें से तीन समुदाय विशेष महत्त्वपूर्ण है – चपटा कृमि (फ़ीता-कृमि), गोल कृमि (एस्कराइड और आंकड़ा-कृमि) और कुडलि कृमि (केंचुआ)। सभी कृमियों के लंबे शरीर होते हैं। उनके न पैर होते हैं और न घन कंकाल भी। सीलेण्ट्रेटा के उल्टे, कृमियों के इन्द्रिय-तन्त्र होते हैं।

कृमियों की अधिक जटिल संरचना से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि धरती पर उनका उद्भव सीलेण्ट्रेटा के बाद हुआ।

प्रश्न – १. कौनसी संरचनात्मक विशेषताएं फ़ीता-कृमि को एस्कराइड से भिन्न दिखाती हैं? २. फ़ीता-कृमि की कौनसी विशेषताएं उसके परजीवी अस्तित्व से सम्बन्ध रखती है? ३. फ़ीता-कृमि का परिवर्द्धन और लोगों में उसका संक्रमण कैसे होता है? ४. फ़ीता-कृमि के विरुद्ध कौनसे उपाय अपनाये जाते है? ५. कृमियो की समान विशेषताएं क्या है?

§ १४. परजीवी कृमि विरोधी उपाय

परजीवी

सभी परजीवी जन्तु अपने मेज़बान को नुकसान पहुंचाकर जीते है, उसके भोजन, रक्त या ऊतकों पर पलने है। इनमें से बहुत-से जन्तु मेज़बान के शरीर में अपने मलोत्सर्ग के ज़रिये विष फैला देते है जिससे उसमें थकान या गंभीर बीमारी पैदा होती है और कभी कभी तो उसकी मृत्यु हो जाती है।

प्राणि-जगत् में परजीवी जीवन एक अतिप्रचलित बात है। प्रोटोज़ोआ और कृमियों के अलावा दूसरे समूहों के प्राणी भी परजीवी हो सकते हैं। फिर भी सभी परजीवियों में कृमि ही सबसे प्रधान है।

परजीवी कृमियों की संरचना जीवन-प्रणाली के कारण स्वतन्त्र रूप से जीनेवाले कृमियों की तुलना में बहुत ही सरल होती है। इससे हमारी यह धारणा बनती है कि परजीवी कृमियों की कुछ इन्द्रियों का उनकी जीवन-प्रणाली की विशेषताओं के कारण लोप हो गया है। साथ साथ उनमें धीरे धीरे ऐसे अनुकूलक साधनों का परिवर्द्धन हुआ है जो परजीवी के रूप में जीने में उनकी सहायता करते हैं। ये हैं विशेष आंकड़े, चूषक, मेज़बान के पाचक रसों से कोई हानि न पहुंचनेवाली त्वचा और अनगिनत अंडे।

सोवियत संघ में परजीवी कृमि विरोधी उपाय

सोवियत सरकार परजीवी कृमियों से सम्बन्धित अनुसन्धान-कार्य के लिए काफ़ी बड़ी रक़में मंजूर करती है। अकादमीशियन क० इ० स्क्र्याबिन ने कृमियों के अध्ययन के क्षेत्र में बहुत कुछ महत्त्वपूर्ण काम किया है। परजीवी कृमियों के परीक्षण द्वारा प्राणि-शास्त्रियों ने मनुष्य की कई बीमारियों के उन कारणों पर प्रकाश डाला है जो अभी तक अज्ञात थे।

परजीवी कृमियों से सम्बन्धित अनुसन्धान की उपलब्धियों के फलस्वरूप इन कृमियों की रोक-थाम के उपाय बड़े पैमाने पर लागू करना सम्भव हुआ है। स्कूलों, अनाथालयों और प्रौढ़ लोगों के समुदायों में डॉक्टर परजीवी कृमि जनित बीमारियों की रोक-थाम के उपायों के सम्बन्ध में भाषणों का आयोजन करते हैं। बच्चों की स्वास्थ्य-परीक्षा की जाती है। बहुत-से स्कूलों और अनाथालयों में सब के सब बच्चे निरपवाद रूप से ऐसे पाउडरों की सालाना खुराक खाते हैं जो मनुष्य को तो कोई हानि नहीं पहुंचाते पर उन बच्चों की आंत में संभवतः उत्पन्न होनेवाले एस्काराइडों का काम वे तमाम कर देते हैं।

भोजनशालाओं के रसोईघरों और दूकानों के खाद्य-पदार्थ संग्रहों पर बाक़ायदा मेडिकल निगरानी रहती है। सूअर और दूसरे जानवरों के मांस की, जिनके ज़रिये मनुष्य में फ़ीता-कृमि का सक्रमण होना संभव है, बूचड़खानों और कोलखोज़ी बाज़ारों में डॉक्टरों द्वारा जाच की जाती है। समय समय पर रिहाइशी मकानों, कूड़ेख़ानों और पाख़ानों की सफ़ाई की दृष्टि से जांच की जाती है।

बीमारियों की रोक-थाम की बड़े पैमाने की कार्रवाइयों के अलावा बीमारों के इलाज के ज़ोरदार उपाय किये जाते हैं।

इन सभी उपायों के फलस्वरूप लोगों में कृमि संक्रमण की घटनाओं में तीव्र कमी हो गयी है और कुछ इलाक़ों में तो परजीवी कृमियों का नामोनिशान तक नहीं रहा।

परजीवी कृमियों से पशु-धन को भी भारी क्षति पहुंचती है। सोवियत संघ में खेती के मवेशियों को नुक़सान पहुंचानेवाले परजीवी कृमियों के विरुद्ध भी प्रणालीबद्ध कार्रवाइयां की जाती हैं।

प्रश्न – १. कौनसे प्राणी परजीवी कहलाते हैं? २. परजीवी कृमियों के विरुद्ध कौनसी कार्रवाइयां की जाती है?

अध्याय ४

मोलस्क

§ १५. मोतिया शिपला

पाद

झीलों और नदियों के बलुए तटों पर हमें दो पटों वाले डिबिया-नुमा सख़्त कवच से आवृत एक छोटा-सा प्राणी दिखाई देता है। यह है मोतिया शिपला (आकृति २५)। आम तौर पर यह बालू के तल में अधगड़ा-सा रहता है। शिपले पर से बहनेवाला पानी उसके लिए घुला हुआ आॉक्सीजन और भोजन लाता है। यह प्राणी सूक्ष्म वनस्पतियों और पानी में तैरनेवाले प्रोटोज़ोआ पर जीता है।

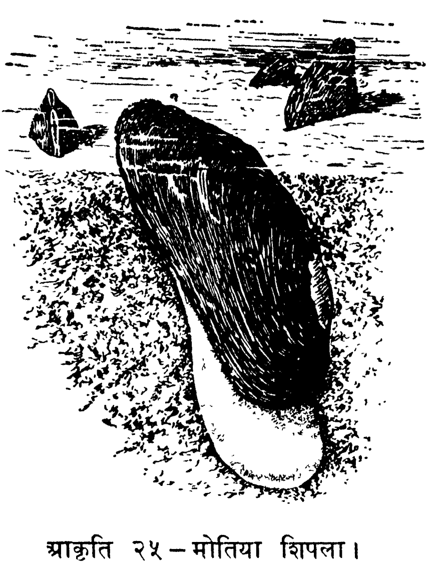

आकृति २५ – मोतिया शिपला।

ऐसी स्थितियों में गति विशेष महत्त्व नहीं रखती। शिपला, पाद नामक एक अवयव के सहारे बहुत ही धीरे धीरे रेंग सकता है। यह पाद वैल्वों के बीच से उठकर क्रमशः आगे निकल आता है और बालू को पच्चड़ की तरह काटता जाता है। जब पाद की पेशियां संकुचित हो जाती हैं तो शरीर वहां तक खिंच जाता है जहां पाद गड़ा रहता है।

सीप

इधर-उधर शायद ही चलनेवाले शिपले के जीवन में सुरक्षा इंद्रियों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिपले का कवच या सीप एक ऐसी इंद्रिय है। कवच आगे की ओर चौड़ा और पीछे की ओर संकरा होता है। कवच में दो पट होते हैं और वह दो उभरी हुई पेशियों से बंद होता है। ये पेशियां वैल्वों की अंदरूनी सतह से चिपकी रहती हैं और संकुचन के समय वैल्वों को एक दूसरे से मिला देती हैं। सीप एक कमानीनुमा स्नायविक चूल द्वारा खुलती है। यह चूल वैल्वों को पीठ की ओर जोड़े रहती है। जब पेशियां शिथिल होती हैं उस समय लचीली चूल एक वैल्व को दूसरे से दूर खींचती है। मृत शिपलों का कवच हमेशा खुला रहता है।

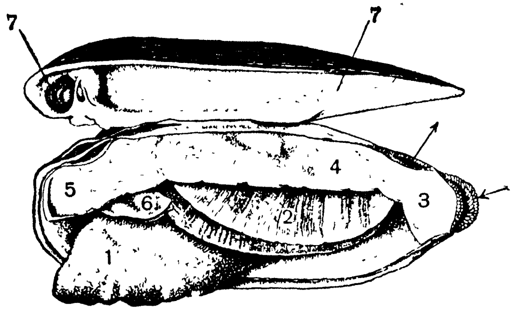

आकृति २६–खुले कवच सहित मोतिया शिपला (आंचल की बाईं तह कटी हुई है) १ (1). पाद; २ (2). जल-श्वसनिका; ३ (3). आंचल का एक हिस्सा; ४ (4). और ५ (5). उभरी हुई पेशियां; ७ (7). कवच से उनके जोड़ के साधन; ६ (6). ओष्ठस्पर्शिनी। बाण पानी के प्रवाह की दिशाएं दिखाते हैं।

हर वैल्व तीन परतों का बना रहता है। बाहर की ओर हमें काली शृंगीय परत दिखाई देती है। इसके नीचे सफ़ेद पोर्सलिननुमा परत होती है और अंदर की ओर सीपी की परत जिसमें इंद्रधनुष के सभी रंगों की चमक होती है। पोर्सलिननुमा और सीपी परतें–दोनों चूने की बनी होती हैं। गरमियों में शिपले का कवच जाड़ों की अपेक्षा अधिक शीघ्र बढ़ता है और शृंगीय परत पर कई वृद्धिदर्शक धारियां दिखाई देने लगती हैं–गरमियों में बननेवाली धारियां चौड़ी होती हैं जबकि जाड़ों में निकलनेवाले छल्ले संकरे होते हैं।

शिपले के सख्त कवच का उपयोग मोती के से बटन तैयार करने और चूना-खुराक के उत्पादन में किया जाता है। यह खुराक मवेशियों के चारे में मिलायी जाती है। शिपलों के शरीर सूअरों और बत्तखों को खिलाये जाते हैं।

आंचल-गुहा

शिपले के कवच के नीचे आंचल कहलानेवाले ऊतक की दो तहें होती हैं जो पीठ की ओर से उतरती हुई उक्त प्राणी के शरीर को दोनों बाजुओं से एक मुलायम आंचल की तरह ढक देती हैं। कवच बनानेवाला पदार्थ इन्हीं तहों में से रसता है।

शरीर और आंचल के बीच के हिस्से को आंचल-गुहा कहते हैं। शिपले का शरीर मुलायम होता है और इसी लिए इस प्राणी को मोलस्क कहते हैं। इस यूनानी शब्द का अर्थ है मुलायम शरीरवाला प्राणी। आंचल-गुहा में स्थित अवयव तभी दिखाई देते हैं जब हम कवच को खोलकर आंचल को उठाते हैं (आकृति २६)।

पच्चड़नुमा पाद के दोनों ओर भरी-सी पट्टिकाओं के दो जोड़े होते हैं – ये हैं जल-श्वसनिकाएं। ये उक्त प्राणी की श्वसनेंद्रियां है।

आगे की ओर शिपले का मुंह होता है जो नन्हे नन्हे मुलायम परदों के दो जोड़ों से घिरा रहता है। ये परदे स्पर्शिकाएं कहलाते हैं। शिपले के आंखें नही होती।

दो छेद उक्त प्राणी की आंचल-गुहा में खुलते हैं। ये पिछले सिरे पर वैल्वों के बीच होते हैं। निचले छेद से पानी गुहा में घुसता है और ऊपरवाले छेद से बाहर निकलता है। गुहा में पानी का प्रवाह जल-श्वसनिकाओं को ढकनेवाली अनगिनत रोमिकाओं के अविराम लहराने के कारण उत्पन्न होता है। इस प्रकार जल-श्वसनिकाओं को ऑक्सीजन से समृद्ध पानी की सतत पूर्ति होती रहती है और मुंह को पानी में तैरनेवाले भोजन-कणों की।

केंचुए की तरह शिपले के भी पाचन, रक्त-परिवहन, मलोत्सर्जन और जनन इंद्रियां होती हैं। सभी इंद्रियों की गतिविधियां तंत्रिका-तंत्र के नियंत्रण में होती हैं। तंत्रिका-तंत्र के जरिये शिपले को उद्दीपन मिलता है। कवच की तह में पतली-सी सीक डाल देने से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है। उद्दीपन के उत्तर में कवच अपनी वैल्वों को इतनी मजबूती से भींच लेता है कि हम उसे सींक के सहारे उठाकर आसानी से पानी में से बाहर निकाल सकते हैं।

प्रश्न – १. मोतिया शिपले की मुख्य संरचनात्मक विशेषताएं क्या हैं? २. शिपले को जीवित रहने के लिए कौनसी स्थितियां आवश्यक हैं? ३. शिपला किस तरह चलता है, खाता है, सांस लेता है और उद्दीपन का उत्तर देता है?

व्यावहारिक अभ्यास – १. गरमियों की छुट्टियों में स्थानीय ताल-तलैयों और नदियों की जांच करो और अपने स्कूल के प्राणि-शास्त्र कक्ष के लिए शिपले के कवचों और दूसरे स्थानीय मोलस्कों का संग्रह तैयार करो। २. यदि तुम्हें कोई ज़िंदा शिपला मिल जाये तो उसे पानी से भरे और तल में बालवाले शीशे के बर्तन में छोड़ दो। प्राणी के पिछले सिरे के पास काजल की रोशनाई की या दूसरे किसी अहानिकर रंग की एक बूंद डाल दो और देखो किस प्रकार पानी आंचल-गुहा में घुसता है और उससे बाहर निकलता है। शिपले को ५० सेंटीग्रेड तक गरम किये गये पानी में पंद्रह मिनट के लिए रख दो। प्राणी के मर जाने और उसके कवच के खुल जाने के बाद उभरी हुई पेशियों को काट दो। २६ वीं आकृति की सहायता से शिपले की इंद्रियां ढूंढ निकालो।

§ १६. अंगरी घोंघा

जीवन-प्रणाली

अंगूरी घोंघा (आकृति २७) एक स्थलचर प्राणी है जो गरम दक्षिणी इलाक़ों में अंगूर की लताओं और फल-वृक्षों पर रहता है।

घोंघे का मुलायम शरीर चूने के एक सख़्त कवच से सुरक्षित रहता है। इस कवच के कोई वैल्व नहीं होते और वह पतली-सी कुंडलाकार टोपी-सा लगता है। घोंघा अपना पूरा शरीर कवच में समेट ले सकता है।

कवच उसे हवा में और तेज धूप में सूख जाने से बचाता है। शरीर पर चिपचिपे श्लेष्म का आवरण भी वाष्पीकरण को कम कर देता है। गरमियों में घोंघा जल्दी से सूखनेवाले श्लेष्म के सहारे अपने कवच को पेड़ के तने या शाखा से चिपकाये रखता है और वहीं सुषुप्तावस्था (hibernation) में रहता है। गरमियों के दौरान पूरे के पूरे पेड़ और झाड़-झंखाड़ अंगूरी घोंघों से ढंके नज़र आते हैं।

ये घोंघे उनपर चिपके रहते हैं। ऐसी स्थिति में वे गरमियों के सूखे और जाड़ों के शीत से सुरक्षित रहते हैं।

वातावरण से संपर्क

जब घोंघा चलता है उस समय सिर को आगे रखे शरीर का एक बड़ा-सा हिस्सा कवच में से बाहर निकल आता है। सिर में छोटी और लंबी स्पर्शिकाओं के दो जोड़े होते हैं। छोटी स्पर्शिकाओं के सहारे घोंघा ज़मीन और अपने भोजन का स्पर्श करता है और गंध पहचान सकता है। लंबी स्पर्शिकाओं के सिरों पर छोटी छोटी काली आंखें होती है। यह प्राणी न केवल प्रकाश और अंधकार के बीच का अंतर जानता है बल्कि चीज़ों को देख तक सकता है। फिर भी घोंघा आम तौर पर झुटपुटे में और रात में चलता-फिरता है। उसकी दृष्टि विशेष विकसित नहीं होती। वह नज़दीक की ही चीज़ें देख सकता है और उनके रंग बिलकुल नहीं पहचान सकता।

गति

चारों ओर से भोजन से घिरा हुआ घोंघा एक पत्ती से दूसरी पत्ती तक और पेड़ों के तनों पर धीरे धीरे रेंगता जाता है। शरीर का उदर की ओर का हिस्सा चलनेंद्रिय का काम देता है।

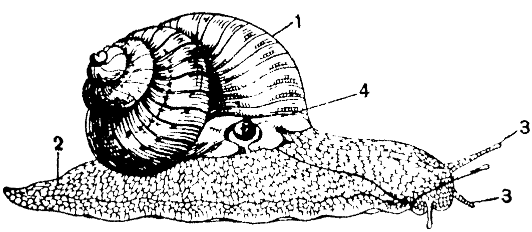

आकृति २७ – अंगूरी घोंघा

१ (1). कवच; २(2). पाद; ३(3). स्पर्शिकाएं; ४(4). श्वसन-द्वार।

यदि घोंघे को शीशे की तश्तरी पर रखकर नीचे की ओर से देखा जाये तो शरीर की औदरिक सतह पर लहरनुमा कुंचन नज़र आयेंगे। ये कुंचन घोंघे को चलने में मदद देते हैं और वह चैन से शीशे पर सरकता जाता है। उदर-पेशियों के सतत व्यायाम के कारण शरीर का निचला हिस्सा सुपरिवर्द्धित होता है।

इससे एक चौड़ा पेशीय अंग निकलता है जो रेंगते समय कवच में से उभर आता है। यह मोलस्क का पाद है।

पोषण और श्वसन

अंगरी घोंघे का मुह स्पर्शिकाओं के पहले जोड़े के नीचे होता है। मुंह के अंदर नन्हे नन्हे तेज़ दांतों की कई पंक्तियों से ढकी हुई जीभ होती है जिसे हम रेती कह सकते हैं। यदि हम इस प्राणी को शीशे पर रख दें और नीचे की ओर से उसका निरीक्षण करें तो यह जीभ बार बार बाहर निकलकर शीशे का स्पर्श करती हुई दिखाई देगी। अपने दांतों की सहायता से घोंघा वनस्पतियों के ऊतक खरोंच लेता है। वह फल-वृक्षों और अंगूर-लताओं की पत्तियां नष्ट कर देता है और इसलिए एक कृषिनाशक जंतु माना जाता है।

घोंघे के रेंगते समय कवच के बगल में उसके दाहिने किनारे के नीचे हम गोल श्वसन-द्वार देख सकते हैं। यह आंचल-गुहा में खुलता है जिसकी दीवालों में अनगिनत रक्त-वाहिनियां फैली रहती है। जब गुहा फैलती है उस समय श्वसन-द्वार के जरिये उसमें हवा प्रवेश करती है। हवा में जो ऑक्सीजन होता है वह रक्त-वाहिनियों की दीवालों के जरिये रक्त में चला जाता है। रक्त में से कारबन डाइ-आक्साइड गुहा में फेंका जाता है। जब आचल-गुहा का संकोच होता है उस समय अतिरिक्त कारबन डाइ-आक्साइडवाली हवा श्वसन-द्वार से बाहर निकल जाती है। इस प्रकार आंचल-गुहा श्वसनेंद्रिय या फेफड़े का काम देती है।

प्रश्न – १. पेड़ों पर रहनेवाले अंगूरी घोंघे में और ताजे पानी के मोतिया शिपले में क्या अन्तर है? २. घोंघा पेड़-पौधों को कैसे हानि पहुंचाता है?

व्यावहारिक अभ्यास – १. एक अंगूरी घोंघे को शीशे की तश्तरी पर रखकर उसके रेंगने का निरीक्षण करो। घोंघे को देखकर उसका चित्र बनाओ। यदि तुम्हारे इलाके में अंगूरी घोंघे न होते हों तो जंगली घोंघे का निरीक्षण करो जो बगीचे में या जंगल में मिल सकता है। यदि घोंघे कवच में सुषुप्तावस्था में हों तो उन्हें शीशे के बरतन में डालकर और उनपर ४० सेंटीग्रेड तक गरम किया गया पानी उंडेलकर जगा दो। २. किसी तालाब में से ताजे पानी के घोंघे पकड़कर उन्हें पानी के बरतन में डाल दो और उन्हें चलते, खाते, सांस लेते और अंडे देते हुए देखो।

§ १७. मोलस्कों से हानि-लाभ

उपयोगी मोलस्क

कुछ मोलस्क मनुष्य के लिए बहुत ही लाभदायी हैं। मोतिया शिपलों और विविध समुद्री मोलस्कों के मोटे कवचों को कारखानों में काट-छांटकर गोल आकार दिया जाता है, उनमें छेद बनाये जाते हैं और उनपर पालिश चढ़ायी जाती है जिससे सीप के बढ़िया मोतिया बटन बनते हैं।

यदि कवच वैल्व और आंचल के बीच कोई बालू का या अन्य प्रकार का कण घुस जाये तो उसपर धीरे धीरे सीप का आवरण चढ़ता है और फिर वह मोती का रूप धारण कर लेता है। विशेषकर बड़े और आबदार मोती हिन्द और प्रशान्त

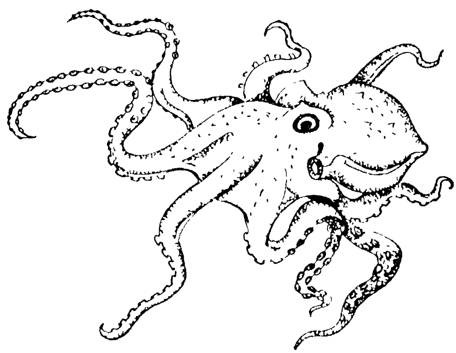

आकृति २८ – आक्टोपस।

महासागरों के उष्णकटिबंधीय तटों के पास समुद्री सीपों में पाये जाते हैं। आयस्टर सी कोंब (समुद्री कंघी), कटल-मछली और आक्टोपस इत्यादि जैसे कई मोलस्कों का उपयोग मनुष्य द्वारा भोजन के रूप में किया जाता है। नरम कवचों वाले युवा बाइवैल्व मोलस्कों और पानी के कई कुंडलाकार कवचों वाले मोलस्कों को मछलियां और जलपंछी बहुत बड़ी मात्राओं में चट कर जाते हैं।

हानिकर मोलस्क

कुछ दूसरे प्रकार के मोलस्क मनुष्य के लिए प्राणघातक सिद्ध होते हैं। उदाहरणार्थ, बड़े बड़े आक्टोपस (आकृति २८) कभी कभी गोताखोरों और मोती निकालनेवालों पर धावा बोल देते हैं। वे अनगिनत चूपकों वाली अपनी पेटियों जैसी स्पर्शिकाओं को मनुष्य के शरीर के चारों ओर लपेट देते हैं और

फिर उसे नीचे खींच ले जाकर डुबो देते हैं। मोती निकालनेवाले ग़ोताख़ोरों का बहुत ख़तरनाक दुश्मन ट्राइडेक्ना है जो एक भीमाकार बाइवैल्व समुद्री मोलस्क है (आकृति २६)। इसके कवच डेढ़ मीटर तक लंबे हो सकते हैं और ऐसे मोलस्क का वज़न ५०० किलोग्राम तक। जब किसी असावधान ग़ोताख़ोर की

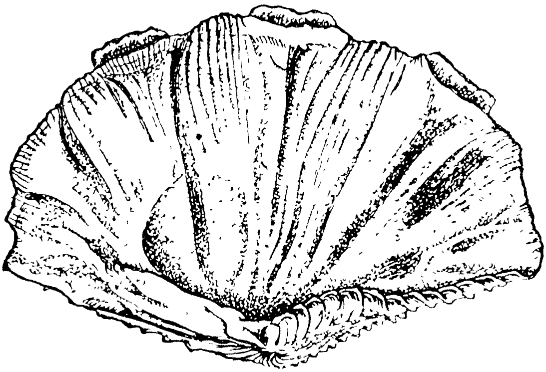

आकृति २६ – ट्राइडेक्ना।

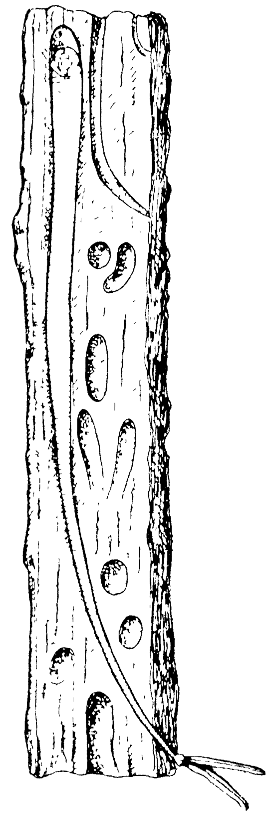

आकृति ३० – पोत-कृमि।

टांग या हाथ ट्राइडेक्ना के कवच के वैल्वों के बीच पकड़ जाता है तो वह मनुष्य जैसे 'मौत के शिकंजे' में ही फंस जाता है। ग़ोताख़ोर इस जंतु को ऐसा ही कहते भी हैं। यह भीमाकार मोलस्क वैल्वों को ऐसे ज़ोर से बंद कर लेता है कि मनुष्य की हड्डियां चकनाचूर हो जाती हैं।

पोत-कृमि (आकृति ३०) नामक समुद्री मोलस्क एक ख़तरनाक लकड़ीख़ोर है। उसके शरीर का आकार कृमि जैसा होता है और लंबाई कवच के बीस गुना के बराबर। छोटा-सा बाइवैल्व कवच उसके लिए बरमे का काम देता है।

पोत-कृमि दक्षिणी सागरों पर चलनेवाले जहाज़ों के काठ से बने हिस्से बड़ी शीघ्रता से नष्ट कर देते हैं और एक-दो वर्ष की अवधि में मोटे से मोटे लट्ठों को लुगदी बना देते हैं।

मोलस्कों में कुछ भयानक कृषि-नाशक जंतु भी शामिल हैं। इनमें से उद्यान-कीट का फैलाव बहुत ज़्यादा है (आकृति ३१)।

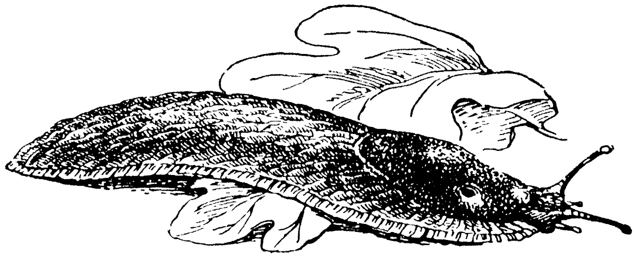

आकृति ३१ – उद्यान-कीट।

अंगूरी घोंघे की तरह उद्यान-कीट के भी मुलायम शरीर, स्पर्शिकाओं सहित सिर और एक चौड़ा, सपाट पाद होता है। उद्यान-कीट की पीठ की ओर एक कूबड़ होता है। यह कूबड़ कवच और आंचल-गुहा के शेषांश धारण करता है। आंचल-गुहा में एक गोल श्वसन-द्वार खुलता है।

परिवर्द्धित कवच के अभाव में उद्यान-कीट केवल नम स्थानों में ही जी सकता है। उद्यान-कीट भारी संख्या में तभी दिखाई देते हैं जब शरद और ग्रीष्म गरम और नम हो। उद्यान-कीट अधिकतर रात ही में दिखाई पड़ते हैं। दिन में वे आश्रय-स्थानों मे रहते है और झुटपुटे मे भोजन ढूंढने के लिए बाहर निकलते हैं।

इसके अंडे नन्हे नन्हे पारदर्शी दानों जैसे होते है और मछली के अंड-समूह-से लगते है। उद्यान-कीट नम जगहों में और किसी चीज़ के नीचे सहारा लेकर अंडे देता है, जैसे किसी गड्ढे पर पड़े हुए तख़्ते के नीचे, गोभी की क्यारी में फटकर गिरे हुए गोभी के पत्तों के नीचे या ऐसे ही दूसरे स्थानों में।

उद्यान-कीट विरोधी उपाय

उद्यान-कीट शीतकालीन युवा फ़सलों को और साग-सब्जियों को भारी नुक़सान प'चा सकते हैं। गरम और नम शरदवाले वर्षों में ये विशेष नुक़सानदेह सिद्ध होते हैं।

उद्यान-कीटों के आश्रय-स्थानों पर सुपरफ़ास्फ़ेट के बारीक पाउडर का छिड़काव करके उन्हें नष्ट किया जा सकता है। यह पाउडर उद्यान-कीट की त्वचा पर गिरकर उसे विषाक्त कर देता है और साथ साथ ज़मीन को उपजाऊ बनाता है।

पल्वराइज़र (आकृति ३२) से सुपरफ़ास्फ़ेट तथा अन्य विषैले पाउडर छिड़के जाते हैं।

यदि पल्वराइज़र उपलब्ध न हो तो विषैला पाउडर एक जालीदार थैली में डाल दो, थैली एक लंबी लाठी के सिरे में बांध दो और उसे उद्यान-कीट-ग्रस्त पौधों पर झटकते जाओ।

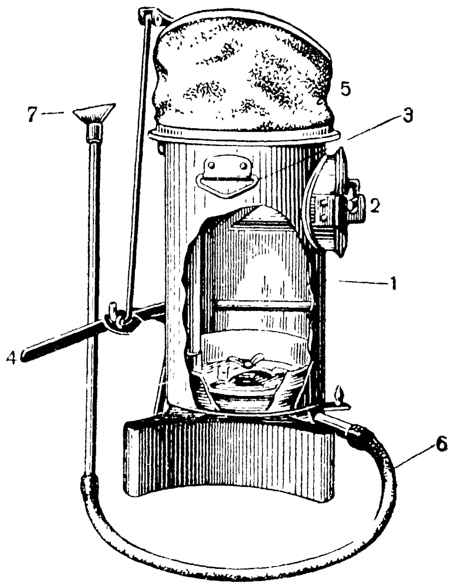

आकृति ३२ – पल्वराइजर (अगली दीवाल का हिस्सा हटाया गया है)
१ (1). टंकी ; २ (2). ज़हरीला पाउडर भरने के लिए सूराख ; ३ (3). कंधों के पट्टों के लिए ब्रैकेट ; ४ (4). पल्वराइज़र की धौंकनी को चलानेवाली लीवर ; ६ (6). रबड़ की नली ; ७ (7). फ़व्वारेदार नोकवाली धातु की नली।

मोलस्क समूह शिपला, अंगूरी घोंघा, उद्यान-कीट तथा उपर्युक्त समुद्री मोलस्क, मोलस्क समूह के कीट हैं। इन प्राणियों की एक दूसरे से तुलना करने पर हम देख सकते हैं कि इनमें से हर प्राणी के मुलायम शरीर और एक पूरा या अधूरा कवच होता है। आंचल और पाद मोलस्क की विशेष इंद्रियां हैं।

मोलस्क ज़मीन पर रहते हैं और पानी में भी। विशेषकर समुद्र में इनकी बहुतायत होती है।

कृमियों की अपेक्षा मोलस्कों की संरचना कहीं अधिक जटिल होती है और धरती पर इनका जन्म कृमियों के बाद हुआ है।

प्रश्न – १. मोती क्या होते हैं और वे कैसे प्राप्त किये जाते हैं? २. पोत-कृमि क्या नुक़सान पहुंचाता है? ३. उद्यान-कीट और अंगूरी घोंघे में क्या अंतर है? ४. उद्यान-कीटों के ख़िलाफ़ क्या कार्रवाइयां की जाती हैं? ५. मोलस्क समूह के प्राणियों की क्या विशेषताएं हैं?

व्यावहारिक अभ्यास – १. शरद ऋतु में अपने स्कूली या घरेलू बगीचे में या जंगल की खुमियों पर उद्यान-कीट ढूंढ लो। एक छड़ी से उद्यान-कीट का स्पर्श करो और उसकी सुरक्षात्मक प्रतिवर्ती क्रिया का निरीक्षण करो। उद्यान-कीट को चलते और भोजन करते समय देखो। उसे देखकर उसका चित्र बनाओ। २. ज़मीन पर पड़े तख़्तों या गोभी के पत्तों के नीचे उद्यान-कीट के अंडे ढूंढ निकालो और उनकी जांच करो। ३. यदि स्कूली बगीचे में उद्यान-कीट नज़र आयें तो उनके आश्रय-स्थानों पर सुपरफ़ास्फ़ेट, आयरन सल्फ़ेट, राख या अनबुझे चूने का पाउडर छिड़क दो। अपने अध्यापक के नेतृत्व में यह काम करो।

अध्याय ५

आरथ्रोपोडा

§ १८. नदी की क्रे-मछली के बाह्य लक्षण और जीवन-प्रणाली

बाह्य लक्षण क्रे-मछली (रंगीन चित्र ५) नदियों, झीलों और बहते पानीवाली ताल-तलैयों का एक ग्राम निवासी है। इसके शरीर के दो हिस्से होते है – शिरोवक्ष और उदर।

शिरोवक्ष वृत्तखण्डों में विभाजित नहीं होता। उसपर वृत्तखण्डों सहित शृंगिकाओ (लघु और दीर्घ) के दो जोड़े, आंखें, मुखांग और वृत्तखण्डों सहित पैरों के पांच जोड़े (आकृति ३३) होते हैं। पैरों का पहला जोड़ा विशेष बड़ा होता है और उसके सिरों में पंजे होते हैं।

शिरोवक्ष के विपरीत क्रे-मछली का उदर वृत्तखण्डों में विभाजित होता है। वह लचीले ढंग से शिरोवक्ष से जुड़ा रहता है और उसके नीचे मुड़ सकता है। उदर के हर वृत्तखण्ड पर छोटे पैरों का एक एक जोड़ा होता है। ये उदर-पैर दो दो शाखाओं वाले छोटे-से तनों से लगते हैं। उदर के अन्त में पुच्छ मीन-पक्ष होता है जो सख्त, चौड़ी प्लेटों का बना रहता है। आखिरी वृत्तखण्ड पर गुदा होती है।

आवरण क्रे-मछली का शरीर एक सख्त बहि:कंकाल से ढंका रहता है। यह कंकाल काइटिन नामक एक विशेष कार्बनीय पदार्थ का बना रहता है। काइटिन चूना-लवणों से भरपूर रहता है जिससे बहि:कंकाल बहुत ही सख्त बन जाता है। यह जैसे ज़िरहबख्तर होता है जो चोटों से उक्त प्राणी के शरीर की रक्षा करता है। बहि:कंकाल में अंदर की ओर से वे पेशियां जुड़ी रहती हैं जो पैरों, शृंगिका और अन्य अंगों में गति उत्पन्न करती हैं। अत: बहि:कंकाल केवल आवरण का ही नही बल्कि बाह्य कंकाल का भी काम देता है। उदर के वृत्तखण्डों, पैरों और शृंगिका के बीच का काइटिन पतला और लचीला होता है जिससे ये अंग गतिशील हो सकते हैं।

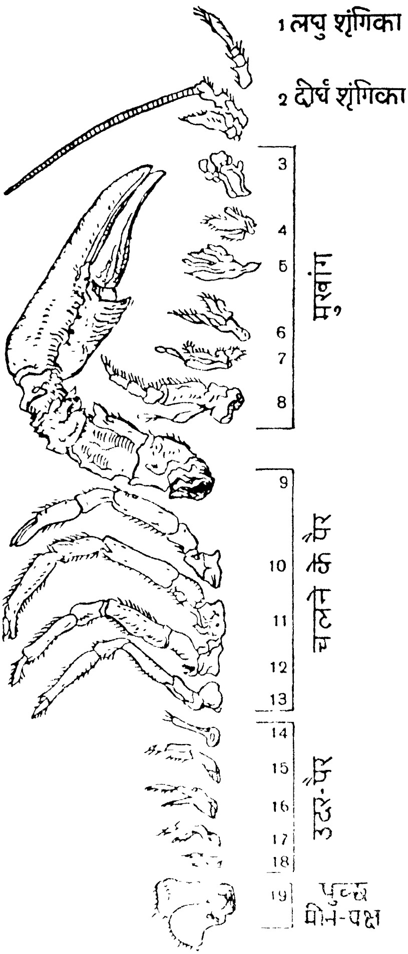

आकृति ३३ – क्रे-मछली के वृत्तखण्डीय हिस्से

१ (1). लघु शृंगिका; २ (2). दीर्घ शृंगिका ; ३, ४, ५, ६, ७, ८, (3, 4, 5, 6, 7, 8). मुखांग ; ९, १०, ११, १२, १३, (9, 10, 11, 12, 13). चलने के पैर; १४, १५, १६, १७, १८ (14, 15, 16, 17, 18). उदर-पैर ; १९ (19). पुच्छ मीन-पक्ष।

काइटिन का आवरण बहुत ही ठोस होता है और फैलता नही। इस कारण क्रे-मछली जैसे प्राणियों की वृद्धि नियमित निर्मोचन (moulting) से सम्बद्ध रहती है। जब पुराना आवरण बहुत ही तंग होने लगता है तो वह छोड़ दिया जाता है और उसके स्थान में नया विस्तृत आवरण परिवर्द्धित होता है।

क्रे-मछली का रंग बहुत परिवर्तनशील होता है पर आम तौर पर वह उस ज़मीन के रंग से मिलता-जुलता होता है जहां वह रहती है। यह रंग काइटिन में मिले हुए रंग-पदार्थों पर निर्भर करता है। यह लाल, नीला, हरा और भूरा हो सकता है। क्रे-मछली को उबालने पर लाल रंग-पदार्थ को छोड़कर बाकी सब नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण पकायी गयी क्रे-मछली हमेशा लाल रंग की होती है।

काइटिन के नीचे एक पतली-सी झिल्ली होती है जो पेशियों को ढंके रहती है। इसी झिल्ली से हर निर्मोचन के बाद आवश्यक नया काइटिन रसता है।

वातावरण से संपर्क नदी की क्रे-मछली अपनी सुपरिवर्द्धित ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से वातावरण से संपर्क रखती है। इस प्राणी की आंखों में कई पहलू (आकृति ३४) होते हैं जो केवल माइक्रोस्कोप से देखे जा सकते

हैं। यह प्राणी जिस वस्तु पर नज़र डालना चाहता है उसका एकेक छोटा अंश इनमें से हर पहलू देखता है। पासवाला पहलू उसी चीज़ का दूसरा अंश देखता है और यही प्रक्रिया जारी रहती है। इस प्रकार की आंखें संयुक्त आंखें कहलाती हैं। क्रे-मछली की आंखों में अंकित होनेवाला किसी वस्तु का चित्र कई छोटे छोटे अंशों से बना रहता है।

ये आंखें चल डंठलों पर स्थित होती हैं। सीने से ठोस तरीक़े से जुड़े हुए सिर की अचलता के कारण देखने में आनेवाली अड़चन इस प्रकार अंशतः दूर होती है – यह प्राणी स्वयं बिना घूमे अपनी आखें घुमा सकता है और अगल-बग़ल देख सकता है।

क्रे-मछली की दीर्घ शृंगिका स्पर्शेन्द्रिय का काम देती है जबकि लघु शृंगिका घ्राणेन्द्रिय का।

गति और पोषण

क्रे-मछली अपने पैरों के सहारे नदी के तल में रेंग सकती है और तैर भी सकती है। उसके उदर में पेशियों की एक मोटी परत होती है। यदि इस प्राणी को कुछ परेशानी होती है तो वह बड़े ज़ोर से अपना पेट मोड़ लेता है और पीछे की ओर तैरने लगता है। क्रे-मछली अपने पिछले सिरे को एकदम आगे की ओर करती हुई तेज झटकों के साथ तैरती है।

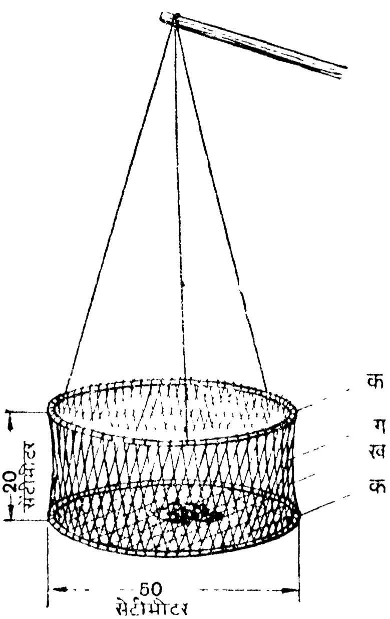

आकृति ३५ – क्रे-मछली पकड़ने का फंदा
क – तार के छल्ले; ख – चारा; ग – जाल की थैली।

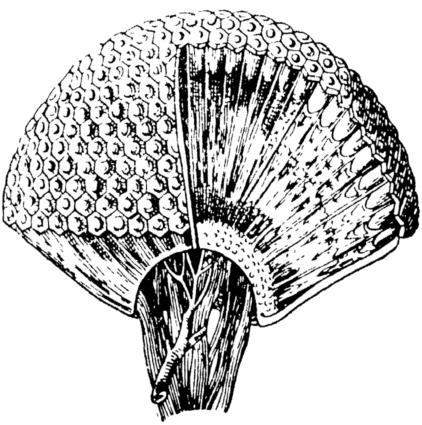

आकृति ३४ – आरथ्रोपोडा की संयुक्त आंख (दाहिनी ओर काटी हुई), नीचे – नेत्र-तंत्रिका।

क्रे-मछली नन्हीं नन्हीं मछलियों, मेंढ़कों, कृमियों और तरह तरह के मुर्दा मांस को खाकर जीती है। अपने पैरों के पहले जोड़े के पंजों से वह अपना शिकार पकड़ लेती है और फाड़ डालती है। इस प्रकार तोड़े गये भोजन के टुकड़े मुखांग द्वारा पकड़े और चबाये जाते हैं। मुखाग सख्त सूक्ष्मास्थियों के छः जोड़ों का बना रहता है।

चूंकि क्रे-मछली गंध के सहारे अपना भोजन ढूंढ लेती है इसलिए उसे तेज़ गंधवाले चारे (मांस-मछली के फेंके गये अवशेष) की सहायता से पकड़ा जाता है। जाल के फंदों में ऐसा चारा लगाकर एक धागे के सहारे उसे नदी के तल में उतारा जाता है। (आकृति ३५)।

प्रश्न – १. नदी की क्रे-मछली में हमें कौनसे बाह्य लक्षण दिखाई देते हैं? २. क्रे-मछली के आवरण की विशेषताएं क्या है? ३. क्रे-मछली किस प्रकार चलती है, खाती है और वातावरण से संपर्क रखती है?

व्यावहारिक अभ्यास – एक मुर्दा क्रे-मछली लेकर उसकी शृंगिकाएं, मुखांग और पैर हटा दो। इन्हें ठीक क्रम से एक दफ़्ती पर चिपका दो और उनके नाम लिख दो (आकृति ३३ के अनुसार)।

§ १९. क्रे-मछली की अंदरूनी इन्द्रियां

पचनेन्द्रियां

मुखाग द्वारा चबाया गया भोजन क्रे-मछली निगल लेती है। पहले वह छोटी और चौड़ी ग्रसिका मे पहुंचता है और फिर जठर में (रंगीन चित्र ५)।

जठर में दो हिस्से दिखाई देते हैं – जठरीय चक्की या पेषणी और चलनी। जठरीय चक्की में काइटिन के दांत लगे रहते हैं जिनसे चर्वण-प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। भली भांति पीसा गया भोजन चलनी के काइटिन उभारों से छनकर मध्य आंत में जाता है जिसमें यकृत् अपने तेज पाचक रस रसाता है। यहां भोजन पर रासायनिक क्रिया होती है और वह घुलनशील द्रव्यों में परिवर्तित होता है यानी पच जाता है।

पचा हुआ भोजन आंत की दीवालों में अवशोषित होकर रक्त मे चला जाता है। भोजन के अनपचे अवशेष पिछली आंत में चलकर गुदा से शरीर के बाहर फेंके जाते है।

श्वसन

जलचर प्राणी होने के कारण क्रे-मछली अपनी जल-श्वसनिकाओं यानी शरीर के नाजुक झालरदार उभारों से सांस लेती है। जल-श्वसनिकाएं शिरोवक्ष की बग़लों के दो बाहुकक्षों में स्थित और बहि:कंकाल से ढंकी होती हैं। शिरोवक्ष के नीचेवाले छेदों में से ताज़ा पानी इन कक्षों में प्रवेश करके जल-श्वसनिकाओं पर से बहता है। यदि हम क्रे-मछली को पानी से भरे शीशे के बरतन में रखकर उसके शिरोवक्ष के पास काजल की रोशनाई की एक बूंद छोड़ दें तो हम सहज ही देख सकेंगे कि वह पानी के साथ बाहुकक्ष में खींची जाती है। यह पानी पीछे से प्रवेश करके आगे से बाहर निकलता है। जल-श्वसनिकाओं की दीवालों के ज़रिये क्रे-मछली के रक्त को ऑक्सीजन मिलता है और कारबन डाइ-आक्साइड पानी में छोड़ दिया जाता है।

रक्त-परिवहन की इन्द्रियां

हृदय रक्त-परिवहन तंत्र की केन्द्रीय इन्द्रिय है। हृदय इस प्राणी की पीठ की ओर होता है और उसका आकार सफ़ेद-सी पचकोणीय थैली जैसा होता है। रंगहीन रक्त उसमें सीधे शरीर-गुहा से विशेष खुले हिस्सों के ज़रिये प्रवेश करता है। जब हृदय संकुचित होता है उस समय रक्त उससे बाहर निकलकर रक्त-वाहिनियों में चला जाता है और फिर शरीर-गुहा में बहता है। ऐसे रक्त-परिवहन तन्त्र को खुला तन्त्र कहते है क्योंकि उसमें रक्त केवल रक्त-वाहिनियों से होकर ही नही बहता।

अंदरूनी इन्द्रियों पर से बहते हुए, रक्त आंत से पचा हुआ भोजन और जल-श्वसनिकाओं से ऑक्सीजन प्राप्त करता है। रक्त यह सब लेकर विभिन्न इन्द्रियों और ऊतकों को पहुंचाता है। वह इन्द्रियों में तैयार होनेवाले कारबन डाइ-आक्साइड को जल-श्वसनिकाओं में और तरल मल को उत्सर्जन ग्रन्थियों में ले जाने का भी काम करता है।

उत्सर्जन इन्द्रियां

शिरोवक्ष के अगले हिस्से में शरीर के बाहर की ओर खुलनेवाली दो गोल थैलियां होती है। ये है हरी ग्रन्थियां जो क्रे-मछली की उत्सर्जन इन्द्रियां है। रक्त द्वारा तरल मल इन ग्रन्थियों तक लाया जाता है और उनकी दीवालों से वह छनता है। वहां एकत्रित मल ग्रन्थियों के संकुचित होते ही शरीर से बाहर फेंका जाता है।

उपापचय अन्य सभी प्राणियों की तरह नदी की क्रे-मछली भी अपने शरीर की वृद्धि के लिए वातावरण से भोज्य पदार्थ प्राप्त करती है। उसी स्रोत से उसे ऑक्सीजन भी मिलता है जिसकी पूर्ति श्वसनेंद्रियों से बराबर होती रहती है।

इस प्राणी के ऊतकों मे कारबन डाइ-आक्साइड तथा अन्य हानिकारक पदार्थ तैयार होते हैं और श्वसन तथा उत्सर्जन इन्द्रियों के जरिये बराबर बाहर फेंके जाते हैं।

इस प्रकार शरीर और वातावरण के बीच पदार्थों का सतत आदान-प्रदान जारी रहता है जिसे उपापचय कहते हैं। कुछ पदार्थ शरीर में प्रवेश करते हैं तो कुछ उससे बाहर निकलते है।

उपापचय तभी सम्भव है जब सम्बन्धित प्राणी अनुकूल स्थितियों में रहता हो। यदि जीवन के लिए आवश्यक बातों में से किसी एक (उदाहरणार्थ ऑक्सीजन या भोजन) का भी अभाव हो तो उपापचय रुक जाता है और प्राणी मर जाता हैं। हर प्राणी वातावरण से मिल-जुलकर ही जीवित रह सकता है। प्राणी और उसके आसपास के वातावरण का मिलाप प्रकृति का एक महत्त्वपूर्ण नियम है।

तन्त्रिका-तन्त्र क्रे-मछली के तन्त्रिका-तन्त्र में केंचुए की तरह ही एक बड़ी अधिग्रसनीय तंत्रिका-गुच्छिका होती है जो तन्त्रिकाओं के सहारे आंखों, शृंगिकाओं तथा मुखांगों से सम्बद्ध रहती है। इसके अलावा परिग्रसनीय तन्त्रिका-वृत्त और उपग्रसनीय तंत्रिका-गुच्छिका भी होती है। शिरोवक्षस्थ बड़ी युग्म रूप तन्त्रिका-गुच्छिकाओं और उदरस्थ छोटी गुच्छिकाओं को लेकर औदरिक तन्त्रिका-रज्जु बनती है। इन्हीं गुच्छिकाओं से निकलकर तन्त्रिकाए शरीर के विभिन्न अगों मे पहुंचती है।

जब कोई इन्द्रिय उद्दीपित होती है तो उसमें स्थित तन्त्रिकाओं के सिरे उत्तेजित हो उठते है। यह उत्तेजन फ़ौरन तन्त्रिकाओं के जरिये तन्त्रिका-गुच्छिकाओं तक पहुंच जाता है। यहां वह उन तन्त्रिकाओं में स्थानान्तरित होता है जो उसे पेशियों में ले जाती है। पेशियां उत्तेजित होकर संकुचित हो जाती हैं जिससे सम्बन्धित इन्द्रिय में गति उत्पन्न होती है। इस प्रकार तन्त्रिका-तन्त्र शरीर और वातावरण के बीच के संचार-साधन का काम देता है।

क्रे-मछली का व्यवहार प्रतिवर्ती क्रियाओं से बना रहता है और हमने अब

तक जिन प्राणियों का अध्ययन किया उनके व्यवहार से अधिक जटिल होता है। क्रे-मछली अनेक प्रकार से चल सकती है (अपने पैरों के सहारे वह नदी के तल में रेंग सकती है या उदर को मोड़कर और फिर सीधा करके तैर भी सकती है)। वह अपना शिकार खोजती है और पत्थरों के नीचे या बिलों में छिपकर शत्रुओं से अपना बचाव कर सकती है।

जनन

नदी की क्रे-मछली डायोशियस होती है। नर का वृषण एक सफ़ेद ग्रन्थिरूप होता है जिसमें शुक्राणु परिपक्व होते हैं। ये शुक्राणु शुक्रीय वाहिनी नामक लंबी, मुड़ी हुई सफ़ेद नलियों से बाहर छोड़े जाते है। मादा का अण्डाशय बहुत अधिक अण्डे पैदा करता है। इन्हें अक्सर अण्ड-समूह कहते हैं। परिपक्व होने के बाद वे अण्ड-वाहिनियों अर्थात् एक प्रकार की छोटी नलियों में चलकर उनके ज़रिये शरीर से बाहर निकलते हैं।

संसेचित अण्डे बहुत ही चिपचिपे होते हैं और मादा के उदर-पैरों से चिपके रहते हैं। अण्डो से निकली हुई नन्ही क्रे-मछलियां भी इन्ही पैरों को पकड़े रहती हैं (आकृति ३६)।

आरथ्रोपोडा समूह

क्रे-मछली के समान प्राणियों को आरथ्रोपोडा समूह में गिना जाता है। अन्य प्राणियों से ये दो महत्त्वपूर्ण विशेषताओं के कारण भिन्न हैं। ये विशेषताएं इस प्रकार है – काइटिन का आवरण जो बाह्य कंकाल का काम देता है और वृत्तखण्ड सहित अवयव। आरथ्रोपोडा का तन्त्रिका-तन्त्र उदर की ओर और हृदय पीठ की ओर होता है।

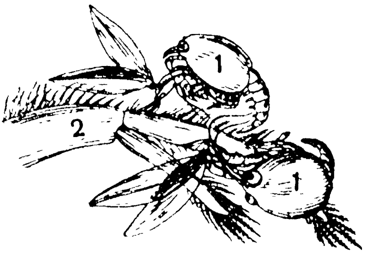

आकृति ३६ – नन्ही क्रे-मछली १(1). – मादा के पैर पर – २(2)।

सभी समूहों को वर्गों में विभाजित किया जाता है। आरथ्रोपोडा समूह में हम क्रस्टेशिया, अरैकनिडा और कीट इन वर्गों का परिचय प्राप्त करेंगे।

प्रश्न – १. उपापचय क्या होता है? २. उपापचय में पचन, श्वसन, रक्त-परिवहन और उत्सर्जन इन्द्रियों का क्या स्थान है? ३. क्रे-मछली के

तन्त्रिका-तन्त्र का वर्णन करो । ४. शरीर में तन्त्रिका-तन्त्र का कार्य क्या है? ५. क्रे-मछली का जनन कैसे होता है? ६. आरथ्रोपोडा समूह के प्रतिनिधि के नाते क्रे-मछली की क्या विशेषताएं हैं?

व्यावहारिक अभ्यास – १. गरमियों के मौसम में क्रे-मछली पकड़कर पानी सहित शीशे के बर्तन में उसे छोड़ दो। तिनके के ड्रापर से उसके शिरोवक्ष के पास काजल की रोशनाई की बूंद गिराओ और देखो क्या होता है। क्रे-मछली का एक चित्र बनाओ। २. क्रे-मछली की प्रतिवर्ती क्रियाओं का निरीक्षण करो।

§ २०. क्रस्टेशिया

केकड़े

समुद्र में विभिन्न क्रे-मछलियों के अलावा केकड़े (आकृति ३७) भी रहते हैं। केकड़े क्रे-मछली की तरह दिखाई देते हैं पर इनमें अन्तर यह है कि केकड़े का उदर अपरिवर्द्धित होता है और चौड़े शिरोवक्ष के नीचे मुड़ा रहता है।

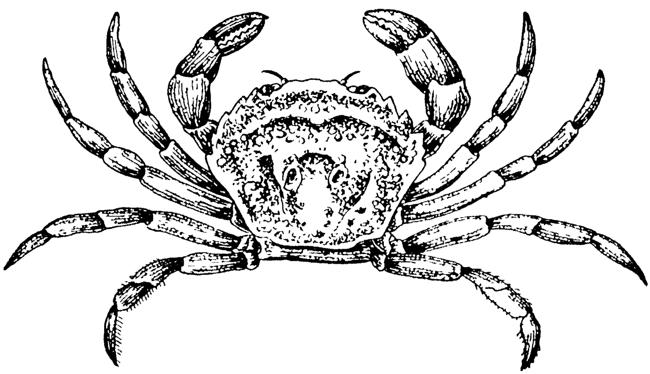

आकृति ३७ – केकड़ा।

केकड़े अपने सुपरिवर्द्धित वक्ष-पादों के सहारे चलते हैं। पैरों के पहले जोड़े के सिरों पर स्थित मज़बूत पंजों को उठाते हुए वे पानी के तल में जल्दी जल्दी दौड़ते हैं।

गति के इस ढंग के कारण केकड़े के मज़बूती से परिवर्द्धित चौड़ा शिरोवक्ष होता है जिसमें जोड़युक्त पैरों के पांच जोड़े लगे रहते हैं। साथ साथ उदर का तैरने के काम में उपयोग न किया जाने के कारण वह अपरिवर्द्धित रहता है।

बहुत-से केकड़े खाने योग्य होते हैं और बहुत बड़ी मात्रा में उनका शिकार किया जाता है। केकड़े का अत्यन्त पोषक मांस डिब्बों में बन्द करके बेचा जाता है।

डैफ़निया

डैफ़निया (आकृति ३८) एक छोटा-सा ताज़े पानी का क्रस्टेशियन है। नदी की क्रे-मछली के विपरीत इसका हल्का अर्धपारदर्शी शरीर पानी में टंगा हुआ सा रहता है।

डैफ़निया के पैर जलतल में रेंगने के काम में नहीं आते और इसी लिए वे अपरिवर्द्धित रहते हैं। गति की इन्द्रियों का काम दो जोड़ा शृंगिकाएं करती हैं। अपनी शृंगिकाओं को लहराते हुए यह प्राणी पानी में उछलता-कूदता है और इधर-उधर चलता है। इसी कारण शृंगिकाएं सुपरिवर्द्धित और शाखाधारी होती हैं। उछल-कूदवाली गति के कारण डैफ़निया को जलपिस्सू भी कहते हैं।

डैफ़निया सूक्ष्म कार्बनीय कण और पानी में स्थित सूक्ष्म जीव खाकर जीता है। पर डैफ़निया भी बड़ी भारी मात्राओं में मछलियों के बच्चों द्वारा चट किये जाते हैं। सोवियत वैज्ञानिकों ने तालाबों में संवर्द्धित मछलियों को खिलाने के लिए डैफ़निया के संवर्द्धन के तरीके विकसित किये हैं। कार्प-मछली के बच्चों के संवर्द्धन के लिए उपयुक्त तालाब के पहले हिस्से में एक गड्ढा बनाया जाता है। इस गड्ढे में ताज़ी खाद और रद्दी घास रखी जाती है। इसके बाद वह गड्ढा कुछ डैफनियों सहित पानी से भर दिया जाता है। +१८ से +२० सेंटीग्रेड तक के तापमान में इस गड्ढे में पैरामीशियम तथा अन्य इनफ़ुसोरिया बड़ी शीघ्रता से पैदा होते हैं। भोजन के रूप में इनका उपयोग करके डैफ़निया शीघ्रता से बड़े होते है और उनकी संख्या भी बढ़ती जाती है।

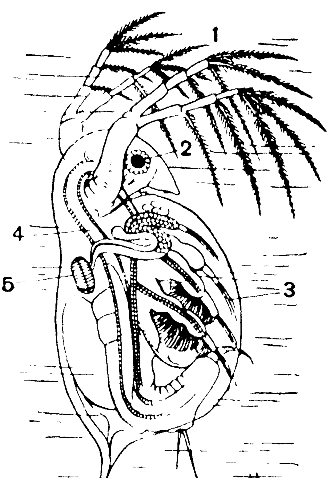

आकृति ३८ – डैफ़निया
१ (1). शृंगिकाएं; २ (2). आंख; ३ (3). अपरिवर्द्धित पैर; ४ (4). आंत; ५ (5). हृदय।

मछलियां केवल डैफ़निया ही नहीं बल्कि एक आंखवाले साइक्लाप नामक क्रस्टेशियन भी खाती हैं। साइक्लाप डैफ़निया से भी छोटे होते हैं।

क्रस्टेशिया वर्ग

नदी की क्रे-मछली, केकड़े, डैफ़निया और साइक्लाप जैसे आरथ्रोपोडा क्रस्टेशिया वर्ग में गिने जाते हैं। इस वर्ग के प्राणी कई विशेषताओं के कारण आरथ्रोपोडा के दूसरे वर्गों से भिन्न पाये जाते हैं। अकेले क्रस्टेशिया के ही शृंगिकाओं के दो जोड़े होते हैं और वे जल-श्वसनिकाओं से सांस लेते हैं।

प्रश्न – १. केकड़े और क्रे-मछली में क्या अंतर है? २. कौनसे संरचनात्मक लक्षणों के कारण डैफ़निया को क्रे-मछली से भिन्न माना जाता है? ३. राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में छोटे क्रस्टेशिया का उपयोग किस प्रकार किया जाता है? ४. कौनसी विशेषताओं के कारण प्राणियों को क्रस्टेशिया वर्ग में रखा जाता है?

व्यावहारिक अभ्यास – गरमियों के मौसम में किसी धुपहले दिन में किसी तालाब से कुछ डैफ़निया और साइक्लाप पकड़कर लाओ। उन्हें पानी से भरे शीशे के बरतन में छोड़ दो और उनकी गति का निरीक्षण करो। खुर्दबीन या माइक्रोस्कोप के सहारे इन प्राणियों की जांच करो।

§ २१. क्रॉसधारी मकड़ी

बाह्य लक्षण

क्रॉसधारी मकड़ी (आकृति ३६) कई विशेषताओं के कारण क्रे-मछली से भिन्न है। इसका शरीर दो हिस्सों में बंटा रहता है – शिरोवक्ष और उदर। पर इसका उदर वृत्तखण्डसहित नहीं होता। मकड़ी के चार जोड़े पैर होते हैं। इसके न शृंगिका होती है और न संयुक्त आंखें ही। अन्य मकड़ियों की तुलना में क्रॉसधारी मकड़ी की विशेपता यह है कि उसकी पीठ पर क्रॉस जैसा एक चिह्न होता है। इससे यह क्रॉसधारी मकड़ी कहलाती है।

क्रॉसधारी मकड़ी एक शिकारभक्षी प्राणी है। वह मुख्यतया अपने जाले में फंसाये हुए कीटों को खाकर जीता है।

मकड़ी मुख्यतया दृष्टि और स्पर्श की सहायता से वातावरण से संपर्क रखती है। उसके शिरोवक्ष के अगले किनारे पर साधारण आंखों के चार जोड़े होते हैं। मकड़ी का मुख्य भोजन ज़िन्दा प्राणी होने के कारण वह केवल चलते-फिरते प्राणियों को ही ठीक से देख सकती है।

मकड़ी के पैरों में नखर होते हैं और इनकी कई संरचनाएं होती हैं। इनमें से कुछ कंघी की तरह दांतेदार होते हैं और जाले के तन्तुओं को जोड़ने का काम करते हैं। दूसरे चिकने होते हैं और इनके सहारे मकड़ी अपने जाले पर शीघ्रता से दौड़ सकती है।

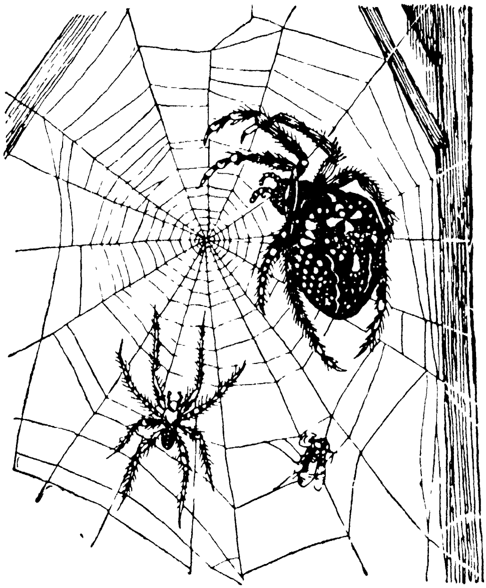

आकृति ३९ – क्रॉसधारी मकड़ी और उसका जाला (ऊपर – मादा, नीचे – नर)।

जाला

मकड़ी अपना शिकार महीन तन्तुओं से बने जाले में पकड़ती है। यह तंतु बिनाई ग्रन्थियों से निकलनेवाले द्रव से बनता है। यह द्रव अनगिनत बारीक वाहिनियों के ज़रिये उदर के पिछले सिरे में स्थित जाल-कर्तनांग की नोकों से बाहर निकलता है। हवा के संपर्क में आते ही वह फ़ौरन सख्त होकर सैकड़ों बारीक तंतुओं में परिवर्तित हो जाता है। पिछले पैरों के कंघी जैसे नखरों के सहारे मकड़ी इन्हें जाले के मोटे तंतु में बदल डालती है। यह तंतु चिपचिपा नहीं होता। ठोस चीज़ों में उसे चिपकाकर मकड़ी एक बहुकोणीय चौखट-सी बना लेती है और एक लम्बे आड़े तन्तु के सहारे उसके आमने-सामने के

हिस्से जोड़ देती है। उस तन्तु के बीचोंबीचवाले बिन्दु से मकड़ी छोटी छोटी त्रिज्याएं डालती है जो केन्द्रीय बिन्दु और बहुकोणीय जाले के बाजुओं को जोड़ देती हैं। इस अवस्था में जाला बहुकोणीय हाल और आरों वाले पहिये-सा लगता है (आकृति ३६)।

इसके बाद मकड़ी चिपचिपा जाला रसने लगती है। वह त्रिज्याओं पर कुंडलाकार गति में चढ़ती जाती है और इस तरह जाले का फंदा बना लेती है।

जाला बनकर तैयार होने के बाद मकड़ी जाले से लेकर किसी आश्रय-स्थान तक एक चेतावनी तन्तु डाल देती है।

यदि मक्खी या दुसरा कोई कीट जाले में चिपककर मुक्त होने के लिए पैर झटकने लगता है तो फ़ौरन चेतावनी तन्तु कांप उठता है। जैसे ही मकड़ी को जाले के हिलने का बोध होता है वह फ़ौरन घात लगाने के स्थान से उचककर फंसे हुए कीड़े की ओर दौड़ पड़ती है। मक्खी को काटकर मकड़ी उस घाव में एक शीघ्र-प्रभावी विष टपका देती है और साथ साथ पाचक रस भी। इसके बाद वह मक्खी को जाले में फंसा-लिपटाकर वहीं छोड़ देती है।

पाचक रस के प्रभाव से सम्बन्धित कीड़े के अंदरूनी अंग उसके काइटिन युक्त आवरण के अंदर शीघ्रता से पच जाते हैं। कुछ देर बाद मकड़ी अपने शिकार के पास लौट आती हैं और पचे हुए अंश को चूस लेती है। जाले में रहता है बस उस कीड़े का खाली काइटिन युक्त आवरण।

सहज प्रवृत्तियां मकड़ी द्वारा जाले का निर्माण, संबद्ध अचेत क्रियाओं का एक सिलसिला होता है। ये क्रियाएं प्रतिवर्त्ती क्रियाएं कहलाती हैं। संबद्ध प्रतिवर्ती क्रियाओं को सहज प्रवृत्ति कहते हैं।

प्राणियों की सहज प्रवृत्तियां आनुवंशिक होती है। अण्डों से छोटी मकड़ियों के पैदा होते समय यह आसानी से देखा जा सकता है। यह क्रिया माता की अनुपस्थिति में होती है। मकड़ी के बच्चों को 'कातने' का काम कोई सिखाता नहीं और फिर भी वे फ़ौरन अपना जाला बुनने लगते हैं।

प्रश्न – १. क्रॉसधारी मकड़ी की संरचना और जीवन की मुख्य विशेषताएं क्या हैं? २. मकड़ी अपना जाला कैसे बुनती है? ३. सहज प्रवृत्ति क्या होती है?

व्यावहारिक अभ्यास – शरद ऋतु में उद्यान या बगीचे में मकड़ी का कोआ ढूंढ लो और उसे एक टेस्ट-ट्यूब में डाल दो। नली का मुंह रूई से बंद कर दो। देखो अंडों से किस प्रकार बच्चे निकलते हैं।

§ २२. तैगा चिचड़ी – एनसेफ़ालिटिस के वाहक

तैगा एनसेफ़ालिटिस

तैगा एनसेफ़ालिटिस मनुष्य के मस्तिष्क पर कुप्रभाव डालनेवाला एक भयानक रोग है। यह अधिकतर तैगा के बस्तियों से खाली प्रदेशों में फैला हुआ है। निद्रालुता, शिथिलता, दुर्बलता इस रोग के प्रारंभिक लक्षण हैं और अन्त में इस रोग के कारण पक्षाघात या मृत्यु भी हो सकती है।

काफ़ी अरसे तक इस खतरनाक रोग के कारण अज्ञात रहे थे। पर इस बात को बराबर सहते रहना संभव न था। चालू शताब्दी के चौथे दशक में सोवियत सरकार ने एनसेफ़ालिटिस के अध्ययनार्थ अभियान-दल संगठित कराने के लिए ज़रूरी रक़म मंजूर की।

एनसेफ़ालिटिस के कारण ढूंढ निकालने का बहुत-सा श्रेय विख्यात सोवियत वैज्ञानिक अकादमीशियन ये० न० पावलोव्स्की को है। युवावस्था से ही उन्हें प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करके उन्हें मानव सेवा में लगा देने की लगन थी। उनके जीवन के बहुत-से वर्ष तरह तरह के ज़हरीले प्राणियों, परजीवियों और विभिन्न संक्रामक रोगों के वाहकों के अध्ययन में लगे।

एनसेफ़ालिटिस के वाहक की खोज

ये० न० पावलोव्स्की ने सोवियत सुदूर पूर्व में एक अभियान-दल आयोजित किया और यह सिद्ध कर दिया कि एनसेफ़ालिटिस की महामारियों का प्रादुर्भाव वसन्त के आरंभ में होता है। इस समय वहां वे रक्त शोषक कीट नही होते जो अनुमानतः उक्त रोग प्रसारकों के वाहक माने जाते थे।

दूसरी ओर यह देखा गया कि वसन्त के बिल्कुल शुरू शुरू के दिनों में, बर्फ़ के पिघलने से पहले, मकड़ी की जाति की तैगा चिचड़ी अपने शीतकालीन आश्रय-स्थानों से रेंगकर बाहर आती है। जैसे ही सूरज वस्तुतः वासन्तिक प्रकाश से जगमगाने लगता है वैसे ही ये चिचड़ियां पगडंडियों के किनारों की पिछले वर्ष की

घास की नोक पर चढ़कर वहां अपने अगले पैर ऊपर उठाये बैठी रहती हैं (आकृति ४०)। यहां से वे गुज़रनेवाले प्राणियों और मनुष्यों पर हमला करती है। मनुष्य पर हमला करके वे उसके कपड़ों के अंदर घुस जाती हैं और शरीर को काटने लगती हैं।

अभियान-दल के सदस्यों का अनुमान हुआ कि ये चिचड़ियां एनसेफ़ालिटिस की वाहिकाएं हैं। उन्होंने तैगा से लायी गयी भूखी चिचड़ियां चूहों पर डाल दीं। इन प्रयोगों का परिणाम पक्षाघात हुआ जो एनसेफ़ालिटिस का एक लक्षण है।

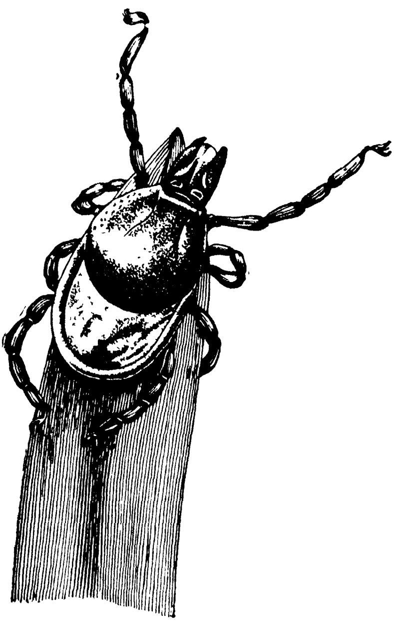

आकृति ४० – विगत वर्ष की घास की नोक पर बैठी हुई तैगा चिचड़ी (विशालीकृत)।

यह देखा गया कि चिचड़ियां अपनी लार के साथ एनसेफ़ालिटिस के प्रसारकों को संबंधित प्राणियों के घावों में डाल देती है। खुद चिचड़ियां इन्हें तैगा के पशु-पंछियों से प्राप्त करती हैं जिनका रक्त पीकर ही वे जीवित रहती है। लोगों में भी इसी प्रकार से रोग का संक्रमण होता है।

एनसेफ़ालिटिस विरोधी उपाय

जब एनसेफ़ालिटिस का कारण मालूम हो गया तो लोग चिचड़ियों से बचकर रहने लगे। तैगा में काम करनेवाले मज़दूर अपने कपड़ों पर तेज़ गंधवाले द्रवों का लेप लगाने लगे जिससे चिचड़ियां दूर रहने लगी। एनसेफ़ालिटिस की मात्रा काफी घट गयी।

इसके बाद एनसेफ़ालिटिस के वैक्सीन ईजाद हुए। चेचक की रोक-थाम करनेवाले टीकों की तरह ही इन वैक्सीनों ने उक्त रोग पर क़ाबू कर लिया।

उपरोक्त सभी उपायों के फलस्वरूप एनसेफ़ालिटिस के मामलों की और इस रोग से होनेवाली मृत्युओं की संख्या घट गयी।

§ २३. भारत के अरैकनिडा

भारत में भिन्न भिन्न प्रकार के कई अरैकनिडा रहते हैं। इनमें से कुछ का रंग तो बहुत ही चमकदार होता है। नेफ़ीला इसका एक उदाहरण है। यह एक बड़ी और चमकीली मकड़ी है। इसके जाले काफ़ी बड़े आकार के और बहुत ही मज़बूत होते हैं। वे अपेक्षतया काफ़ी बड़ा वज़न सह सकते हैं। उदाहरणार्थ, कार्क का एक टोप उनपर आसानी से रह सकता है। नेफ़ीला के जाले के तंतु रेशम से भी मज़बूत होते है। सुंदर कपड़ों के उत्पादन में उनका उपयोग किया गया है। इस मकड़ी को साधकर घरेलू प्राणी बनाने की कोशिशें की गयी थीं पर वे सब बेकार रही। ये शिकारभक्षी मकड़ियां इतनी भूखी थीं कि लोग उनके लिए काफ़ी भोजन का बंदोबस्त न कर पाये।

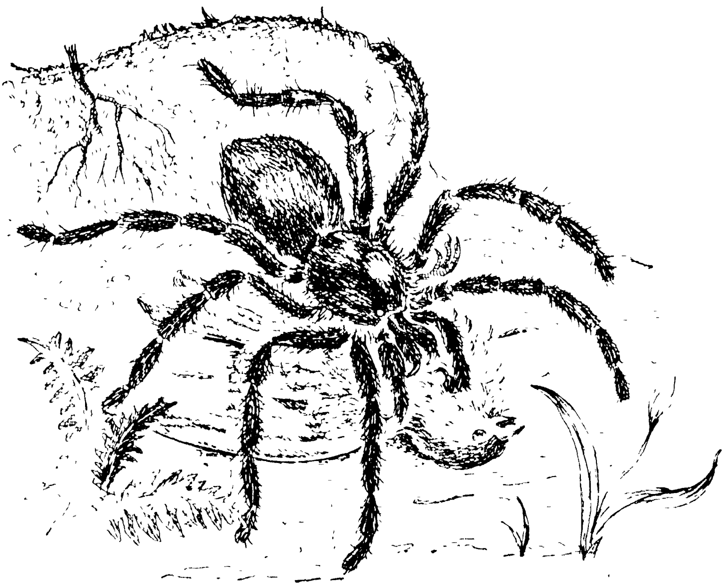

आकृति ४१ – पंछीभक्षी मकड़ी।

दूसरी मकड़ियां अपने बड़े आकार के लिए मशहूर है। उदाहरणार्थ, पंछीभक्षी मकड़ी (आकृति ४१) इतनी बड़ी होती है कि वह बड़े मे बड़े कीड़ों-मकोड़ों, मेंढ़को, छिपकलियों और छोटे पंछियों तक का बड़ी आसानी से

मुक़ाबिला करती है। इसका डंक आदमी के लिए दर्दनाक होता है।

भारत में पाये जानेवाले अरैकनिडा की कई ऐसी जातियां हैं जो ज़हरीली और आदमी के लिए ख़तरनाक होती हैं। बिच्छू (आकृति ४२) इनमें से एक है। भारत में इसकी लगभग ८० जातियां हैं।

बिच्छू का शरीर भी शिरोवक्ष और उदर इन दो हिस्सों से बना हुआ होता है। पर उदर उसका मकड़ी के जैसा नहीं होता। यह वृत्तखंडों सहित और दो भागों में बंटा हुआ होता है। यह भाग है– अगला चौड़ा उदर-भाग और पिछला संकरा उदर-भाग। उदर के अंत में तेज़ अंकुड़ीदार डंक होता है। डंक की बुनियाद फूली हुई होती है और उसमें होती है विष-ग्रंथि।

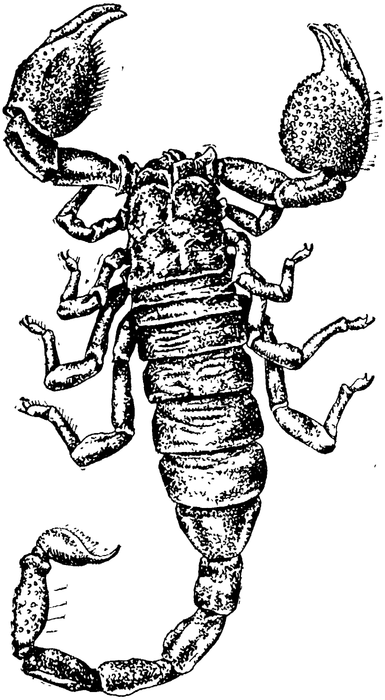

आकृति ४२ – बिच्छू।

बिच्छू रात में घूमने निकलते हैं। वे वृत्तखंडधारी चार जोड़े पैरों पर दौड़ते हैं। चलते समय उदर का अंतिम हिस्सा ख़ूब ऊपर उठाये और आगे को झुकाये होते हैं। वे अपने मुंह के पंजानुमा उपांगों से शिकार पकड़ लेते हैं और डंक की एक फटकार से उसे मार डालते हैं। यह करते समय वे अपने उदर को मोड़ लेते हैं और उसका पिछला सिरा आगे शिरोवक्ष के ऊपर ढकेलते हैं।

बिच्छू का डंक आदमी के लिए बहुत ही ख़तरनाक होता है। उसके विष से तीव्र वेदना होती है और कभी कभी मृत्यु भी।

अरैकनिडा वर्ग

मकड़ी, बिच्छू और चिचड़ी जैसे आरथ्रोपोडा अरैकनिडा वर्ग में पड़ते हैं। इस वर्ग के प्राणियों के वृत्तखंडधारी चार जोड़े पैर होते हैं। इनके शृंगिका और संयुक्त आंखें नहीं होतीं।

प्रश्न—१. लोग किस तरह एनसेफ़ालिटिस के शिकार हो जाते हैं? २. एनसेफ़ालिटिस विरोधी उपाय कौनसे हैं? ३. अरैकनिडा वर्ग किन बातों में क्रस्टेशिया वर्ग से भिन्न है? ४. नेफ़ीला मकड़ी की विशेषताएं क्या हैं? ५. पंछीभक्षी मकड़ी को यह नाम क्यों दिया गया? ६. मकड़ी से बिच्छू किस माने में भिन्न है? ७. बिच्छू अपने शिकार को किस प्रकार मार डालता है?

§ २४. काकचेफ़र के बाह्य लक्षण और जीवन-प्रणाली

बाह्य लक्षण

वसंत में मई महीने के आसपास प्रसिद्ध काकचेफ़र (रंगीन चित्र ६) दिखाई पड़ने लगते है। इनके बीटल पेड़ों की और विशेषकर बर्च की चोटियों पर दिन बिताते हैं और उनकी पत्तियां खाकर ही जीते है। झुटपुटे में ये बीटल हल्की-सी गुनगुनाहट के साथ एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक उड़ते रहते हैं। यह उनका उड़ना सुबह-सवेरे तक जारी रहता है। यदि हम किसी ऐसे पेड़ को झंझोड़ दें जिसपर शीत के कारण चेतनाशून्य बीटल बैठे हैं तो वे फ़ौरन लुढ़कते हुए नीचे गिरने लगते हैं।

क्रे-मछली या मकड़ी के विपरीत काकचेफ़र के शरीर में तीन हिस्से होते हैं— सिर, सीना और उदर। सीने में तीन वृत्तखंड होते हैं। इनमें से हर वृत्तखंड में वृत्तखंडधारी एक जोड़ा पैर होते हैं जबकि पिछले दो वृत्तखंडों में से हरेक में पैरों के अलावा एक जोड़ा पंख होते हैं। उदर भी वृत्तखंडधारी होता है। उदर के अंत में गुदा होती है। खुर्दबीन की मदद से हमें पहले पांच उदरीय वृत्तखंडों के किनारों पर छोटे छोटे सूराख़ दिखाई देंगे। ये हैं कुंडल-श्वसनिकाएं जिनके द्वारा श्वसनेंद्रियों में हवा प्रवेश करती है।

काकचेफ़र का आवरण काइटिनीय होता है। इससे न केवल जख़्मों से बल्कि वाष्पीकरण से भी शरीर का बचाव होता है। सीने, उदर और पैरों के बीच का काइटिनीय आवरण नरम और लचीला होता है जिससे उनकी गति सुनिश्चित होती है।

वातावरण से संपर्क

काकचेफ़र के सिर में ज्ञानेंद्रियां होती हैं। सिर की बग़लों में संयुक्त आंखें होती हैं। आंखें बहुत बड़ी नहीं होतीं। यह मुख्यतः निशाचर प्राणी है और इसी लिए काकचेफ़र अधिकतर आंखों के बजाय घ्राणेंद्रिय ही के सहारे वातावरण से संपर्क रखता है। इसके एक जोड़ा सुपरिवर्द्धित शृंगिकाएं होती हैं जो छोटे-से पंखे की तरह दिखाई देती हैं। इन शृंगिकाओं का उपयोग करके बीटल को काफ़ी दूर से भोजन का पता लगता है। कभी कभी वे एक किलोमीटर से भी अधिक दूरी पर से उड़कर किसी इक्के-दुक्के पेड़ पर आकर बैठते हैं।

बीटल की मुखेंद्रियों में वृत्तखंडधारी उपांग होते हैं जिनसे यह कीट अपना भोजन टटोलता है।

गति और पोषण

बीटल तीन जोड़े पैरों और दो जोड़े पंखों के सहारे चलता और उड़ता है। पैरों में कई वृत्तखंड होते हैं और उनके अंत में नखर होते हैं जिनके सहारे बीटल पेड़ की पत्तियों या टहनियों को पकड़कर बैठा रहता है।

बीटल के पंख सभी एक-से नही होते। अगला जोड़ा सख़्त होता है और इन्हें पंख-संपुट कहते है। इनके नीचे पंखों का दूसरा जोड़ा होता है – ये हैं पिछले पंख जो पतले और पारदर्शी होते हैं। उड़ने की तैयारी करते समय बीटल अपने पंख-संपुट ऊपर उठा लेता है, पंख खोल देता है और गुनगुन करता हुआ भोजन की खोज में चक्कर लगाने लगता है।

वयस्क काकचेफ़र मुख्यतया बर्च की पत्तियां खाता है। पत्ती पर बैठकर वह पहले उसका स्पर्श करता है और फिर उसे कुतरने लग जाता है।

काकचेफ़र के दो जोड़े जबड़े होते हैं – निचले जबड़े और ऊपरवाले जबड़े। ये मुंह के दोनों ओर स्थित होते हैं और शक्ल उनकी काइटिनीय प्लेटों जैसी होती है। ऊपरवाले जबड़े अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं। बीटल उन्हें फैला देता है और फिर समेट लेता है। इस प्रकार वह पत्ती का किनारा अपने मुह में लाकर उसके टुकड़े काटने लगता है। निचले जबड़े भोजन को मुह में खीच लेने में मदद देते हैं। जबड़ों पर लटकनेवाली एक काइटिनीय परत – ऊपरवाला ओंठ – और नीचेवाला ओंठ भी भोजन को निगलते समय पकड़े रहते हैं। चर्वण-क्रिया

मुंह में नहीं होती और भोजन पेट में अपेक्षाकृत बड़े-से टुकड़ों के रूप में ही प्रवेश करता है।

कीट वर्ग काकचेफ़र का समावेश कीट वर्ग में होता है। कीट का शरीर अन्य सभी आरथ्रोपोडा से भिन्न होता है। इसके तीन हिस्से होते हैं – सिर, सीना और उदर। कीटों के एक जोड़ा शृंगिकाएं और तीन जोड़े पैर होते हैं। अधिकांश कीटों के पंख होते हैं।

प्रश्न – १. काकचेफ़र की बाह्य संरचनात्मक विशेषताएं क्या हैं ? २. बीटल के काइटिनीय आवरण का क्या महत्त्व है ? ३. बीटल वातावरण से कैसे संपर्क रखता है ? ४. बीटल किस प्रकार चलता और खाता है ? ५. कीट के विशेष लक्षण क्या हैं ?

व्यावहारिक अभ्यास – १. बीटल के शरीर को काटकर उसके सिर, सीने और उदर को अलग कर दो। फिर पैरों और पंखों को अलग कर दो। यह सब एक दफ़्ती पर चिपकाकर हरेक हिस्से के पास उसका नाम लिख दो। २. काकचेफ़र को देखकर उसका चित्र बनाओ।

§ २५. काकचेफ़र की अंदरूनी इंद्रियां

पचनेंद्रियां काकचेफ़र का पाचक तंत्र एक नली जैसा होता है (आकृति ४३)। जबड़ों द्वारा तोड़े गये पत्तियों के टुकड़े मुंह के ज़रिये गले में पहुंचते हैं और फिर ग्रसिका के ज़रिये पेषणी में। पेषणी की अंदरूनी सतह पर काइटिनीय उभाड़ होते हैं। पेशियों द्वारा गतिशील होकर ये भोजन को पीस देते हैं और फिर भोजन छोटे छोटे अंशों में मध्य आंत में पहुंचता है। मध्य आंत मे पाचक रस रसता है और इसके प्रभाव से भोजन अर्द्धतरल बनकर अवशोषित होता है। भोजन के अनपचे अंश पिछली आंत में इकट्ठा होकर गुदा के द्वारा बाहर फेंके जाते हैं।

श्वसनेंद्रियां काकचेफ़र की कुंडल-श्वसनिकाएं पतली पतली नलियों या श्वास-नलियों के ज़रिये शरीर के अंदरूनी हिस्से से संबद्ध रहती हैं (आकृति ४४)। कीट के शरीर में इनकी बहुत-सी शाखाएं बन जाती हैं और पतले होते हुए इनके सिरे शरीर की सभी इंद्रियों में फैल जाते हैं। यहां

तक कि वे आंखों, शृंगिकाओं और पैरों तक में पहुंचते हैं। श्वास-नलियों की दीवालों में कुंडलाकार काइटिनीय तंतु होते हैं जो उन्हें धंस जाने से बचाते हैं। इससे कीट की हर इंद्रिय और हर ऊतक में हवा का पहुंचना सुनिश्चित होता है।

यदि हम बर्च की पत्ती पर आराम से बैठे हुए बीटल का निरीक्षण करें तो हमें उसके उदर का क्रमशः फूलना और धंसना दिखाई देगा। ये श्वसनक्रिया की गतियां हैं।

बीटल की कई श्वास-नलियों के अंत में पतली दीवालों वाली नन्हीं नन्ही हवाई थैलियां होती हैं जिनके अंदर लचीले कुंडलाकार तंतु नहीं होते। जब उदर फैलता है उस समय हवा आसानी से इन थैलियों में प्रवेश करती है और उन्हें तान देती है। इस प्रकार श्वसनक्रिया जारी रहती है। जब उदर संकुचित हो जाता है उस समय अंदरूनी इंद्रियां उक्त थैलियों पर दबाव डालती हैं और हवा को श्वास-नलियों के ज़रिये शरीर से बाहर कर देती हैं।

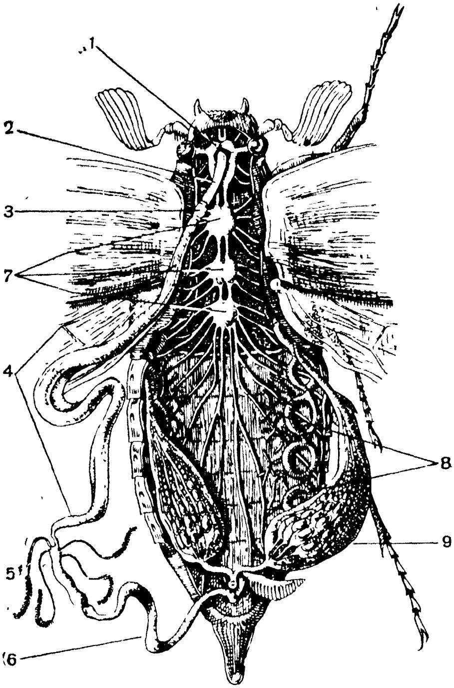

आकृति ४३ – काकचेफ़र की अंदरूनी इंद्रियां

१(1). अधिग्रसनीय तंत्रिका-गुच्छिका; २(2). ग्रसिका; ३(3). पेषणी; ४(4). मध्य आंत (पाचक जठर); ५(5). उत्सर्जक नलियां; ६ (6). पिछली आंत; ७(7). औदरिक तंत्रिका-रज्जु; ८ (8). श्वास-नलियां; ९(9). अंडाशय।

ऑक्सीजन बीटल की श्वास-नलियों के ज़रिये सीधे इंद्रियों में पहुंचता है; रक्त इन्हें केवल पोषक द्रव्य पहुंचाता है।

रक्त-परिवहन इंद्रियां

रक्त-परिवहन हृदय के संकोचों के फलस्वरूप होता है। हृदय शरीर के पृष्ठीय हिस्से में एक लंबी और पतली-सी दीवालो वाली नली के रूप में होता है। हृदय के पृथक् कक्ष होते हैं जिनकी

बग़लों में खुले द्वार होते हैं (आकृति ४५)। उसके अगले सिरे में एक लंबी वाहिनी या महाधमनी होती है और पिछले सिरे में यह बंद होता है। जब हृदय फलता है तो उसमें शरीर-गुहा में से कक्षों के खुले द्वारों के ज़रिये रक्त प्रवेश करता है। हृदय के संकुचित होने के साथ कक्ष के द्वार बंद हो जाते हैं और रक्त महाधमनी में ठेला जाता है। यहां से वह विभिन्न इंद्रियों के बीच के ख़ाली स्थानों में पहुंचता है। इस प्रकार काकचेफ़र का रक्त-परिवहन-तंत्र के-मछली की तरह ही खुला तंत्र है।

उत्सर्जक इंद्रियां

बिचली और पिछली आंतों की सीमा पर अत्यंत महीन उत्सर्जक नलियों के गुच्छे के खुले द्वार होते हैं। इन नलियों के छट्टे सिरे बंद होते हैं। रक्त द्वारा विभिन्न ऊतकों से लाये गये हानिकर

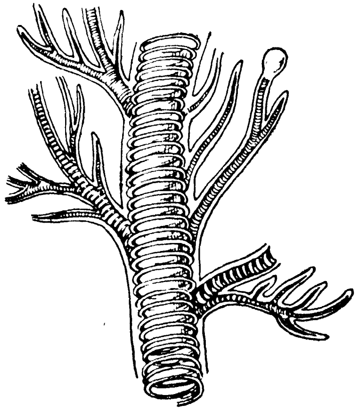

आकृति ४४ – माइक्रोस्कोप से देखने पर श्वास-नलियां
एक श्वास-नली के अंत में एक थैली है।

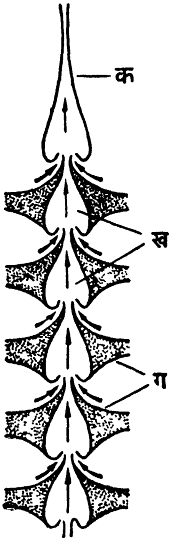

आकृति ४५ – काकचेफ़र का हृदय
क – महाधमनी ;
ख – हृदय के कक्ष ;
ग – पेशियां।

मल-द्रव्य शरीर-गुहा में बहनेवाले रक्त में से इन नालियों में उनकी दीवारों के ज़रिये प्रविष्ट होते हैं। यह तरल मल नलियों के ज़रिये आंत में पहुंचते हैं और फिर शरीर के बाहर फेंके जाते है।

तंत्रिका-तंत्र औदरिक तंत्रिका रज्जु काकचेफ़र के तंत्रिका-तंत्र का केंद्रीय भाग है। नदी की क्रे-मछली के विपरीत तंत्रिका-गुच्छिकाएं शरीर में समान रूप से वितरित नहीं रहतीं बल्कि सीने में स्थित कई बड़ी बड़ी गुच्छिकाओं में एकत्रित रहती है। ज्ञानेंद्रियों के ऊंचे परिवर्द्धन के कारण अधिग्रसनीय तंत्रिका-गुच्छिका विशेष बड़ी होती है।

तंत्रिका-तंत्र के ऊंचे संगठन के कारण काकचेफ़र का बरताव नदी की क्रे-मछली के बरताव से अधिक जटिल होता है। लेकिन यह भी अचेतन होता है और अंतःसंबद्ध प्रतिवर्त्ती क्रियाओं से बना हुआ होता है। दूसरे शब्दों में वह सहज प्रवृत्त होता है।

जननेंद्रियां काकचेफ़र डायोशियस होते हैं। मादा के अंडाशय अर्द्धपारदर्शी अंडों से भरी हुई पतली दीवालों वाली कई नलियों से बने होते हैं। नर के वृषण सफ़ेद रंग की दो लंबी और मुड़ी हुई नलियों के रूप में होते हैं। इन नलियों में शुक्राणु होते हैं।

प्रश्न – काकचेफ़र और केंचुए के बीच अंदरूनी इंद्रियों की संरचना की दृष्टि से क्या साम्य-भेद हैं?

§ २६. काकचेफ़र का परिवर्द्धन और उसके विरुद्ध उपाय

परिवर्द्धन मई–जून में मादा बीटल ज़मीन मे पैठ कर वहां अंडे देती है। ये पटसन के बीजों के आकारवाले अर्द्धपारदर्शी दाने-से होते हैं (रंगीन चित्र ६)।

ज़मीन के अंदर अंडा सफ़ेद डिंभ में परिवर्द्धित होता है। इसका शरीर कृमि के समान होता है पर इसके वृत्तखंडधारी पैर, मुखेंद्रिया और स्पष्टतया दिखाई देनेवाली कुंडल श्वसनिकाएं होती हैं। डिंभ पौधो की जड़ों को खाकर जीते है। उसका ऊपरवाला बड़ा और मज़बूत काइटिनीय जबड़ा उसे केवल खाने के ही नही बल्कि ज़मीन में रास्ता खोदने के साधन का भी काम देता है। इस काम में तीन जोड़े पैरों की मदद न के बराबर होती है।

कई निर्मोचनों के बाद डिंभ प्यूपा में परिवर्तित होता है। इसमें अभी से वयस्क बीटल के पंखों, शृंगिकाओं तथा अन्य इंद्रियों का आरंभ दिखाई देता है। प्यूपा अपने परिवर्द्धन-काल में डिंभ द्वारा पीछे छोड़ा गया भोजन खाकर रहता है। प्यूपा न हिलता है और न बढ़ता ही है। पंखों, पैरों और वयस्क बीटल की अन्य इंद्रियों का जटिल परिवर्द्धन आवरण के अंदर ही होता रहता है।

कुछ समय बाद प्यूपा वयस्क कीट का रूप धारण कर लेता है। यह कीट जाड़ों के समाप्त हो जाने तक ज़मीन के अंदर ही रहता है। अगले वसंत में अपने सिर और पैरों का उपयोग करते हुए वयस्क बीटल ज़मीन के ऊपर निकल आता है।

काकचेफ़र का परिवर्द्धन एक जटिल रूपांतरण के साथ होता है। हर बीटल अपने परिवर्द्धन के दौरान चार अवस्थाओं में से गुज़रता है – अंडा, डिंभ, प्यूपा और वयस्क कीट। इन सभी अवस्थाओं में से गुज़रनेवाले कीटों का रूपांतरण पूर्ण रूपांतरण कहलाता है। काकचेफ़र पूर्ण रूपांतरशील कीट वर्ग में शामिल है।

सामान्यतः काकचेफ़र अपने जीवन के चौथे वर्ष में प्यूपा में से बाहर निकलते हैं। पर जीवन-स्थितियों और विशेषकर तापमान और पोषण के अनुसार बीटल का परिवर्द्धन-काल दक्षिण में तीन वर्ष और उत्तर में पांच वर्ष तक का हो सकता है। इसी कारण बीटलों की विशेष भरमारवाले मौसम हर तीन-पांच वर्ष तक के बाद आते हैं।

काकचेफ़र विरोधी उपाय

काकचेफ़र भयंकर कृपिनाशक कीट है। पाइन के पौधों की जड़ों को नुक़सान पहुंचानेवाले इसके डिंभों के कारण वनों को सबसे बड़ी हानि पहुचती है। संरक्षक वनों के पट्टों को बीटलों से बचाये रखना विशेष महत्त्वपूर्ण है।

बीटलों का मुक़ाबिला करने का एक रास्ता है वयस्क कीटों को इकट्ठा कर लेना। सवेरे जब बीटल ठंढ के कारण अचेत-से होते है उसी समय उन्हें पेड़ के तले बिछाये गये टारपुलिन पर गिराया जाता है। इस प्रकार थोड़े समय में हज़ारों कीट इकट्ठे किये जा सकते हैं। इसके बाद उन्हे उबलते पानी से मरवाकर सूअरों को खिलाया जाता है। कभी कभी बीटलों को सुखाकर उनका पौष्टिक पाउडर बनाया जाता है। यह मवेशियों के चारे में मिला दिया जाता है।

डिंभग्रस्त ज़मीन में विषैले द्रव्य डाल देना काकचेफ़र के मुक़ाबिले का दूसरा तरीक़ा है। यह विशेष उपकरणों की सहायता से किया जाता है।

बीटलग्रस्त वनों पर विषैले पाउडरों का छिड़काव करने के लिए विमानों का भी उपयोग किया जा सकता है।

प्रश्न – १. काकचेफर का परिवर्द्धन किस प्रकार होता है? २. बीटल के विरुद्ध क्या कार्रवाइयां की जाती है?

व्यावहारिक अभ्यास – १. वसंत में कुछ काकचेफ़र पकड़ लो। उन्हें एक बक्स में रख दो और उसमें बर्च की कुछ टहनियां डाल दो। देखो बीटल किस प्रकार भोजन करता है। २. यदि तुम्हारे इलाक़े में काकचेफ़र बहुत नुक़सान पहुंचा रहे हों तो उन्हे पकड़ने का प्रबंध करो और पकड़े हुए काकचेफ़र मुर्गी-बत्तखों और सूअरों को खिला दो।

§ २७. गोभी की तितली

संरचना और जीवन वसंत और ग्रीष्म में सफ़ेद तितलियां साग-सब्ज़ी के बगीचों में चक्कर काटती दिखाई देती हैं (आकृति ४६)। यह हैं गोभी की तितलियां। सफ़ेद पंखों पर काली बुंदियों वाले कीट मादा होते है। नर के पंखों पर कोई बुंदियां नहीं होतीं। तितली के पंख चौड़े होते हैं और संरचना की दृष्टि से अन्य कीटों के पंखों से भिन्न। यदि हम तितली को अपनी उंगली से छुयें तो उंगली की त्वचा पर एक सफ़ेद पाउडर रह जाता है। माइक्रोस्कोप से देखने पर पाउडर में सूक्ष्म काइटिनीय शल्क नज़र आते हैं। पंख की पूरी सतह पर शल्कों का आवरण होता है। इसी कारण तितलियों को शल्क-पंखी कहते हैं।

गोभी की तितली के सिर पर बड़ी बड़ी संयुक्त आंखें और गदा के आकार की सुपरिवर्द्धित शृंगिकाएं होती हैं (आकृति ४७)। तितली अच्छी तरह देख सकती है और गंध के अनुसार वातावरण से संपर्क रखती है। गोभी की तितली फूलते पौधों पर दूर दूर से उड़ आती है और उन्ही का पुष्प-रस पीकर रहती है। फूल पर उतरकर वह अपनी सूंड पुष्प-गर्भ में डाल देती है और वहां का मधुर रस चूस लेती है। आकंठ रसपान करने के बाद वह अपनी सूंड कुंडलाकार समेट लेती है और उड़ जाती है।

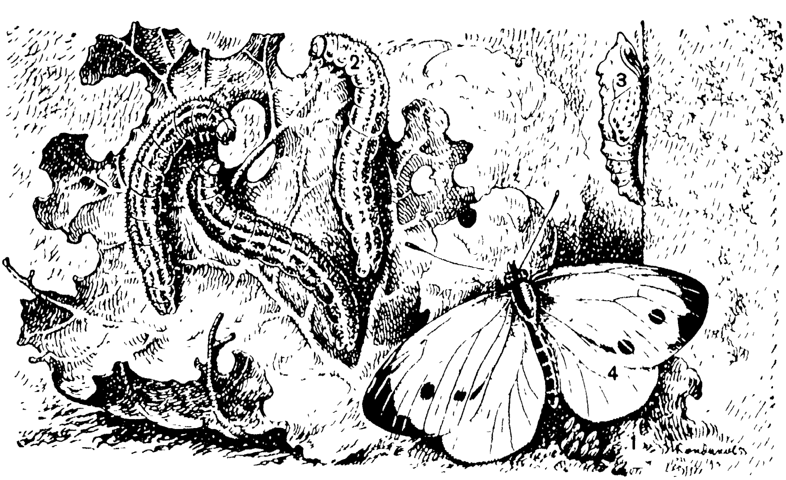

आकृति ४६ – गोभी की तितली

१ (1). तितली, अंडे देते हुए; २ (2). इल्ली; ३ (3). प्यूपा, ४ (4). तितली।

परिवर्द्धन

तितलियां गोभी के पत्तों की निचली सतह पर ढेरों की शकल में पीले अंडे डाल देती हैं। अंडे से निकलनेवाले डिंभ इल्ली कहलाते हैं। यह इल्ली शकल-सूरत में तितली से ज़रा भी नहीं मिलती। इल्लियां कृमियों के समान होती हैं पर काइटिनीय आवरण, पैर, मुखेंद्रियां और कुंडल-श्वसनिका माफ़ साफ़ बतलाते हैं कि ये कृमि नहीं, बल्कि कीट हैं। डिंभ गोभी के पत्ते खाकर रहते हैं और साग-सब्ज़ी के बगीचों को भारी नुक़सान पहुंचाते हैं। भोजन के इस ढंग के कारण तितली के विपरीत इल्ली के कुतरनेवाला मुख-उपकरण होता है।

डिंभ कई निर्मोचनों के साथ बढ़ते हैं और अंत में प्यूपा बन जाते हैं। इससे पहले वे इमारतों की दीवालों, घेरों या पेड़ों के तनों पर चढ़कर जालों के सहारे उनकी सतहों से चिपके रहते हैं। इसके बाद ही डिंभ का प्यूपा में रूपांतर होता है और प्यूपा से वयस्क कीट का परिवर्द्धन।

एक वर्ष में गोभी की तितलियों की दो पीढ़ियां पैदा होती हैं। पहली सुषुप्त प्यूपा से वसंत में और दूसरी ग्रीष्म में।

गोभी की तितली के परिवर्द्धन के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अंडों को नष्ट करके ही इसका सबसे अच्छी तरह मुक़ाबिला किया जा सकता है।

यदि तुम गोभी के पत्तों के नीचे की ओर देखो तो तुम्हें वहां तितली के पीले अंडों के ढेर दिखाई देंगे। उंगली के एक ही दबाव के साथ तुम ३०-४० भावी तितलियों को नष्ट कर सकोगे। अगर तुमने समय गंवाया तो आगे हर इल्ली को अलग अलग करके नष्ट करने की नौबत आयेगी।

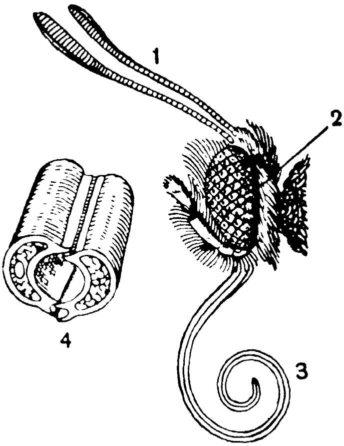

आकृति ४७—तितली का सिर (विशालीकृत)

१ (1). शृंगिकाएं; २(2). संयुक्त आंख; ३ (3). सूंड; ४(4). सूंड का एक हिस्सा (बहुत ही विशालीकृत)।

इचनेउमन परजीवी

कभी कभी मनुष्य को गोभी की तितलियों के विरुद्ध लड़ाई में तितलियों के परजीवियों से मदद मिलती है। इचनेउमन मक्षिका नाम के चार पारदर्शी जालीदार पंखों वाले नन्हे नन्हे कीट होते हैं जो गोभी की तितली की इल्लियों पर धावा बोल देते हैं (आकृति ४८)। हमला करते समय वे अपने उदर के सिरे में से एक

पतली-सी नली या अंड-रोपक निकालकर उससे इल्ली की त्वचा में एक सूराख बना देते हैं और उसमें अपने अंडे डाल देते हैं। अंडों से परिवर्द्धित डिंभ इल्ली के शरीर पर ही मुंह मारते और उसे ज़िंदा ही चट कर जाते हैं। इचनेउमन कभी कभी गोभी की तितलियों की इल्लियों का नामोनिशान तक मिटा देते हैं।

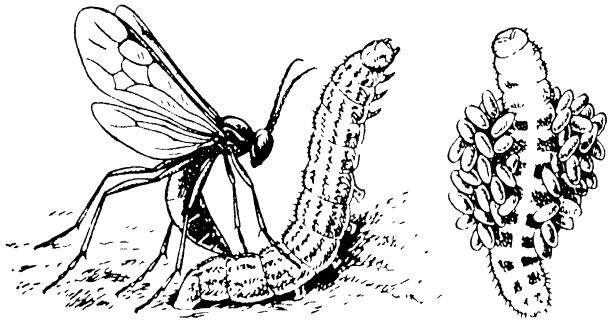

आकृति ४८ – इचनेउमन
बायें – इचनेउमन, युवा इल्ली के शरीर में अंडे डालते हुए (विशालीकृत)
दायें – मृत इल्ली पर के कोए।

प्रश्न – १. गोभी की तितली की ज़िन्दगी कैसे चलती है? २. गोभी की तितली का परिवर्द्धन कैसे होता है? ३. गोभी की तितली को सबसे असरदार तरीक़े से कब और कैसे खत्म कर दिया जा सकता है? ४. गोभी की तितली का मुक़ाबिला करने में कौनसे कीट सहायता देते हैं और कैसे?

व्यावहारिक अभ्यास – १. गोभी की सुपुप्त तितली के प्यूपा ढूंढ लो, उन्हें शीशे के बरतन में डाल दो और बरतन का मुंह जाली से ढांककर उसे गरम जगह में रख दो। तितली के परिवर्द्धन का निरीक्षण करो। २. ग्रीष्म में गोभी की तितलियों की इल्लियां इकट्ठा करके उन्हें एक शीशे के बरतन में डाल दो, उन्हें भोजन देते जाओ और उनकी विष्ठा बरतन से हटाते जाओ। देखो, किस प्रकार इल्ली का प्यूपा में रूपांतर होता है। ३. गोभी की तितली का परिवर्द्धन दिखानेवाला एक संग्रह तैयार कर लो। ४. स्कूल के साग-सब्ज़ीवाले बगीचे में गोभी की तितलियों के विरुद्ध ज़रूरी क़दम उठाओ।

§ २८. एशियाई अथवा प्रवासी टिड्डी

टिड्डी का जीवन

प्रवासी टिड्डी एक भयानक कृषिनाशक कीट है। शकल-सूरत में वह बड़े टिड्डे जैसा लगता है पर इसकी श्रृंगिकाएं छोटी होती हैं (आकृति ४६)।

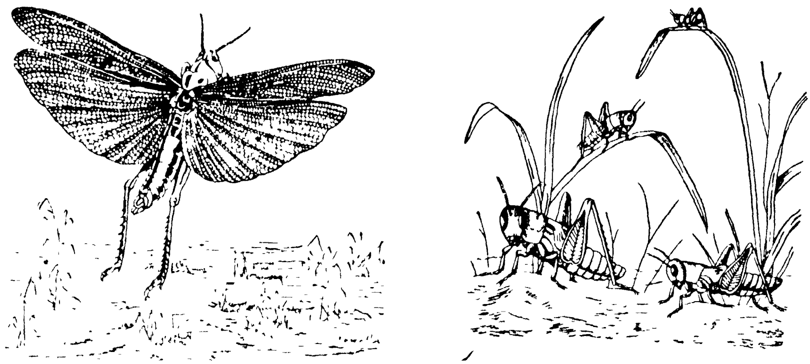

आकृति ४६ – टिड्डी और उसका परिवर्द्धन।

टिड्डी के वृत्तखंडधारी पैरों के तीन जोड़ों में से सबसे पिछला जोड़ा सुपरिवर्द्धित होता है। ये दो पैर सबसे लंबे और मजबूत होते हैं। अपने पैरों के सहारे अपने को धक्का देता हुआ यह कीट लंबी लंबी कूदें लगाता है।

सख़्त, संकुचित पंख-संपुटों के नीचे चौड़े पंख होते हैं जो आराम के समय पंखे की तरह सिमट जाते हैं। वयस्क कीट बहुत अच्छी तरह उड़ सकता है।

बड़े बड़े दल बांधकर टिड्डियां काफ़ी दूर तक उड़ती जा सकती हैं और अपने संवर्द्धन-स्थान से काफ़ी दूरी पर स्थित बड़े बड़े क्षेत्रों को उजाड़ कर देती हैं। पहले, इन कीटों के हमले के बाद हरेभरे खेत रेगिस्तान-से बन जाते और उनपर विनष्ट पौधों के बचे-खुचे अंश फैले रहते। जब तक टिड्डी के जीवन का उचित अध्ययन न हो पाया था, अज्ञान किसान टिड्डी दल के हमले को भगवान के क्रोध का फल मानकर रह जाते थे।

प्रवासी टिड्डियां झीलों और नदियों के किनारों पर नरकटों के बीच बच्चे देती हैं। यहां ग्रीष्म के उत्तरार्द्ध में मादा टिड्डी अपने उदर का पिछला सिरा ज़मीन में गड़ा देती है और इस प्रकार बनाये गये सूराख़ में अपने अंडे डालती है। बाद में इन अंडों

पर श्लेष्म का आवरण चढ़ता है। मिट्टी के कणों के साथ सख़्त बनकर यह श्लेष्म कैपसूल का रूप धारण कर लेता है। हर कैपसूल में पचास एक अंडे होते हैं जो अत्यधिक नमी और सूखे से सुरक्षित होते हैं। अगले वर्ष के वसंत तक ये अंडे इसी स्थिति में पड़े रहते हैं और अक्सर बाढ़ों का पानी उन्हें ढंके हुए रहता है। उनका अगला परिवर्द्धन वासंतिक बाढ़ों के पानी के हट जाने के बाद शुरू होता है। इस समय अंडों में से डिंभ निकल आते हैं जिनकी शकल वयस्क कीट जैसी होती है।

डिंभ कूदता-फुदकता हुआ चलता है और उसे पादचारी टिड्डी कहते हैं। ये बेहद पेटू होती है। वे अकसर गेहूं के खेतों में चली जाती हैं। यहां डिंभ जल्दी जल्दी बढ़ते हैं, पांच बार उनका निर्मोचन होता है और आख़िर बिना प्यूपा की अवस्था से गुज़रते हुए वे वयस्क कीट बन जाते हैं।

इस तरह टिड्डी का परिवर्द्धन अपूर्ण रूपांतरण के द्वारा होता है।

सोवियत संघ में टिड्डी विरोधी उपाय

महान् अक्तूबर समाजवादी क्रांति से पहले टिड्डियों के ख़िलाफ़ जो कुछ कार्रवाइयां की जाती थीं वे नाकाफ़ी थीं। बहुत ज़्यादा हुआ तो ढालू बाज़ुओं वाली रुकावटी खंदकें बनायी जाती थी। पर ये खंदकें सिर्फ़ पादचारी टिड्डियों के ख़िलाफ़ ही असरदार होती थीं। वे उनमें गिरकर मारे भूख के मर जाती थी।

सोवियत शासन-काल में देश में हवाई बेड़े और रासायनिक उद्योग का विकास हुआ। सोवियत संघ ही संसार का ऐसा पहला देश है जिसने विमानों द्वारा टिड्डियों के संवर्द्धन-क्षेत्रों में विषैले द्रव्यों के छिड़काव का तरीक़ा अपनाया। अब इन कीटों का उन्हीं स्थानों में ख़ात्मा कर दिया जाता है जहां वे अंडो से बाहर निकलते हैं। इससे खेतों पर उनका हमला होने की संभावना नष्ट हो जाती है। सोवियत संघ, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान इत्यादि जैसे पड़ोसी देशों को भी टिड्डियों के विनाश में सहायता देता है।

प्रश्न – १. टिड्डी का परिवर्द्धन किस प्रकार होता है? २. टिड्डियों से क्या नुक़सान होता है और सोवियत संघ में उनके विरुद्ध कौनसे उपाय अपनाये जाते है?

§ २६. अनाजभक्षी भुनगी

अनाजभक्षी भुनगी का जीवन

दक्षिण में खेतों को अक्सर अनाजभक्षी भुनगियों (आकृति ५०) के हमलों से नुक़सान पहुंचता है। ये पीले-भूरे कीट होते हैं जिनके चमड़ीनुमा, पंख-संपुटों पर संगमरमर जैसा पैटर्न होता है। ये पकते हुए अनाज के पौधों की डंडियों पर लड़खड़ाते हुए से चलते हैं। वे अपनी सूई जैसी सूंड अनाज के दाने में गड़ा देते हैं। दाने में डाली गयी दाहक लार उसका सत्व गला देती है और कीट अपनी सूंड से उसे चूस लेता है। दाने अपना वज़न और उद्भेदन-क्षमता खो देते हैं। ऐसे अनाज से बनाया गया आटा कड़वा और निम्न कोटि का होता है।

जब गेहूं, रई या जौ के पौधों में बालियां निकलने लगती हैं उस समय भुनगियां उनकी पत्तियों की पिछली सतह पर अंडे देती हैं। शीघ्र ही अंडों से डिंभ निकल आते हैं जो बहुत कुछ वयस्क भुनगी से मिलते-जुलते होते हैं। अंतर इतना ही होता है कि इनके पंख नहीं होते और आकार में वे छोटे होते हैं। कई निर्मोचनों के बाद प्यूपा की अवस्था से न गुज़रते हुए ही डिंभ वयस्क कीट बन जाते हैं।

जहां डिंभ की शकल वयस्क कीट जैसी होती है और वह प्यूपा की अवस्था से नहीं गुज़रता वह प्रक्रिया अपूर्ण रूपांतरण कहलाती है।

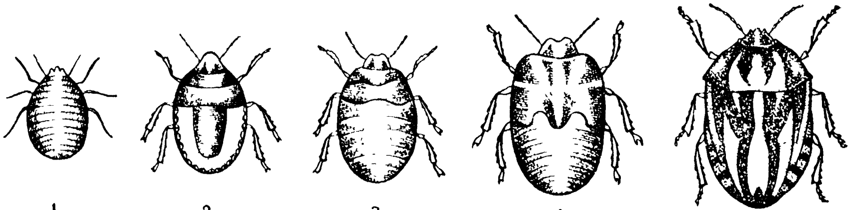

आकृति ५० – अनाजभक्षी भुनगी और उसके डिंभ
(आकृतियों में परिवर्द्धन-क्रम दिखाया गया है)।

फ़सल कटाई के बाद ये भुनगियां खेतों से विदा लेकर जंगलों के किनारों की ओर चली जाती हैं। यहां वे झड़ी हुई पत्तियों के नीचे जाड़े बिताती हैं। वसंत में जब ज़मीन में गरमाहट आती है तो ये भुनगियां सुषुप्तावस्था से जाग उठती हैं और फिर खेतों को लौट आकर अनाज के पौधों के हरे हरे अंकुरों पर टूट पड़ती हैं।

अनाजभक्षी भुनगी विरोधी उपाय एक लंबे अर्से तक किसी को पता न था कि अनाजभक्षी भुनगियों का मुक़ाबिला कैसे करना चाहिए। इधर इस काम में मुर्ग़ियों का उपयोग किया जाने लगा है। शरद में इन्हें पहियेदार पिंजड़ों में जगह जगह ले जाया जाता है। खेतों के पासवाले जंगलों में, जहां उक्त कीट जाड़ों में छिपे रहते हैं, ये मुर्ग़ियां हज़ारों की संख्या में उन्हें चट कर जाती हैं। इस तरीक़े से एक पंथ दो काज हो जाते हैं। मुर्ग़ियों को पोषक आहार मिलता है, वे अच्छी तरह पलती-पुसती हैं और खेत भयानक कृषिनाशक कीटों का शिकार होने से बचते हैं।

इन भुनगियों के विरुद्ध रासायनिक उपाय अभी हाल तक शायद ही अपनाये जाते थे क्योंकि उनका मुक़ाबिला करनेवाले उचित विषैले रसायन ज्ञात न थे। भुनगियों की गड़नेवाली सूंड अनाज के दाने को अंदर से चूस लेती है और पौधों को कुतरनेवाले कीटों पर प्रभाव डालनेवाले विष भुनगी की आंत तक नहीं पहुंचते।

सोवियत संघ में अनाजभक्षी भुनगी के विरुद्ध डी० डी० टी० पाउडर का उपयोग किया जाता है। यह पाउडर कीट की त्वचा के ज़रिये असर डालता है जिससे कीट मर जाता है। भुनगी विरोधी लड़ाई में डी० डी० टी० का उपयोग दिन-ब-दिन वृद्धि पर है। इधर कुछ वर्षों से भुनगियों की बहुतायतवाले क्षेत्रों में डी० डी० टी० के छिड़काव के लिए बहुत-से हवाई जहाज़ों और ज़मीन पर चलनेवाली दूसरी सवारियों का उपयोग किया जा रहा है। इसके फलस्वरूप हज़ारों हेक्टेयर अनाज की फ़सलों को विनाश से बचाया जा सका है।

प्रश्न – १. अनाजभक्षी भुनगी से क्या हानि पहुंचती है? २. इस भुनगी का परिवर्द्धन किस प्रकार होता है? ३. इस भुनगी के ख़िलाफ़ कौनसी कार्रवाइयां की जाती है?

§३०. कोलोरैडो या आलू का बीटल

बाह्य लक्षण वयस्क कोलोरैडो बीटल (रंगीन चित्र ७) आकार-प्रकार में सुप्रसिद्ध लेडी-बर्ड जैसा लगता है पर रंग इसका अलग होता है। उसके हर पंख-संपुट पर पांच काली और लगभग समानांतर धारियां होती हैं जो पीले स्थानों से बंटी रहती हैं। इस चिन्ह से आलू के बीटल को लेडी-बर्ड से और अन्य आलू नाशक कीटों से आसानी से अलग पहचाना जा सकता है।

नुक़सान

आलू और आलूभक्षी बीटल दोनों का जन्मस्थान अमेरिका है। चालू शताब्दी में जहाज़ों पर लदे हुए माल के साथ साथ यह कीट भी पश्चिमी यूरोप पहुंचा। यह बीटल जहां कहीं पहुंचता है, आलू की पत्तियों और डंडियों का सफ़ाया करके बेहद नुक़सान पहुंचाता है।

आलूभक्षी बीटल जाड़े ज़मीन के नीचे बिताते है। वसंत में वे जल्दी जल्दी आसपास के खेतों में फैलकर आफ़त ढा देते हैं। मादा बीटल पत्तियों पर ढेरों लंबवृत्ताकार और नारंगी रंग के अंडे डाल देती है जिनमें से ललौहें-नारंगी रंग के और काली बुंदियों वाले डिंभ निकल आते है। डिंभ आलू की पत्तियों और डंडियों को नष्ट कर देते है। चोटी के पेटू होने के कारण वे जल्दी जल्दी बड़े होते हैं और पौधों को छोड़कर ज़मीन में घुस जाते हैं जहां उनका प्यूपा में रूपांतर होता है। प्यूपा से बीटलों की अगली पीढ़ी पैदा होती है। आबोहवा के अनुसार आलूभक्षी बीटल हर गरमी में यूरोप में एक-दो से लेकर अमेरिका के उष्णतर प्रदेशों में चार तक पीढ़ियों को जन्म देते हैं।

सोवियत संघ मे आलूभक्षी बीटल विरोधी उपाय

जहां कही ये बीटल दिखाई देंगे उन्हें फ़ौरन मारकर केरोसीन में या नमक के घोल में डालना और तब तक वहीं रखना चाहिए जब तक कोई पौध-रक्षक इनस्पेक्टर न आ पहुंचे। आलू के जिस किसी पौधे पर आलूभक्षी बीटल जैसा कीट दिखाई दे उस पौधे को विशेष रूप से चिह्नित करना चाहिए। ज़िंदा बीटलों को खेत से उठाकर नहीं ले जाना चाहिए क्योंकि रास्ते में उनके यों ही गिर जाने की संभावना होती है, और इस तरह गिरे हुए कीटों से उनका और फैलाव हो सकता है। आलूभक्षी बीटलों के दिखाई देते ही फ़ौरन कोलखोज़ के अध्यक्षमंडल, ग्राम सोवियत, स्थानीय कृषि-विशेषज्ञ या अध्यापक को इसकी सूचना देनी चाहिए।

प्रश्न – १. आलूभक्षी बीटल अन्य बीटलों से किस प्रकार भिन्न है? २. आलूभक्षी बीटल क्यों ख़तरनाक है? ३. आलूभक्षी बीटल का परिवर्द्धन कैसे होता है? ४. आलूभक्षी बीटलों के दिखाई देते ही क्या करना चाहिए?

§ ३१. कृषिनाशक कीट विरोधी उपाय

मैकनिकल उपाय

काकचेफ़र, टिड्डी, अनाजभक्षी भुनगी और गोभी की तितली के बारे में हमने जो कुछ पढ़ा उससे सुस्पष्ट होता है कि हानिकारक कीटों की जीवन-प्रणाली को समझ लेने से ही उनके विरुद्ध सबसे अच्छे तरीक़े इस्तेमाल किये जा सकते हैं।

काकचेफ़र और गोभी की तितली का वर्णन करते समय हमने बतलाया है कि इन कीटों को नष्ट करने का सबसे आसान तरीक़ा है उन्हें इकट्ठा करके मरवा डालना।

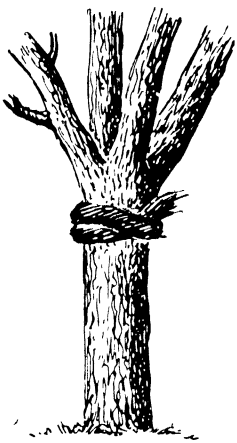

आकृति ५१ – पेड़ के तने पर वृत्ताकार फंदा।

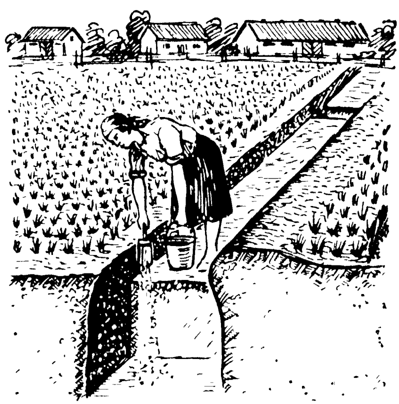

आकृति ५२ – कीटों को पकड़ने के लिए खाई।

कभी कभी बगीचे के विनाशकारी कीट विरोधी उपाय के रूप में पेड़ों के तनों पर एक न सूखनेवाले चिपचिपे द्रव से वृत्ताकार लेप लगा दिया जाता है। तने पर रेंगनेवाले विभिन्न विनाशक कीट आम तौर पर उक्त वृत्त में चिपक जाते हैं। सेब के पेड़ों के तनों में सूखे घास के पूले लपेट दिये जाते हैं (आकृति ५१)। पतझड़ में कैंकर-कृमि तितली की इल्लियों जैसे कीट जाड़े में अपने को छिपाये रखने की दृष्टि से इस घास में रेंगकर चले जाते हैं। फिर इस घास को तने से हटाकर जला दिया जाता है जिससे घास के साथ कीट भी स्वाहा हो जाते हैं।

ज़मीन पर रेंगनेवाले विनाशक कीटों को ख़त्म करने के लिए विशेष मशीनरी द्वारा ढालू दीवालों और कुओं वाली खाइयां (आकृति ५२) बनायी जाती हैं।

पादचारी टिड्डी या शकरकंदभक्षी वीविल जैसे न उड़नेवाले कीट खाई में गिर जाते हैं और उसकी ढालू दीवारों पर से चढ़कर ऊपर नहीं आ सकते। खाई से होते हुए वे कुओं में गिर जाते हैं। जब कुओं में ढेरों कीट इकट्ठा हो जाते हैं तो उन्हें विशेष औज़ारों द्वारा कुचल दिया जाता है।

विनाशक कीटों को एकत्रित करना, पेड़ों में सूखे घास के पूले लपेटना, खाइयां खोदना और कीटों को नष्ट करनेवाले ऐसे ही अन्य तरीक़े मैकनिकल तरीक़े कहलाते हैं।

विभिन्न विषैले द्रव्यों का उपयोग करना विनाशक कीटों को नष्ट करने का एक रासायनिक साधन है। इन कीटों को सहारा देनेवाले पेड़-पौधों पर छोटे खेतों में छिड़काव-यंत्र द्वारा और बड़े बड़े क्षेत्रों में हवाई जहाज द्वारा कीटमार दवाओं का छिड़काव किया जाता है। कभी कभी मैकनिकल उपायों के साथ साथ भी रासायनिक दवाओं का उपयोग किया जाता है। ५२ वीं आकृति दिखाती है कि खाई के कुओं में इकट्ठा कीटों को ज़हर खिलाने की दृष्टि से डी० डी० टी० पाउडर डाला जा रहा है।

कीटनाशक रासायनिक साधन

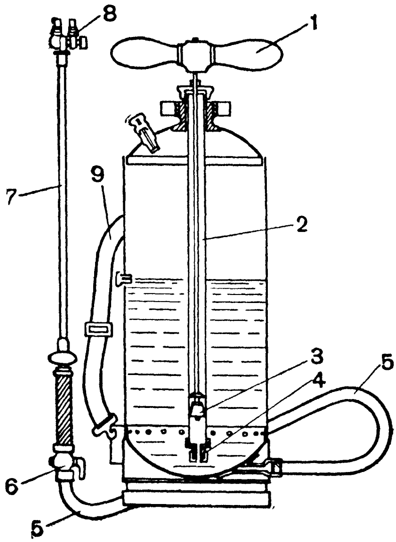

आकृति ५३ – छिड़काव-यंत्र

१ (1). पंप की मूठ; २(2). सिलिंडर जिसमें पिस्टन आगे और पीछे सरकता है; ३(3). पिस्टन; ४(4). पंप का दबाव वैल्व जो हवा को पंप में आने देता है और घोल का सिलिंडर में भर जाना रोक देता है; ५(5). रबड़ की नली; ६ (6). टोंटी; ७(7). धातु की नली; ८ (8). फ़व्वारेदार मुह; ९(9). कंधे पर डालने का एक पट्टा।

कुछ विष घोल के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं। जैसे – पानी मिश्रित केरोसिन, डी० डी० टी० पाउडर, तंबाकू का काढ़ा, टमाटर की पत्तियों का काढ़ा – ये घोल छिड़काव-यंत्र (आकृति ५३) की सहायता से छिड़के जाते हैं।

खेती की फ़सलों वाले बड़े बड़े क्षेत्रों में ट्रेक्टर पर रखी पिचकारियों और छिड़काव-यंत्रों का उपयोग किया जाता है। विशाल क्षेत्रों में कृषिनाशक कीटों से छुटकारा पाने के लिए अधिकाधिक मात्रा में हवाई जहाज़ों का उपयोग किया जाने लगा है। यह सबसे किफ़ायती और असरदार तरीक़ा है (आकृति ५४)।

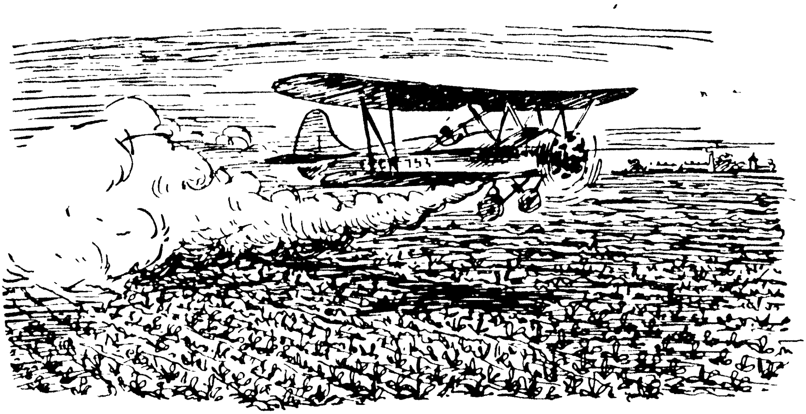

आकृति ५४ – कृपिनाशक कीटों के विनाश के लिए हवाई जहाज़ का उपयोग।

मैकनिकल और बायोलोजिकल उपाय रासायनिक उपायों के अलावा विनाशक कीटों को नष्ट करने में बायोलोजिकल उपाय भी अपनाये जाते हैं। पंछियों और परजीवियों जैसे कृपिनाशक कीटों के शत्रुओं को इस काम में लगाया जाता है।

हानिकर कीटों का इचनेउमन के अलावा एक और परजीवी है ट्राइको-ग्राम (आकृति ५५)। यह सूक्ष्म कीट कई हानिकर कीटो के अंडों में अपने अंडे देता है। जैसे ही काडलिन का मौसम आता है, सेब के पेड़ की डालों में

आकृति ५५ – तितली के अंडे के अंदर अपने अंडे डालनेवाली मादा-ट्राइकोग्राम।

थैलियां टांग दी जाती हैं। इन थैलियों में अनाजभक्षी शलभ के ऐसे अंडे रखे रहते हैं जिनमें ट्राइकोग्राम ने अपने अंडे डाल दिये हैं। अंडों से निकलनेवाले ट्राइकोग्राम काडलिन के अंडे ढूंढते हैं और उनके अंदर अपने सूक्ष्मतर अंडे डाल देते हैं। ट्राइकोग्राम के डिंभ हानिकर कीट को खा जाते हैं जिनमें वे सेये जाते हैं। इससे हानिकर कीट नष्ट होकर फल-बाग़ की सुरक्षा होती है।

कृषि-प्राविधिक उपाय

हानिकर कीट विरोधी लड़ाई में कृषि-प्राविधिक उपायों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पौधों के चारों ओर मिट्टी के ढेर लगाना कृषि-प्राविधिक उपायों में से एक है। यह गोभी की मक्खी के ख़िलाफ़ ख़ास असरदार है। इस कीट के डिंभ ऊपर ऊपर से सफ़ेद कृमियों-से लगते हैं। ये गोभी की जड़ों के अंदर अंदर चरते हुए उसमें सूराख़ और सुरंगें बनाकर उन्हें नुक़सान पहुंचाते हैं। पौधे का बढ़ना रुक जाता है और वह नष्ट हो सकता है। यदि गोभी के चारों ओर मिट्टी के ढेर लगाये जायें तो उसमें जड़ों का एक और वृत्त तैयार होता है। इससे हानिकर कीट के डिंभ मर तो नहीं जाते पर पौधा संभल जाता है।

हानिकर कीट विरोधी कृषि-प्राविधिक उपायों में निम्नलिखित बातें शामिल हैं—हानिकर कीट जिन्हें खाकर जीते और पलते हैं उन मोथों का नाश, खेतों और सब्ज़ी-बाग़ों की समय पर दुबारा जुताई, संबंधित फ़सल को हानि पहुंचानेवाले कीटों के परिवर्द्धन के समय के कुछ पहले और कुछ मामलों में कुछ बाद फ़सल की बुवाई, इत्यादि।

कीटों के शिकार बनने की कम संभावनावाली पौधो की क़िस्में चुन लेना भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ सूरजमुखी की एक संरक्षित क़िस्म तैयार की गयी है जो सूरजमुखी के शलभों का मुक़ाबिला कर सकती है।

सोवियत संघ में कृषिनाशक कीट विरोधी उपाय

सोवियत संघ में कृषिनाशक कीट विरोधी कार्रवाइयां अखिल राज्यीय स्तर पर की जाती हैं और उसी के अनुसार उनका आयोजन होता है। हमारे देश में पौध-रक्षा का ख़याल रखनेवाली विशेष संस्थाएं है। हानिकर कीटों के पलने-पुसने के क्षेत्रों का पूर्व-निरीक्षण अच्छी तरह संगठित किया जाता है। इससे हमें पता चल सकता है कि कौनसे क्षेत्र में ये कीट पैदा हो सकेंगे। कीटमार दवाओं के बड़े पैमाने के उत्पादन और उनके छिड़काव के लिए विस्तृत परिमाण में

हवाई जहाज़ों के प्रयोग के फलस्वरूप कीटों का फैलाव फ़ौरन रोक डालना संभव होता है। कृषि टेकनीक के ऊंचे स्तर और कोलखोज़ों तथा सोवखोज़ों के यंत्रीकरण से हानिकर कीटों के नियंत्रण में सहायता मिलती है।

हानिकर कीटों के विनाश में युवा प्रकृतिप्रेमी अर्थात् पायोनियर और अन्य स्कूली लड़के-लड़कियां सक्रिय भाग लेते हैं। कोलखोज़ों और राजकीय फ़ार्मों द्वारा बनाये गये विभिन्न काम पूरे करने के फलस्वरूप बहुत-से स्कूली लड़कों-लड़कियों को आर्थिक उपलब्धियों की अखिल संघीय प्रदर्शनी में भाग लेने का अधिकार और सम्मान-पत्र और पुरस्कार दिये जाते हैं।

प्रश्न – १. हानिकर कीटों के नियंत्रण में उनके जीवन की जानकारी का क्या महत्त्व है? २. सोवियत संघ में हानिकर कीटों के नियंत्रण के लिए कौनसे क़दम उठाये जाते हैं?

व्यावहारिक अभ्यास – १. केमिस्ट की दूकान से कुछ डी० डी० टी० पाउडर ख़रीदकर हानिकर कीटग्रस्त घरेलू पौधों पर छिड़क दो। इस दवा के प्रभाव का निरीक्षण करो। २. गरमी के मौसम में टमाटर की पत्तियों का काढ़ा तैयार करके पौध-चीचड़ों से ग्रस्त पौधों पर उसके फ़व्वारे उड़ाओ। नोट कर लो उसका क्या प्रभाव पड़ता है। ३. हानिकर कीटों का संग्रह तैयार करो।

§ ३२. रोग-उत्पादकों के कीट-वाहक

मलेरिया का मच्छर

आज हमें ऐसे कई प्राणी मालूम हैं जो किसी न किसी रोग-उत्पादक जन्तु का प्रसार करते हैं। ऐसे एक कीट का उल्लेख पहले हो चुका है। यह है मलेरिया का मच्छर (आकृति ५६)। इसका नीचे उतरने का तरीक़ा साधारण मच्छर से भिन्न होता है। साधारण मच्छर जिस सतह पर बैठता है उससे अपना शरीर समानांतर रखता है। इसके विपरीत मलेरिया का मच्छर सतह से कोण बनाकर बैठता है। सिर उसका झुका हुआ रहता है और शरीर का पिछला सिरा हवा में ऊंचा उठाया हुआ।

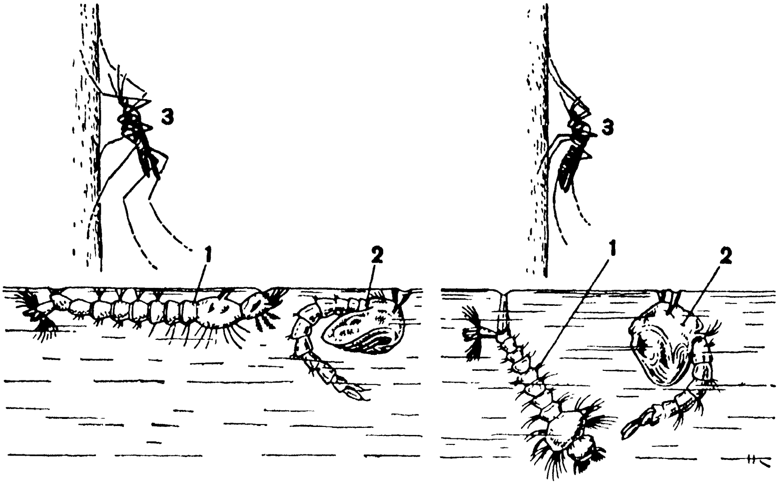

आकृति ५६ – मलेरिया का मच्छर (बाये) और साधारण मच्छर (दायें)
१ (1). डिंभ ; २ (2). प्यूपा ; ३ (3). वयस्क कीट।

मलेरिया का मच्छर ऐसे छिछले पानी की सतह पर अंडे देता है जहां ज़ोरदार लहरें नहीं उठतीं। अंडे सेकर उनमें से डिंभ निकलते हैं। आम तौर पर डिंभ अपने शरीर पानी की सतह से समानांतर रखते हैं और शरीर के पिछले सिरे में स्थित दो श्वासछिद्रो मे वायुमण्डलीय हवा अवशोषित करते हैं। डिंभ पानी में तैरनेवाले सूक्ष्म जीवों (बैक्टीरिया, प्रोटोज़ोआ) को खाकर रहते हैं। वे जल्दी जल्दी बढ़ते है और आख़िर प्यूपा बन जाते है। मच्छर के प्यूपा भी पानी ही में रहते हैं। वे बड़े-से अल्पविराम की शकल में झुके हुए होते हैं। प्यूपा के शरीर के अगले सिरे में दो श्वासनलियां होती है जो उनके सिर के पिछले हिस्से में दो कानों की तरह निकली हुई होती हैं। प्यूपा सिर ऊपर उठाये हुए तैरते हैं।

मच्छर के प्यूपा पानी की सतह पर सेये जाते है। प्यूपा का काइटिनीय आवरण पीठ की ओर फट जाता है और उसमे वयस्क कीट बाहर आता है। फटा हुआ आवरण मच्छर को तैरते हुए लट्ठे का सा काम देता है जिसपर पड़ा रहकर वह सूखता है। सेने के समय पानी के ज़रा भी हिलने से हज़ारों मच्छर मर जाते हैं।

साधारण मच्छर भी इसी प्रकार बड़ा होता है। मलेरिया के मच्छर के विपरीत इसके डिंभ पानी की सतह पर समानांतर नहीं, बल्कि कोण बनाये रहते

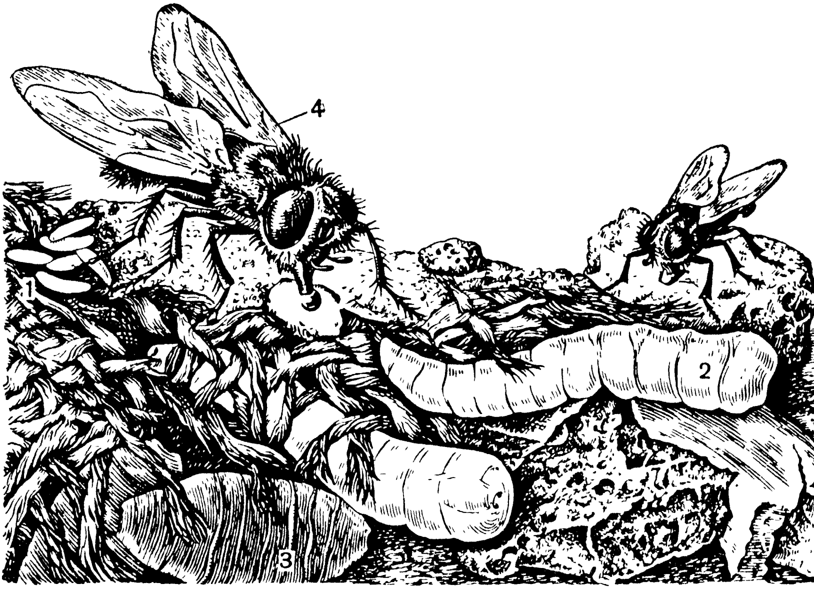

आकृति ५७ – घरेलू मक्खी का परिवर्द्धन (विशालीकृत)
१ (1). अंडे ; २ (2). डिंभ ; ३(3). प्यूपा ; ४(4). वयस्क कीट।

हैं। इसके श्वासछिद्र एक विशेष नली पर होते है जो मलेरिया के मच्छर के डिंभ के नही होती।

यदि पानी में केरोसिन उंडेला जाये तो पानी से हल्का होने के कारण वह उसकी सतह पर फैल जाता है। डिंभ तथा प्यूपों के श्वासछिद्रों में घुसकर केरोसिन उनका हवा में सांस लेना बंद कर देता है; फलतः वे मर जाते हैं। मलेरिया के मच्छर को नष्ट करने के दूसरे तरीक़े § ५ में बताये गये है।

घरेलू मक्खी

घरेलू मक्खी (आकृति ५७) संक्रामक रोगों को फैलानेवाला एक भयानक प्राणी है। सफेद कृमि की शकल के इसके डिंभ कूड़े-करकट में रहते और परिवर्द्धित होते है। मक्खी यही अपने अंडे देती है। प्यूपा में परिवर्तित होने से पहले डिंभ कूड़े-करकट से रेंगकर बाहर आते है, ज़मीन के अंदर घुस जाते है और वही प्यूपा बन जाते है। ध्यान रहे कि प्यूपा अपना आवरण नही उतार देते। यह आवरण भूरा और सख़्त बन जाता है और प्यूपा को जैसे एक नन्हे-से पीपे में बंद कर लेता है। प्यूपा से

निकलनेवाले वयस्क कीट खाने की तलाश में हर जगह उड़कर जाते हैं। पाखानों और कूड़े-करकट के ढेरों से उड़कर वे खाद्य-पदार्थों पर आ बैठते हैं और उन्हें दूषित कर देते हैं। मक्खियां आंत और जठर के रोगों के बैकटीरिया और एस्कराइड के अंडे लाकर मनुष्य के भोजन पर छोड़ देती हैं। अतः मक्खियों का नाश करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जहां कही इनके डिंभ पलते-पुसते हैं उन सभी जगहों में क्लोराइड आॅफ़ लाइम या डी० डी० टी० पाउडर का छिड़काव करना चाहिए। जालीदार ढकनों का उपयोग करके अन्न को मक्खियों से बचाये रखना और खाने से पहले साग-सब्ज़ियों को साफ़ करना ज़रूरी है। मक्खी-विरोधी सफल उपायों के उदाहरण के रूप में चीनी जनवादी जनतंत्र में की गयी कार्रवाइयों का उल्लेख किया जा सकता है। वहां बिल्कुल सीधे-सादे साधनों से मक्खियों का नामोनिशान मिटाया गया। धात के या धान के सूखे डंठलों के जालीदार फ़्लैपर इनमें शामिल थे। ऐसे फ़्लैपरों से हवा नहीं चलती जिससे डरकर मक्खियां दूर उड़ जायें। दूसरा एक साधन था नुकीली छड़ियां जिनसे ज़मीन को खोदकर मक्खियों के डिंभ बाहर निकाले जाते थे। देश की समूची जनता द्वारा उठाये गये इन क़दमों के परिणामस्वरूप बड़ी भारी मात्रा में मक्खियों का नाश हुआ, शहर के शहर इन हानिकर प्राणियों से मुक्त हुए।

जूं

जूं (आकृति ५८) तो मक्खी से भी ज़्यादा खतरनाक है। यह टाइफ़स नामक भयंकर बीमारी के उत्पादकों के प्रसारकों को रोगग्रस्त आदमी के शरीर मे लाकर नीरोग व्यक्ति के शरीर में पहुंचा देती है। जब कोई व्यक्ति जूं से काटे गये स्थान को खुजलाता है तो वह टाइफ़स के माइक्रोबों से भरी जूं की विष्ठा को अपने शरीर के घाव में रगड़ देता है।

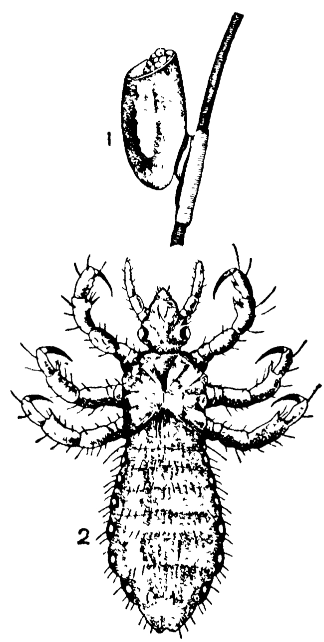

आकृति ५८ – जूं (विशालीकृत)
१(1). बाल से चिपकी हुई लीख;
२ (2). वयस्क कीट।

सिर की जूंएं मनुष्यों के बालों में रहती हैं। वहीं वे अपने अंडे चिपका देती हैं। जूं के अंडे लीखें कहलाते हैं। कपड़े की जूंएं कपड़ों की सिलवटों में रहती हैं और वही अंडे देती हैं। अंडे डिंभों में परिवर्द्धित होते हैं और उनकी शकल वयस्क कीट जैसी ही होती है। जूं अत्यंत बहुप्रसव प्राणी है। एक महीने की अवधि में मादा जूं सैकड़ों की पीढ़ी को जन्म देती है।

जूं त्वचा का परजीवी प्राणी है और इसी कारण उसमें कई ऐसी विशेषताएं विकसित हुई हैं जो मुक्त संचारी प्राणियों में नहीं पायी जातीं। जूं के पैरों में बहुत ही मजबूत नखर होते हैं जिनके सहारे वह बालों या कपड़े की सिलवटो से चिपकी रहती है। जूं की सूंड के अंत में अंकुड़ियां होती हैं और मनुष्य का रक्त चूसते समय यह प्राणी इन्ही के सहारे मनुष्य की त्वचा में चिपका रहता है। जूं के पंख नहीं होते।

जूं से बचके रहने की दृष्टि से निम्नलिखित बातें आवश्यक है – नियमित स्नान, साफ़ बाल, साफ़-सुथरे अंदरूनी कपड़े जिनकी सिलवटें गरम इस्तरी द्वारा हटायी गयी हों।

यदि जूंएं दिखाई दें तो ऊपरवाले कपड़ो को कुछ देर गरम हवावाले विशेष कक्ष में रखना चाहिए।

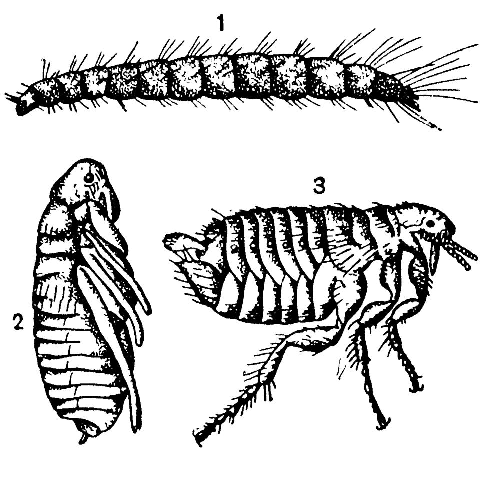

आकृति ५९ – पिस्सू (विशालीकृत)
१ (1). डिंभ; २. (2). प्यूपा; ३ (3). वयस्क कीट।

पिस्सू जूं की तरह पिस्सू (आकृति ५९) भी मनुष्य की त्वचा का परजीवी है। इसी कारण उसमे कई विशेषताएं विकसित हुई है। उसके मुहवाले हिस्सों में त्वचा-भेदक अंग होते हैं। पिस्सू जोरदार छलांगें मारते हुए चलती है जिससे उसे नष्ट करना बड़ा मुश्किल होता है। उसका छोटा-सा आकार और काइटिनीय आवरण उसे कुचल जाने से बचाते है।

पिस्सू अपने अंडे फ़र्श की दरारों और कूड़े-करकट के ढेरों में देती है। अंडे डिंभों में परिवर्तित होते हैं। इनसे नन्हे नन्हे सफ़ेद कृमि निकलते हैं जिनके पैर नहीं होते। पिस्सू के पूरे परिवर्द्धन में एक महीना लग जाता है।

पिस्सू प्लेग या 'काली मौत' के माइक्रोब कुतरनेवाले जंतुओं से और विशेषकर घूसों से लेकर मनुष्य के शरीर में पहुंचा देती है।

यह रोग उक्त कीट की विष्ठा या डंक के ज़रिये फैलता है। मध्य युगों में सबसे ज़्यादा लोग इस महामारी के शिकार होते थे। हमारे ज़माने में चिकित्सा विज्ञान की उपलब्धियों के फलस्वरूप प्लेग नष्टप्राय हो चुका है। फिर भी संभाव्य महामारियों को रोक डालने की दृष्टि से कुतरनेवाले प्राणियों को मार डालना और पिस्सुओं को नष्ट करना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पिस्सुओं के नाश के लिए डी० डी० टी० पाउडर एक बहुत अच्छा साधन है।

महामारी विरोधी उपाय

एक ज़माना ऐसा था जब लोगों को संक्रामक रोगों के कारण मालूम न थे और वे पूरी तरह अंधविश्वासों के प्रभाव में रहते थे। मध्य युगों में प्लेग की महामारी का कारण जादू-टोना बताया जाता था और बहुत-से निरपराध लोगों को जादू-टोने के अपराधी मानकर ज़िंदा जला दिया गया था। मध्य युगों में संक्रामक रोगों का उद्भव सर्वत्र हुआ था।

संक्रामक रोगों के उत्पादकों और उनके वाहक जंतुओं का पता लग जाने के बाद ही इन रोगों के विरुद्ध चल रही लड़ाई में एक नया दौर आया। सांस्कृतिक प्रगति और स्वास्थ्य-सेवा के विकास ने रोगों पर मनुष्य की विजय में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उदाहरणार्थ, विगत महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध-काल में टाइफ़स जैसे किसी भी भयानक रोग की महामारी का उद्भव नहीं हुआ जबकि पिछले सभी युद्धों के समय ऐसी महामारियां फैली थीं।

प्रश्न – १. कौनसे कीट संक्रामक रोग-उत्पादकों के वाहन का काम देते हैं और कैसे? २. रोग-वाहकों का मुक़ाबिला कैसे किया जाता है?

व्यावहारिक अभ्यास – १. वसंत ऋतु में मच्छरों की पैदाइशवाला पानी ढूंढ लो। ऐसा कुछ पानी शीशे के एक बरतन में डालकर उसका मुंह जाली से बंद कर दो। मच्छरों के सेये जाने का निरीक्षण करो।

§ ३३. शहतूत का रेशमी कीड़ा

रेशम की जन्मकथा

शहतूत का रेशमी कीड़ा (आकृति ६०) बहुत ही उपयुक्त कीट है। इसकी इल्लियों से रेशम पैदा होता है। जिस द्रव से रेशम बनता है वह दो रेशमदायी ग्रंथियों से रसता है। इन ग्रथियों के खुले हिस्से इल्ली के निचले ओंठ में होते हैं। ग्रंथियों से निकला हुआ द्रव हवा के संपर्क में आते ही फ़ौरन सख़्त हो जाता है। यही रेशम का धागा है।

इल्ली रेशमी धागे को बुनकर कोए का रूप देती है। ग्रंथियों के खुले छेद वह किसी ठोस पदार्थ पर टिकाकर वहां धागे का पहला सिरा चिपका देती है। फिर वह अपना सिर बुनाई की सूई की तरह हिलाती जाती है और क्रमशः अपने चारों ओर रेशम के धागे की दीवाल-सी बना लेती है। आखिर कोआ बनकर तैयार होता है जिसमें इल्ली प्यूपा में परिवर्द्धित होती है।

आकृति ६० – रेशमी कीड़े का परिवर्द्धन।

कोए का निर्माण इल्ली की सहज प्रवृत्ति से होता है और वह कई दिन जारी रहता है। इस अवधि में इल्ली सात-आठ सौ मीटर और कभी कभी तो तीन हज़ार मीटर तक धागा देती है।

प्यूपा के लिए कोआ विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों से बचाये रखनेवाले संरक्षक साधन का काम देता है। मनुष्य के लिए वह रेशमी कपड़े के उत्पादन में कच्चे माल का काम देता है। प्यूपा को गरम भाप से मरवा डालते हैं और कोओं को सुखाकर रेशमी मिलों में खोल देते हैं। मरे हुए कोए आम तौर पर फ़ार्मों के फ़रदार जानवरों को खिलाये जाते हैं।

रेशमी कीड़ों का संवर्द्धन

चीन रेशमी कीड़े की जन्मभूमि है। वहां रेशम के शलभ को हज़ारों वर्षों से एक घरेलू कीट के रूप में पालते आये हैं।

रेशमी कीड़ों का पालन-संवर्द्धन उन प्रदेशों में किया जाता है जहां शहतूत के पेड़ उगते हों। इन पेड़ों की पत्तियां रेशमी कीड़ों का भोजन है।

इल्लियां ख़ास इमारतों में, और कभी कभी घरों और शेडों में पाली जाती हैं। वसंत ऋतु में टारपुलीन की ताक़ों वाले ख़ास स्टैंडों या उभड़ी हुई पटियों वाली मेज़ों पर काग़ज़ फैलाया जाता है और रेशमी कीड़ों के अंडे इन काग़ज़ों पर फैला दिये जाते हैं। अंडों के सेये जाने पर जब इल्लियां पैदा होती हैं तो उन्हें पहले शहतूत की पत्तियों के टुकड़े और बाद में पूरी पत्तियां खिलायी जाती हैं। स्टैंडों को साफ़ करते समय इल्लियों को टहनियों और पत्तियों के सहारे वहां से हटाया जाता है। ध्यान रहे कि इल्लियों को हाथ से नहीं छूना चाहिए।

इल्लियां जल्दी जल्दी बड़ी होती हैं और कई बार उनका निर्मोचन होता है। हर निर्मोचन के पहले ये निश्चेष्ट हो जाती हैं और कुछ खाती नहीं। रेशमी कीट-पालकों के शब्दों में, वे 'सो जाती है'।

डिंभों के दिखाई देने के लगभग एक महीने बाद सूखी टहनियों के गुच्छे या कोआधारी स्टैंडों पर रख दिये जाते हैं। वयस्क इल्लियां टहनियों पर चढ़कर वहां अपने कोए बुन लेती हैं जो शीघ्र ही प्यूपा में परिवर्तित होते हैं।

नियमतः अंडे विशेष संवर्द्धन-केंद्रों में पैदा किये जाते है। यहां प्यूपा मारे नहीं जाते बल्कि उन्हें शलभों में परिवर्द्धित होने दिया जाता है। जिनमें से

वयस्क कीट निकलते हैं वे कोए रेशम उत्पादन के काम में नहीं आते। ये शलभ शायद ही उड़ सकते हैं – गुलामी की ज़िंदगी काटते हुए उनके पुरखों की शरीर-रचना में जो हेरफेर हुआ उसी का यह परिणाम है। शलभ बहुत बड़ी संख्या में अंडे देते हैं जो संवर्द्धन-केंद्रों द्वारा कोलखोज़ों में भेज दिये जाते हैं।

चीनी बलूत के रेशमी कीड़े (रंगीन चित्र ८) का भी रेशम-उत्पादन की दृष्टि से पालन किया जाता है। इसकी इल्लियां बलूत की पत्तियां खाकर रहती हैं और टसर नामक बढ़िया रेशम देती हैं। रूस के केंद्रीय प्रदेशों में इस रेशमी कीड़े का संवर्द्धन किया जा सकता है।

प्रश्न – १. शहतूत के रेशमी कीड़े का परिवर्द्धन कैसे होता है? २. कोए प्राप्त करने के लिए इल्लियों को कैसे पाला जाता है?

व्यावहारिक अभ्यास – १. यदि तुम्हारे इलाक़े में रेशमी कीड़ों का संवर्द्धन किया जाता हो तो संवर्द्धन-केन्द्र से कुछ अंडे और शहतूत के रेशमी कीड़े के पालन के संबंध में आवश्यक सूचना प्राप्त कर लो। गरमियों में इल्लियों का पालन करो। शहतूत के रेशमी कीड़े का परिवर्द्धन दिखानेवाला एक संग्रह तैयार करो। २. यदि तुम उत्तर में रहते हों तो चीनी बलूत के रेशमी कीड़े के कोए या अंडे प्राप्त कर लो। इनकी इल्लियों को बलूत और बर्च दोनों पेड़ों की पत्तियां खिलाकर देखो। शलभों के परिवर्द्धन का निरीक्षण करो और उसके संबंध में एक संग्रह तैयार करो।

§ ३४. मधुमक्खी परिवार का जीवन

मधुमक्खी कुल

मधुमक्खी-घरों में मधुमक्खियां परिवारों में रहती हैं। इनमें से लंबे, संकुचित उदरवाली सबसे बड़ी मधुमक्खी रानी (आकृति ६१) कहलाती है। यह अंडे देती है। परिवार में नर भी होते हैं। इन मध्यम आकार की मधुमक्खियों के सिर के एकदम ऊपर दो बड़ी बड़ी आंखें होती है। ये इतनी पास पास होती हैं कि एक दूसरी को छूती ही हैं।

परिवार में मज़दूर मधुमक्खियों की ही भरमार रहती है जिनकी संख्या ५०,००० या इससे भी अधिक होती है। इनका आकार रानी मक्खी से छोटा

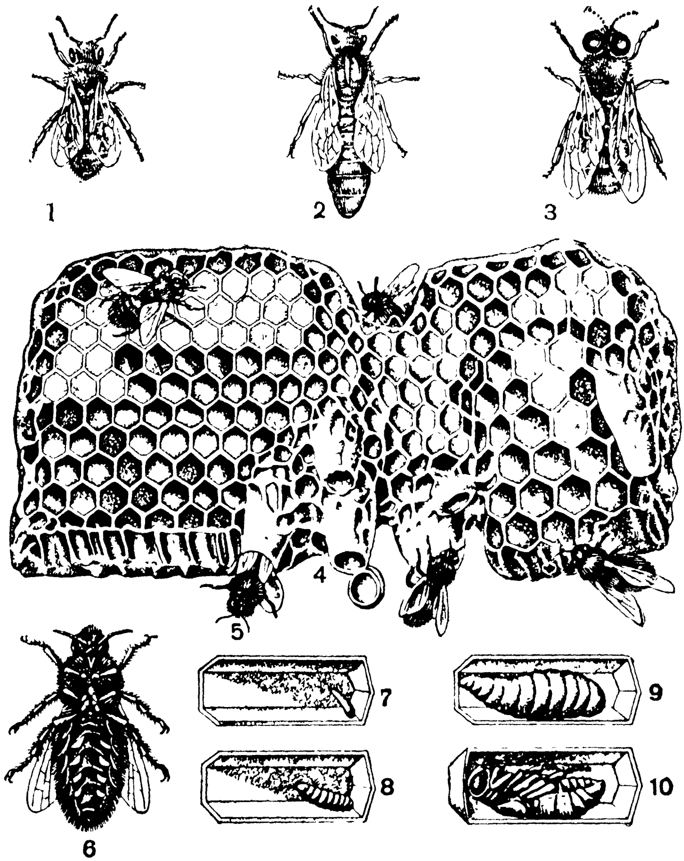

आकृति ६१ – मधुमक्खियां और उनका परिवर्द्धन
१ (1). मज़दूर मधुमक्खी; २(2). रानी; ३ (3). नर; ४(4).छत्ते में रानी का ख़ाना; ५(5). रानी का उदय; ६ (6). उदर की ओर से मजदूर मक्खी (बिना बालों के स्थान नोट करो); ७,८,९ (7,8,9). विभिन्न अवस्थाओं के डिंभ; १०(10). ख़ाने में स्थित प्यूपा।

होता है और वे अपरिवर्द्धित मादा होती हैं। मज़दूर मधुमक्खियां डिंभों की देखभाल करती हैं, उन्हें खिलाती हैं, छत्ते बनाती हैं, सारे परिवार के लिए खाना ले आती हैं और मधुमक्खी-घर की रक्षा करती हैं।

मधुमक्खियों का परिवर्द्धन

मोम के छत्ते की जांच करने से पता चलता है कि उसके छ:कोने ख़ाने एक आकार के नहीं होते। सबसे छोटे ख़ाने मज़दूर मक्खियों के होते हैं और बड़े—नरों के। बलूत के फल की शक्लवाले सबसे बड़े ख़ानों में रानी मक्खियों का परिवर्द्धन होता है। रानी असेचित अंडे नरों के ख़ानों में और संसेचित अंडे दूसरे ख़ानों में देती है। जो ख़ाने बच्चों के पालन के काम में नहीं आते उनमें भोजन (शहद और पुष्प-पराग) का भंडार रहता है।

ख़ानों में अंडों से सफ़ेद डिंभ निकलते हैं जिनके पैर नहीं होते। सभी डिंभों को उनके जीवन के प्रारंभिक दिनों में एक बहुत ही पोषक पदार्थ खिलाया जाता है जो मज़दूर मक्खियों की विशेष ग्रंथियों से चूता है। बाद में छोटे और मध्यम आकार के ख़ानों में पलनेवाले डिंभों को पराग और शहद खिलाना शुरू होता है। रानीवाले ख़ाने में स्थित डिंभ को उपर्युक्त तरल पदार्थ भरपेट मिलता रहता है। यह डिंभ जल्दी जल्दी बढ़ता है, उसका आकार दूसरे डिंभों से बड़ा होता है और फिर वह प्यूपा में परिवर्तित होता है। इस प्रकार ख़ानों के आकार और डिंभों के आहार के अनुसार संसेचित अंडे परिवर्द्धित होकर या तो मज़दूर मक्खियां बनते हैं या तो रानी।

अवस्था के साथ मज़दूर मधुमक्खियों की गतिविधि में परिवर्तन

रानी का भोजन चुम्रानेवाली ग्रंथियां जवान मधुमक्खियों में अधिक अच्छी तरह काम करती हैं। इसी कारण जवान मज़दूर मक्खियां डिंभों के लिए 'दूध पिलानेवाली दाइयां' का काम देती हैं और मधुमक्खी-घर से बाहर नहीं जाती। बच्चों को खिलाने के अलावा वे ख़ानों की सफ़ाई करती हैं और संग्राहक-मक्खियों से पुष्प-रस की सप्लाई प्राप्त करती हैं। बाद में मज़दूर मक्खियां 'पहरेदारों की ड्यूटी' पर तैनात होती हैं और विभिन्न शत्रुओं से मधुमक्खी-घर की रक्षा करती है। मज़दूर मक्खी के उदर के पिछले सिरे पर एक पीछे खिंचनेवाला डंक होता है जिसमें बहुत ही कठिन दांतेदार काइटिनीय सूइयां होती हैं। अपना उदर अपने ही नीचे झुकाकर मधुमक्खी दूसरे प्राणियों को डंक मारती है और डंक की ग्रंथि से निकलनेवाला दाहक द्रव घाव में छोड़ देती है।

कुछ और समय बाद मज़दूर मक्खियां संग्राहक-मक्खियां बन जाती हैं। वे खेतों, चरागाहों और फलबागों की सैर करने लगती हैं। एक फूल से उड़कर दूसरे फूल के पास जाती हुई वे उसके पुष्प-रस को चूसकर अपनी ग्रसिका के एक उभाड़ में अर्थात् मधु-कोष में संगृहीत कर लेती हैं। छत्ते को लौट आकर वे मधु-कोष में संचित पुष्प-रस मोम के ख़ानों में छोड़ देती हैं। यहां पुष्प-रस गाढ़ा बनता हुआ शहद में परिवर्तित होता है। सारे परिवार के लिए यह शर्करामय भोजन का बढ़िया संचय होता है।

संग्राहक-मक्खी मधुदायी पौधों वाले इलाक़े से जब लौटती है तो बड़ी उत्तेजना में होती है। वह छत्तों का चक्कर काटती रहती है और इस प्रकार अन्य मधुमक्खियों का ध्यान खींच लेती है। जब यह संग्राहिका उड़कर छत्ते से बाहर जाती है तो दूसरी मधुमक्खियां उसके पीछे पीछे उस स्थान तक जाती हैं जहां मधुदायी पौधे पाये गये हों।

पौधे मज़दूर मक्खियों को पराग भी देते हैं। यह एक ऐल्ब्यूमेन युक्त भोजन है जिसे मधुमक्खियां अपने जबड़ों से खरोंचकर बटोर लेती हैं और अपनी लार से नम कर देती हैं। अपने शरीर पर पड़े हुए पराग को मधुमक्खियां ब्रशों से साफ़ कर देती हैं। उनके पिछले पैरों के फैले हुए वृत्तखंडों पर बालों की क़तारें होती हैं। यही उनके ब्रश हैं (आकृति ६२)। वे पराग के लड्डू बनाकर टोकरियों अर्थात् पिछले पैरों पर स्थित नन्हे नन्हे गड्ढों में इकट्ठे कर लेती है। यहां पराग की गोलियां बनकर तैयार होती हैं जिन्हें वे मधुमक्खी-घर की ओर ले जाती हैं।

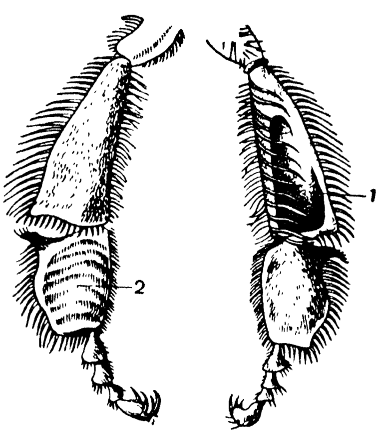

आकृति ६२ – मधुमक्खी का पिछला पैर (बायें – अंदर की ओर से, दायें – बाहर की ओर से)
१(1). टोकरी; २(2). ब्रश।

मधुमक्खी के उदर की निचली सतह पर बिना बालों के नरम स्थान होते हैं (आकृति ६१)। ये स्थान जैसे उदर के पास पासवाले वृत्तखंडों के बीच की

छोटी छोटी जेबों में स्थित होते हैं। इन स्थानों पर बहुत ही पतली और पीले रंग की परतों के रूप में मोम रसता है धीरे धीरे ये परतें मोटी होती जाती हैं। जब काफ़ी मोम रसता है तो मधुमक्खी उसे अपने पैरों से हटा लेती है। फिर अपने ऊपरी जबड़ों का राजगीर की करनी की तरह उपयोग करते हुए वह इस मोम से छत्ते के खाने बनाने लगती है। आम तौर पर मधुमक्खियों की बड़ी भारी संख्या इस काम में लगी रहती है।

डिंभों को खिलाना, मधुमक्खी-घर की रक्षा, पुष्प-रस का संचय, खानों का निर्माण यानी मजदूर मक्खियों के सारे काम सचेतन रूप में होते हुए से लगते हैं। पर वस्तुतः, जैसा कि वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है, वे सहज प्रवृत्तियों के फल होते हैं। सहज प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति अवस्था के साथ मधुमक्खी के शरीर में होनेवाले परिवर्तनों से संबद्ध है।

क्या कीटों में बुद्धि होती है?

मधुमक्खियों के जटिल, हेतुपूर्ण बरताव ने वैज्ञानिकों को अक्सर यह मानने को मजबूर किया कि कीट बुद्धिमान् प्राणी होते हैं। काफ़ी समय तक वैज्ञानिक क्षेत्र में चर्चा जारी रही कि मधुमक्खियों में बुद्धि होती है या नहीं? इस प्रश्न का निश्चित उत्तर पिछली शताब्दी के मध्य में फ़्रांसीसी वैज्ञानिक जीन हेनरी फ़ाब्र द्वारा कैलिकोडोम नामक जंगली मधुमक्खियों पर किये गये प्रयोगों से प्राप्त हुआ।

कैलिकोडोम बड़ी मधुमक्खियां होती हैं जिनके गहरे जामुनी रंग के जालीदार पंख होते हैं और मख़मली काले रंग का शरीर। वे अपने सीमेंट के खाने मधुमक्खी-घर में नहीं बल्कि सीधे ऐसी खुली चट्टानों पर बनाती हैं जो धूप में काफ़ी तपती हों। उनका निर्माण का सामान पाउडर के रूप में मिट्टी और चूने का एक मिश्रण होता है जिसमें मधुमक्खी की लार की सहायता से नमी आती है। यह हवा के संपर्क में आते ही आते सूख जाता है और खानों की मज़बूत सीमेंटदार दीवालों में परिवर्तित होता है। इन्ही खानो में कैलिकोडोम के डिंभ पलते हैं।

फ़ाब्र का एक प्रयोग इस प्रकार था – इस वैज्ञानिक को ऐसी दो चट्टानें मिलीं जिनपर कैलिकोडोम के घोंसले बने हुए थे। घोंसलों के सीलवंद खानों से शीघ्र ही छोटी छोटी मधुमक्खियां निकलनेवाली थीं। फ़ाब्र ने इनमें से एक घोंसले पर

रैपिंग पेपर का एक टुकड़ा इस तरह चिपका दिया कि वह खानों की सीमेंटदार दीवाल से मजबूती से सटा रहे। दूसरे घोंसले पर उसने उसी काग़ज़ की एक छोटी-सी टोपी बनाकर चट्टान के आधार से चिपका दी। दोनों मामलों में खानों से निकलनेवाली छोटी मधुमक्खियों को एक दोहरा काम करना था – खाने की सीमेंटदार दीवाल को और फिर कागज़ की परत को कुतरकर बाहर आना। फ़र्क़ इतना ही था कि दूसरे घोंसले के मामले में कागज़ की आड़ और सीमेंट के बीच कुछ ख़ाली जगह रखी गयी थी।

यह सब करने के बाद फ़ाब्र यह देखता रहा कि दोनों घोंसलों के खानों में से छोटी मधुमक्खियां किस प्रकार बाहर आती हैं। उसने देखा कि हर घोंसले की मधुमक्खियों का बरताव भिन्न रहा। पहले घोंसले की मधुमक्खियां अपने दोहरे आवरण को कुतरकर आसानी से बाहर आयीं, जबकि दूसरे घोंसले की मधुमक्खियां सीमेंट की सख़्त दीवाल को कुतरकर तो आसानी से बाहर आयीं पर कागज़ की पतली-सी आड़ को कुतरकर उसमें से घुस निकलने का उन्होंने प्रयत्न तक नही किया। जैसा कि फ़ाब्र का कहना है, वे सब की सब "रत्ती-भर भी विचार-शक्ति न होने के कारण" मर गयीं।

फ़ाब्र के इस प्रयोग से और जंगली कैलिकोडोमों तथा अन्य कीटों पर किये गये उनके दूसरे प्रयोगों से यह निश्चयपूर्वक बताना संभव हुआ है कि कीटों का सहज प्रवृत्त बरताव न तो बुद्धिपूर्ण होता है और न सचेतन ही। अन्य प्राणियों की तरह उनमें भी मानवीय बुद्धि का अस्तित्व नहीं माना जा सकता।

प्रश्न – १. मधुमक्खी के परिवार में कितने प्रकार की मक्खियां होती हैं और हर प्रकार की मक्खी क्या क्या काम करती है? २. मधुमक्खी का परिवर्द्धन कैसे होता है? ३. कौनसी परिस्थितियों में अंडों से रानी, नर और मज़दूर मधुमक्खियां निकलती हैं? ४. पौधों के परागीकरण और भोजन के संग्रह से मधुमक्खियों की कौनसी विशेषताएं संबद्ध है? ५. क्या कीटों का बरताव सचेतन होता है?

व्यावहारिक अभ्यास – १. गरमियों के मौसम में देखो मधुमक्खियां किस प्रकार पुष्प-रस और पराग इकट्ठा करती हैं। २. मधुदायी पौधों का एक संग्रह बना लो।

§ ३५. मधुमक्खी-पालन

मधुमक्खियों के छत्ते

बहुत प्राचीन काल से स्लाव लोगों को जंगली मधुमक्खियों के पालन का विचार सूझा और वे उन्हें कृत्रिम खोंडरों में रखने लगे। शुरू शुरू में मधुमक्खी-घरों का काम बीच में पोले किये गये पेड़ों के तनों के हिस्सों से लिया जाता था। इनमें तल, छप्पर और प्रवेश-द्वार की व्यवस्था की जाती थी। ये खोंडर उपयोग की दृष्टि से बहुत ही असुविधाजनक थे। शहद और मोम प्राप्त करने के लिए मधुमक्खियों को मार डालना पड़ता था।

अलग की जा सकनेवाली चौखटों वाले छत्तों (आकृति ६३) की खोज ने मधुमक्खी-पालन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण क्रांति ही कर डाली। चौखटें आसानी से अलग की जा सकती हैं और बिना किसी कठिनाई के शहद निचोड़ लिया जा सकता है।

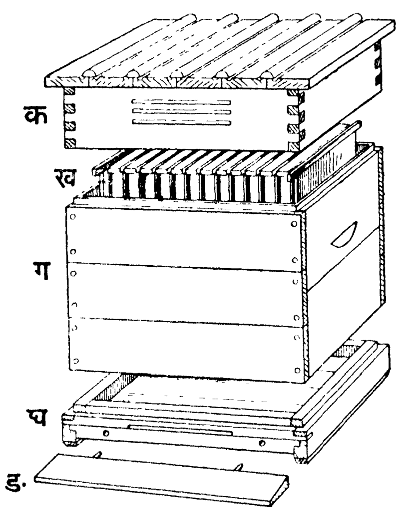

आकृति ६३ – अलग किया जा सकनेवाला मधुमक्खी-घर
क – छप्पर; ख – चौखटें; ग – ढांचा; घ – तल; ङ – मक्खियों के उतरने का तख़्ता।

मधुमक्खी-पालन

मधुमक्खी-पालन में मक्खियों के परिवार और चौखटों की बराबर देखभाल, मधुमक्खी-घरों की सफ़ाई, पुराने छत्तों को हटाना इत्यादि बातें शामिल हैं। यदि जाड़ों में छत्ते में रखा हुआ सारा भोजन खाया जा चुका हो और मक्खियों का परिवार कमज़ोर हो गया हो तो छत्ते में चौखट के ऊपर ख़ुराक की एक ताक़ रख दी जाती है जिसमें शहद या चाशनी डालते हैं। जाड़ों में जिन परिवारों की बहुत-सी मधुमक्खियां मर जाती हैं उन परिवारों को एकत्र कर दिया जाता है और

गरमियों में जो परिवार बहुत बड़े हो जाते हैं उन्हें विभक्त कर दिया जाता है।

मधुमक्खी-पालक सिर पर एक रक्षक जाली ओढ़ते हैं और एक धूम्र-पात्र का उपयोग करते हैं। यदि धूम्र-पात्र से धुएं का प्रवाह छत्ते में छोड़ दिया जाये तो मक्खियां छत्तों में से शहद इकट्ठा करना शुरू करती हैं और मनुष्य की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखतीं। छत्ते के पास साफ़ कपड़े पहनकर जाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पसीने की गंध मधुमक्खियों को उत्तेजित कर देती है।

पुंज रानी 'महल' छोड़ने से पहले जवान रानी गुंजार करने लगती है। बूढ़ी रानी इसका जवाब देती है। मधुमक्खी-पालक यह 'संगीत' सुनने के लिए बड़े उत्सुक रहते हैं। बूढ़ी रानी जवान रानी के 'महल' पर डंक मार मारकर उसे मार डालने की कोशिश करती है। मज़दूर मक्खियां उसे रोक डालने की कोशिश करती हैं और उत्तेजित होकर वे भी गुनगुन शुरू कर देती हैं।

आकृति ६४ – मधुमक्खियों का पुंज।

यदि बूढ़ी रानी जवान रानी को मार डालने में असफल रही तो वह कुछ मधुमक्खियों को साथ लिये उस छत्ते को छोड़कर चली जाती है। आसपास ही किसी पेड़ की शाखा पर यह रानी उतर आती है। बाक़ी मधुमक्खियां उसके चारों ओर ठसाठस भीड़ या पुंज (आकृति ६४) लगाये खड़ी रहती हैं। यदि इस पुंज को पकड़कर ख़ाली मधुमक्खी-घर में रख दिया जाये तो मधुमक्खी-पालन-केंद्र में एक नया परिवार बसता है। यदि यह अवसर हाथ से चला गया तो मधुमक्खियां पुराने खोंडर आदि जैसी सुविधाजनक जगह ढूंढकर वहां अपना कुनबा बसाती हैं।

आम तौर पर मधुमक्खी-पालक पुज के बाहर उड़ आने की प्रतीक्षा नहीं करते बल्कि कृत्रिम रीति से पुंज बनाने का तरीक़ा अपनाते हैं। शाम को जब सारी मधुमक्खियां घर पर होती हैं उस समय रानी के साथ कुछ मक्खियां और आधी चौखटें वहां से निकालकर ख़ाली मधुमक्खी-घर में रख दी जाती हैं। पुराने मधुमक्खी-घर में रानी-महल सहित एक चौखटा रह जाता है। वहां नयी रानी का राज शुरू होता है। इस हालत में पुंज उड़कर बाहर नहीं आता जबकि पालन-केंद्र के परिवारों की संख्या बढ़ जाती है।

परागीकरण के लिए मधुमक्खियों का उपयोग

फूलों के यहां मेहमानी करते समय मधुमक्खियां पौधों का परागीकरण करती हैं। इससे मनुष्य को शहद और मोम से अधिक लाभ मिलता है। अतः मधुमक्खी-पालक अक्सर फ़सल की वृद्धि के लिए पालन-केंद्र रखते हैं। मधुदायी पौधों की बहार के समय छत्ते खेतों में ले जाये जाते हैं।

जिनका परागीकरण करना है उन पौधों की ओर मधुमक्खियों को आकृष्ट किया जा सकता है। इसके लिए चाशनी का एक बरतन मधुमक्खी-घर में चौखटों के ऊपर रख दिया जाता है। पहले इस चाशनी में उन पौधों के फूल डालकर सुगंधित काढ़ा बनाया जाता है जिनका परागीकरण करना है। इस चाशनी की चाट लगी हुई मधुमक्खियां उसी सुगंध के फूल ढूढने लगती हैं। इस तरीक़े से परागीकरण और उपयुक्त पौधों की फ़सल सुधारी जा सकती है। इसके अलावा इससे छत्तों में शहद का संचय भी बढ़ता है।

प्रश्न – १. मधुमक्खियों का संवर्द्धन कैसे किया जाता है? २. मधुमक्खियों की सहायता से हम फ़सल किस प्रकार बढ़ा सकते हैं?

व्यावहारिक अभ्यास – १. सेब, नाशपाती, बर्ड-चेरी, लिलैक इत्यादि कीट-परागीकृत पेड़-पौधों की कलियों का खिलना शुरू होने से पहले एक टहनी के चारों ओर जालीदार कपड़ा बांध दो ताकि कीट उन फूलों के पास न आ सकें। देखो इस टहनी में फल लगते हैं या नहीं। २. गरमियों में मधुमक्खी-पालन-केंद्र में जाकर मधुमक्खी-पालक के काम का निरीक्षण करो।

§ ३६. भारत का कीट-संसार

भारत के कीट

भारत में ऐसे बहुत-से कीट हैं जो अन्य देशों में नहीं पाये जाते। उनमें से कुछ तो बहुत ही सुंदर होते हैं–उदाहरणार्थ नीबू की तितली जिसके चौड़े, मज़बूत पंख होते हैं और नन्ही-सी अबाबीली पूंछ। उष्णकटिबंधीय समृद्ध वनस्पति संसार में विचरनेवाली ये तितलियां सुंदरता में अक्सर फूलों से भी इक्कीस रहती हैं। भारत के बीटल भी तितलियों से उन्नीस नहीं हैं। उदाहरणार्थ दमकीला सुवर्ण बीटल बुप्रेस्टिस और चमकीला सेटोनिया बीटल। बारहसिंगा बीटल और गेंडा बीटल जैसे कुछ भारतीय कीट तो आश्चर्यजनक रूप में बड़े होते हैं। वहां ज़ोरों से झनकारते हुए कई झींगुर बड़ी भारी संख्या में मिलते हैं। रात में आसमान जगमगाते जुगनुओं से भरा रहता है। कुछ कीटों का आकार-प्रकार बड़ा विचित्र होता है। उदाहरणार्थ, यष्टिका कीट की शकल टहनी जैसी होती है तो पर्ण कीट के पंख पेड़ की पत्तियों के समान होते हैं; गांगिलस गांगिलाउस के पैरों और सीने पर के उभाड़ भी पत्तियों-से लगते हैं (आकृति ६५)।

भारत में बहुत-से उपयुक्त कीट पाये जाते है। मधुमक्खियों और रेशमी कीड़ों के अलावा भारतीय लोग सफलतापूर्वक शल्की कीटों का भी पालन करते हैं।

शल्की कीट नन्हे नन्हे प्राणी होते हैं जो वयस्कता में पूर्णतया गतिहीन होते हैं। ग़ैरजानकार व्यक्ति शायद ही विश्वास करेगा कि ये जीवित है। मादा शल्की कीट अपनी सूडें पौधे में गड़ाकर उसका रस बिल्कुल बिना रुके चूस लेती है। इस कारण वे लगभग अपना सारा जीवन एक स्थान में बिताती हैं। यहीं वे पैदा होती हैं और यही मर जाती हैं। मोमिया कीट के शरीर से मोम के शल्क रसते हैं और वे उसके शरीर पर बढ़ते हैं। ये शल्क इकट्ठे किये जाते हैं और उनसे तथाकथित सफ़ेद मोम बनाया जाता है जो दवाएं बनाने और पत्थर तथा लकड़ी

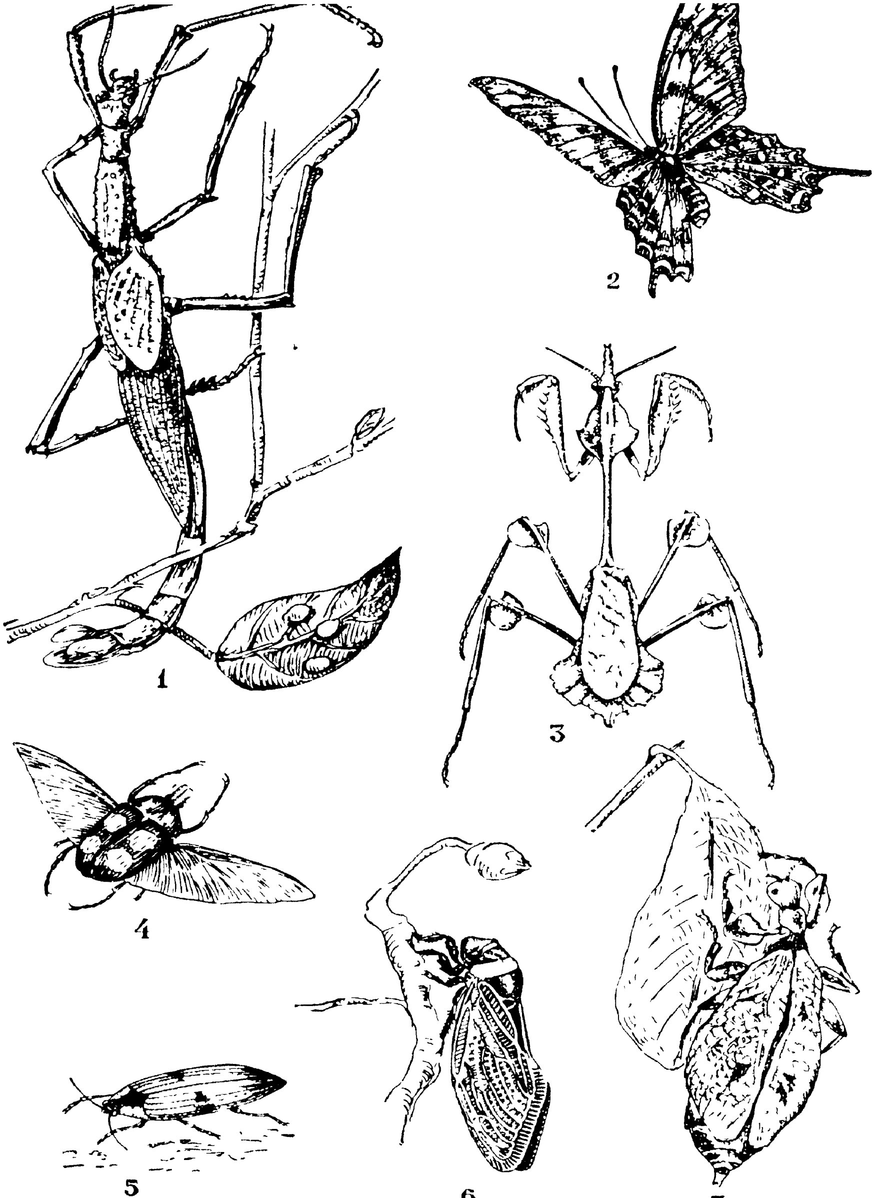

आकृति ६५ — भारत का कीट-संसार

१ (1) साइफोक्रेनिया गिगास ; २ (2). पेपीलियो हेक्टर ; ३ (3). गांगिलस गांगिलाउस ; ४ (4). लुम्नोस रुकेरी ५ (5). कैटोक्सान्था रूगीकोल्ले ; ६ (6). पाम्पोनिया एम्पेराटोरिया ; ७ (7). प्जूलियम।

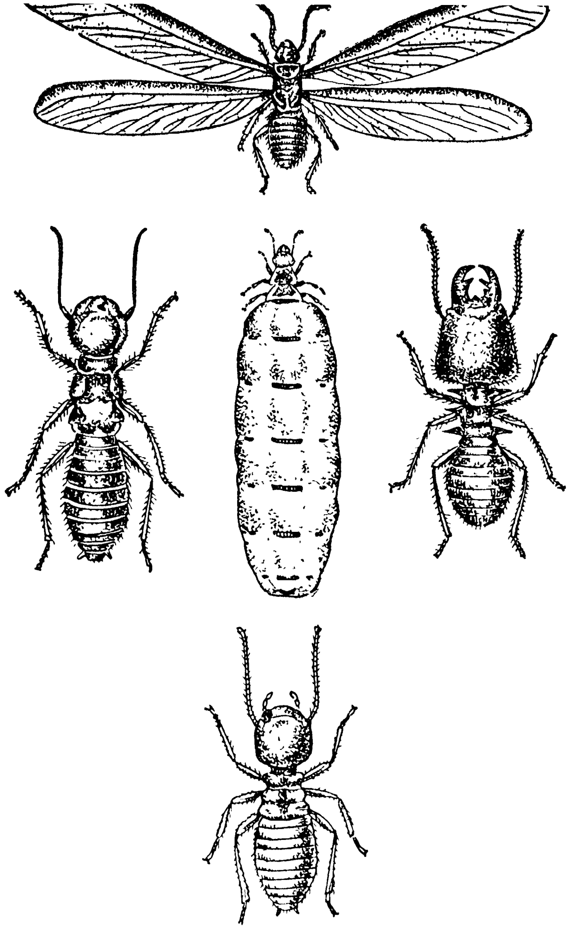

आकृति ६६ – दीमक।

की पालिश करने के काम में आता है। लाक्षा-कीट के स्राव से लाख बनाते हैं जिसका उपयोग क़ीमती वार्निशों के उत्पादन में किया जाता है।

मलेरिया के मच्छर और गरम आबोहवावाले देशों में शीघ्रता से बढ़नेवाले अन्य रक्तशोषक कीड़े-मकोड़े बीमारियों के फैलाव में सहायक होते हैं। इसके अलावा कई कीट खेती के लिए बड़े नुक़सानदेह होते हैं।

भारत के कई कीट जंगलों को नुक़सान पहुंचाते हैं। इसका एक उदाहरण हरकुलस बीटल है। इसका बड़ा और मोटा-सा डिंभ काकचेफ़र के डिंभ से मिलता-जुलता होता है और अक्सर नारियल के पेड़ों के तनों को भारी नुक़सान पहुंचाता है।

भारत में उगाये जानेवाले खट्टे फलों के पेड़ों को विभिन्न कीटों और तितलियों के डिंभ हानि पहुंचाते हैं। खट्टे फलों का रस चूसनेवाले नन्हे नन्हे शलभ और नीबू की बड़ी और खूबसूरत तितली इसके उदाहरण हैं।

दीमक (आकृति ६६) तो भारत के मकानों के लिए एक सचमुच भयंकर अभिशाप हैं। ये अपना अधिकतर जीवन बड़े बड़े परिवारों के रूप में ज़मीन के अंदर बांबियों में बिताती हैं। परिवार में एक रानी, नर, बहुत-से मज़दूर और सिपाही होते हैं। रानी एक विशाल उदरवाली बड़ी-सी मादा होती है। मादा अत्यंत बहुप्रसू होती है और लगभग १० वर्ष के अपने जीवन-काल में दस करोड़ अंडे देती है। मज़दूर, रानी और बच्चों का पालन-पोषण करते हैं। सिपाही-दीमकों के सुपरिवर्द्धित मज़बूत जबड़े होते हैं। ये सिपाही बांबी की रक्षा करते हैं। बांबी में जवान नर-मादाओं के इकट्ठा होने के बाद उनके पुंज बनते हैं। इस समय बांबी की मिट्टी की दीवार टूट जाती है। सूराख़ों में पहले पहल रक्षक दिखाई देते हैं और फिर एक के बाद एक नर और मादा। वे इतनी बड़ी संख्या में बाहर पड़ते हैं कि दूर से दीमकों का यह पुंज नन्हे नन्हे रुपहली पंखों के कारण चमकनेवाली धूम्र-रेखा-सा लगता है।

पुंजीभवन के बाद नर-मादा ज़मीन पर गिरते हैं और अपने पंख खा जाते हैं। अब हर जोड़ा ज़मीन में सूराख़ खोदकर एक नयी बांबी की नींव डालता है। जब दीमकें ज़मीन पर रेंगती रहती हैं उन्हें छिपकलियां, पंछी और दूसरे दुश्मन चट कर जाते हैं।

दीमकें भोजन के लिए रात में बाहर निकलती हैं। आदमियों के अनजाने में वे मकानों के लकड़ी के हिस्सों, टेलेग्राफ़ के खंभों, रेलवे के स्लीपरों और लट्ठों को खोद-खरोंचकर खोखला बना देती हैं। कभी कभी तो वे पूरे के पूरे मकान को ढेर कर देती हैं। दीमकें ऊन, चमड़ा और कपड़ा भी खा जाती हैं।

भारत के बहुत-से कीट खेती को बड़ी हानि पहुंचाते हैं। उदाहरणार्थ स्वार्मिंग कैटरपिलर (आकृति ६७) धान का नाश करती हैं। ये इल्लियां धान की पत्तियां खा

आकृति ६७ – स्वार्मिंग कैटरपिलर।

डालती हैं और बहुत बड़ी संख्या में उनके नवांकुरों पर धावा बोल देती हैं। दिन में वे ज़मीन की दरारों में छिपी रहती हैं और रात में भोजन के लिए बाहर आती हैं। इस कारण वे कभी कभी तो सारी की सारी फ़सल बरबाद कर देती हैं और किसान को कानों ख़बर नहीं होती। धान को बाद की अवस्था में स्कोकनोलिस बिपन्स्टिफ़ायर और भी गंभीर हानि पहुंचाती है (आकृति ६८)। ये धान की डंडियों में रहती हैं और अंदर ही अंदर उन्हें खाती जाती हैं। डंडी के निचले हिस्से में इनके प्यूपा बनते हैं। झींगुरिया छछूंदर (आकृति ६९) अक्सर धान की जड़ों को बरबाद कर डालते हैं। यह ज़मीन में घुसकर सूराख़ बनाता है। अपने चौड़े अगले पैरों का उपयोग करते हुए वे बड़ी तेज़ी के साथ ज़मीन में सुरंगें बनाते हैं और पौधों को नुक़सान पहुंचाते हैं। कई क़िस्मों की टिड्डियां भी धान तथा दूसरे अनाजों को नष्ट कर देती हैं।

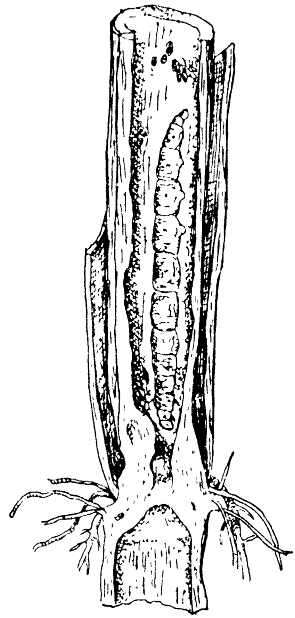

आकृति ६८ – स्कोकनोलिस बिपन्स्टिफ़ायर।

हानिकर कीटों से धान के खेतों की रक्षा करने के लिए फ़सल कटाई के फ़ौरन बाद उन्हें फिर से जोतना चाहिए और काफ़ी देर तक पानी के नीचे रखना चाहिए। इस काम में बत्तख़ों का भी उपयोग किया जा सकता है। ये बेहद पेटू जीव कीटों को बड़ी भारी संख्या में खा डालते हैं। हानिकर कीटों के लिए भोजन का काम देनेवाले मोथों को नष्ट कर देना भी महत्त्वपूर्ण है। कई कीटों को डी० डी० टी० पाउडर की सहायता से सफलतापूर्वक नष्ट किया जा सकता है।

भारत के दूसरे क़ीमती पौधों को भी तरह तरह के हानिकर कीटों से नुक़सान पहुंचता है। चाय शलभ चाय बग़ानों को बरबाद कर देता है। छोटे छोटे समूहों में बसते हुए ये शलभ चाय की पत्तियों में सुरंगें बना डालते हैं और उन्हें इस हद तक दूषित कर देते हैं कि वे आख़िर किसी काम की नहीं रहतीं।

धान की तरह ऊख की फ़सल को भी डंठल-खोर कीट नुक़सान पहुंचाते हैं।

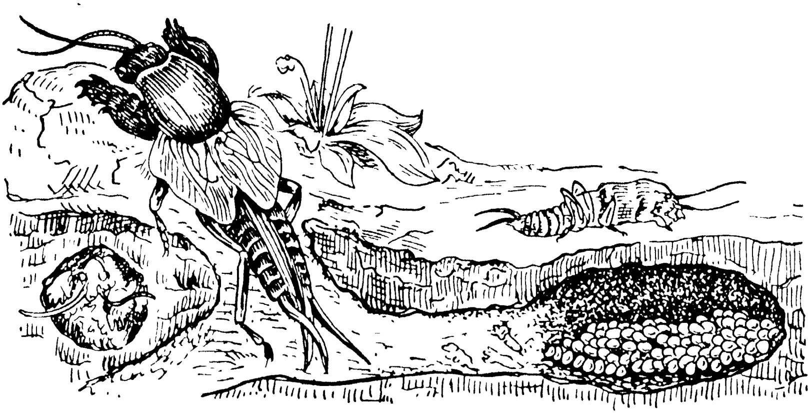

आकृति ६९ – झींगुरिया छछूंदर।

गुलाबी डोड़ा कृमि कपास का सबसे ख़तरनाक दुश्मन है। कपास के डोड़े में घुसकर यह रेशों और बिनौलों को खा जाता है। बिनौलों में जोकि आम तौर पर जोड़ों के रूप में होते हैं, यह इल्ली प्यूपा में परिवर्तित होती है। भारत में ये कपास की कुल फ़सल के एक चौथाई हिस्से को बरबाद कर देती हैं। डोड़ों में होते हुए इन इल्लियों को मार डालना बहुत कठिन है। उन्हें तभी मार डालना चाहिए जब वे बिनौलों में होती हैं। इस काम के लिए बिनौलों को बंद जगह में विषैली गैसों या ऊंचे तापमान में रखा जाता है। फ़सल कटाई के बाद खेतों में जो इल्लियों सहित डोड़े बिखरे रहते हैं उनका उपयोग चारे के रूप में करना चाहिए। ऐसे खेतों में चरते हुए जानवर इन्हे खा लेते है या पैरों तले कुचल डालते हैं। बची हुई इल्लियां दोहरी जुताई के समय आंशिक रूप में मारी जाती हैं।

प्रश्न – १. लाक्षा-कीट किस प्रकार उपयोगी है? २. खट्टे फलों के वृक्षों को कौनसे कीट नुक़सान पहुंचाते है? ३. दीमकों को हानिकर कीट क्यों मानते हैं? ४. धान बोये गये खेतों को कौनसे कीट हानि पहुंचाते हैं? ५. गुलाबी डोड़ा कृमि के खिलाफ़ क्या कार्रवाइयां की जाती है?

रीढ़धारी

प्राणियों में सबसे अधिक संगठित रीढ़धारी या कशेरुक दंडी होते हैं। इन्हें यह नाम इसलिए दिया गया कि उनकी रीढ़ पृथक् कशेरुकों की बनी हुई होती है। कशेरुक दंडियों में निम्नलिखित वर्ग शामिल है – मछली, जल-स्थलचर, उरग (रेंगनेवाले), पंछी, स्तनधारी।

अध्याय ६

मछली वर्ग

§ ३७. ताज़े पानी की पर्च-मछली की जीवन-प्रणाली और बाह्य लक्षण

गति

मछलियों की संरचना और जीवन से परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से हम ताज़े पानी की पर्च-मछली (रंगीन चित्र ४) की जांच करेंगे। पर्च-मछली नदियों और झीलों में रहती है। जीवन के लिए आवश्यक सभी स्थितियां उसे यहां उपलब्ध होती हैं। जैसे – ताजा पानी, भोजन, श्वसन के लिए आॅक्सीजन, जनन के लिए अनुकूल स्थान।

पर्च-मछली बड़ी तेज़ी के साथ और अच्छी तरह तैर सकती है। हवा की अपेक्षा पानी मे चलना कही अधिक कठिन होता है क्योंकि पानी हवा से अधिक सघन होता है।

पर्च-मछली की शरीर-रचना पानी में चलने के अनुकूल होती है। दबे हुए पार्श्व, आगे की ओर नुकीले और पीछे की ओर क्रमशः कम चौड़े होते हुए लंबे शरीर के कारण वह आसानी से पानी को काटकर आगे बढ़ती है।

मछली के शरीर के तीन हिस्से होते हैं – सिर, धड़ और पूंछ। सिर मज़बूती के साथ धड़ से जुड़ा हुआ होता है और धड़ का क्रमशः पूंछ में अंत होता

है। पूंछ शरीर का गुदा के पीछे स्थित हिस्सा है। पेशीय पूंछ शरीर की कुल लंबाई की एक तिहाई के बराबर होती है। उसके अंत में मीन-पक्ष होता है। मछली धड़ और पूंछ की लहरदार गति के साथ आगे बढ़ती है। मुड़ने जैसी ज्यादा मुश्किल गतियों और पीठ ऊपर किये रहने की स्थिति में दूसरे मीन-पक्ष उसकी सहायता करते हैं। मीन-पक्ष दो प्रकार के होते हैं। सयुग्म और अयुग्म। पूंछवाले मीन-पक्ष के अलावा अयुग्म मीन-पक्षों में दो पृष्ठीय और एक गुदा स्थित मीन-पक्ष शामिल हैं। सयुग्म मीन-पक्षों में वक्षीय और औदरिक मीन-पक्षों का समावेश है।

मीन-पक्ष छोटी छोटी हड्डियों के बने होते है जो मीन-पक्ष त्रिज्याएं कहलाती हैं। त्रिज्याओं के बीच त्वचा का पतला परदा होता है। पर्च-मछली के अग्रपृष्ठीय मीन-पक्ष में सख्त और तेज़ त्रिज्याएं होती हैं। ये उभरकर मछली को अपने शत्रुओं से बचाव करनेवाले साधनों का काम देती हैं।

पर्च-मछली की त्वचा अस्थि शल्कों से ढंकी रहती है। शल्कों के अगले किनारे त्वचा में धंसे रहते है जबकि उनके पिछले किनारे खपरैल के खपरों की तरह एक के ऊपर एक चढ़े रहते हैं। शल्क शरीर की रक्षा करते हैं और उपर्युक्त रचना के कारण गति में कोई बाधा नही डालते। शल्कों की सतह पर श्लेष्म की एक पतली-सी परत होती है। यह श्लेष्म त्वचा के अंदर स्थित ग्रंथियों से रसता है। श्लेष्म के कारण पानी में शरीर की रगड़ कम हो जाती है।

रंग-रचना

पर्च-मछली का रंग ऊपर की ओर गहरा हरा, बग़लों में काली आड़ी धारियों सहित हल्का हरा और नीचे की ओर पीला-सा सफ़ेद होता है। इससे मछली को पानी में पहचान लेना मुश्किल होता है। ऊपर की ओर तैरनेवाली मछलियों के लिए उसकी गहरे हरे रंग की पीठ गहरे तल से एकरूप दिखाई देती है जबकि पर्च-मछली के नीचे से तैरनेवाली मछलियां सतह की हल्की पृष्ठभूमि पर पर्च का उदर नहीं पहचान पाती। पर्च-मछली के शरीर की बग़लों पर स्थित काली आड़ी धारियां पानी के उन पौधों की छाया की तरह दिखाई देती है जिनके बीच पर्च-मछली आम तौर पर अपने शिकार की घात में छिपी रहती है।

विभिन्न स्थानों की पर्च-मछलियों के रंग अपनी अपनी विशेषताएं लिये होते हैं।

धीरे धीरे बहनेवाली जंगली नदियों में, जिनके तल में काफ़ी धरण और छाड़न होती है और जिनका पानी काला दिखाई देता है, पर्च-मछली का रंग

गहरा होता है। ज़ोरों से बहनेवाली और रेतीले तलों वाली नदियों की पर्च-मछली का रंग काफ़ी हल्का होता है। ग़रज़ यह कि मछली के रंग परिस्थितियों के अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं।

अपने शरीर के रंगों की कृपा से पर्च-मछली चोरी चोरी अपने शिकार तक पहुंच सकती है और बड़ी बड़ी शिकारभक्षी मछलियों की नज़र से बची रह सकती है। इस प्रकार की रंग-रचना संरक्षक रंग-रचना कहलाती है।

वातावरण से संपर्क पर्च-मछली चलता-फिरता शिकार पकड़कर खाती है। वह पानी में शिकार ढूंढ लेती है। दूसरी मछलियां और जलचर कीट उसका भोजन हैं। दूसरी ओर ख़ुद पर्च-मछली पाइक आदि दूसरे बड़े प्राणियों का शिकार है।

पर्च-मछली को अपना शिकार ढूंढने और शत्रुओं से बचे रहने में उसकी ज्ञानेंद्रियों से सहायता मिलती है। ये इंद्रियां बाह्य परीक्षण में साफ़ साफ़ दिखाई देती हैं। सिर के दोनों ओर एक जोड़ा बड़ी बड़ी आंखें होती हैं। स्थलचर प्राणियों के विपरीत पर्च-मछली की आंखों के पलकें नहीं होतीं और वे समीप-दृष्टि होती है। आंखों के आगे घ्राणेंद्रियां होती है। ये दो थैलियों के रूप में होती हैं जिनका मुख-गुहा से कोई संबंध नही होता। हर थैली दो सूराख़ों में अर्थात् नथुनों में खुलती है।

पर्च-मछली के जीवन में पार्श्विक रेखा की इंद्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्थलचर प्राणियों में ये इंद्रियां नही होती। ये इंद्रियां पर्च-मछली की बग़लों में बिंदुओं की रेखा के रूप में होती है। ये बिंदु लंबी और शरीर की लंबाई में फैली नलिका से संबद्ध छोटी नलिकाओं के मुख होते है। लंबाई में फैली नलिका में संवेदक कोशिकाएं होती है जो तंत्रिकाओं द्वारा मस्तिष्क से संबद्ध रहती हैं। पार्श्विक रेखा की इंद्रियों से जल की तरंगें टकराती हैं। इससे पर्च-मछली को पानी की दिशा, ज़ोर, गहराई और जल में स्थित सख़्त चीज़ों तक पहुंचने के मार्ग का बोध होता है।

इस प्रकार शरीर का आकार और रंग, श्लेष्म से आवृत शल्क, मीन-पक्ष और पार्श्विक रेखा की इंद्रियां पर्च-मछली को अपने जलगत जीवन के अनुकूल बनानेवाले साधनों का काम देती हैं और जल ही तो पर्च-मछली के लिए रहने का एकमात्र स्थान है।

प्रश्न–१. पर्च-मछली पानी में किस प्रकार चलती है? २. पर्च-मछली की संरक्षक रंग-रचना की व्याख्या करो। ३. पर्च-मछली किन इंद्रियों के सहारे वातावरण से सतत संपर्क रखती है? ४. अपने को जलगत जीवन के अनुकूल बनाने के लिए पर्च-मछली के पास कौनसे साधन होते हैं?

व्यावहारिक अभ्यास–घर पर एक छोटा-सा मत्स्यालय बना लो, उसमें कुछ मछलियां छोड़ दो और उनका पालन करना सीखो (मत्स्यालय तैयार करने के विषय में अपने अध्यापक से या तरुण प्रकृतिप्रेमियों से परामर्श प्राप्त करो)।

§ ३८. पर्च-मछली की पेशियां, कंकाल और तंत्रिका-तंत्र

पेशियां

पर्च-मछली की त्वचा के नीचे पेशियां होती हैं। पेशियां संकुचित यानी छोटी हो सकती हैं। पेशियों के सिरे हड्डियों से जुड़े रहते हैं। अतः पेशियों के संकुचित होते ही मछली की कुछ इंद्रियों में गति उत्पन्न होती है।

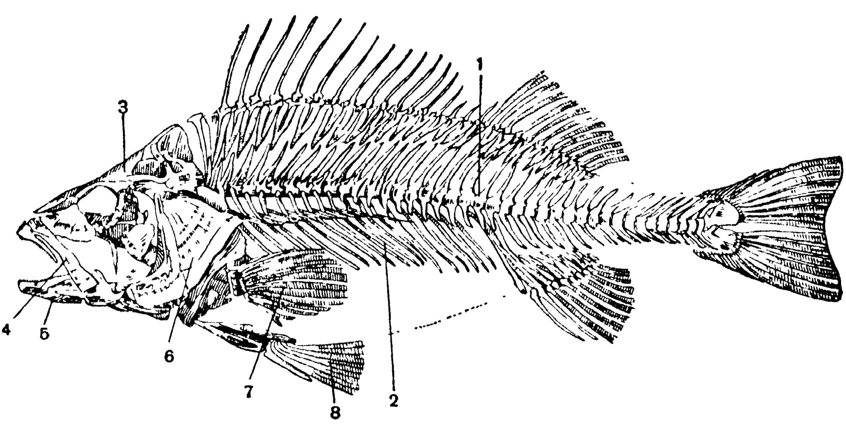

आकृति ७०–पर्च-मछली का कंकाल

१(1). कशेरुक दंड; २(2). पसलियां; ३(3). कपाल; ४(4). ऊपर का **जबड़ा**; ५(5). नीचे का जबड़ा; ६(6). जल-श्वसनिका का आवरण; ७(7). वक्षीय मीन-पक्ष की हड्डियां; ८ (8). औदरिक मीन-पक्ष की हड्डियां।

पर्च-मछली की पीठ और पूंछ की पेशियां विशेष सुपरिवर्द्धित होती हैं। इनके संकुचित होने से मछली का शरीर मुड़ता है और वह आगे की ओर तैरती है। विशेष पेशियों के कारण मीन-पक्षों में गति उत्पन्न होती है। कुछ और पेशियां मुंह को घेरे हुए जबड़ों को गतिशील बनाती हैं।

कंकाल

पर्च-मछली के शरीर की बहुत-सी हड्डियों से उसका कंकाल (आकृति ७०) बनता है। कंकाल का आधार कशेरुक दंड है जो शरीर में सिर से लेकर पूंछ के मीन-पक्ष तक फैला रहता है। कशेरुक दंड में बहुत-सी पृथक् हड्डियां होती हैं जो कशेरुक कहलाती हैं। ये मज़बूती के साथ एक दूसरी से जुड़ी तो रहती हैं पर होती हैं गतिशील। इस कारण कशेरुक दंड सारे शरीर के लिए आधार का काम देता है और साथ साथ उसमें तैरने के लिए आवश्यक पर्याप्त लचीलापन भी होता है।

हर कशेरुक में हम शरीर और उसके ऊपर मेहराब देख सकते हैं (आकृति ७१)। शरीर आगे और पीछे की ओर कुछ कानकेव होता है। एक के पीछे एक कशेरुक मेहराबों से रीढ़-नलिका बनती है जिसमें रीढ़-रज्जु होती है।

अंड-समूह से जब मछली परिवर्द्धित होती है उस समय शुरू शुरू में उसके अस्थिमय कशेरुक दंड नहीं होता। पहले पहल एक ठोस धागे के रूप में रज्जु तैयार होती है और उसके बाद ही उसके इर्द-गिर्द कशेरुक परिवर्द्धित होते हैं। वयस्क पर्च-मछली में रज्जु के अवशेष कशेरुकों के बीच जेलीनुमा पारदर्शी गोलियो के रूप मे पाये जाते हैं। पसलियां धड़ के कशेरुकों से जुड़ी रहती हैं। वे शरीर-गुहा को घेरे रहती हैं और उसमें स्थित इंद्रियों की रक्षा करती हैं।

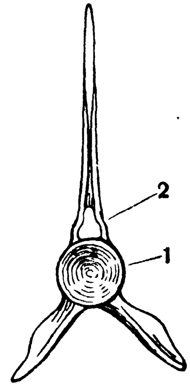

आकृति ७१ – मछली का कशेरुक
१ (1). शरीर; २ (2). मेहराब।

सिर की हड्डियों से खोपड़ी बनती है। खोपड़ी में कपाल और मुख-गुहा को घेरी हुई हड्डियां (जबड़े, बाहु की मेहरावें, जल-श्वसनिका के आवरण) शामिल हैं। कपाल मस्तिष्क को धारण किये हुए होता है।

मीन-पक्ष के कंकाल में बहुत-सी सूक्ष्म हड्डियां होती हैं।

पर्च-मछली का कंकाल उसके शरीर का मुख्य ग्राधार है जो उसे निश्चित ग्राकार देता है ग्रौर ग्रंदरूनी इंद्रियों की रक्षा करता है। कंकाल ग्रौर उससे संबद्ध पेशियों को लेकर गति का इंद्रिय-तंत्र बनता है।

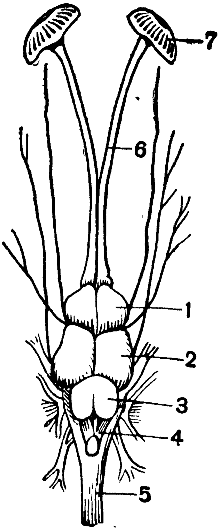

ग्राकृति ७२ – पर्च-मछली का मस्तिष्क (ऊपर से)
१ (1). ग्रग्रमस्तिष्क; २ (2). मध्य मस्तिष्क; ३ (3). ग्रनुमस्तिष्क; ४ (4). मेडयूला ग्राबलंगेटा; ५ (5). रीढ़-रज्जु; ६ (6). घ्राण तंत्रिकाएं; ७ (7). घ्राणेंद्रियां।

तंत्रिका-तंत्र

इस पुस्तक में पहले हमने जिनका परिचय प्राप्त कर लिया है उन सब प्राणियों की तरह पर्च-मछली का तंत्रिका-तंत्र भी सभी इंद्रियों की गतिविधियों में समन्वय ग्रौर संबंधित प्राणी का वातावरण से संपर्क सुनिश्चित करता है। तंत्रिका-तंत्र में मस्तिष्क, रीढ़-रज्जु ग्रौर इनसे निकलनेवाली तंत्रिकाएं शामिल ह।

मस्तिष्क कपाल में स्थित होता है। इसकी संरचना काफ़ी जटिल होती है (ग्राकृति ७२)। हम इसके निम्नलिखित हिस्से देख सकते है – ग्रग्रमस्तिष्क, जिसके ग्रागे छोटे घ्राण पिंड होते हैं; ग्रंतर्मस्तिष्क; मध्य मस्तिष्क, जो सुपरिवर्द्धित होता है; ग्रनुमस्तिष्क; मेडयूला ग्राबलंगेटा, जो क्रमश: रीढ़-रज्जु में पहुंचता है।

कशेरुक नलिका में स्थित रीढ़-रज्जु सारे शरीर में एक लंबे धागे के रूप में फैली रहती है।

मस्तिष्क ग्रौर रीढ़-रज्जु से निकलनेवाली सफ़ेद धागे जैसी ग्रनगिनत तंत्रिकाएं शाखाग्रों के रूप में ज्ञानेंद्रियों, पेशियों ग्रौर ग्रन्य इंद्रियों में पहुंचती है। तंत्रिकाएं दो प्रकार की होती है – संवेदक ग्रौर प्रेरक। संवेदक तंत्रिकाएं ज्ञानेंद्रियों तथा ग्रन्य इंद्रियों की उत्तेजनाएं मस्तिष्क में पहुंचा देती है। प्रेरक तंत्रिकाएं उत्तेजनाग्रों को उलटी दिशा में यानी मस्तिष्क से इंद्रियों की ग्रोर ले जाती हैं।

पर्च-मछली का बरताव कई प्रतिवर्त्ती क्रियाग्रों का बना रहता है। उदाहरणार्थ, शिकार को देखते ही दृष्टि-तंत्रिकाग्रों में उत्तेजना उत्पन्न होती है। यह मस्तिष्क में पहुंचती है। यहां से वह प्रेरक तंत्रिकाग्रों द्वारा पूंछ ग्रौर धड़ की पेशियों

में ले जायी जाती है। इन पेशियों में पहुंचकर उत्तेजना उनमें समन्वित संकुचन उत्पन्न करती है और पर्च-मछली अपने शिकार पर झपट पड़ती है। बड़ी मछली को देखते ही वह फ़ौरन उससे दूर भागती है। भूख की हालत में उत्तेजना अंदरूनी इंद्रियों से मस्तिष्क तक पहुंचती है। इससे प्रेरक प्रतिवर्त्ती क्रियाएं उत्पन्न होती हैं जिनका लक्ष्य भोजन की खोज होता है।

पर्च-मछली की अधिकांश प्रतिवर्त्ती क्रियाएं जन्मजात होती हैं और वे अनियमित कहलाती हैं। पर अपने जीवन-काल में पर्च-मछली नयी प्रतिवर्त्ती क्रियाएं अपना सकती है। इस प्रकार यदि हम उसे हमेशा मत्स्यालय के एक कोने में चारा देते जायें और चारा देते समय दीवाल पर छड़ी से खटखटाते रहें तो कुछ ही अवधि में मछली छड़ी की हर खटखटाहट के साथ उक्त कोने में तैरकर आने की आदी हो जायेगी। इसे अर्जित प्रतिवर्त्ती क्रिया कहते हैं और यह इसी शर्त पर उत्पन्न होती है कि चारे की खिलाई और छड़ी की खटखटाहट एकसाथ हों। जीवन-काल में और किसी विशेष शर्त पर ही परिवर्द्धित होनेवाली प्रतिवर्त्ती क्रियाएं नियमित कहलाती हैं।

नियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाए अस्थायी होती हैं। यदि कई बार छड़ी की खटखटाहट चारे की खिलाई के साथ न हो तो मछली का तैरकर विशिष्ट कोने में आना बंद होगा; नियमित प्रतिवर्त्ती क्रिया का लोप होगा।

प्रश्न – १. पर्च-मछली में कौनसी पेशियां अधिक परिवर्द्धित होती है और क्यों? २. उसके कंकाल की संरचना का वर्णन दो। ३. तंत्रिका-तंत्र की संरचना का वर्णन दो। ४. नियमित और अनियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाओं में क्या अंतर है?

§ ३६. पर्च-मछली की शरीर-गुहा की इंद्रियां

यदि हम पर्च-मछली के धड़ की बग़लवाली दीवाल को हटा दें तो हमें उसकी शरीर-गुहा दिखाई देगी जिसमें पाचन, उत्सर्जन आदि की इंद्रियां होती हैं।

पचनेंद्रियां

पर्च-मछली अपने मुंह से शिकार पकड़ लेती है। उसका मुह तेज़ दांतों के रूप में शस्त्रसज्जित होता है। पर्च-मछली बिना चबाये ही अपना भोजन निगल लेती है। गले और ग्रसिका से होकर भोजन

उसके बड़े-से जठर (आकृति ७३) में पहुंचता है। जठर की दीवालों से पाचक रस रसता है जिससे भोजन का पाचन आरंभ होता है। जठर से भोजन आंत में पहुंचता है। कई कुंडलियों वाली यह आंत गुदा में खुलती है।

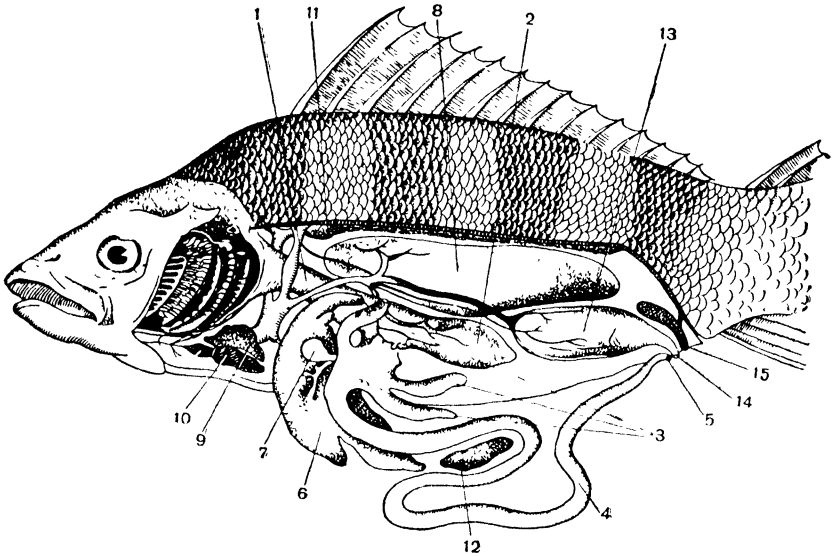

आकृति ७३ – पर्च-मछली की अंदरूनी इंद्रियां

१ (1). ग्रसिका ; २(2). जठर ; ३(3). आंत के बंद पूरक अवयव ; ४(4). आंत ; ५(5). गुदा ; ६(6). यकृत् ; ७(7). पित्ताशय ; ८(8). वायवाशय ; ९ (9). अलिंद ; १०(10). निलय ; ११(11). गुरदे ; १२ (12). प्लीहा ; १३ (13). अंडाशय ; १४(14). जनन-द्वार ; १५(15). मूत्र-द्वार।

जठर की बगल में ललौहें-भूरे रंग का बड़ा यकृत् होता है। यकृत् में उत्पन्न पित्त पित्ताशय में संचित होता है। जब भोजन आंत में पहुंचता है तो एक वाहिनी के जरिये पित्त बहकर आंत के आरंभिक हिस्से में पहुंचता है। आंत में पित्त और आंत की दीवालों से रसनेवाले पाचक रस के प्रभाव से भोजन की पाचन-क्रिया जारी रहती है। आंत से चलते हुए पचा हुआ द्रव दीवालों से अवशोषित

होकर रक्त में चला जाता है। भोजन के अनपचे अवशेष गुदा द्वारा शरीर से बाहर फेंके जाते हैं।

पचनेंद्रियों में मुख, गला, ग्रसिका, जठर, आंत और यकृत् शामिल हैं।

वायवाशय पर्च-मछली के जठर के ऊपर वायवाशय या हवा की थैली होती है। यह लंबी और रुपहले रंग की होती है (आकृति ७३) और वायवाशय नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और कारबन डाइ-आक्साइड के मिश्रण से भरा रहता है। वह संकुचन और प्रसरणशील होता है। इसके संकुचित होने के साथ पर्च-मछली का शरीर कुछ धंसता है और पानी से भारी हो जाता है। ऐसी हालत में मछली आसानी से नीचे की ओर चलती है। इसके विपरीत थैली के प्रसरण के साथ शरीर कुछ फूलता है और पानी से हल्का हो जाता है जिससे पर्च-मछली ऊपर की ओर उतराने लगता है।

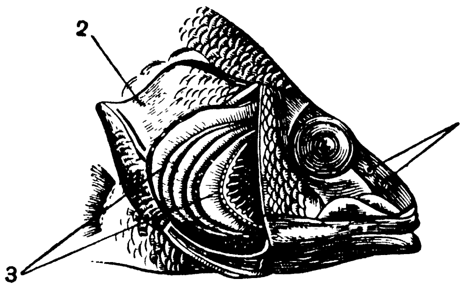

आकृति ७४ – पर्च-मछली का सिर
१ (1). नासा-द्वार; २ (2). जल-श्वसनिका-आवरण (पीछे की ओर मुड़ा हुआ); ३ (3). जल-श्वसनिका की प्लेटें।

श्वसनेंद्रियां पर्च-मछली को ज़िंदा रहने के लिए पानी के अलावा ऑक्सीजन आवश्यक है। यह गैस काफ़ी मात्रा में नदी के पानी में घुली हुई रहती है। ऑक्सीजन श्वसनेंद्रियों अर्थात् जल-श्वसनिकाओं द्वारा ग्रहण किया जाता है।

ये सिर और धड़ के बीच की सीमा पर जल-श्वसनिका के आवरणों के नीचे होती हैं। जल-श्वसनिकाएं चमकदार लाल रंग की अनगिनत श्वसनिका-छड़ों से बनती हैं जो श्वसनिका-मेहराबें कहलानेवाली विशेष हड्डियों से जुड़ी रहती हैं (आकृति ७४)। मेहराबों के बीच श्वसनिका-छेद होते हैं। श्वसनिका-आवरणों की बराबर ऊपर-नीचेवाली गति के कारण पानी का सतत प्रवाह जारी रहता है। पानी मुंह से गले में बहता है और फिर श्वसनिका-छेदों में से होता हुआ श्वसनिका-छड़ों को छूता है। इसी क्षण पानी का ऑक्सीजन छड़ों की पतली झिल्लियों और

रक्त-वाहिनियों की दीवालों में पैठता हुआ रक्त में चला जाता है। साथ साथ शरीर की सभी इंद्रियों से आनेवाला कारबन डाइ-आक्साइड रक्त से हटकर पानी में जा मिलता है।

श्वसनिका-छड़ें हवा के संपर्क में आते ही आते सूख जाती हैं और ऑक्सीजन को अवशोषित करने की उनकी क्षमता नष्ट हो जाती है। इसी कारण पानी से निकाली गयी मछली फ़ौरन मर जाती है। अतः जल-श्वसनिकाएं केवल पानी में ही श्वसनेंद्रियों का काम दे सकती हैं।

रक्त-परिवहन इंद्रियां

पचा हुआ भोजन रक्त में अवशोषित होता है। जल-श्वसनिकाओं में अवशोषित ऑक्सीजन भी यहीं आ पहुंचता है। रक्त सभी इंद्रियों को पोषक पदार्थ और ऑक्सीजन पहुंचा देता है। यहा रक्त कारबन डाइ-आक्साइड और शरीर से बाहर किये जाने योग्य सभी उत्सर्जन द्रव्य प्राप्त करता है।

पर्च-मछली का रक्त रक्त-वाहिनियों में रहता है और हृदय (आकृति ७५) उसे गति प्रदान करता है। मछली का नन्हा-सा हृदय शरीर-गुहा के अगले हिस्से में जल-श्वसनिकाओं के पीछे होता है। हृदय के दो कक्ष होते हैं – मोटी पेशियों की दीवालों वाला निलय और पेशियों की ही, पर काफ़ी पतली दीवालों वाला अलिंद।

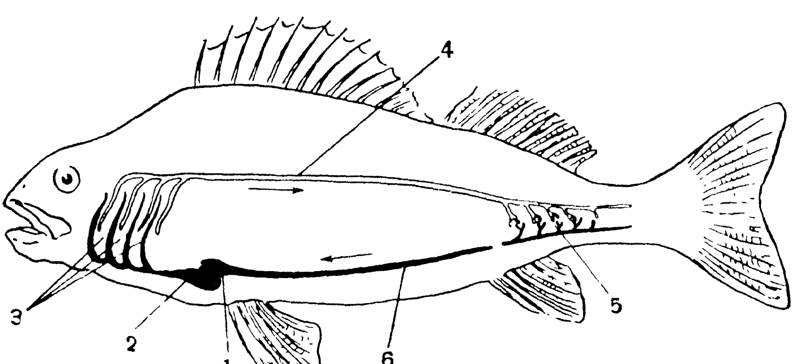

आकृति ७५ – पर्च-मछली के रक्त-परिवहन का नक़्शा
१ (1). अलिंद ; २(2). निलय ; ३(3). जल-श्वसनिकाओं द्वारा व्याप्त क्षेत्र ; ४(4). रीढ़ की महाधमनी ; ५(5). शरीर की केशिकाएं ; ६(6). शिरा।

*

सभी रक्त-वाहिनियां एक-सी नहीं होतीं। उन्हें धमनियों, शिराओं और केशिकाओं में विभक्त किया जाता है। धमनियां वे वाहिकाएं हैं जिनके ज़रिये रक्त हृदय से निकलकर शरीर की सभी इंद्रियों में पहुंचता है। शिराओं के ज़रिये रक्त हृदय में लौट आता है। धमनियों और शिराओं के बीच स्थित और केवल माइक्रोस्कोप से दिखाई दे सकनेवाली सूक्ष्म वाहिनियां केशिकाएं कहलाती हैं।

शिराओं से हृदय की ओर आनेवाला रक्त पहले पहल अलिंद में प्रवेश करता है। अलिंद के संकुचित हो जाने पर वह निलय में प्रवेश करता है जबकि निलय का संकुचन उसे हृदय से धमनी में बहा देता है जो उसे जल-श्वसनिकाओं की ओर ले जाती है। यहां रक्त ऑक्सीजन से समृद्ध और कारबन डाइ-आक्साइड से ख़ाली हो जाता है। जल-श्वसनिकाओं से रक्त बड़ी धमनी में प्रवेश करता है जो क्रमशः छोटी छोटी धमनियों में विभाजित होती है। ये सभी इंद्रियों में पैठती हैं और अत्यंत सूक्ष्म केशिकाओं के शाखा-जाल का रूप धारण करती हैं।

शरीर की केशिकाओं में रक्त सभी इंद्रियों के लिए आवश्यक ऑक्सीजन और पोषक पदार्थ छोड़ देता है। यहीं रक्त में कारबन डाइ-आक्साइड और शरीर से बाहर किये जाने योग्य अन्य पदार्थ आ मिलते हैं। केशिकाओं में से रक्त शिराओं में प्रवेश करता है और वापस हृदय की ओर जाता है।

इस प्रकार रक्त बराबर रक्त-वाहिनियों में से बहता हुआ अखंडित चक्कर लगाता रहता है।

उत्सर्जक इंद्रियां

जल-श्वसनिकाओं द्वारा बाहर छोड़े जानेवाले कारबन डाइ-आक्साइड के अलावा दूसरे उत्सर्जन योग्य पदार्थ शरीर की सभी इंद्रियों में तैयार होते हैं। ये पदार्थ रक्त में प्रविष्ट होते है और रक्त उन्हें उत्सर्जक इंद्रियों मे अर्थात् गुर्दो में पहुंचा देता है जहां से वे शरीर के बाहर फेंके जाते है (आकृति ७३)।

पर्च-मछली के गुरदे ललौहें-भूरे रंग की दो फ़ीतानुमा इंद्रियों के रूप में होते हैं। ये शरीर के ऊपरवाले हिस्से में होते हैं। गुरदों से सयुग्म नलिकाएं निकलती है। ये मूत्रवाहिनियां कहलाती है। ये मूत्राशय में पहुंचती है जिसकी वाहिनी गुदा के पीछे खुलती है।

उपापचय

पर्च-मछली का शरीर ऑक्सीजन और पोषक पदार्थ प्राप्त करता है। जटिल रासायनिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप भोज्य पदार्थ पर्च-मछली के शरीर-संवर्द्धन में लग जाते है। ऑक्सीजन शरीर में

पदार्थों के विघटन और उसके जीवन के लिए आवश्यक उष्णता के उत्पादन में सहायक होता है। इसी के साथ साथ कारबन डाइ-ग्राक्साइड तैयार होकर जल-श्वसनिकाओं से बाहर कर दिया जाता है और अन्य अनुपयुक्त पदार्थ गुरदों से उत्सर्जित होते हैं। इस प्रकार शरीर और वातावरण के बीच सतत आदान-प्रदान जारी रहता है—बाहर से कुछ पदार्थ मछली के शरीर में प्रवेश करते हैं जबकि कुछ पदार्थ शरीर के बाहर फेंके जाते हैं।

पर्च तथा अन्य मछलियों में उपापचय पंछियों और स्तनधारियों की तुलना में कम तीव्र रहता है। वाहिनियों में रक्त धीरे धीरे बहता है और उसमें ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है। शरीर में उत्पन्न उष्णता की मात्रा भी कम रहती है और इसी कारण आसपास के पानी के तापमान के साथ उसके शरीर का तापमान भी घटता-बढ़ता है और वह पानी के तापमान से केवल १-२ सेंटीग्रेड से ही ऊंचा होता है।

प्रश्न—१. भोजन का पाचन कहां और किन रसों के प्रभाव के अधीन होता है? २. वायवाशय या हवा की थैली क्या काम देती है? ३. पर्च-मछली की श्वसन-क्रिया का वर्णन दो। ४. पर्च-मछली के लिए रक्त-परिवहन का क्या महत्त्व है? ५. गुरदों का काम क्या है? ६. उपापचय क्या होता है?

व्यावहारिक अभ्यास—जब घर पर मछली पकायी जा रही हो उस समय मछली की अंदरूनी इंद्रियों की जांच करो।

§ ४०. पर्च-मछली का जनन और परिवर्द्धन

जननेंद्रियां पर्च में नर और मादा होते है। बाह्य रूप से लिंग की भिन्नता नहीं दिखाई देती। शरीर को काटने के बाद ही लिंगेंद्रियों की भिन्नता स्पष्ट होती है।

मादा की शरीर-गुहा में अंडाशय होता है जिसमें अंड-समूह या अंड-कोशिकाओं का परिवर्द्धन होता है। नर के दूध जैसे सफ़ेद दो वृषण होते हैं जिनसे बिल्कुल नन्हे नन्हे चल शुक्राणु उत्पन्न होते हैं। अंडाशय और वृषण गुदा के पास स्थित बाह्य जनन-द्वारों में खुलते है।

संसेचन वसंत के आरंभ में अर्थात् अप्रैल के अंत या मई के आरंभ में, जब हवा में गरमी आ जाती है तो पर्च-मछलियां अंडे देती हैं। वे छिछले जल के ऐसे स्थान में बड़े बड़े झुंडों में इकट्ठी होती हैं जहां पौधे उगे रहते हैं और पानी काफ़ी गरमी लिये होता है।

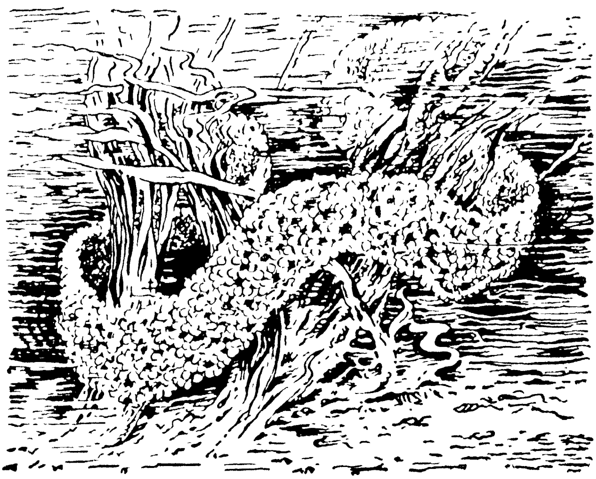

आकृति ७६ – जल के पौधों पर पर्च-मछली के अंड-समूह।

यहां मादा अंड-समूह छोड़ देती है जो जल के पौधों से लटके हुए जैलीनुमा लंबे फ़ीते-से लगते हैं (आकृति ७६)। इसी समय नर अपने वृषणों से शुक्राणु युक्त द्रव छोड़ देते हैं। हर मादा बहुत बड़ी मात्रा में अंड-समूह देती है। २०० ग्राम वज़नवाली अपेक्षतया छोटी पर्च-मछली के अंडाशय मे दो से लेकर तीन लाख तक अंडे हो सकते हैं। नरों द्वारा छोड़े जानेवाले शुक्राणुओं की संख्या तो इससे भी ज़्यादा यानी करोड़ों तक हो सकती है।

पानी में चल शुक्राणु तैरते हुए अंडों के पास पहुंचते हैं और उन्हें संसेचित कर देते हैं। अंडा शुक्राणु से मिलता है और उनके नाभिकों का और जीवद्रव्य का समेकन हो जाता है। दो कोशिकाओं से एक कोशिका बन जाती है और फिर वह एक नये जीव में परिवर्द्धित होती है।

परिवर्द्धन

संसेचित अंडा दो, चार, आठ, इस क्रम से विभक्त होता है। फिर बहुकोशिकीय भ्रूण तैयार होता है। उसके शरीर में विभिन्न इंद्रियों और ऊतकों की रचना होती है और पांच-छः दिन बाद वह केवल आधा सेंटीमीटर लंबाईवाले नन्हे-से डिंभ में परिवर्द्धित होता है (आकृति ७७)। डिंभ के उदर पर हम योक के बुदबुद देख सकते हैं – यह अंडे में स्थित पोषक पदार्थों के अवशेष हैं। योक के समाप्त हो जाने के बाद डिंभ जलगत सूक्ष्म पौधों, इनफ़ुसोरिया, नन्हे क्रस्टेशिया (डैफ़नीया और साइक्लाप) इत्यादि खाने लगते हैं जो अंड-समूहों के उत्पत्ति क्षेत्र में बड़ी भारी मात्रा में पलते हैं। डिंभ बढ़ने लगता है, उसे वयस्क पर्च-मछली का सा रूप प्राप्त होता है।

पर्च-मछली जहां अंडे देती है, जल के उन छिछले स्थानों में अंड-समूह के परिवर्द्धन और डिंभ तथा बच्चों के जीवन के लिए आवश्यक सभी चीज़ें मौजूद रहती हैं। पानी गरमी लिये होता है; अंड-समूहों के फ़ीतों को आधार देने के लिए जल के पौधों की कोई कमी नहीं होती; पौधों के कारण पानी में ऑक्सीजन काफ़ी मात्रा में होता है। डिंभ और फ़ाई के भोजन के लिए ढेरों सूक्ष्म प्राणी होते हैं।

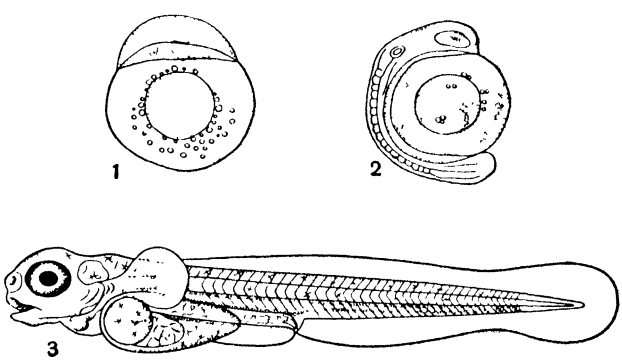

आकृति ७७ – पर्च-मछली का परिवर्द्धन
१(1). अंडा; २(2). भ्रूण; ३(3). योक के बुदबुद के अवशेषों सहित डिंभ।

पर्च-मछली द्वारा बहुत बड़ी मात्रा में अंड-समूह दिये जाते हैं, और यह आवश्यक भी है क्योंकि उसमें से एक हिस्सा असंसेचित रह जाता है जबकि कई संसेचित

अंड-समूह भी पानी के सूख जाने या ऑक्सीजन के अभाव में मर जाते हैं। इसके अलावा जल-पक्षी आदि और मछलियां भी कई अंड-समूहों को चट कर जाती हैं। शत्रुओं के झुंड के झुंड डिंभों और फ़ाई के लिए घात लगाये रहते हैं। इनमें से अधिकांश, मछलियों का शिकार हो जाते हैं और थोड़े-से ही वयस्क अवस्था को पहुंच पाते हैं।

जनन-काल में मछली का बरताव सहज प्रवृत्त होता है अर्थात् वह जन्मजात प्रतिवर्त्ती क्रियाओं का एक सिलसिला ही होता है।

प्रश्न – १. संसेचन कहलानेवाली प्रक्रिया क्या होती है और पर्च-मछली के मामले में वह किस तरह चलती है? २. पर्च-मछली का संसेचित अंडा किस प्रकार परिवर्द्धित होता है? ३. अंड-समूह के परिवर्द्धन और फ़ाई के जीवन के लिए कैसी परिस्थिति आवश्यक है?

§ ४१. मछलियों की आकार-भिन्नता

पाइक

यद्यपि सभी मछलियां पानी में रहती हैं फिर भी उनके सब के जीवन की स्थितियां एक-सी नहीं होतीं। कुछ मछलियां सागरों और महासागरों के खारे पानी में रहती हैं जबकि दूसरी मछलियां झीलों और नदियों के ताज़े पानी में। कुछ मछलियों के लिए ऑक्सीजन-बहुल और तेज़ बहनेवाला पानी आवश्यक है तो कुछ और मछलियां बंधे पानी की ताल-तलैयों में रह सकती है। एक ही तालाब में कुछ मछलियां पानी की ऊपरवाली सतहों में रहती है जबकि दूसरी मछलियां तल के पास। मछलियों का भोजन भी भिन्न भिन्न प्रकार का होता है – कुछ पौधों और नन्हे नन्हे मंदगति प्राणियों का भोजन करती हैं तो दूसरी तेज़ी से तैरनेवाला शिकार पकड़ लेती हैं। जीवन की भिन्न भिन्न स्थितियों के अनुसार मछलियों की संरचना और बरताव में भी फ़र्क़ नज़र आता है।

झीलों और नदियों की शिकारभक्षी मछलियों में से एक सुप्रसिद्ध और बहुत स्थानों में पायी जानेवाली मछली है पाइक। अपने शिकार की प्रतीक्षा में यह जल के पौधों के झुरमुट में निश्चल-सी पड़ी रहती है। दूसरी मछलियों का झुंड

पास से गुज़रा ही गुज़रा कि वह बिजली की तेज़ी से झपट पड़ती है और कम चपल मछलियों को अपने तेज़ दांतों वाले मुह में पकड़ लेती है (आकृति ७८)।

शिकार की सफलता में पाइक को उसकी संरचना से सहायता मिलती है। पूंछ के नीचेवाला मीन-पक्ष और पृष्ठीय मीन-पक्ष धारण करनेवाली छोटी किंतु

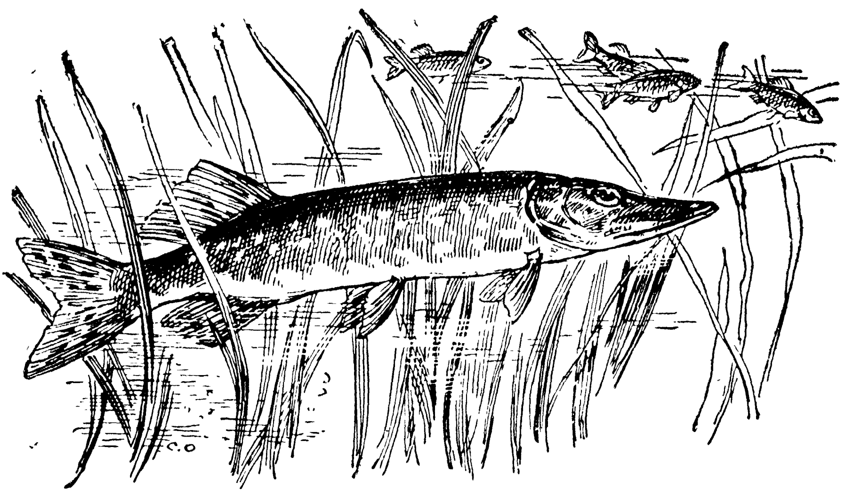

आकृति ७८ – पाइक।

ताक़तवर पूंछ सहित लंबे शरीर के कारण वह आगे की ओर काफी तेज़ी के साथ उछल सकती है। तेज़ और अंदर की ओर मुड़े हुए अनेकानेक दांतों वाले मुह में वह चिकने शिकार को मज़बूती से पकड़े रख सकती है। शरीर के धानी रंग और बग़लों में काले ठप्पों के कारण पाइक जल के उन पौधों से शायद ही अलग पहचानी जा सकती है जहा वह शिकार की घात में पड़ी रहती है।

कार्प-मछली

नदियों के एक और निवासी कार्प-मछली (आकृति ७९) की आवश्यकताएं, बरताव और संरचना बिल्कुल भिन्न हैं। यह दूसरी मछलियों का शिकार नहीं करती बल्कि कीटों के डिंभ, मोलस्क, कृमि और जल के पौधे खाकर रहती है।

कार्प-मछली आराम से तैरती है। ऊपरवाले होंठ पर स्थित दो छोटे गलमुच्छों की सहायता से वह तल में अपना शिकार ढूंढती है। कार्प-मछली का

मुंह छोटा होता है और उसके तेज़ दांत नहीं होते। कार्प-मछली जिसे खाकर रहती है उस नन्हे और मंदगति शिकार को पकड़ने के लिए यह मुंह भी काफ़ी है। सिर्फ़ गले में पीछे की ओर कुछ थोथे गलदंत और हड्डियों की एक प्लेट होती है। ये मोलस्कों के कवचों को पीस डालने के काम में आते हैं।

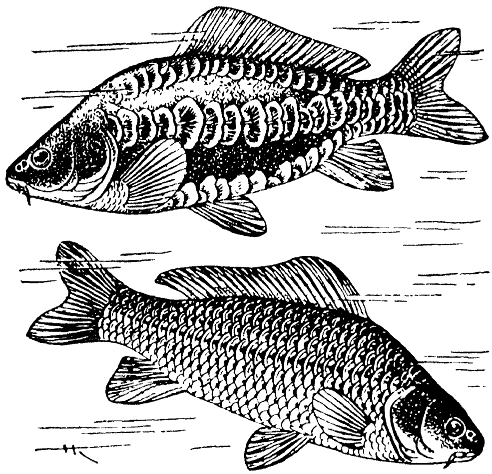

आकृति ७९ – कार्प-मछली (नीचे) और आईना कार्प-मछली (ऊपर)।

मदगति कार्प-मछली के शरीर का आकार भी पाइक से भिन्न होता है। इसका धड़ ऊंचा और मोटा होता है और पूंछ अपेक्षतया कम परिवर्द्धित।

मेशियर

भारत की नदियों में कार्प-मछली से मिलती-जुलती मेशियर (आकृति ८०) अर्थात् बुरामात्रा, पेटिया, कूखिया या नहरी नामक मछलियां मिलती हैं। यह एक बहुत ही आकर्षक मछली है जो

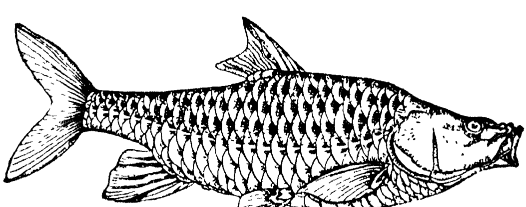

आकृति ८० – मेशियर।

10 2007

ऊपर की ओर रुपहले-हरे और नीचे की ओर रुपहले-सुनहरे रंग की होती है और जिसके ललौहें सयुग्म मीन-पक्ष होते हैं। यह मछली बड़ी मशहूर है और सारे भारत तथा श्रीलंका के शौक़िया मछली पकड़नेवाले इसे पसंद करते हैं। वयस्क मेशियर एक बड़ी मछली होती है जो १.५ मीटर तक लंबी और ३०-४५ किलोग्राम तक वज़नी होती है। इसके विशेष बड़े नमूने पहाड़ी नदियों में पाये जाते हैं। ऐसी मछलियों के शल्क वयस्क आदमी की हथेली जितने बड़े हो सकते हैं। कार्प-मछली के विपरीत मेशियर नन्ही नन्ही मछलिया खाकर रहती है। यह मछली अक्सर स्पिनिग टैकल की सहायता से पकड़ी जाती है।

शीट-मछली

शीट-मछली (आकृति ८१) ताल-तलैयों के तल मे रहनेवाली ताज़े पानी की मछलियों में से एक है। समशीतोष्ण और उष्णकटिबंधों के देशों की नदियों में शीट-मछली की बहुतायत होती है। इन मछलियों का अधिकांश जीवन जलाशयों के तल में बीतता है। चूंकि वे अपने पेट

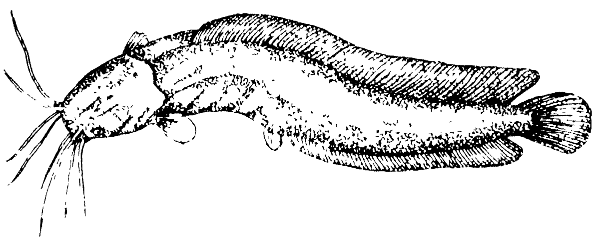

आकृति ८१ – शीट-मछली।

के सहारे पड़ी रहती है इसलिए उनके शरीर ऊपर से नीचे की ओर कुछ चपटे होते हैं। ऊपर की सतह गहरी और नीचे की हल्की होती है। स्पर्शेंद्रिय का काम देनेवाली स्पर्शिकाओं का गहरे जलांतर्गत जीवन में बडा महत्त्व है। स्पर्शिकाए सुविकसित होती है। इसके विपरीत अंधेरे मे आंखों का कोई उपयोग नही और इसी लिए वे कम परिवर्द्धित रहती हैं। शीट-मछली मुख्यतया निशाचर प्राणी है। दिन में यह गहरे गड्ढों में छिपी रहती है। कृमियों की तरह इधर-उधर चुलबुलानेवाली स्पर्शिकाएं नन्ही नन्हीं मछलियों को आकृष्ट करती है। जब कोई मछली किसी स्पर्शिका को पकड़ने की कोशिश करती है तो पेटू शीट-मछली फौरन

अपना चौड़ा मुह खोलकर उसे गटक लेती है। बड़ी शीट-मछलियां जल-पंछियों पर भी धावा बोल देती हैं और लड़के-लड़कियो के लिए ख़तरनाक होती है।

शार्क नीली शार्क (आकृति ८२) गहरे पानी की एक विशेष मछली है। यह बेहद शिकारभक्षी समुद्री मछली सभी प्रकार के समुद्री प्राणियों और आदमी पर भी हमला करती है। उसका शरीर ठीक तकुए की शकल का और ३-४ मीटर लंबा होता है। तैरते समय उसके भारी सिर को उसके चौड़े वक्षीय मीन-पक्ष आधार देते है। ये हमेशा दोनों ओर फैले रहते हैं। उसका चौड़ा मुह सिर के निचले हिस्से में एक आड़ी दरार के रूप मे होता है। जबड़ो में तेज़ दांतों की कई क़तारे होती हैं। शार्क के जल-श्वसनिका-आवरण नही होते और इसलिए सिर के दोनों ओर पांच जोड़े खड़े श्वसनिका-छेद सहज ही दिखाई पड़ने हैं। शार्क का ककाल अधिकांश मछलियो

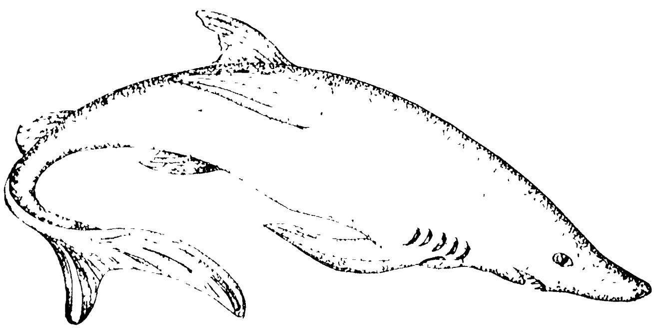

आकृति ८२ – नीली शार्क।

की तरह हड्डियों का नही होता बल्कि उपास्थियों का होता है। शार्क की त्वचा को ढंकनेवाले शल्क भी अन्य मछलियों से एकदम भिन्न होते है। हर शल्क ऐसे तेज़ दांत-सा लगता है जिसकी नोक पीछे की ओर मुड़ी हुई हो। शार्क के शरीर के पूछवाले ताक़तवर हिस्से के अंत में लंबे-से ऊपरी पिंड सहित मीन-पक्ष होता है। पूंछ की बहुत बड़ी पेशीय शक्ति के कारण शार्क बहुत ही अच्छी तरह तैर सकती है। शार्क उपास्थीय मछलियों में शामिल है।

प्लेस-मछली जलतल में रहनेवाली मछलियों मे से प्लेस-मछली (आकृति ८३) खास दिलचस्प है। प्लेस-मछली न

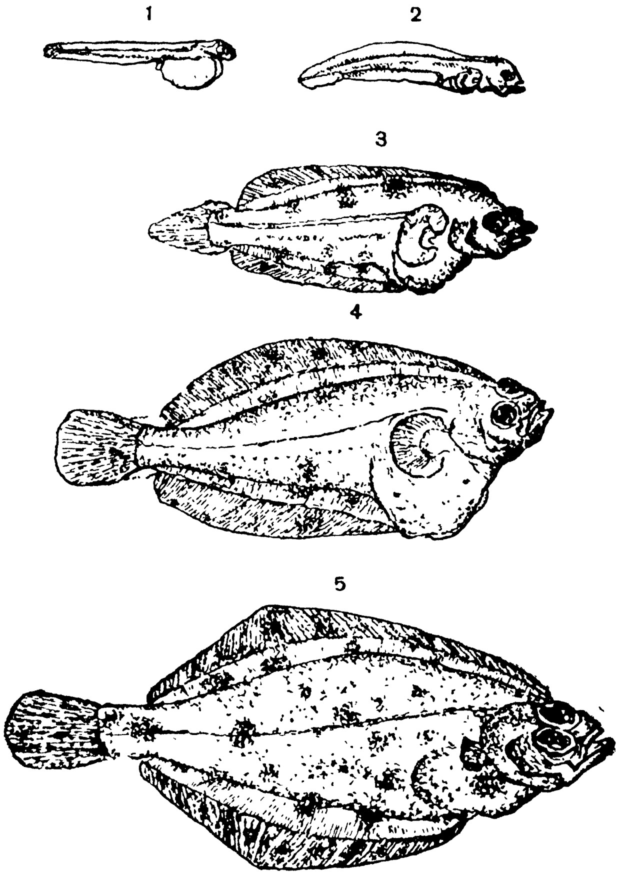

आकृति ८३ – प्लेस-मछली का परिवर्द्धन

१, २ (1, 2). बच्चे (यह मछलियों का आम आकार है), ३ (3). नन्ही मछली (चपटा शरीर, पर आंखें सिर के दोनो ओर); ४ (4). प्लेस-मछली, जिसकी आंखें एक ओर स्थानांतरित हो रही हैं; ५ (5). पूर्णतया परिवर्द्धित प्लेस-मछली (दोनों आंखें एक ओर)।

केवल तल में रहती है बल्कि वहां अपने को रेत में आधा गाड़े हुए, शिकार का इंतज़ार करती है।

प्लेस-मछली एक बड़ी-सी मछली है जिसकी लंबाई ३० से ५० सेंटीमीटर तक हो सकती है।

प्लेस-मछली के शरीर के किनारे इतने चपटे होते है कि वह एक ऐसी चौड़ी प्लेट-सा लगता है जिसमें मीन-पक्ष की झालर लगी हो। प्लेस-मछली बग़ल के बल पड़ी रहती है और इसी स्थिति में तैरती भी है। इस कारण उसकी आंखें और नासा-द्वार दोनों ऊपर की ओर रुखवाले हिस्से में होते हैं। यह हिस्सा रंगीन होता है जबकि तल की ओरवाला हिस्सा सफ़ेद-सा होता है। भिन्न भिन्न रंगों वाले स्थानों में तैरते समय प्लेस-मछली के ऊपरी हिस्से के रंग भी बदलते हैं और नये स्थान के तल के रंग के अनुकूल बन जाते हैं।

प्लेस-मछली के वायवाशय नही होता।

यह नोट करना दिलचस्प है कि अंड-समूह से सेये गये फ़्राई आम शकल-सूरत के होते हैं जिनमें यथास्थान आंखें होती है। शुरू शुरू में फ़्राई पानी की ऊपरी सतहों में रहते हैं। बाद में उनके शरीर चपटे होते जाते हैं, आंखें एक ओर हो जाती है और फिर प्लेस-मछली तल की ओर चली जाती है। इससे सूचित होता है कि इस मछली के पुरखों के शरीर आम शकल के हुआ करते थे और आंखें सिर के दोनों ओर। इस मछली की संरचना में सागर-तल की जीवन-स्थितियों के प्रभाव के कारण परिवर्तन हुए।

रूसी स्टर्जन

रूसी स्टर्जन (आकृति ८४) सोवियत संघ के कास्पीयन और अन्य सागरो में रहती है। पर वह अपना सारा जीवन सागर में नही बिताती। अंडे देने के लिए स्टर्जन नदियों की ओर चली जाती है और प्रवाह प्रतिकूल दिशा मे बढ़ती है। अंडे देने के बाद यह मछली अंडों मे निकली हुई नन्ही नन्ही स्टर्जनों को साथ लिये समुद्र को लौट आती है। जीवन का कुछ अंश समुद्र में और कुछ नदियों में बितानेवाली मछलियां प्रवासी कहलाती हैं।

रूसी स्टर्जन काफ़ी बड़ी होती है (एक मीटर और इससे भी ज्यादा)। यह अपना जीवन सागर-तल में बिताती है। उसका छोटा-सा दंतहीन मुंह सिर के नीचे की ओर होता है। मुंह के आगे दो जोड़े छोटे छोटे गलमुच्छे होते हैं। अपने इन गलमुच्छों से तल का स्पर्श करते हुए स्टर्जन वहां की मिट्टी में कृमि और

कीटों के डिंभ ढूंढती है। कभी कभी वह नन्हीं नन्हीं मछलियों को भी निगल जाती है। जलतल के जीवन के कारण उसके शरीर का निचला हिस्सा कुछ चपटा-सा हो जाता है। स्टर्जन की त्वचा पर जो शल्क होते हैं वे पर्च-मछली के शल्कों से भिन्न होते हैं। शरीर पर बड़े बड़े अस्थि शल्कों की पांच क़तारें होती हैं जिनके बीच में छोटे छोटे शल्क और होते हैं। कंकाल में भी कुछ विशेषताएं होती हैं। स्टर्जन के कशेरुक अपरिवर्द्धित होते हैं; बस उसकी रीढ़-रज्जु पर छोटी छोटी उपास्थीय मेहराबें बनी रहती हैं। मोटे धागे की शकलवाली यह रज्जु सारे शरीर और पूंछ में फैली रहती है। खोपड़ी उपास्थीय होती है पर उसका ऊपर का हिस्सा हड्डी से आवृत रहता है।

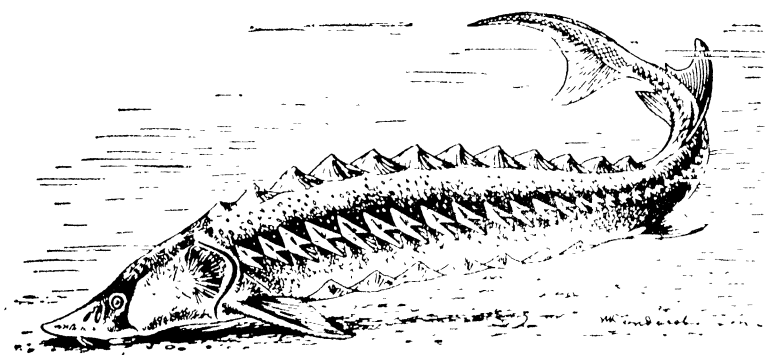

आकृति ८४ – रूसी स्टर्जन।

वासस्थान के अनुसार मछलियों को निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जाता है – ताजे पानी की (पर्च-मछली, पाइक, कार्प-मछली, मेशियर, शीट-मछली), समुद्री (प्लेस-मछली, शार्क) और प्रवासी (स्टर्जन)।

मछली वर्ग की विशेषताएं

मछलियां जलगत जीवन के आदी रीढधारियों के वर्ग में आती हैं। सुपरिवर्द्धित पेशीय पूछ, और सयुग्म तथा अयुग्म मीन-पक्ष गतिदायी इंद्रियों का काम देते हैं। अधिकांश मछलियों के वायवाशय होते हैं। त्वचा पर शल्कों का आवरण होता है। सभी मछलियों के पार्श्विक रेखा होती है।

जल-श्वसनिकाएं मछली की श्वसनेंद्रियां हैं। हृदय के दो कक्ष होते हैं। रक्त-परिवहन का एक वृत्त होता है। शरीर का तापमान परिवर्तनशील होता है।

मछलियों के ज्ञात प्रकार २०,००० तक हैं।

प्रश्न – १. पाइक की संरचना की कौनसी विशेषताएं यह दिखाती हैं कि वह शिकारभक्षी प्राणी है? २. कार्प-मछली की कौनसी विशेषताओं से पता चलता है कि वह एक शांत प्राणी है? ३. मेशियर को स्पिनिंग टैकल से क्यों पकड़ा जा सकता है जबकि कार्प-मछली के मामले में वह बेकार है? ४. कौनसी संरचनात्मक विशेषताएं शार्क को अस्थिल मछलियों से भिन्न दिखाती हैं? ५. प्लेस-मछली की संरचना में उसका जलगत जीवन कैसे प्रतिबिंबित होता है? ६. कौनसी मछलियां प्रवासी कहलाती हैं? ७. मछली वर्ग की विशेषताएं कौनसी है?

व्यावहारिक अभ्यास – पता लगाओ कि तुम्हारे इलाक़े में कौनसी मछलियां पायी जाती हैं।

§ ४२. सोवियत संघ में मछलियों का शिकार

मछलियों का शिकार

सोवियत संघ का अधिकांश भाग ऐसे समुद्रों से घिरा हुआ है जो असीम मत्स्य-संपदा से भरपूर हैं। सोवियत संघ की अनगिनत झीलों और देश की विभिन्न दिशाओं में बहनेवाली छोटी-बड़ी नदियों में भी मछलियों की कमी नहीं।

बड़ी बड़ी मात्राओं में पकड़ी जानेवाली मछलियों को व्यापारिक मछलियां कहते हैं। प्रधान व्यापारिक मछलियां इस प्रकार हैं – हेरिंग, काड, स्टर्जन, और सफ़ेद स्टर्जन, सामन, ब्रीम, ज़ैडर, इत्यादि (आकृति ८५)।

मछलियों के शिकार की सफलता मुख्यतया उनके जीवन संबंधी ज्ञान पर निर्भर है। जैसा कि स्टर्जन के उदाहरण से स्पष्ट है, सभी मछलियां सब समय एक ही स्थान पर नहीं रहती। बहुत-सी समुद्री मछलियां खास मौसमों में बड़े बड़े झुंडों में इकट्ठी होती हैं। वे अंडे देने के लिए समुद्र-तट के पासवाले छिछले हिस्सों या नदियों में चली जाती हैं।

मछलियों के इस आवागमन या प्रवसन का संबंध केवल उनके जनन से ही नहीं बल्कि भोजन से भी है। उदाहरणार्थ, काड-मछलिया गरमियों के उत्तरार्द्ध में बहुत बड़ी संख्याओं में बरेंत्स सागर में इकट्ठी होती है। यहां वे नार्वे के किनारों से उन मछलियों के पीछे आती हैं जो उनका भोजन है।

कुछ मछलियां जाड़े बिताने के लिए दूसरी जगहों को जाती है। इस प्रकार अज़ोव सागर की छोटी-सी ख़मसा-मछली जाड़े बिताने के लिए केर्च जलडमरूमध्य से होती हुई काले सागर को जाती है।

मछलियों के प्रवसन संबंधी जानकारी से हमें उनके शिकार की दृष्टि से बड़ी सहायता मिलती है। हम उन स्थानों में उनका शिकार आयोजित कर सकते है जहां वे बड़े बड़े झुंडों में इकट्ठी होती हैं।

मछलियों की आदतों के अनुसार उनके शिकार के लिए भिन्न भिन्न औज़ारों का उपयोग किया जाता है। गहरे पानी की मछली ट्रालों यानी गहरे पानी के जालों (आकृति ८६) की सहायता से पकड़ी जाती है। पानी की सतह के पास तैरनेवाली मछलियों को पकड़ने के लिए सीन और तैरते जाल इस्तेमाल किये जाते हैं। स्प्रैट जैसी कुछ मछलिया बिजली की रोशनी की मदद से पकड़ी जाती है। बिजली के लैंपों वाले जाल समुद्र में डाले जाते है, और स्प्रैट-मछलियां रोशनी की ओर खिंच आती हैं।

खुले समुद्र में मछलियो के झुड हवाई जहाज़ों की मदद से ढूढे जाते है।

मत्स्य-स्रोतों की रक्षा और वृद्धि

सोवियत संघ में पकड़ी जानेवाली मछलियों की मात्रा वर्ष प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। पर इससे मत्स्य-स्रोतों के समाप्त हो जाने की नौबत नही आती क्योंकि उनकी रक्षा और वृद्धि के लिए विशेप कदम उठाये जाते है। उदाहरणार्थ, ऐसे विशेप क्षेत्र सुरक्षित है जहां मछलियां पकड़ने की इजाज़त नही है; जालों के छेदों का आकार सीमित किया गया है ताकि नन्ही नन्ही मछलियां न पकड़ी जायें; विस्फोटक द्रव्यों की सहायता से मछलियों के शिकार की मनाही है इत्यादि।

मछलियों की मात्रा बढ़ाने की दृष्टि से ख़ास मछली पालन-केंद्रों का निर्माण किया गया है। यहां कृत्रिम रीति से अंड-समूहों को संसेचित किया जाता है और उनसे निकलनेवाले डिंभों को नदियों और झीलों में छोड़ दिया जाता है। इस प्रयोजन से, नरों और अंडे देने के लिए तैयार मादाओं को पकडकर उनके अंड-समूह और

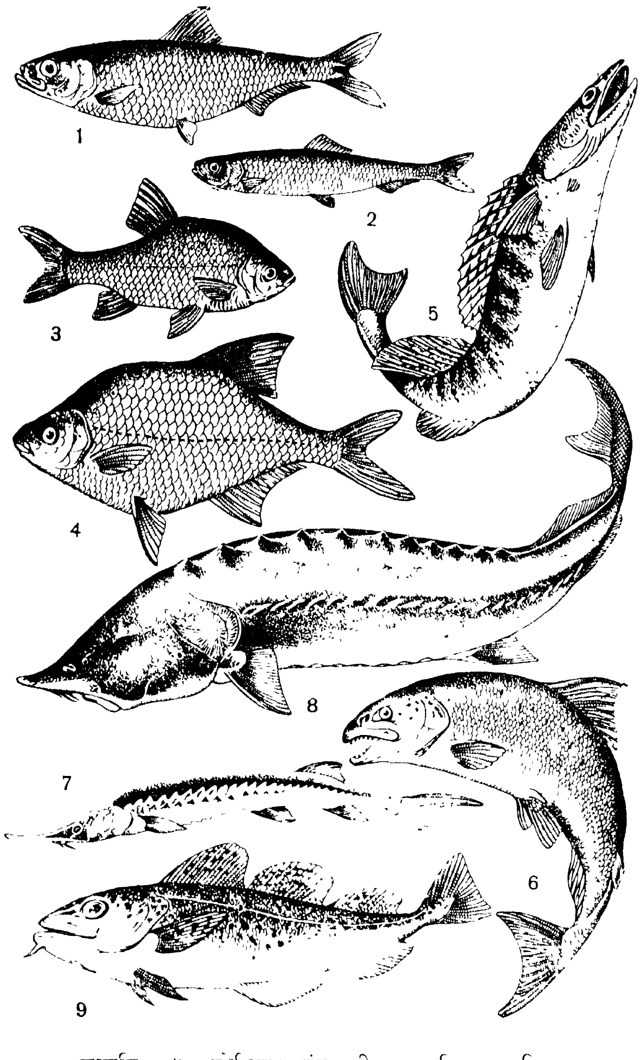

आकृति ८५—सोवियत संघ की व्यापारिक मछलिया

१(1). काली रीढ़वाली हेरिंग ; २(2). मुरमान्स्क हेरिंग ; ३(3). वोबला ; ४(4). ब्रीम , ५(5). जैंडर , ६(6). सामन ; ७(7). स्टर्जन , ८(8). सफेद स्टर्जन , ९(9) काड।

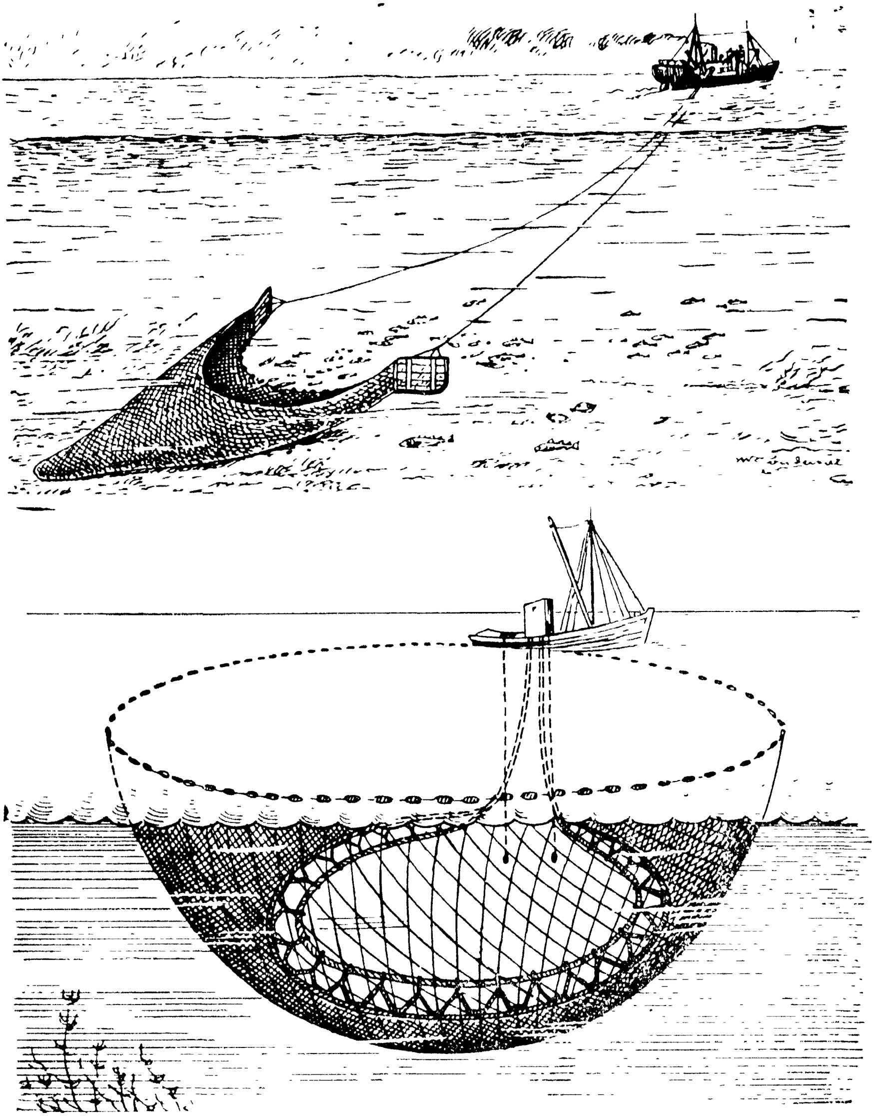

आकृति ८६ – मछली पकड़ने के उपकरण

ऊपर – ट्राल ; नीचे – मीन।

पित्ते बड़ी सावधानी से एक विशेष बरतन में निचोड़ लिये जाते हैं। अंड-समूहों को थोड़े-से पानी समेत पित्तों के साथ मिला दिया जाता है और इस प्रकार उनका संसेचन किया जाता है। संसेचित अंड-समूहों को विशेष उपकरणों में रखा जाता है जहां वे डिंभों में परिवर्द्धित होते हैं। कृत्रिम संसेचन की यह सूखी या रूसी पद्धति उत्कृष्ट फल देती है।

मत्स्य-संवर्द्धन का विशेष महत्त्व इस कारण है कि पन-बिजलीघरों के बांध मछलियों के प्रवसन में रुकावट डालते हैं और अंडे देने के लिए वे नदियों के प्रवाह की उल्टी दिशा में नही जा सकतीं।

मत्स्य-संवर्द्धन का एक और तरीक़ा है क़ीमती मछलियो का एक जलाशय से दूसरे जलाशय में स्थानांतरण। इस प्रकार काले सागर की भूरी मुलेट-मछली को कास्पीयन सागर में स्थानांतरित किया गया। वहां उसकी मात्रा इतनी बढ़ गयी कि अब उसे व्यापारिक मछली के रूप में पकड़ा जाता है। मछली के भोजन के रूप में काम आनेवाले प्राणियों को भी स्थानांतरित किया जाता है। इस प्रकार अज़ोव सागर के समुद्री कृमियों (नेरेइस) को कास्पीयन में स्थानांतरित किया गया।

प्रश्न – १. सोवियत सघ के सागरों और नदियों की कौनसी मछलियां आर्थिक दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण है? २. मछलियों के शिकार में मछलियों के जीवन की जानकारी क्यों आवश्यक है? ३. जलाशयों में मछलियों की संख्या बढ़ाने की दृष्टि से सोवियत संघ में कौनसे क़दम उठाये जाते हैं।

§ ४३. भारत में मछलियों का शिकार

भारत की व्यापारिक मछलियां

भारत में स्थानीय निवासियों द्वारा भोजन के लिए पकड़ी जानेवाली बहुत-सी ताज़े पानी की मछलियां है। इनमें पहले उल्लेख की गयी मेशियर और कार्प जाति की कई अन्य मछलियां शामिल हैं। शीट-मछली ताज़े पानी की एक व्यापारिक मछली भी है।

भारत के किनारे के पास गरम पानीवाला हिंद महासागर मछलियों से समृद्ध है। व्यापारिक समुद्री मछलियों में बम्बई डक या बंबइया मछली सबसे प्रधान है। इसकी वार्षिक पकड़ १,००,००० टन से अधिक है। बड़े बड़े

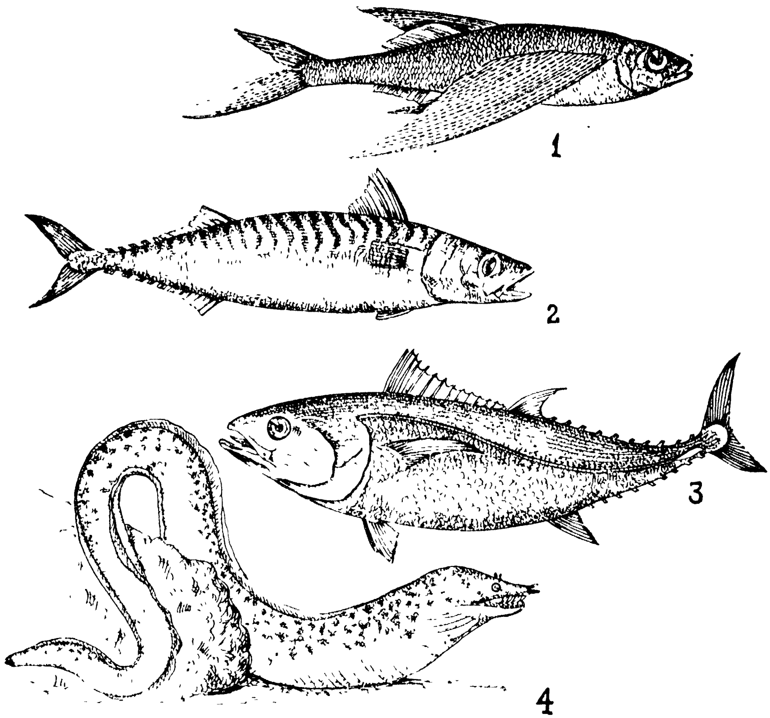

आकृति ८७—भारत की व्यापारिक मछलिया

१(1). उड़न-मछली ; २(2). मक्रेली ; ३(3). तून्सी ; ४(4). शिकारभक्षी मोरे।

झुडों में घूमनेवाली सारडिन और अंकोवी नाम छोटी छोटी मछलियां भी बड़ी मात्राओं में पकड़ी जाती हैं। एक और व्यापारिक मछली है उड़न-मछली (आकृति ८७)। यह पानी से बाहर उछलकर उसकी सतह पर दूर दूर तक उड़ सकती है।

मक्रेली, तून्सी (आकृति ८७), स्त्सियेनी भी कीमती मछलियां हैं। वयस्क तून्सी इनमें सबसे बड़ी होती है। ये ३-४ मीटर तक लंबी और ३०० किलोग्राम तक वज़नी हो सकती हैं। इनका मांस नरम और स्वादिष्ट होता है।

सर्पमीन जैसी समुद्री मछलियों और विशेषकर शिकारभक्षी मोरे (आकृति ८७) मछली का मांस बड़ा क़ीमती माना जाता है। साधारण मोरे के एकदम नंगा, लंबा और नाग का सा शरीर होता है और उसके कोई सयुग्म मीन-पक्ष

नहीं होते। शरीर के अगले हिस्से के तले का रंग चमकीला पीला और पीछे का पीला लिये खाकी होता है। शरीर का ऊपरवाला पूरा हिस्सा गहरे संगमरमर जैसा दिखाई देता है। इसके दांत बहुत ही तेज़ होते हैं।

मछली पकड़ने के उपकरण

आज तक भारतीय मछुए किनारे से मछलियां पकड़ने के लिए मकड़ी के जालनुमा जालों (आकृति ८८) का उपयोग करते है। ये जाल गांठदार धागों के बने होते हैं जो लंबी रस्सी के सहारे पानी के तल में फेंके जाते है। रस्सी का निचला सिरा आम तौर पर चार लचीले डडों से जुड़ा रहता है। इन डंडों के सिरे मकड़ी के आठ सयुग्म पैरों जैसे लगते हैं। डंडों के सिरे जाल के घेरे में गुथे रहते है। इससे जाल आसानी से ऊपर खींचा जा सकता है, जैसे पकड़ी गयी मछलियों से भरा बड़ा-सा थाल ऊपर उठाया जा रहा हो।

यद्यपि यह तरीक़ा सुविधाजनक और सुरक्षित है फिर भी इसका उपयोग केवल किनारे के पास से तैरनेवाली मछलियो के शिकार में ही हो मकता है।

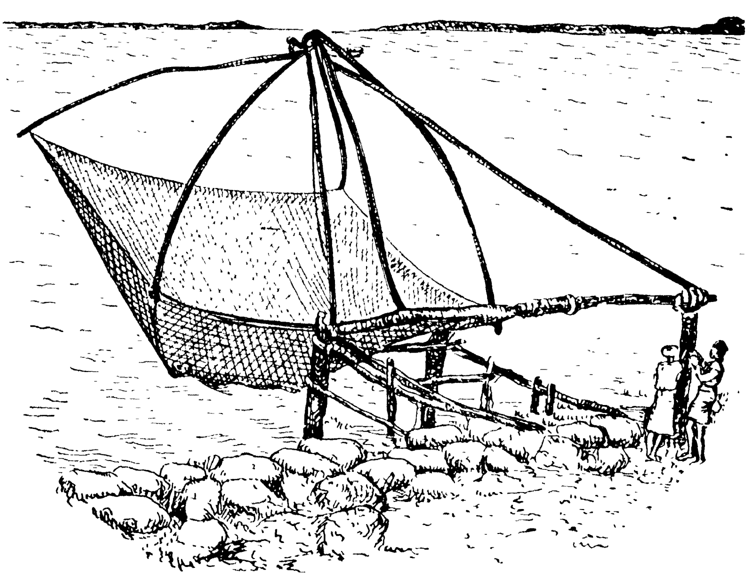

आकृति ८८ – मकड़ी का जालनुमा जाल।

इस कारण खुले सागर में मछलियों के शिकार के ज़्यादा असरदार तरीक़े अपनाये जा रहे हैं। किनारे से दूर मछलियों की बस्तियों वाली आम जगहों में स्टीम और मोटर बोटों से ट्राल और तैरते जाल फेंके जाते हैं।

प्रश्न – १. भारत की कौनसी मछलियों को व्यापारिक कहा जा सकता है? २. भारत में मछलियां किस प्रकार पकड़ी जाती हैं?

§ ४४. मत्स्य-संवर्द्धन

आईना कार्प-मछली

मछली-पालन-केन्द्र में संवर्द्धित फ़्राई को नदियों मे छोड़ने के अलावा तालाबों में मछलियों का संवर्द्धन कई देशों में सफलतापूर्वक विकसित हो रहा है। इस काम के लिए सबसे अधिक मात्रा में आईना कार्प-मछली (आकृति ७६) का उपयोग किया जाता है। इस मछली के बड़े शल्क उसका शरीर पूरी तरह से नहीं ढंकते बल्कि हर बगल में उनकी तीन तीन खड़ी क़तारें होती हैं। बाक़ी त्वचा नंगी होती है। उसके आईनानुमा बड़े बड़े शल्कों के कारण यह मछली आईना कार्प कहलाती है। शल्कों से पूरी तरह आवृत शल्की कार्प और शल्कों से लगभग ख़ाली नंगे कार्प का भी संवर्द्धन किया जाता है।

तालाबों में मछली-पालन

संपूर्ण मछली-पालन-केंद्र में बहते पानी के तालाबों की एक पूरी प्रणाली का समावेश होता है (आकृति ८६)। इनमें से कुछ हैचरियां होती हैं। ये गरम पानी के छोटे छोटे जलाशयों के रूप में होती हैं। अंडे दिये जाने और सेये जाने के मौसम में केवल एक महीने के लिए इनमें पानी भर दिया जाता है। फिर पानी बाहर छोड़ दिया जाता है और जलाशय के तल में वनस्पतियों का उद्भेदन होता है। यदि हैचरी में घास न हो तो अगले वर्ष वहा कार्प-मछलियां अंडे नहीं देतीं। जब फ़्राई कुछ बड़े होते हैं तो उन्हें संवर्द्धन-जलाशयों मे स्थानांतरित किया जाता है। जाड़ों के लिए नन्हीं कार्प-मछलियों को जाड़ों के जलाशयों में रखा जाता है जहां जाड़ों में पानी तल तक जम नही जाता। अगले वसन्त में एक साल की उम्रवाली मछलियों को बड़े चराई-जलाशयों में ले जाया जाता है। यहां वे काफ़ी मोटी-ताज़ी हो जाती हैं और फिर शरद में उन्हें पकड़ा जाता है। बड़ी बड़ी नस्ली मछलियों को अंडे देने के बाद नस्ली जलाशयों में रखा जाता है।

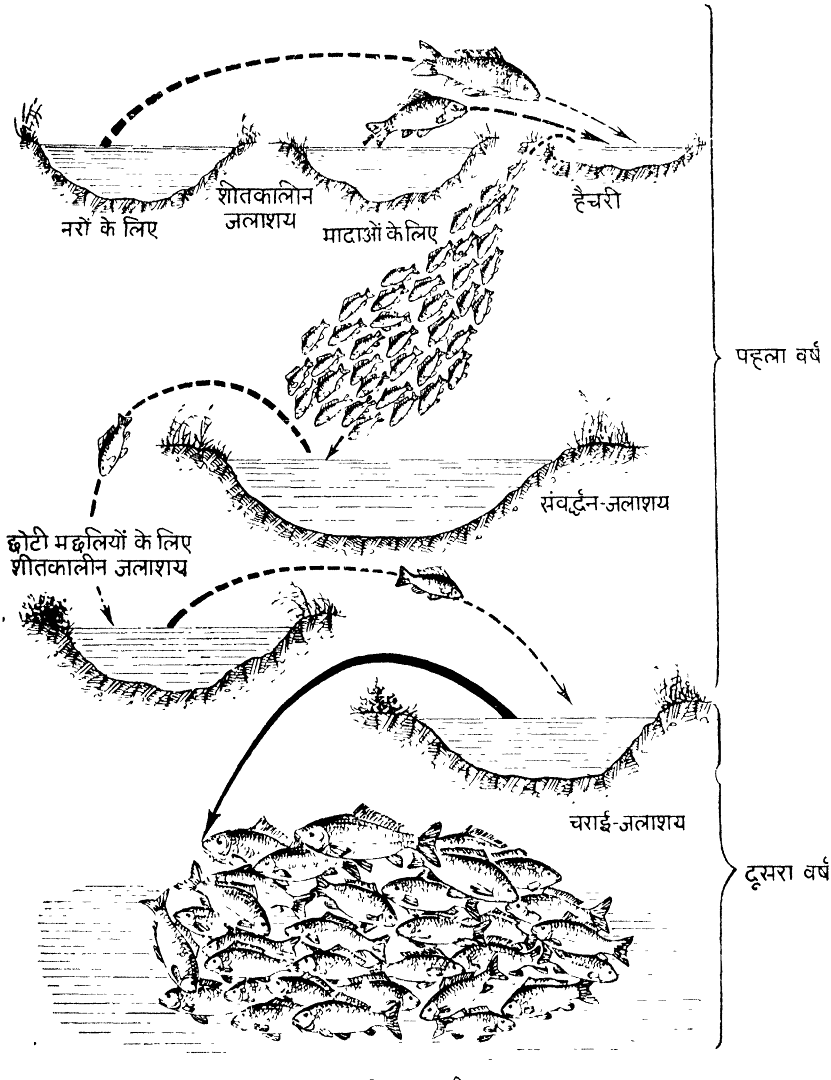

आकृति ८९ – कार्प-मछली संवर्द्धन केंद्र का एक दृश्य।

चराई-जलाशयों में कार्प-मछलियों को ग्राम तौर पर कृत्रिम रीति से खिलाया जाता है। इस कृत्रिम भोजन में मटर, मक्का, खली, मछली का ग्राटा, उबले ग्रालू इत्यादि चीज़ें शामिल हैं। इस प्रकार के ग्रतिरिक्त चारे के फलस्वरूप मछली जल्दी बड़ी होती है और प्राकृतिक चारे की ग्रपेक्षा इससे उसका वज़न कही ग्रधिक होता है।

सोवियत संघ में कई बार केवल चराई-जलाशय होते हैं जहा वे ख़ास हैचरियों से ख़रीदे गये मछलियों के इकसाला बच्चों का पालन करते हैं। ग्राईना कार्प-मछली पानी से भरे धान के खेतों में भी पाली जाती है।

कार्प-मछली की प्रकृति में परिवर्त्तन

ग्राईना कार्प-मछली प्रकृति में नही मिलती। साधारण कार्प से कृत्रिम रीति से उसे परिवर्द्धित किया गया है। मनुष्य ने ग्रपनी ग्रावश्यकता के ग्रनुसार कार्प-मछली में सुधार कर दिये हैं। ग्राईना कार्प-मछली से उसके जंगली पुरखों की ग्रपेक्षा ग्रधिक मोटा ग्रौर स्वादिष्ट मांस मिलता है ग्रौर वह जल्दी जल्दी बढ़ती भी है। इस मछली का बरताव भी बदल गया है। साधारण कार्प-मछली सावधान ग्रौर कायर होती है जबकि ग्राईना कार्प-मछली शांत रीति से चराई के स्थान तक तैर ग्राती है।

ग्राईना कार्प-मछली को साधारण कार्प से भिन्न दिखानेवाली विशेषताएं इस मछली को मनुष्य द्वारा प्राप्त करायी गयी ग्रनुकूलतर जीवन-स्थितियों के प्रभाव के फलस्वरूप विकसित हुई हैं। संवर्द्धित कार्प-मछलियों को मिलनेवाला चारा ग्रौर संवर्द्धन के लिए सर्वोत्तम नमूनों का चुनाव इस दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण रहा है। मनुष्य द्वारा पाले जानेवाले ग्रन्य ग्रनेक प्राणियों की तरह ग्राईना कार्प-मछली को भी पालतू या घरेलू प्राणी कहा जा सकता है।

प्रश्न – १. कौनसी विशेषताग्रों के कारण ग्राईना कार्प-मछली साधारण कार्प से भिन्न है? २. किन परिस्थितियों में कार्प-मछली की प्रकृति में परिवर्त्तन हुग्रा? ३. ग्राईना कार्प-मछली को घरेलू प्राणी क्यों मानना चाहिए? ४. मत्स्य-संवर्द्धन-केंद्र में कौनसे जलाशय होते हैं ग्रौर उनमें से प्रत्येक का उपयोग किस प्रकार किया जाता है?

अध्याय ७

जल-स्थलचर वर्ग

§ ४५. हरे मेंढ़क की जीवन-प्रणाली और बाह्य लक्षण

वासस्थान हरा मेंढ़क (आकृति ९०) गरमियों में नदियों और ताल-तलैयों के किनारे पाया जाता है। ख़तरे की आहट पाते ही वह ज़ोर से पानी में छलांग मारता है और छिप जाता है। कुछ देर बाद वह फिर पानी की सतह पर आने लगता है। इस समय उसकी उभड़ी हुई आंखें और नासा-द्वार ज़रा-से पानी के बाहर निकले हुए दिखाई देते हैं। यदि आसपास ख़तरे का कोई अंदेशा न हो तो वह कुछ देर बाद फिर किनारे पर चढ़ आता है।

आकृति ९० – हरा मेंढ़क।

शरद में जाड़ों के शुरू होने के साथ हरा मेंढ़क नदियों के तल में पहुंचता है और वहां की छाड़न में घुसकर सुषुप्तावस्था में लीन हो जाता है।

उष्ण देशों में, जहां साल के दौरान कम-अधिक बारिश होती है और धुआंधार बारिश और लंबे सूखे के कालखंड बराबर एक दूसरे का स्थान लेते रहते हैं, मेंढ़क गरमियों में सुषुप्तावस्था में लीन हो जाते हैं।

इस प्रकार जल और थल, मेंढ़क के दोनों वासस्थान हैं।

दलदलों, चरागाहों और जंगलों में हमें अक्सर घास के मेंढ़क मिलते हैं जो भूरे रंग के होते हैं।

बाह्य लक्षण

बाह्यतः मेंढ़क मछली से बहुत ही भिन्न होता है। धड़ और सिर सहित उसके छोटे और चौड़े-से शरीर में पूंछ नहीं होती और दो जोड़े सुपरिवर्द्धित अंग या अगली और पिछली टांगें होती हैं। मेंढ़क की टांगें मछली के सयुग्म मीन-पक्षों के समान होती हैं पर स्थलचर जीवन के कारण उनकी संरचना अधिक जटिल होती है।

मछली के मीन-पक्षों के विपरीत मेंढ़क के पश्चांग में ऊरु, पिंडली और पाद होते हैं। बाद में पांच अंगुलियां होती हैं। अग्रांग में बाहु, अग्रबाहु और हाथ होते हैं। हाथ में चार अंगुलियां होती हैं।

मेंढ़क ज़मीन पर छलांगें लगाता हुआ चलता है। छलांग मारने में मुख्य काम मज़बूत पिछले पैर देते हैं। जब हरा मेंढ़क छलांग लगाता है तो अपनी पिछली टांगें तान लेता है जो बैठते समय घुटनों में मुड़ी रहती हैं। फिर बड़े ज़ोर से वह ज़मीन से उछल पड़ता है। छलांग लगाने के बाद वह अपने अग्रपादों पर ज़मीन पर आता है। ये अग्रपाद ज़मीन से टकराने या धक्का खाने से उसका बचाव करते हैं।

पानी में भी मेंढ़क अपने पिछले पैरों के सहारे चलता है जिनकी लंबी लंबी अंगुलियों के बीच तरण-जाल तना रहता है। बिना गरदन का नुकीला-सा सिर सघन पानी को काफ़ी आसानी से काटता जा सकता है। मछली की तरह मेंढ़क का शरीर भी त्वचा-ग्रंथियों से रसनेवाले श्लेष्मिल द्रव्य से ढंका रहता है और इससे तैरने में बड़ी सहायता मिलती है।

पीढ़ी दर पीढ़ी काम में आते आते पिछली टांगें अग्रपादों की अपेक्षा सुपरिवर्द्धित हुई हैं।

मेंढ़क की शल्क रहित नंगी त्वचा हरे और भूरे रंग की विभिन्न झलकें लिये होती है। इस रंग-व्यवस्था के कारण मेंढ़क को पानी में और किनारे की घास में

पहचान लेना मुश्किल होता है। त्वचा के सूख जाने से मेंढ़क मर जाता है, अतः वह हमेशा सूखे स्थानों में रह नहीं सकता।

शिकार की प्राप्ति

हरा मेंढ़क प्राणियों को खाकर जीता है। वह ज़मीन पर कीड़े-मकोड़े और पानी में मछली का फ़ाई पकड़ लेता है। यद्यपि मेंढ़क कम चलनेवाला और दीखने में भद्दा-सा होता है फिर भी कीड़ों-मकोड़ों को पकड़ने का काम वह सफलता के साथ कर सकता है। शिकार के पास आते ही मेंढ़क आगे छलांग लगाता है, अपनी लंबी ज़बान झटके से फैलाता है और उसमें चिपकनेवाले कीड़े-मकोड़े को निगल जाता है। चौड़ी, चीकट ज़बान मुंह में अगले किनारे से चिपकी रहती है जबकि कांटेदार पिछला हिस्सा मुंह से बाहर फेंका जाता है।

मेंढ़क के केवल ऊपरवाले जबड़े और तालु पर नन्हे नन्हे दांत होते हैं। जबड़े पर वे मुश्किल से दिखाई देते हैं पर उसके किनारे पर हाथ फेरने से अनुभव किये जा सकते हैं। दांत मेंढ़क को केवल शिकार पकड़ रखने में मदद देते हैं।

ज्ञानेंद्रियां

मेंढ़क के सिर में ऊपर की ओर दो बड़ी बड़ी उभड़ी हुई आंखें होती हैं। मछलियों के विपरीत, मेंढ़क के पलकें होती हैं। ऊपर की पलक अर्द्धचल होती जबकि निचली – चल, जिसका ऊपरवाला हिस्सा पारदर्शी होता है। पलकें सभी स्थलचर रीढ़धारियों की विशेषता है। ये धूल, गंदगी आदि से आंखों की रक्षा करती हैं।

आंखों के आगे, सिर की ठीक चोटी में, मुंह के ऊपर दो नासा-द्वार होते हैं। इनसे होकर हवा नासा-गुहा में पैठती है जहां से घ्राण-तंत्रिका शाखाओं में बंटती है। मछली के विपरीत मेंढ़क की नासा-गुहा मुख-गुहा से संबद्ध होती है। यदि हम मेंढ़क का मुंह खोल दें तो उसके तालु पर अनु-नासा-छिद्र दिखाई देंगे। इनके ज़रिये हवा मुख-गुहा में प्रवेश करती है और वहां से श्वसनेंद्रियों में अर्थात् फुफ्फुसों या फेफड़ों में।

सिर के फूले हुए हिस्से में आंखों और नासा-द्वारों के होने के कारण मेंढ़क केवल अपने सिर के ऊपरी भाग को ही पानी से बाहर निकालकर सांस ले सकता है।

मेंढ़क की श्रवणेंद्रियां हवा से ध्वनियां सुनने की क्षमता रखती हैं। हर आंख के पीछे एक एक गोल कर्णपटह होता है। हवाई ध्वनि-तरंगें उसे कंपित कर देती हैं और ये कंपन खोपड़ी में स्थित अंदरूनी कान में पहुंचाये जाते हैं।

प्रश्न – १. मेंढ़क की टांगें किस प्रकार मछली के सयुग्म मीन-पक्षों से भिन्न हैं? २. मेंढ़क अपना शिकार कैसे पकड़ लेता है? ३. कौनसी संरचनात्मक विशेषताओं के कारण मेंढ़क की नेत्रेंद्रियां और घ्राणेंद्रियां मछली की इन इंद्रियों से भिन्न हैं?

व्यावहारिक अभ्यास – सजीव प्रकृति-संग्रह में मेंढ़क का निरीक्षण करो। देखो वह ज़मीन पर और पानी में किस प्रकार चलता है और किस प्रकार टैरेरियम में उसके पास छोड़ी गयी मक्खियां पकड़ लेता है?

§ ४६. मेंढ़क की पेशियां, कंकाल और तंत्रिका-तंत्र

पेशियां

मेंढ़क अपनी टांगों के सहारे ज़मीन पर और पानी में चलता है। इस कारण इन अंगों में गति उत्पन्न करनेवाली पेशियां मेंढ़क में सुपरिवर्द्धित होती हैं। पिछली टांगों की पेशियां विशेष सुपरिवर्द्धित होती हैं। कुछ देशों में (फ़्रांस, अमेरिका इत्यादि) मेंढ़क का मांस भोजन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

कंकाल

मेंढ़क और मछली के कंकाल में कुछ समानताएं हैं और कुछ भिन्नताएं भी (आकृति ९१)।

मछली की तरह मेंढ़क में भी शरीर का मुख्य आधार कशेरुक दंड ही है यद्यपि वह छोटा होता है और उसके अंत में लंबा पुच्छ-दंड होता है। यह पुच्छ-दंड पूंछ के अपरिवर्द्धित कशेरुकों के समेकन से बनता है। मछली की ही तरह सभी कशेरुकों की मेहराबों से एक नाली बनती है जिसमें रीढ़-रज्जु होती है। मेंढ़क के पसलियां नहीं होतीं। भ्रूण में शुरू शुरू में पसलियां दिखाई देती हैं पर बाद में उनका कशेरुकों के साथ समेकन हो जाता है। खोपड़ी में कपाल और मुंह को घेरे हुए जबड़े होते हैं।

ज़मीन पर की गति के लिए अनुकूलन के कारण मेंढ़क के अग्रांगों और पश्चांगों का कंकाल अधिक जटिल होता है। पिछली टांग के कंकाल में ऊरु-अस्थि, पिंडली की हड्डी और बहुत-सी पादास्थियां होती हैं। अग्रपाद में बाहु, अग्रबाहु और हाथ शामिल हैं। अंगों को अंस-मेखला और श्रोणि-मेखला से आधार मिलता है।

तंत्रिका-तंत्र

मेंढ़क के तंत्रिका-तंत्र में मस्तिष्क, रीढ़-रज्जु और इनसे निकलनेवाली शाखा रूप तंत्रिकाएं शामिल हैं।

मस्तिष्क के हिस्से मछली के से ही होते हैं – अग्रमस्तिष्क, अंतर्मस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क, अनुमस्तिष्क और मेडयूला आबलंगेटा (आकृति ६२)।

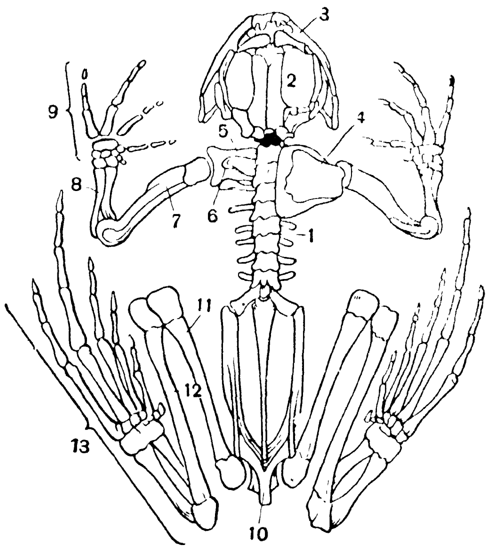

आकृति ६१ – मेंढ़क का कंकाल

१(1). कशेरुक दंड; २(2). कपाल; ३(3). जबड़े; ४, ५, ६ (4, 5, 6). अंस-मेखला की हड्डियां; ७(7). बाहु की हड्डी; ८(8). अग्रबाहु की हड्डी; ९(9). हाथ की हड्डियां; १०(10). श्रोणि; ११ (11). ऊरु-अस्थि; १२(12). पिंडली की हड्डी; १३ (13). पादास्थियां।

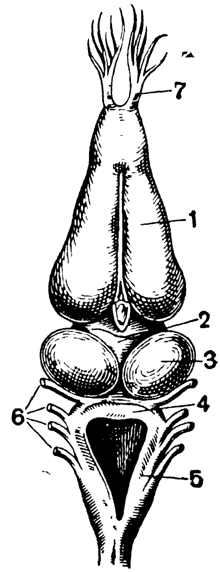

आकृति ६२ – मेंढ़क का मस्तिष्क

१(1). अग्रमस्तिष्क; २(2). अंतर्मस्तिष्क; ३(3). मध्य मस्तिष्क; ४(4). अनुमस्तिष्क; ५(5). मेडयूला आबलंगेटा; ६. (6). मेडयूला आबलंगेटा से निकलनेवाली तंत्रिकाएं; ७ (7). घ्राण तंत्रिकाएं।

मस्तिष्क के अन्य भागों की अपेक्षा मेंढ़क का अग्रमस्तिष्क मछली की तुलना में कहीं अधिक परिवर्द्धित होता है। दूसरी ओर अनुमस्तिष्क बहुत ही छोटा होता

है। यह मेडयूला ग्राबलंगेटा के ऊपर एक मेंड की शकल में होता है। प्राणियों की क्लिष्ट गतियों को नियंत्रित करनेवाले ग्रनुमस्तिष्क के कम परिवर्द्धन के कारण ही मेंढ़क की गति सीमित प्रकारों की होती है। वह छलांग लगाता हुग्रा सिर्फ़ ग्रागे की ग्रोर चल सकता है, मछली की तरह इधर-उधर मुड़ नहीं सकता।

मस्तिष्क ग्रौर रीढ़-रज्जु का महत्त्व दिखाने की दृष्टि से मेंढ़क पर प्रयोग करना ग्रासान है। यदि हम मेंढ़क का मस्तिष्क हटा दें या नष्ट कर दें तो भी वह फ़ौरन मरेगा नहीं पर मस्तिष्क से संबंधित प्रतिवर्त्ती क्रियाग्रों के ग्रभाव में उसका बरताव एकदम बदल जायेगा। मेंढ़क को पीठ के बल रख दिया जाये तो वह उलटकर पेट के बल नहीं हो सकता। यदि हम उसे मत्स्यालय में रख दें तो वह तैरता नहीं बल्कि तल में जाकर गतिहीन पड़ा रहता है। स्पष्ट है कि मस्तिष्क की गतिविधि का जटिल गति-क्षमता से संबंध है। ऐसे मेंढ़क में संवेदन-क्षमता नष्ट नहीं होती। यदि हम उसकी टांग में चिकोटी काटें तो वह उसे झटकाता है। पर यदि हम उसकी रीढ़-रज्जु को नष्ट कर दें तो वह उद्दीपनों का उत्तर नहीं देता – हम उसकी टांग में चिकोटी काट सकते हैं, चाहें उसपर तेज़ाब डाल सकते हैं – पर वह न हिलता है न डुलता है। स्पष्टतया इन उद्दीपनों का उत्तर देनेवाली प्रतिवर्त्ती क्रियाएं रीढ़-रज्जु पर निर्भर हैं।

वर्णित प्रयोगों से स्पष्ट होता है कि ग्रत्यंत जटिल प्रतिवर्त्ती क्रियाएं मस्तिष्क से संबद्ध हैं।

मछली की तरह मेंढ़क का बरताव भी ग्रानुवंशिक ग्रनियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाग्रों का बना रहता है। पर उसमें नियमित या ग्रर्जित प्रतिवर्त्ती क्रियाएं भी परिवर्द्धित हो सकती हैं।

प्रश्न – १. मेंढ़क ग्रौर मछली के कंकालों में क्या ग्रंतर है? २. मेंढ़क के ग्रग्रांगों ग्रौर पश्चांगों के कंकाल में कौनसी हड्डियां होती हैं? ३. मेंढ़क ग्रौर मछली के मस्तिष्क की संरचना में कौनसी समानताएं हैं ग्रौर कौनसी भिन्नताएं? ४. मेंढ़क के मस्तिष्क का महत्त्व स्पष्ट करने के लिए कौनसे प्रयोग किये जा सकते हैं?

§ ४७. मेंढ़क की शरीर-गुहा की इंद्रियां

पचनेंद्रियां मेंढ़क द्वारा पकड़ा गया शिकार मुख-गुहा से गले और ग्रसिका के द्वारा जठर में पहुंचता है। जठर में से भोजन आंत में जाता है जो पाचक तंत्र का अंतिम भाग है (आकृति ६३)।

जठर की दीवालों में से पाचक रस रसता है। यहीं से पाचन-क्रिया आरंभ होती है। यह आंत के शुरुआती हिस्से में जारी रहती है जहां यकृत् से पित्त और अग्न्याशय से रस टपकता है। आंत का शुरुआती और बीच का हिस्सा पतली आंत कहलाता है और वह रक्त-वाहिनियों के जाल से आवृत रहता है। तरल पचे हुए पदार्थ रक्त-वाहिनियों की दीवालों से रक्त में अवशोषित होते हैं। भोजन के अनपचे अवशेष मोटी और छोटी आंत में इकट्ठे होते हैं और वहां से गुदा के ज़रिये उनका उत्सर्जन होता है।

गुरदे और जननेंद्रियों की वाहिकाएं भी आंत के पिछले सिरे में खुलती हैं। इसी कारण उसे अवस्कर कहते हैं।

श्वसनेंद्रियां मेंढ़क फुफ्फुसों और अपनी त्वचा की सहायता से सांस लेता है। फुफ्फुस शरीर-गुहा के आगेवाले हिस्से में होते हैं (आकृति ६३)।

यदि हम ज़िंदा मेंढ़क को उस समय देखें जब उसका मुंह बंद हो तो हमें उसकी मुख-गुहा का निचला हिस्सा उठता और गिरता दिखाई देगा। जब वह गिरता है, मुख-गुहा फैलती है और खुले नासा-द्वारों से आनेवाली हवा से भर जाती है। जब उक्त हिस्सा उठता है तो नासा-द्वार वैल्वों द्वारा अंदर की ओर से बंद हो जाते हैं और हवा फुफ्फुसों में ठेली जाती है।

विच्छेदित मेंढ़क के स्वरयंत्र में तिनका या शीशे की छोटी-सी नलिका डालकर उसके ज़रिये उसके फुफ्फुसों में हवा भर दी जा सकती है। फुफ्फुस दो थैलियों के रूप में होते हैं जिनकी पतली दीवालें बड़ी कोशिकाओं की बनी रहती हैं और जिनमें रक्त-वाहिनियों का सघन जाल फैला हुआ होता है।

फुफ्फुसों की छोटी-सी अंदरूनी सतह रक्त को काफ़ी ऑक्सीजन नहीं पहुंचा सकती। मेंढ़क की एक और श्वसनेंद्रिय है उसकी त्वचा, जिसमें रक्त-वाहिनियों

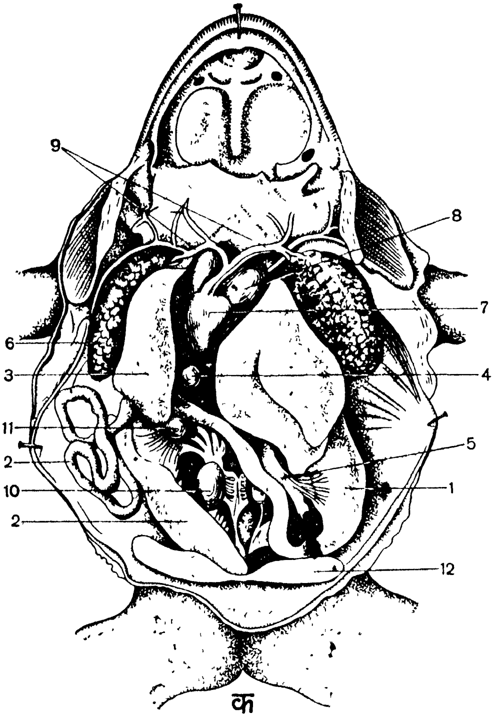

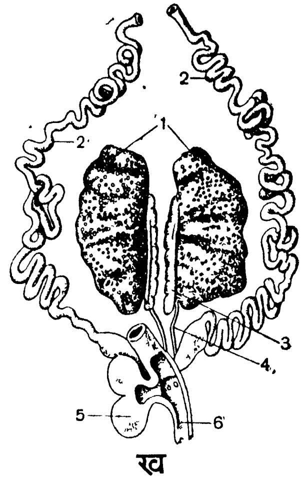

आकृति ६३ – मेंढ़क की अंदरूनी इंद्रियां

क – विच्छेदित नर

१(1). जठर ; २(2). आंत ; ३(3). यकृत् ; ४(4). पित्ताशय ; ५(5). अग्न्याशय ; ६(6). फुफ्फुस ; ७(7). निलय ; ८(8). अलिंद ; ९ (9). हृदय से निकलनेवाली रक्त-वाहिनियां ; १०(10), वृषण ; ११(11). प्लीहा ; १२ (12). मूत्राशय ;

ख – मादा की जनन और उत्सर्जन इंद्रियां

१(1). अंडाशय ; २(2). अंड-वाहिनियां ; ३(3). गुरदा ; ४. (4). मूत्रवाहिनी ; ५(5). मूत्राशय ; ६(6). अवस्कर।

का विशाल जाल फैला हुआ होता है। इन वाहिनियों की दीवालों के ज़रिये ऑक्सीजन रक्त में प्रवेश करता है। त्वचा द्वारा सांस लेने की क्षमता के कारण मेंढ़क काफ़ी देर तक पानी के नीचे रह सकता है। यदि त्वचा सूख जाये तो मेंढ़क मर जायेगा क्योंकि ऑक्सीजन केवल गीली त्वचा में से ही पैठ पाता है।

रक्त-परिवहन की इंद्रियां

फुफ्फुसों के परिवर्द्धन के कारण मेंढ़क की रक्त-परिवहन इंद्रियों की संरचना मछलियों की अपेक्षा अधिक जटिल होती है। हृदय के दो नहीं बल्कि तीन कक्ष होते हैं – निलय और दो अलिंद – दायां और बायां (आकृति ६३)। रक्त शरीर में मछली की तरह एक परिवहन-वृत्त में नहीं बल्कि दो वृत्तों में बहता रहता है (आकृति ६४)।

प्रधान वृत्त में रक्त निलय से धमनियों के ज़रिये शरीर की सभी इंद्रियों तक पहुंचता है। यहां केशिकाओं में रक्त ऑक्सीजन और पोषक पदार्थ देकर कारबन डाइ-आक्साइड लेता है और शिराओं के ज़रिये दायें अलिंद में लौट आता है।

अप्रधान या फुफ्फुस वृत्त में रक्त निलय से फुफ्फुसों और त्वचा में पहुंचता है। यहां से ऑक्सीजन समृद्ध रक्त बायें अलिंद में लौट आता है।

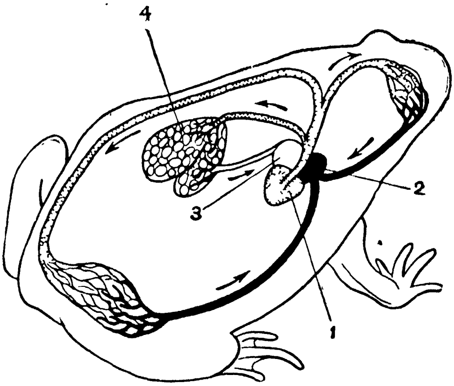

आकृति ६४ – मेंढ़क के रक्त-परिवहन की रूप-रेखा

१ (1). निलय (मिश्रित रक्त); २ (2). दायां अलिंद (कारबन डाइ-आक्साइड समृद्ध रक्त); ३ (3). बायां अलिंद (ऑक्सीजन समृद्ध रक्त); ४ (4). फुफ्फुस; बाण रक्त के प्रवाह की दिशाएं दिखाते हैं।

इस प्रकार अलिंदों में भिन्न प्रकार का रक्त रहता है – बायें अलिंद में ऑक्सीजन परिपूर्ण रक्त रहता है जबकि दायें में उससे ख़ाली रक्त। निलय में मिश्रित रक्त रहता है क्योंकि उसमें वह दोनों अलिंदों से आता है। शरीर की सभी इंद्रियों में पहुंचनेवाला रक्त भी मिश्रित होता है।

उत्सर्जन इंद्रियां

शरीर-गुहा में रीढ़ के दोनों ओर स्थित दो लंबे-से गुरदे मेंढ़क की उत्सर्जन इंद्रियां हैं (आकृति ६३)। हर गुरदे से एक एक मूत्रवाहिनी निकलती है जो आंत के पिछले भाग में पहुंचती है।

मेंढ़क में उपापचय मंदा होता है और न के बराबर उष्णता उत्पन्न होती

है। शरीर का तापमान परिवर्तनशील होता है और आसपास की हवा या पानी के तापमान पर निर्भर करता है। जाड़ों की शुरुआत में मेंढ़क मांद में डेरा डालकर सुषुप्तावस्था में लीन हो जाता है।

प्रश्न – १. मेंढ़क की पचनेंद्रियों की संरचना का वर्णन करो। २. मेंढ़क की कौनसी इंद्रिय अवस्कर कहलाती है? ३. मेंढ़क किस प्रकार और किन इंद्रियों की सहायता से सांस लेता है? ४. मछली की अपेक्षा मेंढ़क की रक्त-परिवहन इंद्रियों की संरचना में हमें कौनसी जटिलताएं दिखाई देती हैं?

§ ४८. मेंढ़क का जनन और परिवर्द्धन

जनन

वसंत में शाम के समय नदियों और ताल-तलैयों के किनारों से कर्कश बेसुरी ध्वनियों का समवेत गान दूर दूर तक गूंजता रहता है। ये हैं मेंढ़कों के 'कन्सर्ट' जो वे अपनी लंबी सुषुप्तावस्था से जाग उठते ही आयोजित करते हैं।

इन 'कन्सर्टों' में गला फाड़ने का काम सिर्फ़ नर करते हैं। टर्राते समय मेंढ़क के सिर के दोनों ओर बड़े बड़े फुलाव उभड़ आते हैं जो आवाज़ को और ज़ोरदार बनाते हैं।

वसंत में इन 'कन्सर्टों' के दौरान में ही मेंढ़क बच्चे पैदा करते हैं।

मेंढ़क की जननेंद्रियां – मादाओं में अंडाशय और नरों में वृषण – शरीर-गुहा में स्थित होती हैं (आकृति ९३)। अंडों से भरे हुए काले अंडाशय वसंत में अंडे देने से पहले विशेष बड़े होते हैं। वृषण सेम की शकल के छोटे छोटे पीले पिंड होते हैं।

वसंत में मादाएं अपने अंड-समूह पानी में छोड़ देती हैं। ये ऊपर से मछली के अंड-समूह-से लगते हैं। नर अपना शुक्राणुयुक्त वीर्य इन अंडों पर ढाल देते हैं। इस प्रकार पानी में संसेचन होता है। अंडों के पारदर्शी आवरण फूल जाते हैं और श्लेष्मिक, जैलीनुमा पिंडों में उनका समेकन होता है।

परिवर्द्धन

अपने आवरण के अंदर अंडा भ्रूण (आकृति ९५) में परिवर्द्धित होता है। आठ-दस दिन के अंदर अंदर (पानी के तापमान के अनुसार) आवरण से बेंगची बाहर आती है। यह बेंगची वयस्क मेंढ़क से बिल्कुल भिन्न होती है। उसका लंबी पूंछ सहित तकुए की शकलवाला

शरीर मेंढ़क की अपेक्षा मछली के फ़्राई से अधिक मिलता-जुलता होता है। उसके सिर के दोनों ओर शाखादार बाह्य जल-श्वसनिकाएं होती हैं जिनके ज़रिये पानी में मिश्रित ऑक्सीजन उसके रक्त में प्रवेश करता है।

अपने जीवन के कुछ आरंभिक दिनों में बेंगची पानी में उगे पौधों का सहारा लिये रहती है। सिर की निचली सतह पर निकले हुए एक विशेष चूषक द्वारा वह पौधों में चिपकी रहती है। उस समय बेंगची के मुंह नहीं होता और वह अंडे के अवशिष्ट पोषक पदार्थों के सहारे जीवित रहती है। पर शीघ्र ही बेंगची में नन्हा-सा मुंह परिवर्द्धित होता है जो सख़्त शृंगीय जबड़ों से घिरा रहता है। अब बेंगची अपने जबड़ों से पानी के पौधों के टुकड़े कुतर कुतरकर स्वतंत्र रूप से अपनी जीविका चलाने लगती है।

बाह्य जल-श्वसनिकाएं देर तक नहीं रहतीं। मछली की ही तरह उनकी जगह अंदरूनी जल-श्वसनिकाओं सहित जल-श्वसनिका-छेद लेते हैं। इस समय बेंगची केवल ऊपर ऊपर से नहीं बल्कि उसकी अंदरूनी इंद्रियों की संरचना के कारण भी नन्ही-सी मछली के समान दिखाई देती है। मछली की तरह उसके भी जल-श्वसनिकाएं, दो कक्षों वाला हृदय, रक्त-परिवहन का एक वृत्त और पार्श्विक रेखा की इंद्रियां होती हैं। कुछ मछलियों की तरह उसके रज्जु भी होती है। यदि हमें मालूम न हो कि बेंगची मेंढ़क के अंडे से परिवर्द्धित हुई है तो हम सहज ही उसे नन्ही-सी मछली ही समझ बैठेंगे।

बेंगची की यह शकल-सूरत लगभग एक महीने तक रहती है। फिर उसमें अंगों का परिवर्द्धन होने लगता है। पिछली टांगें पहले निकालती हैं और अगली बाद में। मुह चौड़ा हो जाता है और बेंगची वनस्पतिरूप भोजन के स्थान में प्राणिरूप भोजन लेने लगती है।

इस समय बेंगची अपने फुप्फुसों से सांस लेने के लिए पानी की सतह पर उतराने लगती है। उसकी पूंछ घटती जाती है। अब नन्ही बेंगची मेंढ़क जैसी दिखाई देने लगती है। नन्हा-सा मेंढ़क पानी से बाहर निकलता है। केवल ठूंठ-सी पूंछ ही पहले उसके बेंगची होने की याद दिलाती है। फिर यह पूंछ भी झड़ती जाती है और आख़िर उसका कोई नामोनिशान नहीं रहता।

इस प्रकार बेंगची की संरचना और आवश्यकताएं दोनों वयस्क मेंढ़क से भिन्न होती हैं। उसे दूसरे भोजन की आवश्यकता होती है, वह केवल पानी में से

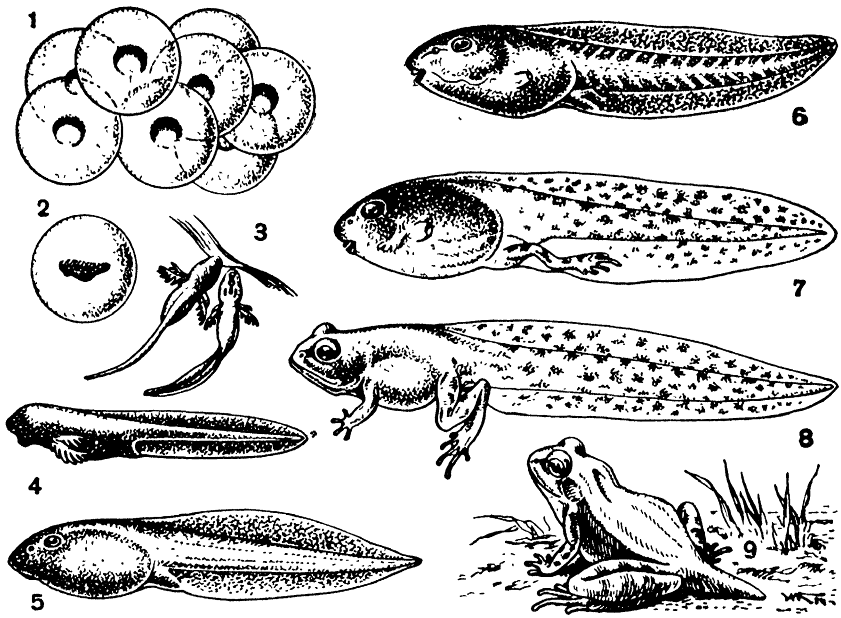

आकृति ६५ – मेंढ़क का परिवर्द्धन

१(1). अंड-समूह; २(2). आवरण के अंदर भ्रूण; ३,४ (3,4). बाह्य जलश्वसनिकाओं सहित बेंगची; ५(5). अंदरूनी जल-श्वसनिकाओं सहित बेंगची; ६,७,८ (6,7,8). टांगों सहित बेंगची; ६(9). अवशिष्ट पूंछ सहित मेंढ़क का बच्चा।

ऑक्सीजन का अवशोषण करती है और उसकी शकल काफ़ी मात्रा में मछली से मिलती-जुलती होती है।

मेंढ़क का बच्चा तीन या चार वर्ष का होने पर ही वयस्क हो जाता है। इस अवस्था में मेंढ़क बच्चे पैदा करना शुरू करते हैं।

जल-स्थलचरों का मूल

मेंढ़क के परिवर्द्धन के अध्ययन से हमें उन रीढ़धारियों का मूल समझने में सहायता मिलती है जिन्हें हम जल-स्थलचरों (ट्राइटन, भेक इत्यादि) के वर्ग में रखते हैं। इन सभी प्राणियों की जनन-क्रिया पानी में होती है। यहीं उनकी बेंगचियां रहती है जो बाह्य रूप से और अंदरूनी संरचना की दृष्टि से भी मछली

के समान होती हैं। इस समानता के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जल-स्थलचरों और मछलियों के बीच रिश्ता ज़रूर है।

और सचमुच वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि प्राचीन जल-स्थलचरों की उत्पत्ति मछलियों से ही हुई है। फ़ौसिली प्राणियों में उन्होंने पिंडक-मीन-पक्षधारी मछलियां खोज निकाली हैं जो जल-स्थलचरों के पूर्वज मानी जा सकती हैं (आकृति ९६)।

पिंडक-मीन-पक्षधारी मछलियों के सयुग्म मीन-पक्ष तल में रेंगने के अनुकूल थे और उनका कंकाल प्राचीन जल-स्थलचरों की टांगों के कंकाल से मिलता-जुलता था। इन मछलियों का वायवाशय, जिसे आम तौर पर फुफ्फुस कहते हैं, श्वसन के अनुकूल था। पानी में ऑक्सीजन के अभाव की स्थिति में पिंडक-मीन-पक्षधारी मछलियां वायुमंडलीय हवा में सांस कर सकती थी।

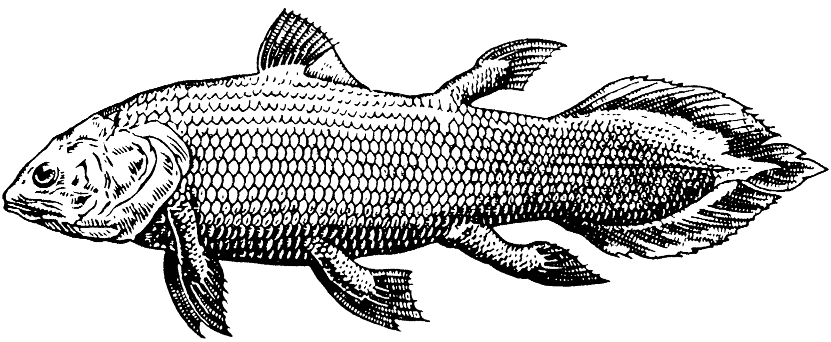

आकृति ९६ – पिंडक-मीन-पक्षधारी मछली।

पिंडक-मीन-पक्षधारी मछलियों का पानी से ज़मीन पर आगमन और जल-स्थलचर प्राणियों में परिवर्द्धन निम्न प्रकार से हुआ – धरती पर जीवन के अति प्राचीन काल में, जब विभिन्न मछलियों के अलावा किन्ही और रीढ़धारियों का अस्तित्व न था, मौसम अधिकाधिक सूखा होता गया। जिनमें पिंडक-मीन-पक्षधारी मछलियां रहती थी ऐसे बहुत-से जलाशय छिछले होते गये और आखिर सूख गये। वायुमंडलीय हवा में सांस करने की क्षमता होने के कारण ये मछलियां बचे-खुचे जलाशयों की खोज में अपने अंगो के सहारे रेंगती हुई जलाशयों में से निकलकर ज़मीन पर पहुंची। उनमें से कुछ मछलियों को ज़मीन पर ज़रूरी भोजन मिल गया और वे वहीं रहने लगी।

नयी जीवन-स्थितियों के अनुसार ज़मीन पर भी चलने के लिए अनुकूलन और वायुमंडलीय हवा के श्वसन में अधिक पूर्णता आ गयी। सयुग्म मीन-पक्ष पृथक् हिस्सों वाली टांगों में परिणत हुए और वायवाशय वास्तविक फुफ्फुसों में, जिन्होंने जल-श्वसनिकाओं का स्थान लिया। फुफ्फुसों के परिवर्द्धन के साथ रक्त-परिवहन का एक और वृत्त तैयार हुआ और हृदय में तीन कक्ष बन गये।

इस प्रकार एक बहुत लंबे समय में मछलियों से जल-स्थलचर प्राणी परिवर्द्धित हुए। अब ये प्राणी जल में रह सकते हैं और थल में भी, पर उनका जीवन नियमतः पानी ही में शुरू होता है।

प्रश्न – १. जल-स्थलचरों और मछलियों की जनन-क्रिया में कौनसी विशेषताएं समान हैं? २. बेंगची किस प्रकार मछली से मिलती-जुलती होती है? ३. बेंगची और मछली की समानता की व्याख्या करो। ४. प्राचीन पिंडक-मीन-पक्षधारी मछलियों की विशेषताएं बतलाओ। ५. पिंडक-मीन-पक्षधारी मछलियों से जल-स्थलचर प्राणी किस प्रकार परिवर्द्धित हुए?

व्यावहारिक अभ्यास – वसंत में मेंढ़क का संसेचित अंड-समूह ढूंढ लो और उसे घरेलू मत्स्यालय में रख दो। बेंगचियों के परिवर्द्धन का निरीक्षण करो।

§ ४६. जल-स्थलचरों की विविधता

भारतीय मेंढ़क

भारतीय मेंढ़क अपने उत्तरी जातवालों से बड़ा होता है। भारतीय सांड़-मेंढ़क विशेष बड़ा होता है। यह एक बहुत ही उपयोगी प्राणी है जो दीमक, नन्हे नन्हे बीटल, तितलियां और जवान टिड्डियां खाकर रहता है।

एक और उल्लेखनीय भारतीय मेंढ़क है – राकोफोरस मेकुलेटम या डांड़नुमा टांगों वाला मेंढ़क (आकृति ६७)। उसकी चारों टांगें जालदार होती हैं। इसके अलावा उनके सिरों में चूषक होते हैं। इन चूषकों के सहारे मेंढ़क आसानी से पेड़ों के तनों पर चढ़ सकता है जहां वह कीड़ों-मकोड़ों का शिकार करता है। पेड़ों पर से कूदते समय उसकी टांगों के चौड़े जाल उसे हवा के बीच से नीचे की ओर

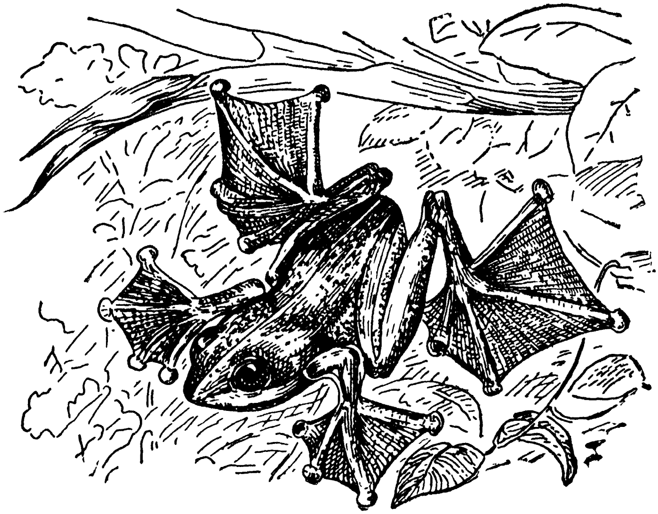

आकृति ९७ – डांड़नुमा टांगों वाला मेंढ़क।

फिसलने में मदद देते हैं। यह क्षमता श्रीलंका, सुमात्रा, बोर्निओ और जावा के डांड़नुमा टांगों वाले मेंढ़कों में विशेष विकसित होती है।

भेक

भेक ऊपर ऊपर से मेंढ़क की तरह ही दिखाई देता है (आकृति ९८), पर उसका वासस्थान और जीवन-स्थितियां कुछ भिन्न होती हैं। भेक शाम के समय बाग़-बगियों में और अक्सर पानी से बहुत दूर भी पाये जाते हैं। फिर भी वे सूखी हवा नहीं सह पाते और धुपहले दिनों में वे नम स्थानों में छिप जाते हैं। केवल शाम को ही भेक शिकार के लिए बाहर आते हैं। वे डिंभ और वयस्क कीड़े-मकोड़े खाकर जीते हैं।

भेक बहुत ही धीरे धीरे चलते हैं, कभी कभी तो वे ज़मीन पर सिर्फ़ रेंगते हैं। वे मेंढ़क की तरह लंबी छलांगें नहीं लगा सकते। मेंढ़क तो छलांग के दौरान में भी कीटों को पकड़ सकता है। इसी कारण भेक की पिछली टांगें मेंढ़क की टांगों जितनी सुपरिवर्द्धित नहीं होतीं।

मस्सों से आवृत त्वचा से रसनेवाला दाहक श्लेष्म धीरे धीरे चलनेवाले भेक की शत्रुओं से रक्षा करता है। इस श्लेष्म का मनुष्य की त्वचा पर कोई असर नहीं पड़ता पर यदि वह आंखों में या होंठों पर गिर जाये तो श्लेष्मिक झिल्लियों में सूजन पैदा हो सकती है।

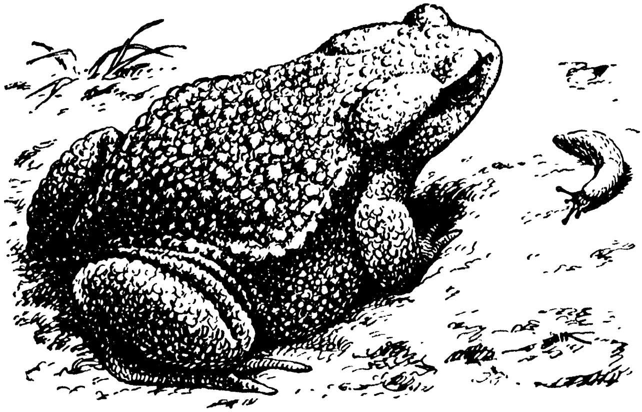

आकृति ६८ – भेक।

अन्य जल-स्थलचर प्राणियों की तरह भेक भी पानी में ही बच्चे पैदा कर सकते हैं और इसी लिए वसंत ऋतु में वे पानी में ही रहते हैं। उस समय हमें ताल-तलैयों, झरनों और पोखरों तक में लंबे लंबे श्लेष्मिक धागे दिखाई देते हैं जिनमें अंड-समूह होते हैं।

संसेचन के बाद अंड-समूह बेंगचियों में परिवर्द्धित होते हैं। गरमियों में उनका परिवर्द्धन पूर्ण होता है और वे नन्हे नन्हे भेकों में परिवर्तित होकर पानी से बाहर निकलते हैं।

हानिकर कीड़ों-मकोड़ों का नाश करके भेक खेती को काफ़ी लाभ पहुंचाता है। भेकों की हानिकरता और विषैले डंक की कहानियां केवल अज्ञान पर आधारित हैं। फलों और सब्ज़ियों के बाग़वान भेकों को ठीक ही अपने मित्रों में गिनते है। वे उन्हें अपने बगीचों में ले जाते हैं और उनकी रक्षा का प्रबंध कर देते हैं।

ट्राइटन

जल-स्थलचरों में हम ट्राइटन (आकृति ६९) को भी गिन सकते है। वसंत और ग्रीष्म में यह प्राणी जलपौधों से ढंकी हुई छोटी छोटी तलैयों में देखे जा सकते हैं। गरमियों के उत्तरार्द्ध में ट्राइटन पानी से निकलकर ज़मीन पर आता है और काई में या पेड़ों की जड़ों के नीचे ऐसा सुरक्षित स्थान ढूंढ लेता है जहां जाड़ों के दिन बिता सके। अक्सर ये स्थान पानी से काफ़ी दूर भी होते हैं।

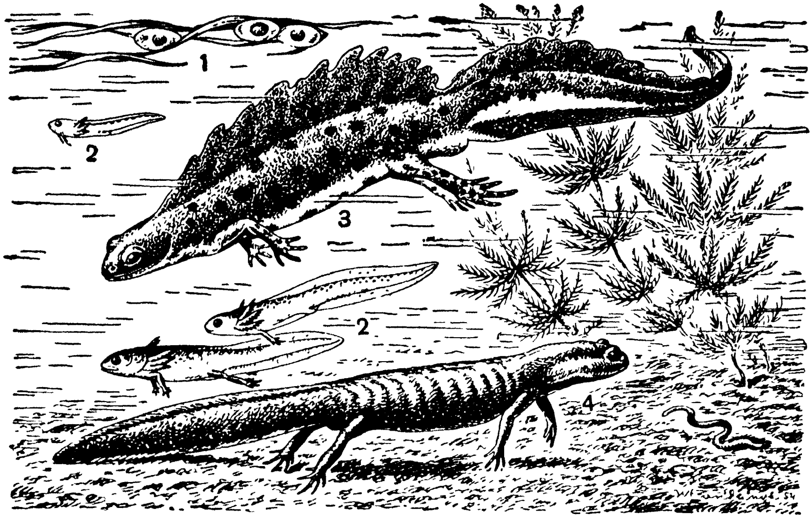

आकृति ९९ – ट्राइटन
१(1). अंडे ; २(2). डिंभ ; ३(3). नर ; ४ (4). मादा।

बाह्यतः ट्राइटन मेंढ़क से एकदम भिन्न लगता है। उसके लंबे-से शरीर के अंत में लंबी पूंछ होती है। पूंछ के किनारे चपटे होते हैं और उनमें तरण-जाल की झालर-सी लगी रहती है। अपनी पूंछ की सहायता से ट्राइटन पानी में तैरता है। जमीन पर ट्राइटन दो जोड़े छोटी छोटी टांगों के सहारे चलता है। मेंढ़क की तरह यह भी पानी की सतह तक आकर फुफ्फुसों से सांस ले सकता है और त्वचा से भी।

ट्राइटन कीड़ों-मकोड़ों, मकड़ियों, कृमियों आदि विभिन्न छोटे छोटे प्राणियों को खाकर रहता है। इसका जनन अंड-समूहों के रूप में होता है। वह जलपौधों की डंडियों और पत्तियों में हर अंडा अलग अलग से चिपका देता है। अंडे डिंभों में परिवर्द्धित होते हैं। डिंभों में बाह्य जल-श्वसनिकाएं होती हैं और डिंभ बेंगची की शकल के होते हैं।

12—2007

श्रीलंका की सांप-मछली

भारत और पड़ोसी देशों में एक विशिष्ट प्राणी पाया जाता है जो श्रीलंका की सांप-मछली कहलाता है (आकृति १००)। नाम से ही इसकी सांप जैसी शकल-सूरत का पता चलता है। इसके जीवन का एक हिस्सा मछली की तरह पानी में बीतता है।

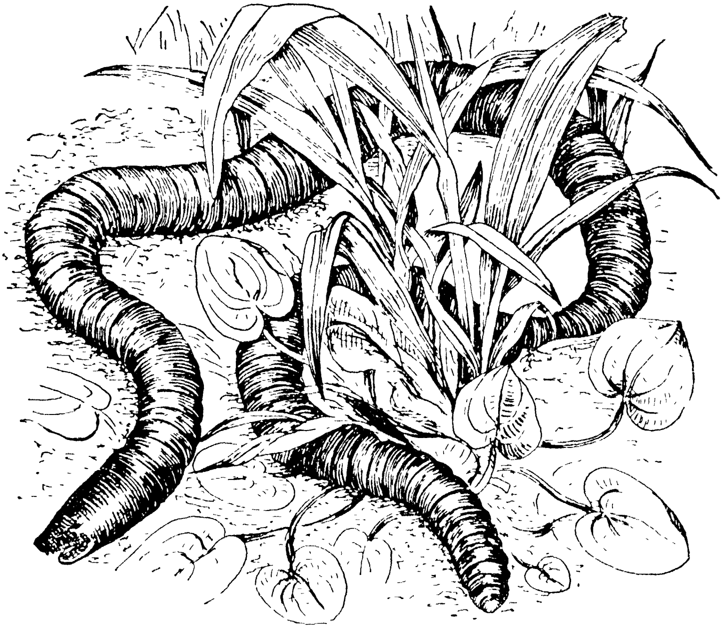

आकृति १०० – श्रीलंका की सांप-मछली।

फिर भी सांप-मछली की संरचना और जीवन के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वह न मछली है, न सांप और न कृमि ही ; पर है एक जल-स्थलचर प्राणी जिसका जीवन जल और थल दोनों के अनुकूल होता है।

वयस्क सांप-मछली झरनों के किनारे घास के नीचे रहती है जहां वह मुख्यतया केंचुओं को खाती है। जनन-क्रिया में मादा पानी के पास ही ज़मीन के सूराख़ में कुछ बड़े बड़े अंडे देती है। इसके बाद वह अंडों के चारों ओर गेंडुली मारे रहती है। इस प्रकार वह उन्हें काफ़ी देर तक नम अवस्था में रखती है जो

भ्रूणों के परिवर्द्धन के लिए आवश्यक है। भ्रूणों के बाह्य जल-श्वसनिकाएं, पूंछ का मीन-पक्ष और प्राथमिक अवस्था की पिछली टांगें होती हैं जो बाद में नष्ट हो जाती हैं। सर्पमीन-से डिंभ जल-प्रवाहों में रहते हैं और शुरू शुरू में बेंगचियों की तरह अपनी जल-श्वसनिकाओं से सांस लेते हैं।

जल-स्थलचर वर्ग की विशेषताएं

जल-स्थलचर वर्ग ऐसे रीढ़धारी प्राणियों का वर्ग है जो ज़मीन पर रहते हैं पर जिनका जनन (अंड-समूहों के रूप में) और परिवर्द्धन पानी में होता है। उनकी टांगें ज़मीन पर चलने और पानी में तैरने के अनुकूल होती हैं।

जल-स्थलचर प्राणी फुफ्फुसों से सांस करते हैं पर इनसे शरीर को काफ़ी ऑक्सीजन की पूर्ति नहीं हो सकती इसलिए उनके एक और श्वसनेंद्रिय होती है – यह है उनकी नंगी, श्लेष्मिक आवरणवाली त्वचा। इनके हृदय के तीन कक्ष होते हैं। रक्त-परिवहन के दो वृत्त होते हैं। इंद्रियों में पहुंचनेवाला रक्त मिश्रित होता है। शरीर का तापमान परिवर्त्तनशील होता है।

जल-स्थलचर प्राणी सपुच्छ (ट्राइटन), अपुच्छ (मेंढ़क, भेक) और अपाद (सांप-मछली) में विभाजित किये जाते हैं। ज्ञात जल-स्थलचरों के प्रकारों की संख्या लगभग २,००० तक है।

जल-स्थलचर प्राणियों की विविधता उनकी विभिन्न जीवन-स्थितियों का परिणाम है। ट्राइटन स्पष्टतया जलगत जीवन के, भेक स्थलचर जीवन के, डांड़नुमा टांगों वाला मेंढ़क पेड़ों पर के जीवन के और सांप-मछली भूमिगत जीवन के अनुकूल होती है।

प्रश्न – १. डांड़नुमा टांगों वाला मेंढ़क क्यों दिलचस्प होता है? २. मेंढ़क और भेक में क्या अंतर है? ३. मेंढ़क की तुलना में भेक की पिछली टांगें उतनी परिवर्द्धित नहीं होतीं, इसका क्या कारण है? ४. भेकों की रक्षा क्यों करनी चाहिए? ५. ट्राइटन को जल-स्थलचर क्यों मानते हैं? ६. सांप-मछली को जल-स्थलचर क्यों मानते हैं? ७. जल-स्थलचर वर्ग की विशेषताएं क्या हैं?

अध्याय ८

उरग वर्ग

§ ५०. रेत की छिपकली

वासस्थान गरमियों में जंगलों के किनारों पर और सूखी, धुपहली पहाड़ियों पर रेत की छिपकली (आकृति १०१) दिखाई देती है। आदमी की आहट पाते ही वह पलक झपते झपते पत्थरों या घास के बीच ग़ायब हो जाती है।

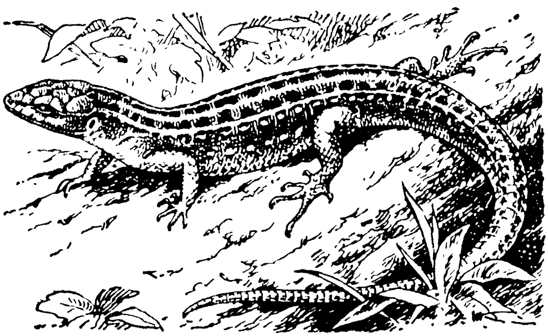

आकृति १०१ – रेत की छिपकली।

छिपकली केवल दिन में ही इधर-उधर घूमती दिखाई देती है जब हवा काफ़ी गरम होती है। रात के शुरू होते ही वह पत्थरों के नीचे या मांद में छिप जाती है। यहीं यह प्राणी लंबे जाड़ों के दौरान सुषुप्तावस्था में लीन रहता है। उस समय वह मांद का मुंह काई से बंद कर लेता है। छिपकली के शरीर का तापमान परिवर्तनशील होता है।

छिपकली सूखे स्थानों में रहती है और अपनी सारी जिन्दगी ज़मीन पर ही बिताती है। उसका लंबा-सा शरीर ज़मीन पर की गति के अनुकूल होता है। उसके दो जोड़े छोटी छोटी टांगें होती हैं और एक लंबी पूंछ। छिपकली के शरीर को केवल उसकी टांगों का नहीं बल्कि उसकी पूंछ का भी आधार मिलता है। धड़ और पूंछ पानी की लहर की तरह हिलते हैं और इससे छिपकली को चलने में सहायता मिलती है। छिपकली अपनी लंबी लंबी अंगुलियों के सहारे पत्थरों और टीलों पर चढ़ती है। उसके हर पैर में पांच पांच अंगुलियां होती हैं। अंगुलियों में तेज़ नखर होते हैं। छिपकली और उसके समान अन्य प्राणी ज़मीन पर जिस प्रकार अपने शरीर को सरकाते हुए चलते हैं उसके अनुसार ही उन्हें उरग (उर के बल चलनेवाले) कहा जाता है।

छिपकली की त्वचा सूखी और शृंगीय द्रव्य की परत और शृंगीय शल्कों से आवृत होती है। ऐसी त्वचा शरीर को सूखी हवा में वाष्पीकरण से बचाने का अच्छा साधन है, पर जल-स्थलचरों की श्लेष्मिक त्वचा की तरह इसमें से ऑक्सीजन शरीर में प्रवेश नहीं कर पाता। छिपकली अपनी त्वचा के ज़रिये श्वसन नहीं कर सकती और उसके फुफ्फुस मेंढ़क की तुलना में कहीं अधिक सुपरिवर्द्धित होते हैं।

गरमियों में कई बार छिपकली का त्वचा-निर्मोचन होता है। निर्मोचन में त्वचा की ऊपरी कठोर परत टुकड़ों टुकड़ों में उखड़ आती है। पुरानी त्वचा के नीचे नयी त्वचा के तैयार होने के बाद ही यह क्रिया होती है।

मादा रेत की छिपकली भूरे-कत्थई रंग की होती है जबकि नर हरे-से रंग का जिससे ये ज़मीन पर और घास में अदृश्य-से रहते हैं। वसंत में नरों का रंग चमकीला हरा हो जाता है।

पोषण छिपकली कीटों, मकड़ियों और कृमियों को खाकर जीती है। शिकार को देखते ही वह उसपर झपट पड़ती है और अपना मुंह पूरा खोलकर उसे पकड़ लेती है। एक ही आकार के बहुत-से दांत उसे अपने शिकार को पकड़ रखने में सहायता देते हैं। ओस-कणों का पानी या गटक लिये गये शिकार के शरीर की नमी उसकी प्यास बुझाने के लिए काफ़ी होती है।

मछली के विपरीत छिपकली का सिर गरदन के ज़रिये उसके धड़ से जुड़ा रहता है। इससे यह प्राणी अपना सिर दायें-बायें घुमाकर अपने शिकार या शत्रुओं

का अंदाज़ ले सकता है। उसके मुंह से झटके के साथ बाहर निकलनेवाली उसकी कांटेदार ज़बान स्पर्शेंद्रिय का काम देती है।

आत्मविखंडन

अपनी चपलता और फुर्तीलेपन के कारण छिपकली को काफ़ी भोजन मिल सकता है। इन्हीं गुणों के कारण शत्रुओं से उसका बचाव भी होता है। संकट को देखते ही छिपकली भाग निकलती है। यदि उसे पूंछ से पकड़ा जाये तो वह झटके से उसे कटवाकर चंपत हो जाती है। पूंछ खोकर छिपकली अपनी जान बचा लेती है। पूंछ फिर से निकल आती है यद्यपि वह पहले से कुछ छोटी होती है।

जनन और परिवर्द्धन

गरमियों में छिपकली रेत में या ज़मीन में गौरैया के अंडों के आकार के पांच-दस छोटे छोटे अंडे देती है। अंडों पर सफ़ेद चमड़ी का सा आवरण होता है जो अंडे को सूख जाने से बचाता है।

अंडा दिया जाने से पहले ही उसमें भ्रूण परिवर्द्धित होने लगता है क्योंकि मादा के शरीर में ही उसका संसेचन होता है। ज़मीन में उष्णता के प्रभाव से भ्रूण का परिवर्द्धन जारी रहता है।

छिपकली के बड़े अंडे में बड़ी मात्रा में पोषक पदार्थ रहते हैं। उससे निकलनेवाला छिपकली का बच्चा मछलियों या जल-स्थलचरों के डिंभों से कहीं अधिक परिवर्द्धित होता है। वयस्क छिपकली और उसके बच्चे में अंतर इतना ही है कि बच्चे का आकार छोटा होता है।

संरचना की जटिलता

छिपकली के विस्तृत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उसकी इंद्रियों की संरचना जल-स्थलचरों की संरचना से अधिक जटिल होती है। उसकी त्वचा नंगी नहीं बल्कि शृंगीय शल्कों से ढंकी रहती है। फुप्फुसों की संरचना अधिक जटिल होती है। मस्तिष्क में अग्रमस्तिष्क और अनुमस्तिष्क अधिक परिवर्द्धित होते हैं जिसके फलस्वरूप छिपकली जल-स्थलचरों की तुलना में अधिक गतिशील होती है। जनन-क्रिया में छिपकली अंड-समूह नहीं देती बल्कि बड़े अंडे देती है जिनके सेये जाने पर पूर्ण परिवर्द्धित बच्चे निकलते हैं।

प्रश्न – १. छिपकली की कौनसी संरचनात्मक विशेषताएं उसमें स्थलचर जीवन की अनुकूलता दिखाती हैं? २. छिपकली का जनन और परिवर्द्धन

कसे होता है? ३. जल-स्थलचरों की तुलना में छिपकली की संरचनात्मक जटिलता कैसे प्रकट होती है?

व्यावहारिक अभ्यास – वसन्त या गरमियों में अपने सजीव प्रकृति-संग्रह में देखो कि छिपकली कीटों को किस प्रकार पकड़ती है।

§ ५१. सांप

तृण-सर्प सोवियत संघ में तृण-सर्प और वाइपर (रंगीन चित्र ६) सांपों की विशेष परिचित जातियां हैं।

तृण-सर्प ताल-तलैयों और नदियों के आसपास रहता है जहां उसे अपना भोजन – मेंढ़क और मछली – मिलता है। इस प्राणी के लंबा शरीर होता है जिसमें कोई अंग नहीं होते। यह सभी सांपों की विशेषता है। तृण-सर्प विषहीन सांपों की जाति में आता है। इसे हाथ में उठा लेने में भी कोई ख़तरा नहीं।

सभी उरगों की तरह तृण-सर्प की त्वचा पर भी शृंगीय आवरण होता है। पीठ और बग़लों पर छोटे छोटे शल्क होते हैं जबकि उदर बड़ी और आड़ी कवच-पट्टियों से ढंका रहता है। निर्मोचन के समय तृण-सर्प पूरा शृंगीय आवरण (केंचुल) उतार देता है, छिपकली की तरह उसके हिस्से नहीं। मिट्टी या पत्थरों से रगड़ाकर वह उसे मुह के पास कटवा लेता है और फिर किसी संकरी दरार में से गुज़रने लगता है। इससे मृत त्वचा मोजे की तरह उल्टी होकर निकल आती है।

ऊपर की ओर से तृण-सर्प काले रंग का (भूरे-कत्थई से लेकर काले तक) होता है और नीचे की ओर से हल्के पीले रंग का। वाइपर में और तृण-सर्प में एक विशेष भिन्नता यह है कि तृण-सर्प के सिर के दोनों ओर दो नारंगी-पीले (कभी कभी सफ़ेद-से) ठप्पे होते हैं।

अपने शरीर को मोड़ते और सीधा करते हुए तृण-सर्प तेज़ रफ़्तार से ज़मीन पर चलता है। पानी में वह उतनी ही आज़ादी से और तेज़ रफ़्तार से तैरता है।

ज़मीन पर रेंग सकने में कुछ सुविधाएं हैं। इससे तृण-सर्प न अपने शिकार को दिखाई देता है और न उन प्राणियों को ही जो उसके दुश्मन हैं और उसका पीछा करते हैं (साही, लोमड़ी, बगुला)। टांगों के अभाव में तृण-सर्प ईंधन के ढेरों, पत्थरों या झुरमुटों के तनों के बीच की छोटी छोटी दरारों में से रेंगकर गुज़र सकता है।

पिथोन जैसे कुछ सांपों में पश्चांगों के कुछ अवशेष मिलते हैं जो त्वचा के नीचे से उभड़े न उभड़े-से दिखाई देते हैं। इससे सूचित होता है कि अन्य सभी रीढ़धारियों की तरह सांपों के पुरखों के भी सयुग्म अंग हुआ करते थे।

तृण-सर्प अपना भोजन – मुख्यतया मेंढ़क – ज़मीन पर और पानी में ढूंढ लेता है। मेंढ़क के पास पहुंचकर वह उसे अपने चौड़े मुंह में धर दबाता है। तेज़, अंदर को झुके हुए दांत चिकने शिकार को पकड़ रखते हैं और तृण-सर्प उसे ज़िंदा निगल जाता है। पूरा का पूरा मेंढ़क मुंह और गले में से अंदर ढकेला जाता है। जबड़े की हड्डियों की चल संधियों से यह संभव होता है। आंत में ऐसे बड़े शिकार के पाचन में काफ़ी समय लगता है। सजीव प्रकृति-संग्रह में तृण-सर्प को आम तौर पर महीने में दो बार खिलाते हैं।

तृण-सर्प की आंखों की पलकें आपस में मिली हुई और पारदर्शी होती हैं। वातावरण से संपर्क रखने में कांटेदार ज़बान महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। घास में से गुज़रते हुए तृण-सर्प ज़बान को बाहर झटकाकर आसपास की चीजों का स्पर्श करता है। सांप की ज़बान को कभी कभी डंक कहते हैं लेकिन यह ग़लत है।

गरमियों में तृण-सर्प की मादा लगभग २० बड़े और लंबाकार अंडे देती है। अंडों पर सफ़ेद चमड़ी का सा आवरण होता है। अंडे कूड़े-करकट या लकड़ी में रखे जाते हैं। इन चीज़ों के सड़ने पर उष्णता उत्पन्न होती है। अंडों में से नन्हे नन्हे तृण-सर्प निकल आते हैं।

वाइपर

तृण-सर्प के विपरीत वाइपर एक विषैला सांप है। इसके रंग भिन्न भिन्न हो सकते हैं – कत्थई, भूरा-सा, काला-सा। पर उसे आसानी से तृण-सर्प से अलग पहचाना जा सकता है क्योंकि इसके सिर पर पीले ठप्पे नहीं होते और पीठ पर काली सर्पिल रेखा फैली हुई होती है। यह रेखा सिर तक पहुंचती है और वहां काट का चिह्न बनाती है (रंगीन चित्र ९)।

दिन में वाइपर आम तौर पर धूप सेंकता हुआ या घास और पत्थरों में छिपा हुआ चुपचाप पड़ा रहता है। रात में वह चूहों और दूसरे छोटे छोटे प्राणियों के शिकार पर निकलता है।

वाइपर अपने शिकार को पकड़कर अपने विषैले दांतों से काटकर मार डालता है। एक एक ऐसा दांत ऊपर के जबड़े में दोनों ओर होता है। सांप का मुह खोलने पर ये दांत साफ़ साफ़ नज़र आते हैं (आकृति १०२)। विषैले दांत में

एक संकरी नाली होती है जो दांत के सिरे में खुलती है। विष-ग्रंथि की वाहिनी नाली के आरंभ से जुड़ी रहती है। इन ग्रंथियों का एक जोड़ा सांप के सिर में होता है। इसी कारण वाइपर का सिर अन्य विषैले सांपों की तरह पीछे की ओर चौड़ा और धड़ से एकदम अलग-सा नज़र आता है।

वाइपर के तेज़ विषैले दांत पीछे की ओर झुके हुए और तालु पर दबे हुए रहते हैं। जब मुह खुलता है तो वे नीचे की ओर सरकते हैं। वाइपर जिन्हें खाता है वे प्राणी उनके घाव में विष के फैल जाते ही फ़ौरन मर जाते हैं। घबड़ाया हुआ वाइपर बड़े प्राणियों को, यहां तक कि आदमी को भी काट लेता है। मनुष्य पर उसके विष का परिणाम भिन्न भिन्न प्रकार से हो सकता है। यह घाव में गिरे हुए विष की मात्रा और काटने की जगह पर निर्भर करता है (यह जगह जितनी मनुष्य के सिर के नज़दीक, उतना ही परिणाम अधिक भयानक)। विष के प्रभाव से आदमी बीमार पड़ता है और कभी कभी मर भी जाता है।

वाइपर से काटे जाते ही, चिकित्सा सहायता मिलने तक, फ़ौरन विशेष उपाय किये जाने चाहिए, जैसे – (१) घाव को खोलकर उसमें से रक्त निकाल लेना; (२) पोटेशियम परमेंगेनेट के एक प्रतिशतवाले घोल से घाव धो डालना। यह घोल विष को प्रभावहीन कर देता है।

विभिन्न प्राणियों पर वाइपर का विष अलग अलग प्रभाव डालता है। उदाहरणार्थ, साही, जो सांपों को खाती है, उसके डंक को किसी विशेष तकलीफ़ के बिना सह लेती है।

वाइपर का जनन अंडों के ज़रिये होता है। अंडे दिये जाने से पहले ही भ्रूण का परिवर्द्धन होता है। अंडों से नन्हे नन्हे चल सांप निकलते हैं। इस प्रकार के जनन के कारण सांप उत्तर की ओर के प्रदेशों में भी रह सकता है जहां मौसम अधिक नम और ठंडा होता है और गरमियां छोटी होती हैं। वहां अंडों के परिवर्द्धन के लिए स्थिति अनुकूल नहीं होती।

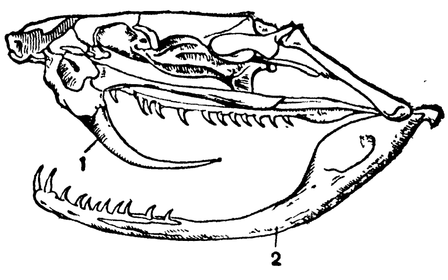

आकृति १०२ – वाइपर की खोपड़ी
१(1). विषैला दांत; २(2). निचला जबड़ा।

उरग वर्ग की विशेषताएं

उरग वर्ग ऐसे रीढ़धारी प्राणियों का वर्ग है जो ज़मीन पर जीवन बिता सकते हैं। उनके शरीर पर शृंगीय ग्रावरण होता है जो उसे सूख जाने से बचाता है। उरग अपने फुफ्फुसों द्वारा वायुमंडलीय हवा में सांस करते हैं। ज़मीन पर उनका जनन होता है। वे बड़े अंडे देते हैं जिनपर एक मोटा ग्रावरण होता है।

उरग वर्ग में छिपकलियों ग्रौर सांपों के अलावा कछुए ग्रौर मगर शामिल हैं। इस समय उरगों के लगभग ४,५०० भिन्न भिन्न प्रकार ज्ञात हैं।

प्रश्न– १. सांप की विशेषताएं बताग्रो। २. तृण-सर्प को वाइपर से अलग कैसे पहचाना जा सकता है? ३. वाइपर से काटे जाने पर क्या उपाय करने चाहिए? ४. उरग वर्ग की विशेषताएं बताग्रो।

§ ५२. उरगों की ग्रायु

धरती पर प्राणियों में परिवर्तन

फ़िलहाल उरगों का फैलाव उतना बड़ा नहीं है जितना मछलियों, पंछियों ग्रौर स्तनधारियों जैसे ग्रन्य रीढ़धारियों का। ठंडे देशों में उरगों का लगभग ग्रभाव है, समशीतोष्ण कटिबंध में वे थोड़ी मात्रा में हैं ग्रौर केवल गरम देशों में ही उनकी विविधता पायी जाती है ग्रौर बहुतायत भी। पर यह बात हमेशा ही ऐसी नहीं रही। ग्रति प्राचीन काल में धरती पर उरगों का बहुत बड़ा फैलाव था।

फ़ौसिलों के ग्रध्ययन से स्पष्ट हुग्रा है कि धरती पर प्राणि-जगत् ग्रपरिवर्तनीय नहीं रहता। ग्रति प्राचीन काल में धरती पर कुछ ऐसे प्राणी थे जो ग्राज नहीं मिलते। उनका लोप हो गया है ग्रौर उनकी जगह दूसरे प्राणियों ने ली है। धरती के जीवधारियों का इतिहास चार युगों में बंटा हुग्रा है – ग्रार्किग्रोज़ोइक, पेलिग्रोज़ोइक, मेसोज़ोइक ग्रौर सेनोज़ोइक। इनमें से प्रत्येक युग बहुत लंबे समय तक बना रहा – पेलिग्रोज़ोइक लगभग ३२ करोड़ ५० लाख वर्ष, मेसोज़ोइक लगभग ११ करोड़ ५० लाख वर्ष। सेनोज़ोइक युग गत ७ करोड़ वर्षों से चला ग्रा रहा है। ग्रार्किग्रोज़ोइक युग कितने वर्ष रहा इसकी निश्चित जानकारी नहीं है। माना जाता है कि वह लगभग १०० करोड़ वर्ष रहा होगा।

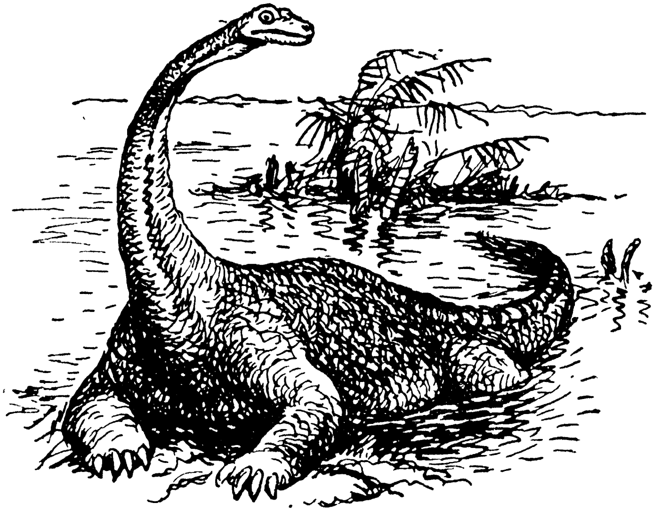

आकृति १०३ – भीमाकार डेनोजौर।

धरती की सतहों में रीढ़धारियों के अवशेष पेलिओज़ोइक युग से लेकर पाये गये हैं। उस समय मछलियों और जल-स्थलचर प्राणियों का अस्तित्व था।

उरगों का मूल

पेलिओज़ोइक युग के अंत तक पहुंचते हुए पृथ्वी के कई एक हिस्सों का जलवायु सूखा और नंगी त्वचावाले जल-स्थलचरों के लिए प्रतिकूल हो चुका था। इन स्थितियों में कुछ जल-स्थलचरों की त्वचा का शृंगीयकरण हुआ जिससे उनके लिए ज़मीन पर रहना संभव हो गया।

धरती पर के जीवन में प्राणियों की शरीर-रचना में परिवर्तन हुआ – फुफ्फुसों की संरचना में अधिक पूर्णता आयी और वे शरीर की ऑक्सीजन की आवश्यकताएं पूरी तरह से पूर्ण करने में समर्थ हुए। मस्तिष्क में अधिक जटिलता आयी। उनमें पानी के बाहर मज़बूत आवरणवाले अंडों के रूप में जनन की क्षमता परिवर्द्धित हुई। इस प्रकार पेलिओज़ोइक युग के अंत में जल-स्थलचरों से उरगों का परिवर्द्धन हुआ।

मेसोज़ोइक युग में उरगों का बड़ा भारी फैलाव हुआ। उस समय पंछी और स्तनधारी अभी अभी अवतरित हुए थे। इसी कारण मेसोज़ोइक युग आम तौर पर उरग-युग कहलाता है।

लुप्त उरगों की विविधता

धरती की मेसोज़ोइक युग से संबंधिक सतहों में लुप्त उरगों के बहुत-से कंकाल मिलते हैं। उनमें से कुछेक आधुनिक उरगों जैसे दीखते हैं जबकि दूसरे आज के कछुओं, छिपकलियों, सांपों और मगरों से बहुत ही भिन्न हैं।

धरती पर एक ज़माने में विभिन्न भीमाकार डेनोज़ौरों का अस्तित्व था (आकृति १०३)। इनमें से कुछ तो बहुत ही बड़े (३० मीटर तक लंबे) हुआ करते थे।

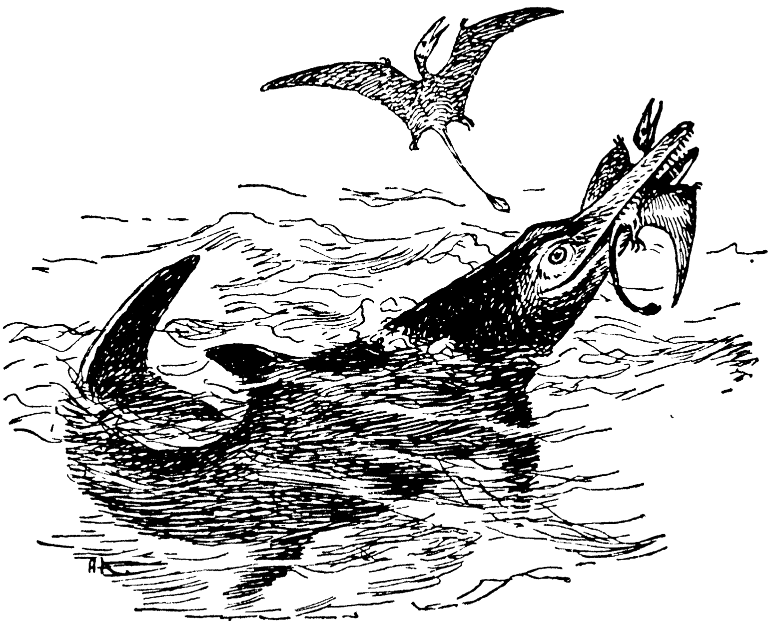

आकृति १०४ – इख़्त्योज़ौर।

समुद्रों में इख़्त्योज़ौर (आकृति १०४) रहा करते थे। इनके अलावा प्तेरोडेक्टीलों (आकृति १०५) के भी कंकाल मिले हैं। ये उड़ते उरग हुआ करते थे जिनके पंख चमड़ी के से जाल से बने हुए होते थे।

धरती के लुप्त उरगों में से शिकारभक्षी साइनोग्नेथस (आकृति १०६) विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके दांत अन्य उरगों की तरह एक-से नहीं होते थे बल्कि

स्तनधारियों की तरह वे भिन्न भिन्न आकार के होते थे। साइनोग्नेथस सहित कई उरगों के अवशेष सेवेर्नाया द्वीना नदी के तटों पर पाये गये।

उरगों का लोप ऐसा क्यों हुआ कि उपरोक्त सभी भिन्न भिन्न उरग लुप्त हो गये और सेनोज़ोइक युग में उनका स्थान नये उरगों ने ले लिया?

एक कारण था जलवायु में परिवर्तन। मेसोज़ोइक युग के अंत में वह ठंडा हो गया। यह उरगों के लिए प्रतिकूल था। उनके शरीर का तापमान तो परिवर्तनशील था। नयी परिस्थिति में उनमें से बहुतेरे टिक न पाये।

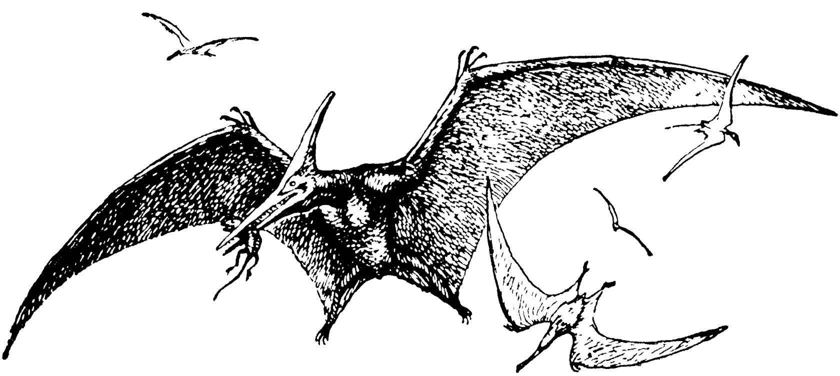

आकृति १०५ – प्तेरोडेक्टील।

इसके अलावा मेसोजोइक युग में उरगों से सुसंगठित पंछी और स्तनधारी परिवर्द्धित हुए थे। इन प्राणियों के शरीर का तापमान स्थायी था। उनका मस्तिष्क उरगों की अपेक्षा सुविकसित था। सेनोज़ोइक युग में पंछियों और स्तनधारियों ने अधिकांश उरगों को खदेड़ दिया और खुद बहुत बड़े पैमाने पर फैल गये।

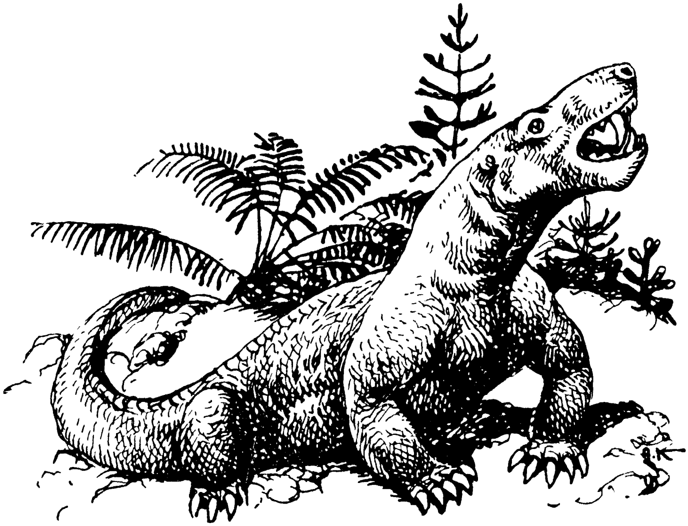

आकृति १०६ – साइनोग्नेथस।

कुछ उरग – कछुए, सांप, छिपकलियां और मगर – बचे रहे और उनके वंशधर तो आज भी मौजूद हैं।

प्रश्न – १. धरती पर प्राणि-जीवन को हम कौनसे युगों में विभाजित करते हैं? हर युग कितने समय तक बना रहा? २. मेसोज़ोइक युग क्यों उरग-युग कहलाता है? ३. मेसोज़ोइक युग में कौनसे उरग रहे? ४. उरगों के लोप की व्याख्या करो।

§ ५३. भारत के उरग

भारत का जलवायु गरम है और वहां उरगों की बहुतायत है। इस देश में विभिन्न सांपों, छिपकलियों, मगरों और कछुओं के ५०० से अधिक प्रकार मौजूद हैं।

सांप

भारत में २५० से अधिक प्रकारों के सांप मिलते हैं। इनमें से बहुत-से विषैले हैं और काफ़ी नुक़सान पहुंचाते हैं। विषैले सांप के काटे जाने से हर साल हज़ारों लोगों को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ते हैं – ख़ासकर देहाती इलाक़ों में।

सांपों में से नाग (आकृति १०७) एक सर्वाधिक विषैला प्राणी है। इसकी लम्बाई डेढ़ मीटर से भी अधिक होती है। अधिकांशतः इसका रंग पीला होता है पर काले-भूरे या कत्थई रंग के नमूने भी मिलते हैं। नाग जिस ज़मीन पर रहता है, अपने रंग के कारण मुश्किल से ही ज़मीन से अलग पहचाना जा सकता है। उसकी गर्दन पर एक विशिष्ट काली आकृति होती है जिसकी शक्ल चश्मे जैसी होती है। जब नाग अपना सिर उठाकर और फन निकालकर हमले का ख़तरनाक पैंतरा लेता है तो यह आकृति स्पष्ट दिखाई देती है।

आकृति १०७ – नाग।

नाग पत्थरों के नीचे या खंडहरों के बीच रहता है और कभी कभी रेंगकर घर में भी चला आता है। वह छिपकलियों, नन्हे नन्हे सांपों, पंछियों और छोटे छोटे स्तनधारियों को खाकर जीता है। वह अन्य सांपों की तरह अपने शिकार को पूरा का पूरा निगल जाता है। इसमें उसके चल जबड़े उसे मदद देते हैं।

नाग आदमी पर अपने आप हमला नहीं करता पर यदि उसे परेशान किया जाये तो वह प्राणघातक रूप से काट लेता है। अन्य विषैले सांपों की तरह नाग के भी दो विष-ग्रंथियां होती हैं। ये ग्रंथियां ऊपरवाले जबड़े के दो बड़े बड़े दांतों से संबद्ध रहती हैं। काटते समय इन दांतों की ऊपरी सतहवाली नालियों में से होकर विष घाव में बहता है और फिर नाग के शिकार के रक्त में समा जाता है। जब विष-दंत टूट जाता है तो शीघ्र ही उसकी जगह ऐसा ही दूसरा दांत निकल आता है।

विष नाग को अपना भोजन ढूंढने में मदद देता है। विष की मात्रा अत्यल्प अर्थात् हर काटने के समय केवल चार-छः बूंदें होती हैं पर पकड़े हुए शिकार को मार डालने के लिए यह काफ़ी है। हां, कुछ प्राणी ऐसे भी हैं (मोर, तीतर इत्यादि) जिनपर नाग के विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। स्पष्ट है कि इन प्राणियों के रक्त में ऐसे द्रव्य होते हैं जो विष को प्रभावहीन कर देते हैं।

यदि फ़ौरी इलाज न किया जाये तो नाग का दंश मनुष्य के लिए प्राणघातक सिद्ध होता है। विष तंत्रिका-तंत्र पर असर डालता है। नाग के काटे आदमी को थकान और दुस्तर निद्रालुता घेर लेती है। बाद में सांस में रुकावट आती है और फिर सिर चकराने लगता है और कै आने लगती है। शरीर का तापमान गिर जाता है और हृदय की गति शिथिल पड़ जाती है। आख़िरी नतीजा यह होता है कि संबंधित व्यक्ति मर जाता है।

अतः यथासंभव नाग का सामना नहीं करना चाहिए और यदि वह काट ही डाले तो फ़ौरन ज़रूरी इलाज – घाव से विषमय रक्त निचोड़ लेना और पोटेशियम परमेंगेनेट के एक प्रतिशतवाले घोल से घाव को धोना – करने चाहिए ताकि विष रक्त में प्रवेश न कर पाये। साथ ही साथ डॉक्टर को फ़ौरन बुला लेना चाहिए। रक्त में एक ख़ास सीरम की सूई लगवाने से विष का प्रभाव रोका जा सकता है।

आसाम राज्य में महानाग पाया जाता है जिसकी लंबाई चार मीटर तक हो सकती है। यह दूसरे सांपों को खाकर रहता है जिनमें साधारण नाग भी शामिल हैं। महानाग कभी कभी अपने आप आदमी पर धावा बोल देता है।

भारत में कराइत नामक सांप बहुत ही अक्सर पाया जाता है। यह साधारण नाग से छोटा (लंबाई १३० सेंटीमीटर से अधिक नहीं होती) होता है पर होता है बहुत ही विषैला। चिकित्सा सहायता के अभाव में इसका दंश प्राणघातक सिद्ध होता है। कराइत विशेष भयानक इस लिए है कि वह अक्सर

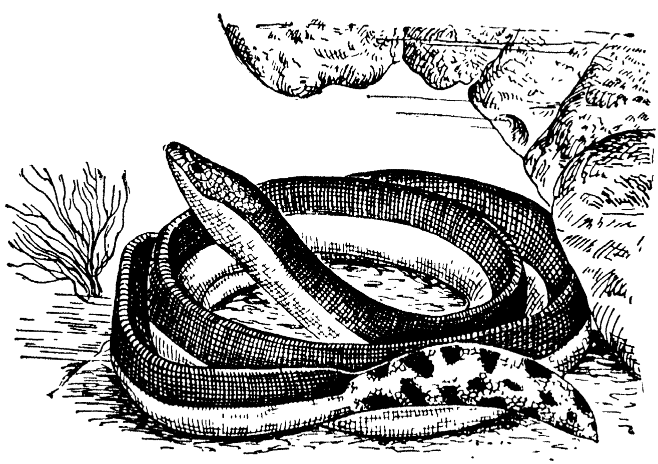

आकृति १०८ – पेलामीडा नामक समुद्री सांप।

घर में रेंग आता है और उसके भूरे रंग के कारण वह लोगों की नज़र से बचा रह सकता है। इस सांप का मुक़ाबला करने में नेवले (आगे देखिये, पृष्ठ २६१) से बड़ी मदद मिलती है।

पेलामीडा नामक समुद्री सांप (आकृति १०८) भारत के समुद्र-तटों पर पाया जाता है। यह भी मनुष्य के लिए प्राणघातक सांपों की जाति में आता है। इस सांप की विशेषता यह है कि वह, अन्य सांपों के विपरीत, पानी में रहता है। उसकी शरीर-रचना पानी में रहने के लिए पूर्णतया अनुकूल होती है। उसकी छोटी-सी पूंछ दोनों ओर से चिपटी और डांड़ की शकल की होती है। नासा-द्वारों पर वॆल्व होते हैं और वे ऊपर की ओर खुलते हैं। यह मछलियों को खाता है और इसका जनन भी पानी ही में होता है। वह छोटे छोटे सपौले पैदा करता है।

भारत में कई विषहीन परंतु शिकारभक्षी सांप पाये जाते हैं। इनमें से एक है शेर पिथोन (आकृति १०९)। यह चार-छः मीटर तक की लंबाईवाला

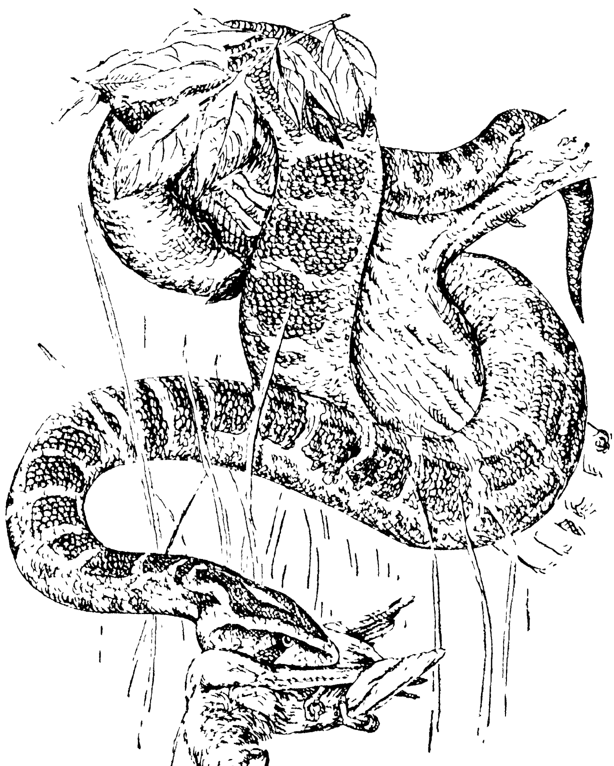

आकृति १०९ – शेर पिथोन।

बड़ा सांप होता है। हमला करते हुए यह अपने शिकार को (मुख्यतया छोटे छोटे स्तनधारियों को) चारों ओर से लपेट लेता है और अपने मज़बूत लंबे शरीर से उसे इतने ज़ोर से मसल लेता है कि वह प्राणी पिसकर मर जाता है। फिर पिथोन उसे निगल लेता है।

पिथोनों की विशेषता यह है कि उनमें पिछली टांगों के छोटे छोटे अवशेष पाये जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि बिना टांगों वाले सांप टांगों वाले उरगों के वंश में ही पैदा हुए हैं।

ब्रह्मा में और भी बड़े जालदार पिथोन पाये जाते हैं जो ६ मीटर तक लंबे हो सकते हैं।

मगर

मगरों से उरगों की एक पृथक् श्रेणी बनती है। भारत में इनके कई प्रकार मौजूद हैं। इनमें से सबसे अधिक फैलाव दलदल के खोंटी थूथनीवाले मगर का है। यह लगभग सभी ताज़े पानी के जलाशयों अर्थात् नदियों, तालाबों और बड़े बड़े दलदलों में पाया जाता है। यह लगभग सारी ज़िंदगी पानी में बिताता है और कभी-कभार ही ज़मीन पर आता है। दलदल का मगर अन्य मगरों से छोटा होता है, फिर भी उसकी लंबाई साढ़े तीन मीटर तक हो सकती है।

मगर ज़मीन पर बड़े बेहूदे ढंग से चलता है पर वह तैरता है भली भांति। तैरने में वह अपनी लंबी पूंछ और जालदार पिछले पैरों का उपयोग करता है। उसकी पूंछ दोनों ओर से चिपटी होती है। जलगत जीवन के लिए अनुकूल अन्य अनुकूलताएं भी उसके शरीर में होती हैं। उसके नासा-द्वार और आंखें सिर के ऊपर और ऊपर की ओर कुछ उभड़े हुए होते हैं। इस सुविधा के कारण मगर अपना सिर पानी से ज़रा-सा बाहर निकालकर सांस ले सकता है और देख सकता है। इस समय उसका शरीर पानी में डूबा रहता है और दिखाई नही देता। पानी में कानों के गड्ढे और नासा-द्वार वैल्वों से बंद रहते हैं।

पर मगर के पुरखे ज़मीन पर रहते थे। यह इस बात से स्पष्ट होता है कि अन्य उरगों की तरह मगर के शरीर पर भी शृंगीय आवरण की एक परत होती है और मछलियों के मीन-पक्षों के बदले मगर के दो जोड़े उंगलीदार पैर होते हैं। मगर वायुमंडलीय हवा में सांस करता है और ज़मीन पर ही बच्चे पैदा करता है – वह रेत में बड़े बड़े अंडे देता है जिनपर चूने का सख़्त कवच होता है।

मगर एक शिकारभक्षी प्राणी है। वह केवल मछलियों को ही नहीं बल्कि दूसरे प्राणियों, पंछियों और स्तनधारियों को भी खाता है। वह इन्हें किनारों पर पकड़कर पानी में घसीट ले जाता है। भोजन को वह अपने मज़बूत दांतों से पीस लेता है।

भारत में दलदल के मगर के अलावा मगर के दो और प्रकार मिलते हैं। ये हैं महामकर और घड़ियाल (ग्राह)।

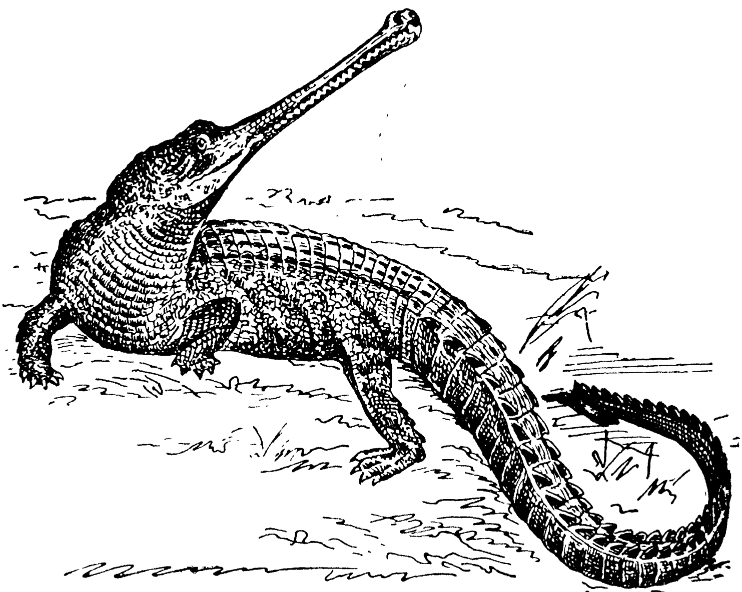

आकृति ११० – घड़ियाल।

महामकर नौ मीटर तक लंबा होता है और बड़ी नदियों के मुहाने के खारे जल में और बंगाल तथा मलाबार तटों के बंधे हुए पानी में रहता है।

गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियां लंबी थूथनीवाले घड़ियाल (आकृति ११०) के घर हैं। सिरे पर सूजनवाले लंबे जबड़ों के कारण यह आसानी से अन्य मगरों से अलग पहचाना जा सकता है। इसका शरीर छः मीटर लंबा होता है। घड़ियाल केवल नदियों में रहता है। वह मछलियों और गंगा-जल में फेंके गये शवों को खाता है।

कुछ लोग घड़ियाल को एक पवित्र प्राणी मानते थे। वे उन्हें मंदिरों के पास जलाशयों में पाल भी रखते थे और उनकी अच्छी चिंता करते थे। पर वस्तुतः मगरों का कोई उपयोग नहीं है बल्कि उल्टे वे बड़े नुक़सानदेह होते हैं। वे मछलियों और अन्य उपयुक्त प्राणियों को चट कर जाते हैं।

सभी मगरों की कुछ विशेषताएं होती हैं जिनसे अन्य उरगों से उनकी भिन्नता स्पष्ट होती है। उदाहरणार्थ, पीठ पर के शृंगीय शल्कों के नीचे अस्थि-शल्कों की परत होती है। यह उसके लिए एक मज़बूत बख़्तर का काम देती है। दांत अपनी कोशिकाओं में मज़बूती से गड़े रहते है और उसका हृदय चार कक्षों वाला होता है।

कछुआ

छिपकलियों, सांपों और मगरों के अलावा उरगों में कछुए शामिल हैं। भारत की नदियों और दलदलों में अक्सर तीन उरःकूटों वाला कछुआ पाया जाता है। इस कछुए का शरीर जैसे हड्डियों के बख़्तर में बंद रहता है और लंबी गरदन के सहारे उसका सिर, दो जोड़े छोटे छोटे पैर और छोटी-सी पूंछ बाहर की ओर निकली रहती है। संकट का शक होते ही कछुआ ये सभी अंग कवच के अंदर समेट लेता है। इस प्रकार कछुआ शत्रुओं से अपना बचाव कर लेता है।

अपने छोटे छोटे पैर बाहर निकालकर कछुआ जमीन पर और पानी में भी चल सकता है।

कवच या बख़्तर हड्डियों की दो ढालों का बना रहता है—पृष्ठीय ढाल और औदरिक ढाल। बग़लों में जुड़ी हुई ये ढालें मोलस्क के कवच की तरह न केवल बाहर से शरीर को ढंकती हैं बल्कि यह कछुए के कंकाल का एक भाग होती है। अतः कछुए के शरीर को कवच से बाहर नहीं निकाला जा सकता।

कछुए के कंकाल (आकृति १११) का परीक्षण करते समय हम देख सकते हैं कि पृष्ठीय ढाल, रीढ़ और फैली हुई पसलियों को लेकर एक पूरी इकाई बनाती है।

हड्डियों की ढाल बाहर से बड़ी शृंगीय पट्टियों और शरीर का बाक़ी हिस्सा (पैर, सिर, गरदन और पूंछ) पतले शृंगीय शल्कों से ढंका रहता है। कछुआ अपनी ज़िंदगी का ज़्यादातर हिस्सा पानी में बिताता है। वहीं उसे अपना भोजन—मछली आदि विभिन्न जलचर प्राणी—मिलता है। कछुए के दांत नहीं होते। इसके बदले उसके जबड़ों के किनारे सख़्त, धारदार शृंगीय आवरणों से ढंके रहते हैं।

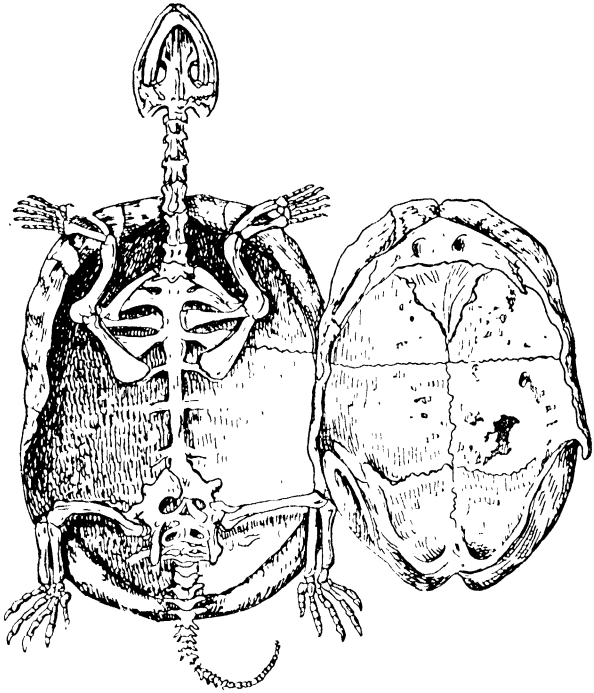

आकृति १११ – कछुए का कंकाल।

कछुआ ज़मीन पर बच्चे पैदा करता है। वह किनारे पर रेत में बड़े बड़े अंडे देता है। अंडों पर चूने का सख़्त आवरण होता है।

जलचर कछुओं के अलावा स्थलचर कछुए भी होते हैं। इनका भोजन है पौधे, जिन्हें वे अपने तेज़ जबड़ों से काट काटकर खाते हैं। स्थलचर कछुए की पृष्ठीय ढाल जलचर कछुए की तुलना में अधिक फूली और उभड़ी हुई होती है।

भारत का स्पर्श करनेवाले समुद्रों में हरे रंग के बड़े कछुए रहते हैं। इनके कवच की लंबाई एक मीटर तक और वज़न ३००-४०० किलोग्राम तक हो सकता है। हरा कछुआ मीन-पक्षों जैसे अपने पैर चलाता हुआ अच्छी तरह तैरता है। वह जल-पौधों और विभिन्न प्राणियों को खाता है। फिर भी अंडे वह किनारे पर की रेत ही में देता है।

नरम और ज़ायक़ेदार मांस के लिए हरे कछुए का शिकार किया जाता है।

प्रश्न – १. नाग का विष कहां उत्पन्न होता है और शिकार के घाव में कैसे प्रवेश करता है? २. नाग या दूसरे विषैले सांप से काटे जाने पर कैसे इलाज किये जाने चाहिए? ३. शेर पिथोन अपने शिकार को कैसे मार डालता है? ४. मगर का शरीर किस प्रकार जलगत जीवन के लिए अनुकूल है? ५. किन विशेषताओं के कारण मगर को उरग मानते हैं? ६. कछुए को कवच से बाहर क्यों नहीं निकाला जा सकता?

अध्याय ९

पक्षी वर्ग

§ ५४. रूक का जीवन और बाह्य लक्षण

वासस्थान पक्षियों के जीवन और संरचना से परिचित होने के लिए हम रूक का परीक्षण करेंगे।

वसंत के आरंभ में, मार्च महीने में जैसे ही बर्फ़ पिघलने लगती है और ज़मीन के काले धब्बे खुलने लगते हैं, रूक (रंगीन चित्र १०) सोवियत संघ के केंद्रीय भाग में आने लगते हैं। ये वसंत के अग्रदूत हैं। वसंत और गरमियों के दिन वे हमारे देश के उक्त हिस्से में बिताते हैं और जाड़ों में दक्षिणी इलाक़ों में चले जाते हैं। रूक जाड़ों के दिन सोवियत संघ के दक्षिण में, दक्षिणी यूरोप में और उत्तरी अफ़्रीका में बिताते हैं।

रूक जंगलों और उद्यानों में पाये जाते हैं जहां वे अपने घोंसले बनाते हैं। इसी तरह वे खेतों में पाये जाते हैं जहां उन्हें अपना भोजन मिलता है। रूक वसंत में और गरमियों के पूर्वार्द्ध में बड़ा शोर मचाते हैं। इस अवधि में वे अपने घोंसले बनाते हैं और बच्चों की परवरिश करते हैं। शरद की संध्याओं में भी वे बड़े बड़े झुंडों में शोर मचाते हुए खेतों से घर लौटते हैं।

पर सभी पंछियों की तरह रूक का शरीर परों से ढंका रहता है। सबसे ऊपर सदंड पर होते हैं और उनके नीचे मुलायम निम्न पर (आकृति ११२)।

सदंड पर में धुरी या दंड और उसके दोनों ओर जाल दिखाई देते हैं। इन दोनों को लेकर एक हल्की, लचीली झिल्ली बनती है। धुरी का सिरा जाल से खाली रहता है और दंड कहलाता है। पुराने ज़माने में हंस के सदंड परों का उपयोग खिलने के लिए किया जाता था। धुरी का यह हिस्सा तिरछा काटकर उससे क़लम बनाते थे।

निचले पर सदंड परों से इस माने में भिन्न होते हैं कि उनके जाल से एक अखंड झिल्ली नहीं बनती। शरीर से गरम हुई हवा निचले परों के बीच रोक रखी जाती है।

सदंड परों के जाल एक दूसरे पर चढ़े रहते हैं और तेज़ उड़ान के समय भी ठंडी हवा को शरीर में नहीं घुसने देते।

पर शृंगीय पदार्थ के बने रहते हैं। पंखों को जलाने से जो एक विशिष्ट गंध आती है उससे यह स्पष्ट होता है। रूक के पैरों पर शृंगीय शल्क होते हैं। चोंच पर भी शृंगीय झिल्ली का आवरण होता है। इस प्रकार ऊपरी तौर पर बड़ी भिन्नता के होते हुए भी पक्षियों और उरगों के बाहरी आवरणों में काफी समानता होती है। पक्षियों में निर्मोचन की क्रिया भी होती है, जब पुराने पर झड़ जाते हैं और उनकी जगह नये पर लेते हैं।

गति अन्य पक्षियों की तरह रूक के अगले अंग डैनों में परिवर्द्धित हो चुके हैं। डैने का उड़ान स्तर बड़े बड़े सदंड परों का बना रहता है (आकृति ११३)। हवा में फैले हुए डैनों की बराबर फटकारों के कारण रूक का शरीर अधर में बना रहता है और आगे की ओर चलता रहता है। पक्षी की गति का निर्देशन उसकी चौड़ी पूंछ द्वारा होता है। पूंछ सदंड परों की बनी होती है। इन्हें पूंछ या पतवारवाले पर कहते हैं।

डैने शरीर से जुड़े रहते हैं। शरीर का आकार लंब वृत्ताकार होता है। छोटे और लचकहीन शरीर से डैनों को दृढ़ आधार मिलता है।

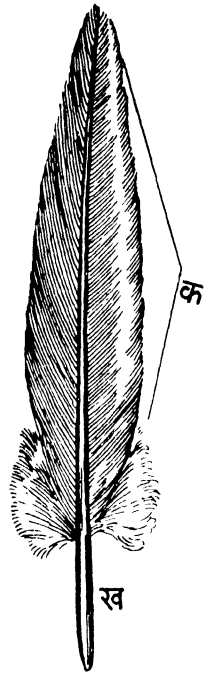

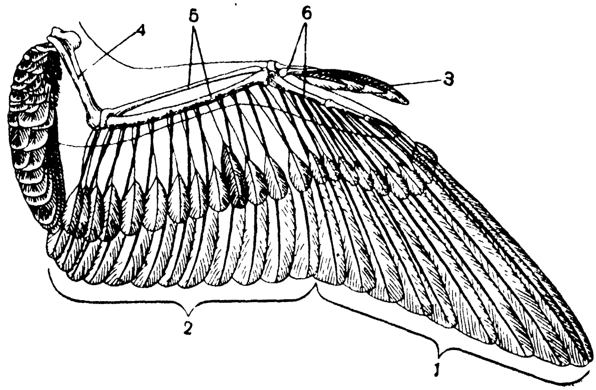

आकृति ११३ – पक्षी का डैना
१,२ (1,2). सदंड पर ; ३ (3). मिथ्या पक्ष ;
४ (4). बाहु-अस्थि ; ५ (5). अग्रबाहु की अस्थियां ;
६ (6). अपरिवर्द्धित हाथ की अस्थियां।

आकृति ११२– पक्षी के पर की संरचना
क – जाल ;
ख – दंड।

रूक जमीन पर अपने मज़बूत पैरों के सहारे फुदकता है। हर पैर के चार अंगुलियां होती हैं जो काफ़ी फैली हुई रहती हैं। तीन अंगुलियों का रुख़ आगे की ओर और एक अंगुलि का पीछे की ओर होता है। इससे पूरे शरीर को पर्याप्त आधार मिलता है।

पोषण

रूक एक सर्वभक्षी पक्षी है। उसके भोजन में प्राणी और वनस्पति दोनों शामिल हैं। वह काकचेफ़रों, उनके डिंभों, अन्य कीड़ों और केचुओं को खाता है।

जोताई के समय हमें रूकों के झुंड के झुंड हल के पीछे पीछे फुदकते हुए दिखाई देंगे। वे ज़मीन में से कीटों और उनके डिंभों को चुगते जाते है। उतनी ही ख़ुशी से रूक विभिन्न पौधों के बीजों को खा जाते हैं। इनमें अनाज के बीज भी शामिल हैं। इससे रूकों से खेती को कुछ नुक़सान पहुंचता है। वसंत में

मक्के के खेतों में वे विशेष हानिकर सिद्ध होते हैं। वे अंकुरानेवाले बीजों और नये अंकुरों का सफ़ाया कर डालते हैं। पक्षियों से खेतीबारी को जो नुक़सान पहुंचता है उसका कुछ मुआवज़ा हमें इस बात से मिलता है कि वे हानिकर कीटों का नाश करते हैं और अपने बच्चों को ये कीट खिलाते हैं।

रूक अपनी चोंच से ज़मीन पर का भोजन चुग लेता है। चोंच बाहर निकले हुए लंबे जबड़ों से बनती है। बूढ़े रूकों की चोंच की बुनियाद के पासवाले पर झड़ जाते हैं और वहां का सफ़ेद चमड़ा खुला पड़ता है। इस चिह्न से बूढ़े रूक झट से पहचाने जा सकते हैं।

प्रश्न – १. रूक कहां रहता है और क्या खाता है? २. पक्षी के लिए परों का क्या महत्त्व है? ३. निम्न पर से सदंड पर किस प्रकार भिन्न है? ४. पक्षी और उरग के आवरण में कौनसी समान विशेषताएं हैं?

§ ५५. रूक की पेशियां, कंकाल और तंत्रिका-तंत्र

पेशियां

रूक की सबसे मज़बूत पेशियां उसके अंगों को गति देनेवाली और गरदन की पेशियां होती हैं। वक्षीय पेशियां विशेष बड़ी होती हैं। उड़ान के समय पंखों के दृढ़ परिश्रम के कारण इनका विशेष परिवर्द्धन होता है। कबूतर जैसे अच्छे उड़ाकू पक्षियों में इन पेशियों का वज़न पूरे शरीर के कुल वज़न के पांचवें हिस्से के बराबर तक हो सकता है।

पैरों में विशेष प्रकार की पेशियां होती हैं जिनके सहारे रूक पेड़ की शाखा को पकड़कर बैठ सकता है। इन पेशियों में लंबी कंडराएं होती हैं जो अंगुलियों में नीचे की ओर से जुड़ी रहती हैं। जब यह पक्षी टहनी पर उतर आता है तो ये कंडराएं खिंच जाती हैं और अंगुलियां झुक जाती हैं। यह पक्षी टहनी को अपनी अंगुलियों के बीच पकड़े रहता है और सोते हुए भी टहनी से गिरता नहीं। उसका शरीर जितना अधिक दबता है, उसकी अंगुलियां उतनी ही ज़्यादा मज़बूती से टहनी को पकड़ती है।

कंकाल

रूक के कंकाल में हम कशेरुक दंड, खोपड़ी, वक्ष, अंस-मेखला, श्रोणि-मेखला और अंग (आकृति ११४) पहचान सकते हैं। कंकाल में कुछ ऐसी विशेषताएं होती हैं जो उड़ान के लिए अनुकूल होती हैं।

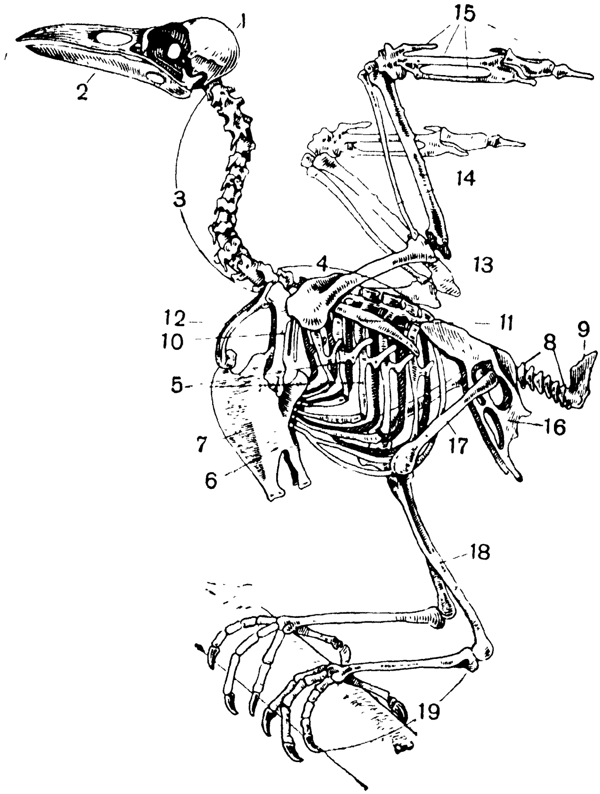

आकृति ११४—रूक का कंकाल

१(1). कपाल; २(2). निचला जबड़ा; ३(3). गरदन के कशेरुक; ४ (4). छाती के कशेरुक; ५(5). पसलियां; ६(6). वक्षास्थि; ७(7). उरःकूट; ८ (8). पुच्छ-कशेरुक; ९ (9). पुच्छ-दंड; १० (10). कोराकोयड अस्थि; ११ (11). स्कंधास्थि; १२(12). कांटा (समेकीकृत अक्षक); १३(13). बाहु; १४(14). अग्रबाहु; १५(15). हाथ की हड्डियां; १६(16). श्रोणि; १७ (17). ऊरु-अस्थियां; १८ (18). पिंडली की हड्डियां; १९(19). पाद की हड्डियां।

कशेरुक दंड में गरदन के बहुत-से कशेरुक होते हैं। वे एक दूसरे से चल रूप में संबद्ध रहते हैं जिससे पक्षी आज़ादी से सिर को घुमा सकता है। इसके विपरीत बदन के कशेरुक अचल रूप में संबद्ध रहते हैं। इससे उड़ान के समय पक्षी का शरीर स्थिर रह सकता है।

पूंछ के हिस्से में कुछेक नन्हे नन्हे कशेरुक और अंतिम कशेरुक के समेकन से बना पुच्छ-दंड होता है। ये अस्थियां बड़े पुच्छीय सदंड परों को आधार देती हैं।

धड़ के कशेरुकों के एक हिस्से, अस्थिल पसलियों और बड़ी वक्षास्थि को लेकर वक्ष की रचना होती है। वक्ष फुफ्फुसों और हृदय की रक्षा करता है। वक्षास्थि में एक आड़ा उभाड़ होता है जो उरःकूट कहलाता है। वक्षास्थि का बड़ा आकार और उसपर उरःकूट के परिवर्द्धन के संबंध में स्पष्टीकरण इस बात से मिलता है कि इनसे डैनों को गतिशील बनानेवाली बड़ी बड़ी छाती की पेशियां संबद्ध रहती हैं।

खोपड़ी में एक काफ़ी बड़ा-सा कपाल और जबड़े होते हैं। पर जबड़ों में दांत नहीं होते।

अंस-मेखला डैनों को मज़बूत सहारा देती है और यह सुपरिवर्द्धित होती है। इसमें डैने के कंकाल को छाती की अस्थि से संयुक्त करनेवाली बड़ी बड़ी कोराकोयड अस्थियां, पीठ पर स्थित लंबाकृति स्कंधास्थि और अक्षक या हंसुली होती हैं। अक्षक समेकीकृत होते हैं और इनसे तथाकथित कांटा बनता है।

अग्रांग स्कैप्युला और कोराकोयड अस्थि से जुड़ा रहता है। यद्यपि ऊपरी तौर से डैना उरग की आगेवाली टांग से बिल्कुल समानता नहीं रखता, फिर भी दोनों प्रकार के प्राणियों में इन अंगों के कंकालों में एक-सी हड्डियां होती हैं। पक्षी के स्कंध प्रदेश में बाहु, अग्रबाहु की दो हड्डियां और हाथ की कई हड्डियां शामिल हैं। इनमें तीन अंगुलियों के अपरिवर्द्धित अवशेष नजर आते हैं। इस संरचना से स्पष्ट होता है कि पक्षी के डैने का मूल पांच अंगुलियों वाले अंग में है जो स्थलचर रीढ़धारियों की विशेषता है।

श्रोणि-मेखला अथवा श्रोणि से पैरों को दृढ़ आधार मिलता है। चलते समय सारे शरीर का भार पैरों को ही वहन करना पड़ता है।

टांग के कंकाल में ऊरु-अस्थि, पिंडली की हड्डियां, और पाद की हड्डियां शामिल हैं। पाद में नरहर नामक एक लंबी हड्डी और चार अंगुलियों की हड्डियां होती हैं।

पक्षी की सभी कंकाल-अस्थियां पतली और हल्की होती हैं; इनमें से कुछ हवा से भरी रहती हैं।

तंत्रिका-तंत्र अन्य रीढ़धारियों की तरह रूक के तंत्रिका-तंत्र में भी मस्तिष्क और रीढ़-रज्जु तथा इन दोनों से निकलनेवाली तंत्रिकाएं शामिल हैं।

रूक का बरताव जल-स्थलचरों या उरगों की अपेक्षा बहुत ही अधिक जटिल होता है। रूक घोंसले बनाता है, अंडे सेता है, अपने बच्चों को खिलाता है, जाड़ों के लिए दक्षिणी देशों में चला जाता है, इत्यादि। अतएव उरगों की अपेक्षा रूक के मस्तिष्क की संरचना अधिक जटिल होती है। विशेषकर अग्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध सुविकसित होते हैं (आकृति ११५)। ये अंतर्मस्तिष्क को और मध्य मस्तिष्क के एक हिस्से को ऊपर की ओर से ढंके रहते हैं। गोलार्द्धों का पिछला किनारा सुविकसित अनुमस्तिष्क की सीमा से संबद्ध रहता है। उड़ान के समय पक्षी की गति बड़ी जटिल होती है; यही कारण है कि इस अनुमस्तिष्क का आकार बहुत बड़ा होता है। अन्य रीढ़धारियों की तरह रूक का मेड्यूला आबलंगेटा रीढ़-रज्जु में प्रवेश करता है।

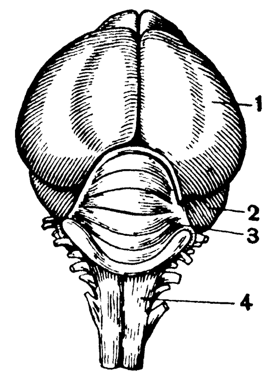

आकृति ११५ – पक्षी का मस्तिष्क

१ (1). अग्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध; २ (2). मध्य मस्तिष्क; ३ (3). अनु-मस्तिष्क; ४ (4). मेड-यूला आबलंगेटा।

ज्ञानेंद्रियों में से दर्शनेंद्रियां और श्रवणेंद्रियां सुविकसित होती हैं। पक्षी की दृष्टि बहुत ही पैनी होती है जो कि उड़ान के समय अत्यावश्यक है। निचली और ऊपरवाली पलकों के अलावा पक्षी की आंखों के एक अर्द्धपारदर्शी मिचकन झिल्ली होती है। यदि हम सिर के दोनों ओर के पर उखाड़ दें तो हमें पक्षी के कर्ण-छिद्र दिखाई देंगे। चोंच की बुनियाद में दो नासा-द्वार होते हैं पर घ्राणेंद्रियां विशेष विकसित नहीं होतीं।

प्रश्न – १. पक्षी की कौनसी पेशियां सर्वाधिक विकसित होती हैं और क्यों? २. पक्षी के कंकाल की कौनसी संरचनात्मक विशेषताएं उड़ान से संबंध रखती

है? ३. हम ऐसा क्यों मान सकते हैं कि पक्षी का डैना स्थलचर कशेरुक दंडी के अग्रांग का ही सुधरा हुआ रूप है? ४. पक्षी के मस्तिष्क की कौनसी विशेषताओं के कारण यह स्पष्ट होता है कि वह उरगों के मस्तिष्क से अधिक जटिल है?

व्यावहारिक अभ्यास – खाने के बाद बची हुई चूज़े की अलग अलग हड्डियों की जांच करो। उनके हल्केपन पर विशेष ध्यान दो। कंकाल में उनका स्थान निश्चित करो।

§ ५६. रूक की शरीर-गुहा की इंद्रियां

पचनेंद्रियां रूक द्वारा पकड़ा गया भोजन लंबी ग्रसिका के ज़रिये जठर में पहुंचता है (आकृति ११६)।

अनाज के दाने खानेवाले पक्षियों (मुर्ग़ियों, कबूतरों) की ग्रसिका अन्नग्रह में खुलती है जहां दाना जठर में प्रवेश करने से पहले नरम हो जाता है। रूक अनाज के अलावा कई अन्य चीज़ें खाता है और उसके अन्नग्रह नहीं होता।

रूक के जठर के दो विभाग होते हैं – ग्रंथिमय और पेशीमय। ग्रंथिमय विभाग की दीवारों में बहुत-सी ग्रंथियां होती हैं जिनमें से पाचक रस रसता है। आगे चलकर भोजन अगले विभाग में प्रवेश करता है। इस विभाग की दीवारें मोटी होती हैं। मुर्ग़ी जैसे अनाजभक्षी पक्षियों में यह विभाग विशेष विकसित रहता है। इसमें पक्षियों द्वारा निगले गये रेत और कंकड़ियों के कण हमेशा मिलते हैं। जब मोटी पेशीमय दीवारें संकुचित हो जाती हैं तो कंकड़ियों के कण अनाज के दानों और बीजों को चक्की की तरह पीस डालते हैं।

जठर के बाद आती है लंबी और पतली आंत। अन्य कशेरुक दंडियों की तरह इस आंत के आरंभ में यकृत् और अग्न्याशयों की वाहिनियां खुलती हैं। इन दोनों के रस भोजन के पाचन में सहायक होते है। पचे हुए पदार्थ छोटी आंत में रक्त में अवशोषित होते हैं। पक्षियों में मोटी आंत कम लंबी होती है। इसके अवस्कर नामक पिछले हिस्से में जल-स्थलचर प्राणियों और उरगों की ही तरह मूत्र-मार्ग और लिंग-ग्रंथियों की वाहिनियां खुलती हैं।

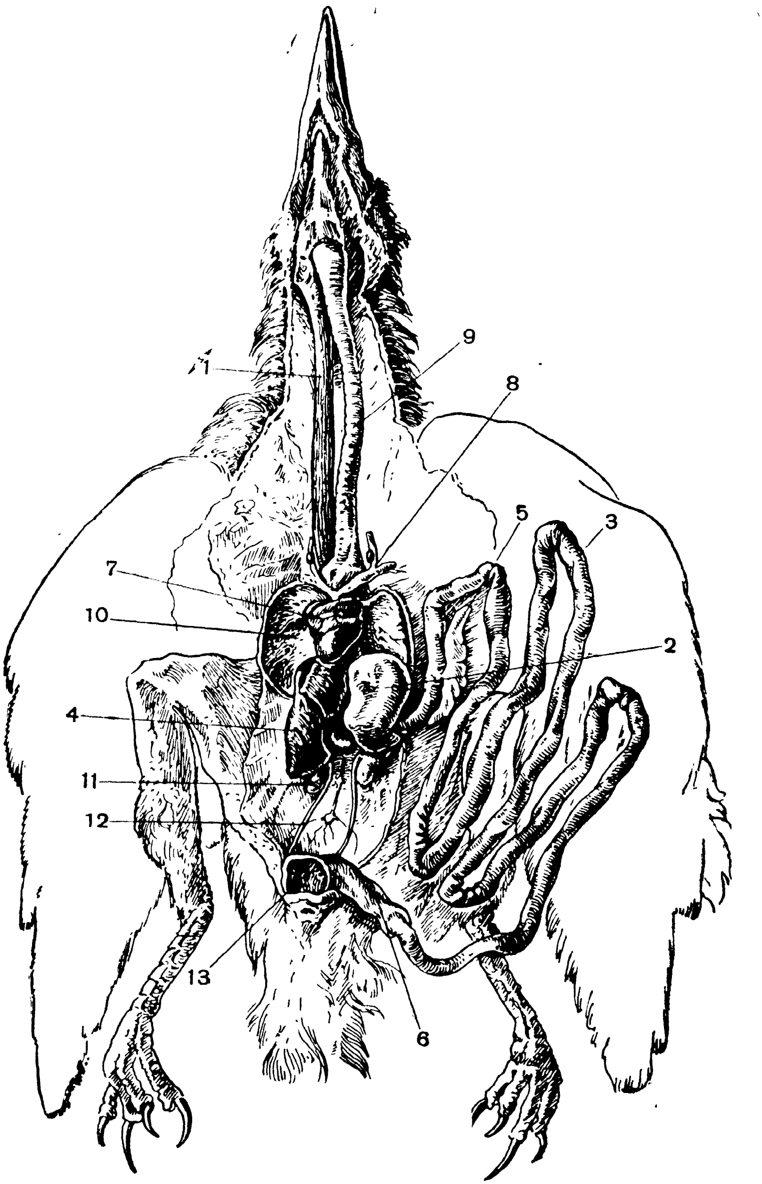

आकृति ११६ – रूक की अंदरूनी इंद्रियां

१(1). ग्रसिका ; २(2). जठर ; ३(3). छोटी आंत ; ४(4). यकृत् ; ५(5). अग्न्याशय ; ६(6). मोटी आंत ; ७(7). हृदय ; ८(8). रक्त-वाहिनियां ; ९(9). श्वास-नली ; १०(10). फुफ्फुस ; ११(11). वृषण ; १२ (12). शुक्रवाहिनी ; १३ (13). अवस्कर।

अन्य पक्षियों की तरह रूक भी अपना भोजन जल्दी पचा लेता है। अनपचे अवशेष मोटी आंत में रुकते नहीं बल्कि फ़ौरन शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

मोटी आंत की कम लंबाई, बार बार आंत का ख़ाली होना और दांतों का काम देनेवाले, जठर के पेशीमय विभाग का विकास – ये सब उड़ान से संबंधित विशेष अनुकूलताएं हैं।

श्वसनेंद्रियां रूक के फुफ्फुस वक्ष-गुहा में होते हैं। ये मोटे और हल्के गुलाबी रंग के स्पंज के से एक जोड़े के रूप में होते हैं (आकृति ११६)।

मुख-गुहा से निकलकर पूरी गर्दन में एक लंबी श्वास-नली फैली रहती है जो आगे दो शाखाओं में विभक्त होती है। ये शाखाएं श्वास-नलिकाएं कहलाती हैं। श्वास-नलिकाएं फुफ्फुसों में पहुंचती हैं। यहां उनसे और शाखाएं निकलती हैं। श्वास-नली और श्वास-नलिकाओं में उपास्थीय छल्ले होते हैं जिनके कारण उक्त नली और नलिकाओं की दीवारें धंसती नहीं और इससे हवा का मुक्त परिवहन सुनिश्चित होता है। पक्षियों के फुफ्फुस इंद्रियगत वायवाशयों से संबद्ध रहते हैं।

आराम करते समय पक्षी छाती की हड्डी को उठाकर और गिराकर सांस लेता है। जब छाती की हड्डी गिरती है तो वक्षीय गुहा फैलती है और नासा-द्वारों, मुख-गुहा, श्वास-नली और श्वास-नलिकाओं से हवा फुफ्फुसों में ली जाती है। जब छाती की हड्डी उठती है तो वक्ष संकुचित होता है और हवा बाहर लौटती है।

उड़ान के समय वक्ष स्थिर होता है और उस समय उक्त जैसा श्वसन असंभव होता है। उस समय पक्षी हवाई थैलियों के सहारे श्वसन करता है। जब पक्षी डैने फैलाता है तो हवाई थैलियां फैलकर हवा अंदर लेती हैं। जब डैने समेटे जाते हैं तो हवा शरीर से बाहर फेंकी जाती है। हवाई थैलियों में पहुंचते और वहां से बाहर आते समय हवा दो बार फुफ्फुसों में से होकर गुजरती है। दोनों मामलों में ऑक्सीजन का अवशोषण होता है। इस प्रकार दोहरी श्वसन-क्रिया होती है। जितनी अधिक तेज़ी के साथ पक्षी उड़ता है उतना ही अधिक वह डैने मारता है। इससे उतनी ही अधिक हवा उसके फुफ्फुसों में से होकर गुज़रती है। ग़रज यह कि कितनी भी तेज़ उड़ान के दौरान पक्षी श्वासोच्छ्वास कर सकते हैं।

हवाई थैलियां इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हैं कि वे शरीर का विशिष्ट गुरुत्व घटाती हैं।

श्वास-नली के नीचे की ओर, जहां वह श्वास-नलिकाओं में विभक्त होती है, ध्वनि उपकरण सहित स्वर-यंत्र होता है। इसी के सहारे पक्षी ज़ोर से चिल्ला सकता है।

रक्त-परिवहन इंद्रियां

पक्षी का हृदय जल-स्थलचरों या उरगों की तरह तीन कक्षों वाला नहीं बल्कि चार कक्षों वाला (आकृति ११६) होता है। लंबाई के बल एक विभाजक उसे दाहिने और बायें अर्द्धों में बांट देता है। हर अर्द्ध में एक अलिंद और एक निलय होता है। रक्त हृदय में मिश्रित नहीं होता और शरीर को मिलनेवाला रक्त ऑक्सीजन से समृद्ध रहता है। अन्य स्थलचर कशेरुक दंडियों की तरह यहां भी रक्त शरीर में दो वृत्तों में बहता है।

अप्रधान अथवा फुफ्फुस वृत्त में कारबन डाइ-आक्साइड से भरपूर रक्त दाहिने निलय से फुफ्फुसों की ओर बहता है। वहां वह कारबन डाइ-आक्साइड छोड़ देता है और ऑक्सीजन से समृद्ध हो जाता है। फुफ्फुसों में से रक्त हृदय के बायें अलिंद को लौट आता है।

बायें अलिंद से रक्त बायें निलय में ठेला जाता है और यहीं प्रधान वृत्त आरंभ होता है। इस वृत्त की धमनियों के ज़रिये रक्त सभी इंद्रियों की केशिकाओं में पहुंचता है। यहां वह अपना ऑक्सीजन छोड़ देता है, कारबन डाइ-आक्साइड ले लेता है और शिराओं के द्वारा दाहिने अलिंद को लौट आता है।

उत्सर्जन इंद्रियां

पक्षियों में गुरदे श्रोणि-अस्थियों के नीचे होते हैं। ये दो बड़े-से गहरे लाल रंग के पिंड होते हैं। गुरदों से मूत्र-मार्ग निकलता है जो अवस्कर में खुलता है। पक्षियों के मूत्राशय नहीं होता; अवस्कर से विष्ठा के साथ मूत्र का उत्सर्जन होता है।

उपापचय

उड़ान की सामर्थ्य के फलस्वरूप अन्य पक्षियों की तरह रूक का जीवन भी उरगों की अपेक्षा अधिक चल होता है। अतएव उसकी सभी इंद्रियां अधिक गहनता से काम करती हैं – हृदय का संकुचन अधिक बार होता है, रक्त-वाहिनियों में रक्त अधिक शीघ्रता से बहता है, फुफ्फुसों में से होकर अधिक हवा गुज़रती है, शरीर में अधिक उष्णता उत्पन्न होती है और पोषण तथा उत्सर्जन की इंद्रियां अधिक तेज़ी से काम करती हैं। आम तौर पर पक्षियों में सभी महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएं, पूरा उपापचय-चक्र उरगों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली

होता है। इस कारण पक्षियों के शरीर का तापमान स्थायी होता है और यहां तक कि स्तनधारी प्राणियों और मनुष्य के शारीरिक तापमान से ऊंचा भी होता है (४२-४३ सेंटीग्रेड)।

प्रश्न – १. पक्षी की पचनेंद्रियों की कौनसी विशेषताएं उसकी उड़ान संबंधी अनुकूलताओं से संबंध रखती हैं? २. पक्षी की श्वसनेंद्रियों की संरचना कैसी होती है? ३. उड़ान के समय पक्षी किस प्रकार श्वसन करता है? ४. पक्षियों और जल-स्थलचरों के रक्त-परिवहन तंत्रों के बीच कौनसा संरचनात्मक भेद है? ५. उत्सर्जन इंद्रियों की संरचना कैसी होती है? ६. पक्षियों में क्यों स्थायी शारीरिक तापमान होता है?

व्यावहारिक अभ्यास – जब डिनर के लिए मुर्गी बनायी जायेगी तो उसकी अंदरूनी इंद्रियों की जांच करो।

§ ५७. पक्षियों का जनन और परिवर्द्धन

जननेंद्रियां

नर और मादा रूक एक-से दिखाई देते हैं। शरीर-गुहा के अंदर स्थित जननेंद्रियों के द्वारा ही उनकी भिन्नता स्पष्ट होती है। नर में सेम के आकार के एक जोड़ा वृषण होते हैं और मादा में अकेला अंडाशय।

वसंत ऋतु में पक्षिणी के अंडाशय में कई छोटे-बड़े अंडे नज़र आते हैं जो परिवर्द्धन की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में होते हैं। परिपक्व अंडे चौड़ी अंड-वाहिनी के ज़रिये बाहर निकलते हैं। अंड-वाहिनी अवस्कर में खुलती है।

पक्षियों में एक अंडाशय के विकास के कारण उनके शरीर का वज़न घटता है। इसके अलावा उरगों की तरह सभी अंडे एकसाथ नहीं बल्कि एक एक करके परिपक्व होते हैं; इससे भी पक्षी को उड़ान के समय अतिरिक्त भार से मुक्ति मिलती है।

रूकों का जनन

देशांतर से लौट आते ही रूक फ़ौरन पुराने घोंसलों की मरम्मत या नये घोंसलों के निर्माण में लग जाते हैं। रूक अपनी एक बस्ती ही बना लेते हैं। हर बस्ती में सौ अधिक घोंसले होते हैं जो एक दूसरे से सटे रहते हैं। रूक अपने घोंसले मनुष्यों की बस्ती के पासवाले लंबे लंबे वृक्षों पर या खेतों में बिखरे हुए कुंजों में बना लेते हैं। स्पष्ट है कि इन स्थानों में भोजन की काफ़ी सपलाई होती है।

घोंसले का आकार चौड़ी टोकरी का सा होता है। यह वसंत के आरंभ में बनाया जाता है। निर्माण सामग्री होती है टहनियां और छड़ियां जो रूक अपनी मज़बूत चोंच से काट लेते हैं। घोंसले बनाये जाने के समय रूकों की बस्तियां उनकी चीख़-चिल्लाहट से गूंज उठती हैं।

अप्रैल में अंडे देना शुरू होता है। अंडे हल्के हरे रंग के होते हैं और उनपर गहरे भूरे रंग के ठप्पों का छिड़काव होता है। इससे, मादा जब घोंसले को खुला रखकर बाहर उड़ जाती है तो उसमें अंडों को पहचान लेना मुश्किल होता है।

चार-पांच अंडे देने के बाद पक्षिणी उनपर बैठती है। उसकी उष्णता के प्रभाव से अंडों में भ्रूण परिवर्द्धित होने लगते हैं। १७-१८ दिन में अंडों से परदार बच्चे निकलते हैं जो शुरू शुरू में उड़ नहीं पाते। उनके लिए मां-बाप भोजन ले आते हैं। भोजन में मुख्यतया कीड़े और उनके डिंभ शामिल हैं।

पक्षी के अंडों की संरचना

पक्षियों के अंडे उरगों के अंडों की ही तरह पोषक पदार्थों से समृद्ध रहते हैं और आकार में मछलियों और जल-स्थलचरों के अंड-समूहों से बड़े होते हैं। बाहर की ओर अंडों पर एक सख़्त कवच होता है। चूंकि सभी पक्षियों के अंडों की संरचना आम तौर पर एक-सी होती है, इसलिए हम मुर्गी के अंडे की ही जांच करेंगे।

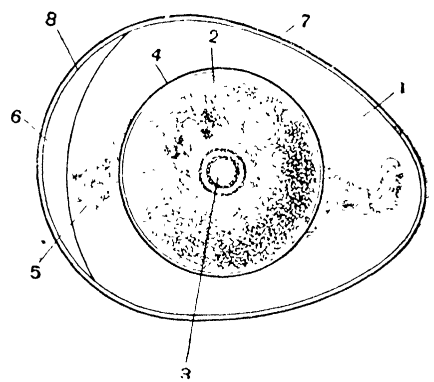

आकृति ११७ – पक्षी के अंडे की संरचना (ऊपर का दृश्य)

१(1). सफ़ेदी; २(2). योक; ३(3). भ्रूणीय टिकली; ४(4). योक का परदा; ५(5). स्नायुएं; ६(6). हवाई गुहा; ७(7). चूने का कवच; ८ (8). कवच के नीचे का परदा।

अंडे के बीचोंबीच गेंद के आकार का बड़ा-सा पीला द्रव्य या योक (आकृति ११७) होता है। यदि हम अंडे को तोड़कर तश्तरी में उंडेल दें तो योक के ऊपर की ओर एक छोटा, गोल और सफ़ेद-सा धब्बा साफ़ दिखाई देगा। यह है भ्रूणीय टिकली। योक का बाक़ी हिस्सा पोषक पदार्थों से भरा रहता है।

अंडों का योक सफ़ेदी से घिरा रहता है और एक पतला-सा परदा उसे सफ़ेदी से अलग किये रहता है। परदे के फट जाने से योक फैल जाता है। अंडे की अर्द्धतरल सफ़ेदी में हम ऐंठनदार धागों जैसा एक घना हिस्सा देख सकते हैं। ये हैं लचीली स्नायुएं जो अंडे के बीच की भ्रूणीय टिकली के साथ योक को आधार देती हैं। अंडे के खोंटे हिस्से की ओर सफ़ेदी कवच तक नहीं पहुंचती और वहां थोड़ी-सी ख़ाली जगह रहती है। इसे हवाई गुहा कहते हैं। हवाई गुहा के कारण अंडे के सेये जाते समय सफ़ेदी आज़ादी से फैल सकती है।

सख़्त चूने के कवच में अनगिनत रंध्र होते हैं। भ्रूण के लिए आवश्यक हवा इनके ज़रिये अंडे में पैठती है। कवच के नीचे एक परदा होता है। एक और बहुत ही पतला परदा कवच को बाहर से ढंके रहता है। इस परदे से हवा तो अंदर जा सकती है पर वह रोगाणुओं को अंडे में घुसने से रोकता है। यह परदा सहज ही हट सकता है, अतएव जो अंडे देर तक रखने हैं उन्हें कभी न धोना चाहिए।

भ्रूण का परिवर्द्धन

अंडे दिये जाने के समय परिपक्व अंडे अंड-वाहिनी में पहुंचते हैं। यहां उनका संसेचन होता है। संसेचित अंडे पर सफ़ेदी और परदों का आवरण चढ़ता है। यहीं रहते हुए उष्णता के प्रभाव से भ्रूणीय टिकली में भ्रूण परिवर्द्धित होने लगता है। अतः पक्षी के दिये गये अंडे मछलियों या जल-स्थलचरों के नये से दिये गये अंड-समूहों की तरह अंड-कोशिका मात्र नहीं होते। जब अंडा दिया जाता है और

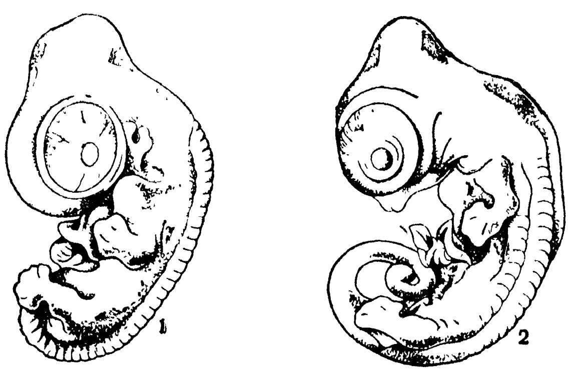

आकृति ११८ – भ्रूण

१ (1). पक्षी का भ्रूण; २(2). उरग का भ्रूण।

वह शीतल वातावरण में प्रवेश करता है तो उसका परिवर्द्धन अस्थायी रूप से रुक जाता है। जब पक्षिणी उसपर बैठकर उसे अपने शरीर से गरमी पहुंचाने लगती है तो वह फिर से शुरू होता है। भ्रूण के परिवर्द्धन के लिए उष्णता अनिवार्य है।

आरंभ में भ्रूण पक्षी जैसा नहीं लगता। उसके जीवन के बिल्कुल शुरू में उसकी शकल-सूरत उरग की सी होती है (आकृति ११८)। उसके कशेरुक दंड सहित लंबी पूंछ होती है, जबड़े चोंच में फैले हुए नहीं होते, अग्रांग उरग के पैरे जैसे दिखाई देते हैं। जिस प्रकार बेंगची मछली जैसी दिखाई देती है, पक्षी का भ्रूण उसी प्रकार उरग के भ्रूण जैसा दीखता है।

परिवर्द्धन की प्राथमिक अवस्थाओं में पक्षी के भ्रूण के जल-श्वसनिका-छिद्र होते हैं। इससे जाना जा सकता है कि पक्षियों के प्राचीन पूर्वज पानी में रहते थे।

प्रश्न – १. पक्षी की जननेंद्रियां कौनसी हैं? २. पक्षियों और उरगों की जनन-क्रियाओं में कौनसे साम्य-भेद हैं? ३. नये से दिये गये अंडे को अंड-कोशिका क्यों नहीं कहा जा सकता? ४. पक्षी के भ्रूण का परिवर्द्धन कैसे होता है? ५. पक्षियों और उरगों के भ्रूणों में कौनसी समानताएं हैं?

व्यावहारिक अभ्यास – मुर्गी का ताज़ा अंडा तश्तरी में तोड़ दो, उसकी संरचना की जांच करो और उसका चित्र बनाओ।

§ ५८. पक्षियों का मूल

पक्षियों और उरगों के बीच की समानताएं

पक्षी का शरीर उरग के शरीर की तुलना में अधिक जटिल होता है। मस्तिष्क, श्वसनेंद्रियां और रक्त-परिवहन इंद्रियां अधिक विकसित, उपापचय अधिक शक्तिशाली और शरीर का तापमान स्थायी होता है। दूसरी ओर पक्षियों में कुछ लक्षण ऐसे हैं जो उरगों में पाये जाते हैं।

उरगों की तरह पक्षियों की त्वचा सूखी और ग्रंथियों से लगभग ख़ाली रहती है। पक्षियों में कई श्रृंगीय रचनाएं भी होती हैं, जैसे टांगों पर के शल्क, चोंच का आवरण और पर। जनन-क्रिया में पक्षी योक से समृद्ध बड़े अंडे देते हैं। पक्षियों और उरगों के गर्भस्थ शिशु एक दूसरे के समान दिखाई देते हैं। इन समान लक्षणों से पक्षियों और उरगों का रिश्ता सूचित होता है। लुप्त प्राचीन पक्षियों के संबंध में सूचना प्राप्त करने पर तो यह रिश्ता और भी स्पष्ट हो जाता है।

फ़ौसिल आरकिओप्टेरिक्स

पृथ्वी के कवच के मेसोज़ोइक युग से संबंधित स्तरों में वैज्ञानिकों को कबूतर के आकार के एक असाधारण पक्षी के कंकाल की छापें मिली हैं। इस पक्षी के लक्षण किसी भी आधुनिक पक्षी की अपेक्षा उरगों से ही अधिक मिलते-जुलते थे (आकृति ११६)। इस प्राणी को आरकिओप्टेरिक्स का नाम दिया गया था।

आरकिओप्टेरिक्स का शरीर परों से ढंका रहता था। अग्रांग डैनों की शकल के हुआ करते थे। टांग के कंकाल में एक लंबी नरहर और चार अंगुलियां शामिल थीं जिनमें से तीन का रुख़ आगे की ओर और एक का पीछे की ओर था। ये सभी लक्षण पक्षियों में पाये जाते हैं।

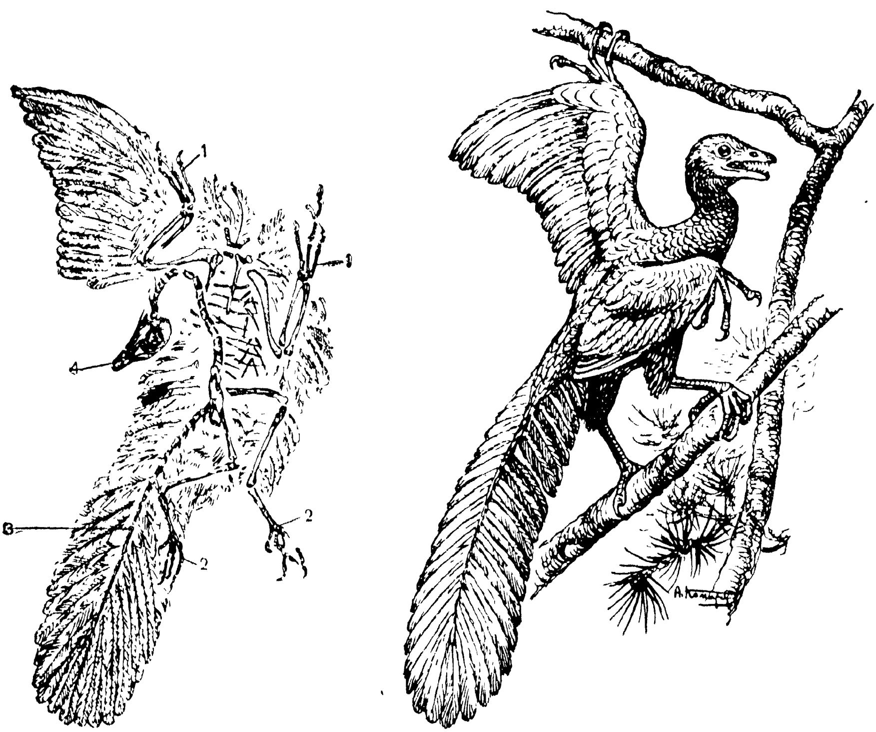

(आकृति ११६ – आरकिओप्टेरिक्स
(बायें – छाप ; दायें – बाहरी स्वरूप)
१(1). डैनों पर नखरों सहित तीन अंगुलियां ; २(2). टांगों पर चार अंगुलियां ;
३(3). अनेकानेक पुच्छ-कशेरुक ; ४(4). सदंत जबड़े।

दूसरी ओर यह प्राणी उरगों से भी मिलता-जुलता था। उसके डैनों में तीन पूर्ण विकसित अंगुलियां हुआ करती थीं जिनके सिरों पर नखर होते थे। स्पष्टतः आरकिओप्टेरिक्स पेड़ की टहनियों को पकड़ते समय इनका उपयोग करता था। पूंछ इसकी लंबी होती थी और उसपर अनेकानेक कशेरुक होते थे। पुच्छ-पर पंखे की तरह नहीं बल्कि दोनों ओर व्यवस्थित रहते थे। खोपड़ी का आकार पक्षियों की खोपड़ी जैसा ही था पर जबड़ों में उरगों के से नन्हे नन्हे दांत होते थे।

आरकिओप्टेरिक्स उड़ सकता था, पर अच्छी तरह नहीं। वह एक शाखा से दूसरी शाखा तक खिसक-भर सकता था। ऐसा मान लेने का कारण भी है – उसकी छाती की हड्डी बहुत ही छोटी होती थी और उसके उरःकूट नहीं होता था। इसका अर्थ यह है कि डैनों को गति देनेवाली पेशियां उतनी विकसित नहीं थीं। आरकिओप्टेरिक्स की हड्डियां मोटी होती थीं और उनमें हवा नहीं भरी रहती थी।

आरकिओप्टेरिक्स की खोज से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि पक्षियों का विकास प्राचीन उरगों से हुआ है।

यह कैसे हुआ इसका एक चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है। कुछ प्राचीन उरग केवल अपने पिछले पैरों के बल ही दौड़ सकते थे। कुछ पेड़ों पर चढ़ सकते थे। इस कारण पिछले पैरों की अंगुलियां लंबी हो गयीं ताकि टहनियों को पकड़ रख सकें। एक अंगुली का रुख़ बाक़ी अंगुलियों के विरुद्ध हो गया। इन उरगों को एक से दूसरी शाखा तक फुदकना पड़ता था। फुदकते समय वे अपने अग्रांगों को तान लेते थे। ये अंग दूसरी शाखा पर गिरते समय उन्हें पैराशूट का सा काम देते थे। अंगों पर के लंबे शल्कों के कारण कूद की अवधि बढ़ायी जा सकती थी। बाद में ये शल्क परों की तरह विकसित हुए और अग्रांग डैनों में परिवर्तित हुए।

डैनों की उत्पत्ति और फुदकन से उड़ान में संक्रमण के साथ साथ कुछ और भी परिवर्तन हुए। डैनों की अंगुलियां छोटी हो गयीं, उड़ान की पेशियां ज़्यादा मज़बूत हुई, उरोस्थि का आकार बढ़ गया और वक्षास्थि पर उरःकूट कहलानेवाली हड्डी विकसित हुई। इसके अलावा दांतों का लोप हो गया और शरीर के अंदर वायवाशय पैदा हुए।

प्रश्न – १. पक्षियों के कौनसे संरचनात्मक लक्षण उनके और उरगों के बीच समानता दिखाते हैं? २. कौनसे लक्षणों के कारण हम आरकिओप्टेरिक्स को पक्षियों की श्रेणी में रखते हैं? ३. आरकिओप्टेरिक्स और उरगों के बीच क्या समानता है? ४. उरगों से पक्षियों का विकास कैसे हुआ?

§ ५६. पक्षियों की विविधता

मुख्य लक्षणों की दृष्टि से पक्षियों की संरचना एक-सी होती है पर वासस्थान और जीवन की स्थितियों की दृष्टि से उसमें बड़ी विविधता होती है।

अफ़्रीकी शुतुरमुर्ग़

अफ़्रीकी शुतुरमुर्ग़ (आकृति १२०) वर्तमान पक्षियों में सबसे बड़ा पक्षी है। यह लगभग पौने तीन मीटर लंबा हो सकता है और उसका वज़न ७५ किलोग्राम तक। शुतुरमुर्ग़ अफ़्रीका के खुले मैदानों में रहता है। यहां उसके लिए पौधों के बीज, कीट, छिपकलियां इत्यादि भोजन और अन्य सभी जीवनानुकूल स्थितियां उपलब्ध हैं। मरुभूमि का निवासी होने के कारण वह कई दिन बिना पानी के रह सकता है।

शुतुरमुर्ग़ बिल्कुल उड़ नहीं सकते पर वे दौड़ते हैं बड़ी अच्छी तरह से। वे घोड़े को पीछे छोड़ सकते हैं और अड़चनों को आसानी से लांघ सकते हैं। भोजन और पानी की खोज में वे कभी कभी लंबी दूरियां तै करते हैं। दौड़ने का उपयोग शत्रु से बचाव करने में भी होता है। शुतुरमुर्ग़ की टांगें इस प्रकार की गति के लिए भली भांति अनुकूल होती हैं। उसकी लंबी और मज़बूत टांगों में सिर्फ़ दो अंगुलियां होती हैं। उसके मोटे चमड़ीनुमा तलवे होते हैं। तलवे चोटों या रेत की जलन से

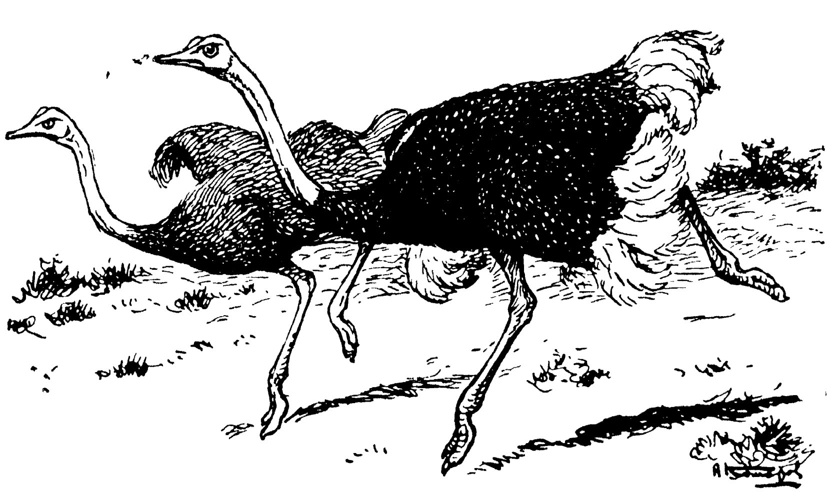

आकृति १२०—अफ़्रीकी शुतुरमुर्ग़।

अंगुलियों की रक्षा करते हैं। अपने पर की फटकार से शुतुरमुर्ग़ आदमी को जहीं का तहीं ढेर कर सकता है।

शुतुरमुर्ग़ के डैने उड़ान-इंद्रिय की दृष्टि से अब कोई महत्त्व नहीं रखते। यह पक्षी डैनों का उपयोग केवल तेज़ दौड़ने के लिए करता है – झट से मुड़ते समय पतवार की तरह और अनुकूल हवा में पालों की तरह। डैनों में सदंड पर नहीं होते। उनकी जगह लंबे, मुलायम पर होते हैं। पूंछ में भी ऐसे ही पर निकल आते हैं।

शुतुरमुर्ग़ की टांगों का सुपरिवर्द्धन इस कारण हुआ है कि कई पीढ़ियों से दौड़ते समय उन्हें काफ़ी मेहनत करनी पड़ी है। इसी तरह डैनों का अपरिवर्द्धन मेहनत की कमी का परिणाम है।

डैनों और उन्हें गति देनेवाली पेशियों का अपरिवर्द्धन शुतुरमुर्ग़ के कंकाल की संरचना की विशेषताओं पर प्रकाश डालता है। छाती की हड्डी में उरःकूट नहीं होता और अंस-मेखला की हड्डियां कम विकसित होती हैं।

जिस प्रकार एक लंबे अर्से के दौरान शुतुरमुर्ग़ की टांगें लंबी होती गयीं उसी प्रकार उसकी गर्दन भी ज़्यादा बाहर निकल आयी। लंबे पैरों के साथ छोटी गर्दन होती तो यह पक्षी जमीन पर से अपना भोजन न उठा पाता। अपनी लंबी गर्दन पर स्थित सिर को उठाकर यह पक्षी बहुत दूर से अपने शत्रु को देख सकता है। शुतुरमुर्ग़ की नज़र बड़ी पैनी होती है।

जनन में मादा शुतुरमुर्ग़ ज़मीन के साधारण-से गड्ढे में सख्त कवचवाले बड़े बड़े अंडे (जो मुर्ग़ी के अंडों से २० गुना बड़े होते हैं) देती है। रेत में यह गड्ढा बनाया जाता है और उसे खोदते समय निकाले गये कंकड़ उसके चारों ओर रखे जाते हैं। अंडों पर नर और मादा दोनों बैठते हैं। दिन में मादा की पाली रहती है और रात में नर की। मादा का रंग भूरा-कत्थई होता है और दिन में घोंसले पर बैठी हुई मादा मुश्किल से देखी जा सकती है। नरों के काले पर होते हैं। डैनों और पूंछ में ये सफ़ेद रंग के होते हैं।

शुतुरमुर्ग़ के सुंदर सफ़ेद परों का उपयोग अलंकार की तरह किया जाता है और इसी लिए उनका शिकार किया जाता है और विशेष फ़ार्मों में संवर्द्धन भी। मांस और अंडों का उपयोग खाने के लिए किया जाता है।

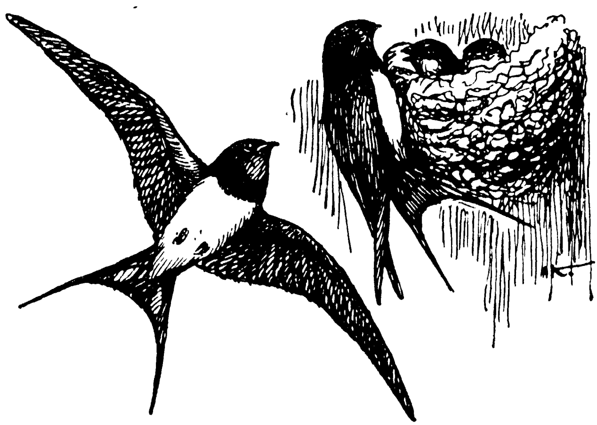

आकृति १२१ – देहाती अबाबील और उसका घोंसला।

सोवियत संघ के अस्कानिया-नोवा स्थान में अफ़्रीकी शुतुरमुर्ग़ रहते हैं। यह उक्रइन की स्तेपी का एक रक्षित उपवन है।

देहाती अबाबील

देहाती अबाबील सारा दिन हवा में मच्छरों, मक्खियों और भोजन के अन्य कीटों का शिकार करते हुए गुजारती है (आकृति १२१)। कीटों का पीछा करते हुए अबाबील बुरे मौसम में ज़मीन के पास से और अच्छी हवा में ऊंचाई पर उड़ती है।

अबाबीलें उड़ते समय पानी की सतह का हल्का-सा स्पर्श करती हुई पानी पी लेती हैं और नहा भी लेती हैं। इनकी उड़ान में असाधारण तेज़ी और फ़ुर्ती रहती हैं। ये अपने पंख फड़फड़ाती हुई आगे की ओर झपटती हैं, उन्हें खोलकर हवा में गतिहीन-सी लटकती रहती हैं, फिर ऊपर की ओर उड़ान भरती हैं या नीचे की ओर ग़ोता लगाती हैं। वे बड़ी तेज़ी से घूम पड़ती और चक्कर लगाती हैं।

अबाबील की उत्कृष्ट उड़ान-क्षमता उसकी संरचना पर आधारित है। उसकी छाती की पेशियां बहुत ही विकसित होती हैं। संकरे पंख इतने लंबे होते हैं कि समेटे रहने की अवस्था में वे शरीर के बहुत पीछे फैले रहते हैं। लंबी कांटेदार पूंछ उड़ान के समय बढ़िया पतवार का काम देती है।

दूसरी ओर आबबील की टांगें बहुत ही छोटी और कमज़ोर होती हैं। अंगुलियों पर तेज़ नखर होते हैं जिनके सहारे वह अपने घोंसले में चिपकी रह सकती है।

उसके बड़े और खूब खुलनेवाले मुंह में छोटी-सी चोंच होती है। इसकी रचना उड़ान के समय कीटों को पकड़ लेने के लिए भली भांति अनुकूल होती है।

अबाबील घोंसले में अंडे देती है और उनको सेती है। वह अपना घोंसला किसी इमारत की दीवार या शहतीर के सहारे, छत के नीचे ऐसी जगह में बना लेती है जो बुरे मौसम और शिकारभक्षी प्राणियों से सुरक्षित हो। यह पक्षी गीली मिट्टी या कीचड़ के टुकड़ों को अपनी लार के सहारे जोड़ जोड़कर बड़ी चतुराई से घोंसला बनाता है। यह अर्द्धगोलाकार कटोरी के आकार का होता है।

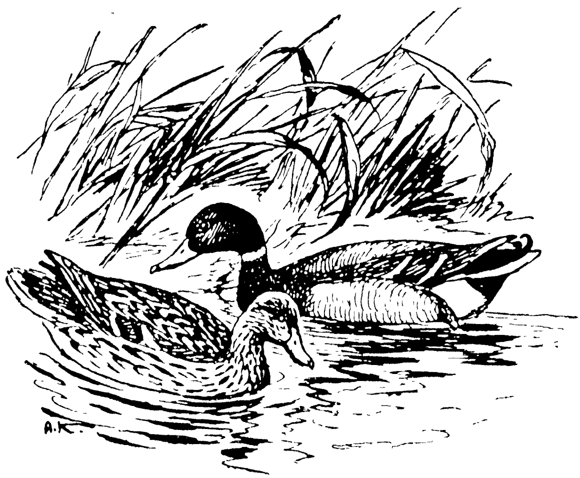

आकृति १२२ – जंगली बत्तख़।

शरद के आरंभ में ही, जब कीटों की संख्या कम हो जाती है, अबाबीलें उत्तरी प्रदेशों से उड़कर अफ़्रीका या दक्षिणी एशिया के गरम देशों को चली जाती हैं। अगले साल वे लौट आती हैं। ये गरम वसंत की प्रसन्न संदेशवाहिकाएं हैं।

अबाबीलें कीटों को खाकर बड़ा उपकार करती हैं। अबाबीलों का एक एक परिवार गरमियों में लगभग दस लाख हानिकर कीटों का सफ़ाया कर डालता है।

जंगली बत्तख़

जंगली बत्तख़ें किनारों पर घनी झाड़ी-झुरमुटों वाली झीलों में या छोटी नदियों के शांत, एकांत हिस्सों में रहती हैं (आकृति १२२)। यहां जंगली बत्तख़ के लिए भोजन, घोंसले बनाने के लिए

सुविधापूर्ण स्थान और जीवन के लिए आवश्यक अन्य स्थितियां उपलब्ध होती हैं।

जंगली बत्तख़ के शरीर की रचना जलगत जीवन के अनुकूल होती है। आकार उसका सपाट पेंदीवाली नाव जैसा होता है। छोटे पैरों में तीन अगली अंगुलियों के बीच तैराकी जाल होते हैं। जब यह पक्षी तैरता है तो पैरों की पीछे की ओर की गति के साथ ये जाल फैलकर डांड़ों का सा काम देते हैं। पैर बहुत ही पीछे की ओर होते हैं ताकि वे पतवार का काम कर सकें।

शरीर के पिछले सिरे पर एक मेद-ग्रंथि होती है जिससे मेद रसता है। बत्तख़ अपनी चोंच से यह तेल सारे परों पर पोत देती है जिससे वे जलरक्षित बन जाते हैं।

बाहरी सदंड परों के नीचे कोमल रोओं की एक मोटी परत होती है जो शरीर को ठंडे पड़ जाने से बचाती है। यही काम सुविकसित त्वचांतर्गत चरबी की परत भी देती है। परों की मोटी परतों, शरीर में चरबी की समृद्ध मात्रा और सुविकसित हवाई थैलियों के कारण, जंगली बत्तख़ का आपेक्षिक भार घट जाता है और तरण-क्षमता बढ़ती है।

जंगली बत्तख़ पानी में अपनी चोंच के सहारे अपना भोजन पकड़ती है। उसके भोजन में पौधे और विभिन्न छोटे छोटे प्राणी (मोलस्क, कीट-डिंभ, छोटे छोटे क्रस्टेशिया, बेंगचियां, इत्यादि) शामिल हैं। चौड़ी और चपटी चोंच के किनारों पर छोटे छोटे शृंगीय दांत होते हैं। भोजन के साथ चोंच-भर पानी लेकर बत्तख़ उसे अपने दांतों के बीच से निचोड़ लेती है।

चोंच के किनारे और उसका नुकीला सिरा सख़्त होते हैं, जबकि ऊपर का हिस्सा नरम। ऊपर के हिस्से में संवेदन तंत्रिकाओं के अनगिनत सिरे होते हैं। इस कारण चोंच एक स्पर्शेंद्रिय का भी काम देती है। इसकी सहायता से यह पक्षी पानी और छाड़न में अपना भोजन ढूंढ सकता है।

जंगली बत्तखें कमाल की तैराक होती हैं पर ज़मीन पर उनकी चाल बड़ी अटपटी होती है। उनके पैरों के बीच काफ़ी अंतर होता है और यही उनकी डगमग चाल का कारण है।

जाड़ों के लिए जंगली बत्तखें उत्तरी देशों से उड़कर ऐसे इलाक़ों की ओर चली जाती हैं जहां के जलाशयों का पानी जम न जाता हो। फिर वसंत में वे घर लौट आती हैं। न जमनेवाली नदियों के पास वे कभी कभी पूरे जाड़े बिता सकती हैं।

नर जंगली बत्तख का रंग मादा से उजला होता है। उसका सिर मख़मली हरे रंग का होता है और पंखों में सफ़ेद चौखटों वाली नीली 'खिड़कियां' होती हैं। मादा बत्तखें हल्के भूरे रंग की होती हैं। यह रंग उनके लिए सुरक्षा साधन का काम देता है और घोंसलों में रहते हुए वे मुश्किल से पहचानी जाती हैं।

घोंसला आम तौर पर पानी के नज़दीक झुरमुटों में ज़मीन पर ही बनाया जाता है। अंडों से निकले हुए बच्चे फ़ौरन अपनी मां के पीछे पीछे चलने, तैरने और स्वतंत्र रूप से अपना भोजन पकड़ने लगते हैं।

चित्तीदार कठफोड़वा

चित्तीदार कठफोड़वा जंगलों का एक साधारण निवासी है (आकृति १२३)। यह अपना जीवन पेड़ों पर बिताता है। यहीं वह अपना भोजन ढूंढ लेता है। वृक्षों की छालों और लकड़ी में रहनेवाले कीट-डिंभ, बीटल और पेड़ों पर रेंगनेवाले अन्य कीड़े उसके भोजन में शामिल हैं। वह शंकुल (coniferous) पौधों के बीज भी खा लेता है।

पेड़ों पर के जीवन का प्रतिबिंब कठफोड़वे के शरीर की संरचना में देखा जा सकता है। उसके पैरों की अंगुलियों में तीक्ष्ण नखर होते हैं पर उनकी व्यवस्था दूसरे पक्षियों की अंगुलियों जैसी नहीं होती। उसकी दो अंगुलियों का रुख़ आगे की ओर और बाक़ी दो का पीछे की ओर होता है। इस व्यवस्था के कारण पेड़ के तने पर चढ़ते समय उसकी छाल को पकड़े रहने में अच्छी मदद मिलती है। तने को अपने नखरों से पकड़े हुए कठफोड़वा आधार के लिए अपनी पूंछवाले सख़्त सदंड परों पर झुका रहता है। ये पर आम परों से भिन्न होते हैं। उनका पक्ष-दंड मज़बूत, लचीला और जाल सिरे की ओर नुकीला होता है। इस प्रकार इस पक्षी के तीन आधार बिंदु होते हैं। इसके अलावा कठफोड़वा अपने पैर एक दूसरे से काफ़ी दूर गड़ा सकता है। पेड़ पर बैठे हुए वह उन्हें शरीर के दोनों ओर सरकाता है जिससे शरीर को और अधिक स्थिरता प्राप्त होती है।

टांगों और पूंछ की विशिष्ट संरचना के कारण कठफोड़वा तने को ऐसी मज़बूती से पकड़े बैठता है कि वह बड़े ज़ोर से वृक्षों की छालों में चोंच से प्रहार कर सकता है। वह छाल पर जब चोंच मारता रहता है तो उसकी ध्वनि शांत वन में दूर से सुनाई देती है। कठफोड़वा अपनी चोंच से शंकुओं को तोड़कर उनमें से बीज निकाल

आकृति १२३ – चित्तीदार कठफोड़वा।

सकता है। इससे पहले वह शंकु को किसी सूखी शाखा के गड्ढे में या तने और शाखा की संधि में अटका देता है।

कठफोड़वा अपनी संकरी ज़बान की मदद से वृक्ष की छाल और लकड़ी में से कीट-डिंभ निकाल लेता है। ज़बान चिपचिपी होती है और उसके सिरे पर पिछली ओर झुके हुए छोटे छोटे उभाड़ होते हैं। छोटे कीड़े ज़बान में चिपक जाते हैं और बड़े उसके सिरे में टंगे रहते हैं।

हानिकर कीटों का सफ़ाया करके कठफोड़वा जंगलों को बड़ा फ़ायदा पहुंचाता है। चीड़ के बीज खाकर वह जो नुक़सान पहुंचाता है उसका पूरा मुआवज़ा इस काम से मिल जाता है।

कठफोड़वा पेड़ों के प्राकृतिक गड्ढों में डेरा डालता है या अपने घोंसले के लिए ऐसे गड्ढे खोद लेता है। घोंसले में वह लकड़ी के भूसे का अस्तर लगा लेता है।

इस प्रकार पक्षियों की संरचना और बरताव दोनों उनकी जीवन-स्थितियों के अनुकूल होते हैं।

प्रश्न – १. शुतुरमुर्ग़ की टांगों और डैनों की संरचना के विशेष लक्षण कौनसे हैं और वे ऐसे क्यों हैं? २. अबाबील की टांगों और डैनों की संरचना के विशेष लक्षण कौनसे हैं और वे ऐसे क्यों हैं? ३. बुरे मौसम में अबाबीलें क्यों ज़मीन के नज़दीक रहती हैं? ४. जंगली बत्तख में जलगत जीवन की दृष्टि से कौनसी विशेष अनुकूलताएं हैं? ५. कठफोड़वे की संरचना के कौनसे विशेष लक्षण उसके पेड़ों पर के जीवन से संबंध रखते हैं?

§ ६०. भारतीय पक्षियों की विविधता

उष्ण जलवायु और समृद्ध प्रकृति के कारण भारत विभिन्न पक्षियों का घर बना हुआ है। भारत में उनके डेढ़ हज़ार से अधिक प्रकार मिलते हैं। जंगलों, खेतों और बगीचों में, जहां भी जाओ, पक्षी देखने को मिलते ही हैं—कौए, सारिकाएं, बड़े और सुंदर मोर, आसमान में चक्कर काटनेवाली अबाबीलें और पानी में तैरनेवाली तरह तरह की बत्तखें।

राजा कौआ हवा में कीटों का पीछा करता है या मवेशियों की पीठों पर उतर आकर वहां छिपे हुए कीट चुग लेता है। सारिकाएं और मैनाएं उद्यान-पथों पर अक्सर पायी जाती हैं। इनके सिर के दोनों ओर पीले ठप्पे होते हैं। लाल उदरवाली नन्हीं नन्हीं बुलबुलों के मधुर संगीत स्वर कैसे मनोहर होते हैं। बुलबुल के सिर पर काले परों की कलगी होती है। पेड़ों से लटकनेवाले गोल या बोतल की शकल के घोंसले तो तुमने देखे ही होंगे। ये हैं बया के घोंसले। बया घास के तिनकों से ये घोंसले बड़ी चतुराई से बुन लेती है। नीचे की ओर घोंसले का प्रवेश द्वार होता है। ये पक्षी खुद तो बीज खाते हैं पर अपने बच्चों को कीड़े खिलाते हैं। कीड़ों के नाश के कारण मनुष्य का बड़ा लाभ होता है।

जाड़ों के दौरान भारत में बड़ी संख्या में परदार प्रवासी देखे जा सकते हैं। ये सोवियत संघ, उत्तरी चीन इत्यादि देशों से आते हैं। उनके घर तो उक्त देशों में होते हैं पर जाड़ों के मौसम में वे भारत आते हैं और फिर वसंत में मातृभूमि को लौट जाते हैं।

इस प्रकार वेदांतांगल (मद्रास से ६४ किलोमीटर पर स्थित) रक्षित उपवन में ऐसी बत्तखें पायी गयीं जिनपर सोवियत संघ में छल्ले चढ़ाये गये थे जबकि सोवियत संघ में एक ऐसा जल-पक्षी पाया गया जिसपर भारत में छल्ले चढ़े थे।

दूसरे यूरोपीय देशों के पक्षी भी जाड़ों के लिए भारत आते हैं। इस प्रकार भारत में जाड़े बितानेवाले पक्षियों में जर्मनी के सफ़ेद क्रौंच, हंगरी की गुलाबी सारिकाएं या रोज़ी पैस्टर इत्यादि शामिल हैं।

पक्षियों के स्वरूप, आकार, संरचना और जीवन-प्रणाली उनके वासस्थान, भोजन और भोजन प्राप्त करने के तरीक़ों के अनुसार भिन्न होते हैं। इस विविधता की कुछ कल्पना प्राप्त करने की दृष्टि से हम पेड़ों तथा ज़मीन पर रहनेवाले पक्षियों और फिर शिकारभक्षी तथा पौधों के जीवन-रस पर निर्वाह करनेवाले पक्षियों का परीक्षण करेंगे।

पेड़ों पर रहनेवाले पक्षी। तोते

भारत में चमकीले रंगों वाले तोतों के १५ विभिन्न प्रकार मौजूद हैं। इनमें से सबसे आम हैं लंबी पूंछवाले हरे तोते। इनके बड़े बड़े झुंड पेड़ों पर देखे जा सकते हैं। ये तीव्र, कर्णकर्कश आवाज़ करते हुए बड़ी फुर्ती के साथ पेड़ों पर फुदकते हैं।

तोता वास्तविक अर्थ में पेड़ पर रहनेवाला पक्षी है। उसका जीवन पेड़ के निवास के लिए अनुकूल होता है। वहीं उसे घोंसले के लिए स्थान मिलता है और भोजन भी। कठफोड़वे की तरह तोते की भी दो अंगुलियों का रुख़ आगे की ओर और बाक़ी दो का पीछे की ओर होता है। अंगुलियों में तेज़ नखर होते हैं। ऐसी टांगें शाखाओं को पकड़े रहने में अच्छे साधनों का काम देती हैं। तोता पेड़ पर चढ़ने में अपनी चोंच का भी उपयोग करता है। एक बार वह चोंच से शाखा को पकड़ता है तो दूसरी बार नखरों से। उसकी बड़ी चोंच की अपनी विशेषताएं होती हैं। अन्य पक्षियों के विपरीत चोंच का नीचे की ओर झुका हुआ ऊपरवाला हिस्सा हिल सकता है। ऐसी चोंच से न केवल पेड़ पर चढ़ने में बल्कि फल और पौधों के बीज खाने में भी मदद मिलती है। तोते का चमकीला रंग उसे जंगल के पेड़-पौधों की चमकीली पत्तियों में छिपे रहने में सहायता देता है।

तोते जोड़े बनाकर रहते हैं और पेड़ों पर घोंसले बना लेते हैं।

गैंडा-पक्षी

भारत के रोचक पक्षियों में से एक गैंडा-पक्षी है (आकृति १२४)। यह भी पेड़ों पर रहता है। यह एक बड़ा पक्षी है और उसकी चोंच लंबी तथा नुकीली होती है। फल खाने के लिए ऐसी चोंच अनुकूल रहती है। सिर पर सींग के आकार का एक अवयव होता है और इसी लिए इस पक्षी को सींगदार गैंडा-पक्षी कहते हैं।

यह बड़ा-सा सींग वज़न में बहुत ही हल्का होता है। यह हड्डी की पोली कोशिकाओं से बना रहता है।

गैंडा-पक्षी जंगलों में पेड़ों पर रहता है और फल, कीट तथा अन्य छोटे छोटे प्राणी खाता है। इनका अंडों को सेने का तरीक़ा विशेष दिलचस्प है। यह अपने घोंसले पेड़ों के खोंडरों में बनाते हैं। जब घोंसला बनकर तैयार हो जाता है तो मादा खोंडर में चली जाती है और नर एक छोटा-सा सूराख़ ख़ाली रखकर उसे बंद कर देता है। बच्चों के सेये जाने और उनमें पर निकल आने के समय तक नर इस सूराख़ के ज़रिये मादा को खिलाता रहता है। इसके बाद ही मादा को 'क़ैद' से आज़ादी मिलती है।

आकृति १२४ – गैंडा-पक्षी।

ज़मीन पर रहनेवाले पक्षी। मोर

ज़मीन पर रहने और भोजन पानेवाले पक्षियों में तीतर, मोर, जंगली मुर्ग़ी शामिल हैं।

मोर एक बड़ा और सुंदर पक्षी है। नर विशेष सुंदर होता है। उसके रंग-बिरंगी आंखों वाली लंबी दुम होती है। मोरनी के आगे अपने नखरे दिखाते समय मोर अपने ये पर उठाकर एक बड़े ख़ूबसूरत पंखे की शक्ल में खोल देता है। मोर के सिर पर परों की एक सुंदर कलगी सजी होती है। टांगों में मज़बूत एड़ियां होती हैं।

मोर ऐसे पक्षियों का एक उदाहरण है जिनके नर और मादा के स्वरूप भिन्न होते हैं। आम तौर पर मादा का रंग कम आकर्षक होता है। इसका कारण यह है कि मादा को अंडों पर बैठना पड़ता है और उस समय यह ज़रूरी है कि उसे कोई परेशानी न हो और न कोई शत्रु उसे देख पाये।

जंगली मोर भारत के जंगलों और झाड़ी-झुरमुटों से ढंके हुए पहाड़ी इलाक़ों में बड़ी संख्या में घूमते हुए नज़र आते हैं। आम तौर पर वे छोटे छोटे झुंडों में रहते हैं। मोर की खोंटे नखरों वाली मज़बूत टांगें ज़मीन पर चलने के लिए अच्छी

तरह अनुकूल होती हैं। वे ज़मीन पर ही अपना भोजन पाते हैं। इसमें पौधों के बीज, घास, कीट और कभी कभी छोटी छोटी छिपकलियां और सांप भी शामिल हैं। मोर के डैने छोटे होते हैं और लंबी उड़ान की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होते। केवल रात के समय वे पेड़ों पर उड़ते हैं। मोर अपना घोंसला ज़मीन पर ही बनाते हैं और उसमें टहनियों, पत्तियों तथा घास का अस्तर लगाते हैं।

मोर जंगलों में न केवल उनके बड़े आकार से पर उनकी कर्कश, अरोचक पुकारों से भी पहचाने जा सकते हैं। उनकी पुकार कुछ हद तक बिल्ली की म्याऊं जैसी होती है।

पालतू मोर बहुत-से देशों में मिलते हैं, पर उनकी जन्मभूमि भारत ही है। यहां वे जंगलों ही में नहीं, देहातों के आसपास भी बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। लोग उन्हें कभी परेशान नहीं करते। कहीं कहीं तो उन्हें पवित्र माना जाता था और उनके शिकार की मनाही थी।

जंगली मुर्गी

भारत के जंगलों में जंगली मुर्ग़ियों के कई (४) प्रकार मिलते हैं। ये भी मोर की तरह विशिष्ट स्थलचर पक्षी हैं। खोंटे नखरों वाले मज़बूत पैरों से वे ज़मीन को खोदकर अपना भोजन ढूंढ लेते हैं। इनके भोजन में बीज, कृमि और कीट शामिल हैं।

इस वक़्त संसार-भर में फैली हुई पालतू मुर्गियां भारतीय जंगली मुर्ग़ियों के खानदान की ही औलाद हैं। (६३ वां परिच्छेद देखो।) जंगली मुर्गियां कभी कभी जंगलों से बाहर खेतों में चली आती हैं। मुर्गा और मुर्गी दोनों की पुकार पालतू मुर्ग़ की कुकुड़ूं-कूं जैसी ही होती है। हां, मादा की पुकार कुछ ह्रस्व होती है।

शिकारभक्षी पक्षी

पक्षियों का भोजन और उसे प्राप्त करने का तरीक़ा उनकी संरचना में प्रतिबिंबित होता है। यह दूसरे पक्षियों, स्तनधारियों और उरगों को मारकर खानेवाले शिकारभक्षी पक्षियों में विशेष रूप से देखा जा सकता है।

भारत में शिकारभक्षी पक्षियों के बहुत-से प्रकार हैं। इनमें बाज़, चील और गरुड शामिल हैं। भारतीय बाज़ या शिकरा बड़ी संख्या में पाया जाता है।

ज़िंदा शिकार पकड़नेवाले इन सभी पक्षियों के मज़बूत डैने और लंबी पूंछें होती हैं। शिकार का पीछा करते समय वे भली भांति उड़ सकते हैं। उनकी

टांगें बड़ी मजबूत होती हैं और नखर तेज़ और झुकावदार। क़ब्ज़ा किये गये शिकार को वे इन नखरों से बड़ी मजबूती से पकड़ रखते हैं। बड़ी-सी चोंच का ऊपरवाला आधा हिस्सा नीचे की ओर झुका होता है। ऐसी चोंचों और नखरों की सहायता से शिकारभक्षी पक्षी अपने शिकार के टुकड़े टुकड़े कर देते हैं।

शिकारभक्षी पक्षी उसके बाह्य लक्षणों से पहचाना जा सकता है।

गिद्धों की शक्ल-सूरत शिकारभक्षी पक्षियों की सी होती है और ये हैं भी उसी कुल के। पर ये पक्षी जिंदा शिकार नहीं पकड़ते – वे मुर्दा मांस खाते हैं। भागते हुए शिकार को पकड़ने की नौबत उनपर कभी नहीं आती। अतः उनके नखर वास्तविक शिकारभक्षी पक्षियों जितने तेज़ नहीं होते पर नज़र उनकी उतनी ही पैनी होती है। दोनों को काफ़ी दूर से अपने शिकार का भेद लेना पड़ता है। गिद्ध उड़ते हुए और अधिकतर हवा में स्थिर रहते हुए बराबर मुर्दा मांस की खोज में रहते हैं।

गिद्ध का एक विशेष लक्षण यह है कि उसके सिर और गर्दन पर छोटे छोटे रोओं की हल्की-सी परत रहती है या वे बिल्कुल सफ़ाचट होते हैं। इस विशेषता का कारण यह है कि जिस मुरदे पर वे चोंच मारते हैं वह अक्सर सड़ने-गलने की स्थिति में होता है और उन्हें मुर्दा मांस में अपनी तेज़ चोंच गड़ानी पड़ती है। कभी कभी तो गिद्ध मुर्दे की आंतों में अपनी गर्दन तक गड़ा देता है। यदि उसके सिर और गर्दन पर साधारण परों का आवरण होता तो उक्त स्थिति में गर्दन आसानी से ख़राब हो जाती। पर गिद्ध की नंगी या रोएंदार गर्दन के कारण यह टलता है। इस चिह्न के द्वारा गिद्ध फ़ौरन अन्य पक्षियों से अलग पहचाना जा सकता है।

लंबी चोंचवाला भारतीय गिद्ध और सफ़ेद पीटवाला गिद्ध भारत के साधारण गिद्ध हैं। वे अक्सर बड़े बड़े झुंडों में क़स्बों और देहातों में मुर्दा मांस पर जमे हुए नज़र आते हैं। इसी वर्ग में गंजा या राजा गिद्ध आता है जिसका सिर और गर्दन पूरी तरह गंजे होते हैं।

चूंकि गिद्ध मुर्दा मांस का सफ़ाया कर डालते हैं इसलिए उन्हें उपयोगी पक्षी कहा जा सकता है।

इससे अधिक उपयोगी है सफ़ेद मेहतर या फ़ेरो का मुर्ग़ (आकृति १२५) जो न केवल मुर्दा मांस बल्कि सभी निकम्मी और सड़ी-गली चीज़ें खाता है। जिन

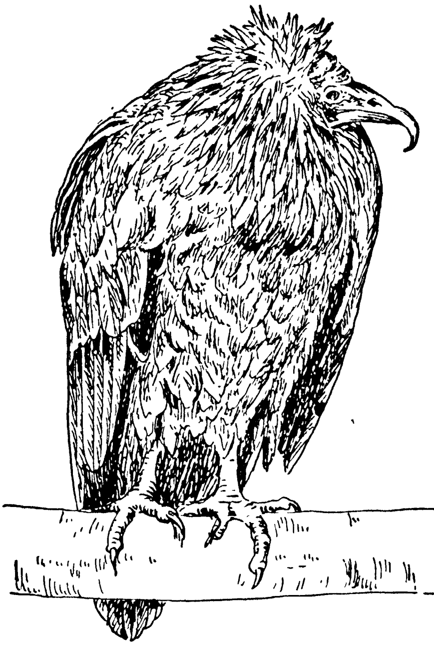

आकृति १२५—सफ़ेद मेहतर।

जिन बस्तियों में यह पक्षी जाता है वहीं का सारा कूड़ा-करकट खाकर बस्तियों की सफ़ाई का काम करता है।

सूर्य-पक्षी

सूर्य-पक्षी कहलानेवाले नन्हे नन्हे पक्षियों के भोजन का तरीक़ा एकदम दूसरा होता है। उदाहरणार्थ, हरे सूर्य-पक्षी को ही लो। इसका मुलायम परों का आवरण चमकीली धात की तरह दमकता है। फूलदार पेड़-पौधों पर बैठकर यह उनके फूलों की मधुर सुधा का पान करता है। हां, यह सही है कि इस पुष्प-रस के अलावा वह छोटे छोटे कीट भी खाता है।

सूर्य-पक्षियों की संरचना भोजन के रूप में पुष्प-रस का उपयोग करने के अनुकूल होती है। इसके लंबी, पतली, नुकीली चोंच होती है। ज़बान के बीच खड़ी नाली-सी होती है और सिरे पर ज़बान दो फंदों में विभक्त होती है। केवल ऐसी चोंच और ज़बान से ही कोई पक्षी पुष्प-रस चूस सकता है।

मधु-मक्खियों की तरह सूर्य-पक्षी भी फूलों को परागित करते हैं। अतः वे उपयोगी पक्षी हैं।

प्रश्न – १. तोतों के कौनसे संरचनात्मक लक्षण उनके वृक्षस्थित जीवन से संबंध रखते हैं? २. किन संरचनात्मक लक्षणों के आधार पर मोर को ज़मीन पर रहनेवाला पक्षी माना जाता है? ३. बाज़ में शिकारभक्षी पक्षी की कौनसी अनुकूलताएं मौजूद हैं? ४. वास्तविक शिकारभक्षी पक्षियों से गिद्ध किस माने में भिन्न है? ५. गिद्ध और सफ़ेद मेहतर किस प्रकार उपयोगी हैं? ३. सूर्य-पक्षियों में पुष्परस-पान की दृष्टि से कौनसी अनुकूलताएं होती हैं?

§ ६१. पक्षियों का नीड़-वास और प्रवसन

नीड़-वास

अधिकांश पक्षी नीड़ों या घोंसलों में अंडे देते हैं पर कुछ पक्षी ऐसे हैं जिनके घोंसले नहीं होते। ऐसे पक्षी ज़मीन के गड्ढों में अंडे देते हैं।

पक्षियों के घोंसले कई प्रकार के होते हैं। अब तक देखे हुए उदाहरणों से यह स्पष्ट है।

अंडे देने के बाद पक्षी उनपर बैठने लग जाता है। आम तौर पर अंडे सेने का काम मादा करती है, पर कुछ प्रकारों में नर भी इस काम में भाग लेता है।

अंडों से निकलनेवाले सभी पक्षि-शावकों को देखभाल की आवश्यकता होती है; पर विभिन्न पक्षियों में इस देखभाल का स्वरूप भिन्न होता है। कुछ बच्चे अंडों से निकलते ही स्वतंत्रतापूर्वक अपना भोजन ढूंढ ले सकते हैं। जहां कहीं उनकी मां जाती है, उसके पीछे पीछे वे भी चले जाते हैं। मुर्गियों और बत्तखों के बच्चे इसके उदाहरण हैं। वे मुलायम परों की परत से ढंके रहते हैं और अपनी आंखों से देख सकते हैं। उनके सुविकसित टांगें होती हैं। उनकी मां एक 'समूह' के रूप में उनका मार्गदर्शन करती है और इसलिए वे समूहजीवी कलहाते हैं। इन्हें शीघ्र-वयस्क कहा जा सकता है। मादा शिकारभक्षी प्राणियों से उनकी रक्षा करती है, भोजन की खोज में उनकी मदद करती

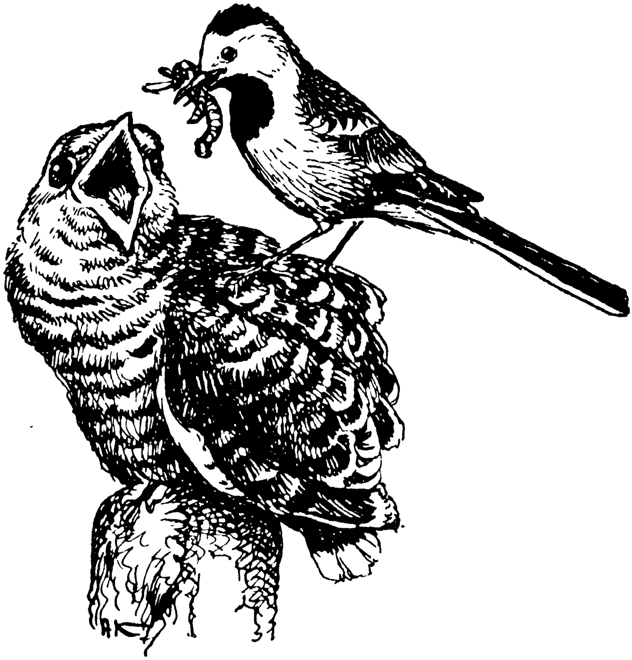

आकृति १२६ – कोयल का बच्चा (नीचे) और वह खंजन जिसके घोंसले में वह सेया गया था।

है और अपने पंखों का सहारा देकर वर्षा और शीतकाल में उन्हें गरमी पहुंचाती है।

अन्य पक्षियों (रूक, अबाबील, कबूतर इत्यादि) के नवजात बच्चे बिल्कुल असहाय होते हैं। वे नंगे होते है और अधिकांशतः अंधे। ऐसी हालत में वे अपने मां-बाप के पीछे पीछे चलकर स्वतंत्र रूप से अपना भोजन नहीं ढूंढ सकते। मां-बाप अपने असहाय बच्चों के लिए चुगा ढूंढकर लाने में सुबह से शाम तक लगे रहते हैं। ये पक्षी विलंब-वयस्क कहलाते हैं। वे बहुत ज्यादा बच्चों को नहीं चुगा सकते इसलिए शीघ्र-वयस्क पक्षियों की तुलना में वे कम अंडे देते हैं।

कोयलें न घोंसले बनाती हैं और न अपने अंडे सेती ही हैं। यद्यपि कोयल का आकार बड़ा-सा (कौए जितना) होता है फिर भी अंडे उसके छोटे छोटे होते

हैं। कोयल विभिन्न छोटे पक्षियों के घोंसलों में अंडे देती है। ये पक्षी अपने अंडों के साथ कोयल के अंडों को भी सेते हैं और उसके बच्चों का पालन-पोषण करते हैं। कोयल का बच्चा आकार में उसे खिलानेवाले पक्षियों से कहीं बड़ा होता है (आकृति १२६)। वही सबसे पहले भोजन हड़प लेता है, जल्दी से बड़ा होता है और दूसरे पक्षियों के बच्चों को घोंसले से ढकेलकर गिरा देता है।

प्रवसन

बहुत-से पक्षियों के जीवन में मौसम के बदलने के साथ काफ़ी परिवर्तन आते हैं।

गरमियों में मध्य रूस के बगीचों, जंगलों और खेतों में भिन्न भिन्न पक्षियों की बड़ी चहल-पहल रहती है। पर अगस्त ही में, जबकि मौसम अभी गरम होता है और आगामी शरद की उतनी आहट नहीं लगती, मारटिन दूर उड़ जाते हैं। इनके बाद अबाबीलें अपने झुंड बनाकर गरम देशों की ओर चली जाती हैं। क्रमशः अन्य पक्षी भी उड़ जाते हैं। और आख़िर, पाला पड़ने से पहले, दक्षिण की ओर जानेवाले कलहंसों और सारसों की पांतें ऊंचे आसमान में नज़र आने लगती हैं। ये जैसे शिशिर के अग्रदूत हैं।

फिर वसंत आता है और शरद में दूर चले गये पक्षी शीतकाल के आश्रय-स्थान स्वरूप धुपहले दक्षिणी क्षेत्रों से घर लौटने लगते हैं। मार्च में जब बर्फ़ पिघलने लगती है, तो सबसे पहले रूक वापस आते हैं। फिर इनके पीछे पीछे आती हैं सारिकाएं, भारद्वाज, बत्तखें, कलहंस, सारस और कई अन्य पक्षी। सबके बाद लौट आती हैं अबाबीलें और मारटिन।

एक देश में घोंसले बनाकर पलनेवाले और जाड़ों के लिए परदेश-गमन करनेवाले पक्षियों को प्रवासी पक्षी कहते हैं। जो पक्षी बारहों मास एक ही स्थान में रहते हैं (गौरैया, नीलकंठ, जैतून मुर्ग इत्यादि) उन्हें निवासी पक्षी कहा जाता है।

कुछ पक्षी यद्यपि निवासी पक्षी लगते हैं फिर भी असल में वे होते हैं प्रवासी जाति के। गरमियों में लेनिनग्राद के पास रहनेवाले कौए इस प्रकार के पक्षी हैं जो जाड़ों के लिए जर्मनी और फ़्रांस चले जाते हैं। दूर उत्तरी प्रदेशों से आनेवाले कौए इनकी जगह लेते हैं।

छल्ला-पद्धति

पक्षियों के मौसमी प्रवसन के बारे में यथातथ सूचना छल्ला-पद्धति से मिलती है। इस काम के लिए पक्षी पकड़े जाते हैं और उनकी टांग में एलूमीनियम का हल्का-सा छल्ला पहनाया

जाता है। छल्ले पर एक नंबर और जिस संस्था द्वारा छल्ला पहनाया गया हो उसका नाम लिखा जाता है। फिर ये पक्षी आज़ाद किये जाते हैं। यदि ऐसा पक्षी मरा हुआ पाया जाये तो यह छल्ला उसके प्राप्त होने की तारीख़ और जगह की सूचना के साथ संबंधित संस्था के नाम डाक द्वारा भेज दिया जाता है।*

प्रवसन के कारण

पक्षियों के प्रवसन के कारण वैसे बड़े जटिल हैं। जाड़ों के आने से पक्षियों के जीवन के अनुकूल स्थितियों में बड़ा फ़र्क़ आता है। सबसे महत्त्वपूर्ण कारण ठंड नहीं है क्योंकि पक्षियों में गरम रक्त होता है और वे ठंड को सह सकते हैं। प्रवसन का वास्तविक कारण है भोजन का अभाव या कमी। अबाबीलों और मारटिनों के भोजन के काम में आनेवाले कीट ओझल हो जाते हैं; कलहंसों, सारसों और बत्तख़ों के भोजन-स्थल का काम देनेवाली नदियां, झीलें और दलदली जगहें जम जाती हैं। जब धरती जमकर बर्फ़ से ढंक जाती है तो रूक का भी जीना असंभव हो जाता है।

उत्तरी गोलार्द्ध के पक्षियों के प्रवसन में हिमनदी काल-खंड (सेनोज़ोइक युग) के अति प्राचीन ऋतु-परिवर्तनों का बड़ा हाथ था। उस समय शीत का एक लंबा पट्टा-सा तैयार हो गया था और यूरोप का अधिकांश भाग एक अखंड हिमनदी से ढंक गया था। यह नदी स्केंडिनेविया के पहाड़ों से बह निकली थी। हिमनदी ने पक्षियों को दूर दक्षिण की ओर जाने पर मजबूर किया। बाद में मौसम फिर गरम हुआ और हिमनदी धीरे धीरे पीछे हटने लगी। गरमियों में पक्षी उत्तर की ओर लौटने लगे। यहां उन्हें अपने बच्चों के पालन-पोषण के लिए अधिक अनुकूल स्थितियां मिलीं – लंबे दिन और भोजन की समृद्धि। जाड़ों के लिए ये पक्षी फिर दक्षिण की ओर आने लगे। जैसे जैसे हिमनदी उत्तर की ओर हटती गयी वैसे वैसे ये वार्षिक स्थलांतर लंबे समय के होने लगे। आख़िर उन्हें नियमित प्रवसनों का स्वरूप प्राप्त हुआ।

---

*सोवियत संघ की पक्षी-छल्ला-संस्था का पता यों है – प्राणिशास्त्रीय संग्रहालय, ६ गेर्त्सेन सड़क, मास्को, सोवियत संघ।

पक्षियों के बरताव की जटिलता

पक्षियों का बरताव असाधारण रूप में जटिल होता है। वे घोंसले बनाते हैं, अपने अंडे सेते हैं और बच्चों का पालन-पोषण और रक्षा करते हैं। जाड़ों की आहट मिलते ही वे झुंड बनाकर दक्षिणी देशों को चले जाते हैं और वसंत में घर लौट आते हैं।

ये सभी जटिल क्रिया-कलाप अचेतन रूप में होते हैं और हम इन्हें आनुवंशिक अनियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाएं या सहज प्रवृत्ति कहते हैं। इस प्रकार शरद के आगमन के समय प्रकृति में आनेवाले मौसमी परिवर्त्तन से प्रवसन की सहज प्रवृत्ति जागृत हो उठती है। वसंत में आसपास की प्रकृति में आनेवाले परिवर्त्तनों और अंडों के परिपक्व होने के साथ नीड़-निर्माण की सहज प्रवृत्ति जग जाती है। पक्षियों के बरताव की अचेतनता उन छोटे पक्षियों में विशेष स्पष्ट रूप से प्रकट होती है जो कोयल के बच्चों को खिलाते हैं। इन बच्चों का आकार 'माता' से कहीं अधिक बड़ा होता है। मुर्ग़ी तो असली अंडों की जगह खड़िया के अंडे रखे जाने पर भी उन्हें सेती जाती है।

आनुवंशिक सहज प्रवृत्तियां बदलती हुई बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव से परिवर्तित हो सकती हैं। इस प्रकार मास्को के चिड़ियाघर के तालाबों में आज़ादी से रहनेवाली और काफ़ी भोजन पानेवाली जंगली बत्तखें जाड़ों में कहीं और उड़ नहीं जातीं।

पक्षियों में नियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाएं विकसित हो सकती हैं। उदाहरणार्थ, जुताई के समय रूक खेतों में इकट्ठे हो जाते हैं। क्रांतिपूर्व रूस में वे घोड़े के साथ चलनेवाले हलवाहे के पास आ जाते थे और आधुनिक रूस में वे ट्रेक्टर के पास चले आते हैं। ट्रेक्टर की आवाज़ से वे डरते नहीं। ट्रेक्टर का दिखाई पड़ना उनके लिए खेतों की नयी जुताई का संकेत बन गया है। और यहीं उन्हें अपना भोजन (कीट-डिंभ, केंचुए) मिलता है। इस प्रकार उनमें नियमित प्रतिवर्त्ती क्रिया का विकास हुआ है – खेतों में ट्रेक्टर के दर्शन होते ही रूक भोजन बटोरने के लिए उड़ आते हैं। पिंजड़े के पक्षियों को तुम अपने हाथों से खाना चुगने के आदी बनाकर देख सकोगे कि उनमें नियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाएं आसानी से विकसित हो सकती हैं।

पक्षी वर्ग की विशेषताएं

पक्षी वर्ग में वे प्राणी आते हैं जिनके अग्रांग डैनों में परिवर्तित हो चुके हैं। उनके शरीर परों से ढंके रहते हैं। उनके हृदय के चार कक्ष होते हैं। फेफड़ों के अच्छे विकास और उड़ान के समय उनके उत्कृष्ट श्वसन के कारण उनकी इंद्रियों को ऑक्सीजन से समृद्ध रक्त की पर्याप्त पूर्ति होती है। उपापचय उनमें बड़े ज़ोरों से होता है। शरीर का तापमान स्थायी होता है। मस्तिष्क सुविकसित होता है। बरताव में स्पष्टतया जटिलता होती है। पक्षी जनन-क्रिया में बड़े बड़े अंडे देते हैं और उन्हें सेते हैं।

इस समय पक्षियों के ८,००० तक प्रकार ज्ञात हैं।

प्रश्न – १. विलंब-वयस्क पक्षियों की तुलना में शीघ्र-वयस्क पक्षियों के अधिक बच्चे क्यों होते हैं? २. प्रवासी और निवासी पक्षियों में क्या अंतर है? ३. पक्षियों के प्रवसन के कारण बतलाओ। ४. पक्षियों के बरताव की जटिलता किन बातों से प्रकट होती है और उसे सचेतन क्यों नहीं माना जा सकता? ५. पक्षी वर्ग की विशेषताएं कौनसी हैं?

व्यावहारिक अभ्यास – अपने इलाक़े के पक्षियों के गमन और आगमन पर ध्यान रखो और उनकी तिथियां नोट कर लो।

§ ६२. पक्षियों की उपयोगिता और रक्षा

उपयोगी पक्षी

लगभग सभी पक्षी मनुष्य का बड़ा उपकार करते हैं। गौरैया-बाज़ जैसे कुछ पक्षी इसके अपवाद हैं जो उपयोगी पक्षियों का नाश करते हैं।

कीटभक्षी पक्षी (अबाबील, कठफोड़वा, सारिका, टामटिट और कई अन्य) बहुत बड़ी संख्या में कीटों का संहार करते हैं। उदाहरणार्थ, टामटिट (आकृति १२७) एक दिन में ख़ुद अपने वज़न के बराबर तुलनेवाले कीटों को चट कर जाता है। सारिकाओं का एक परिवार एक दिन में ३५० से अधिक इल्लियों, बीटलों और घोंघों का नाश करता है। कोयल एक घंटे में १०० तक ऐसी रोएंदार इल्लियों को खा जाती है जिन्हें अन्य पक्षी नहीं खाते।

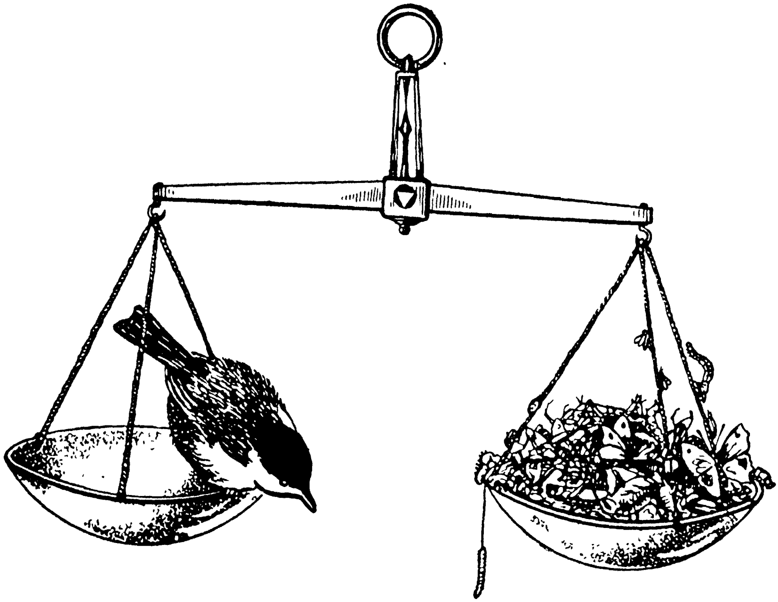

आकृति १२७ – टामटिटों की उपयोगिता
दाहिनी ओर के पलड़े में एक टामटिट द्वारा २४ घंटों में खाये जा सकनवाले कीट हैं।

विशेषकर पक्षी अपने बच्चों की परवरिश के दौरान बहुत बड़ी मात्रा में हानिकर कीटों का सफाया कर देते हैं। केवल कीटभक्षी ही नहीं बल्कि अनाजभक्षी पक्षी (सिसकिन, गोल्ड फ़िंच, गौरैया) भी अपने बच्चों को कीट चुगाते हैं। जल्दी से बड़े हो रहे बच्चों के लिए काफ़ी भोजन की ज़रूरत होती है और उनके मां-बाप पूरे दिन उसकी खोज में लगे रहते हैं। इस प्रकार कठफोड़वे के निरीक्षण से पता चला है कि वह अपने बच्चों के लिए २४ घंटों में लगभग ३०० बार चुग्गा लाता है।

दिनचर और रात्रिचर शिकारभक्षी पक्षियों (उल्लू आदि) से भी हमारा बड़ा फ़ायदा होता है। ये चूहों, धानी चूहों और गोफरों को खाते हैं। हिसाब लगाया गया है कि एक उल्लू एक वर्ष के दौरान इतने चूहे खा जाता है जो पूरे एक टन अनाज का सफ़ाया कर सकते हैं।

पक्षियों की चुगाई और आकर्षण

पक्षी मनुष्य के मित्र हैं। उनकी रक्षा करनी चाहिए और उन्हें बाग़ों, खेतों, साग-सब्ज़ी के बगीचों और रक्षक जंगल पट्टियों की ओर आकृष्ट करना चाहिए। शरद के उत्तरार्द्ध में और जाड़ों में हम बगीचों के पेड़ों पर टामटिटों के झुंड देख सकते हैं। वे बड़ी सावधानी से सभी टहनियों का मुआइना और अंडों तथा पेड़ों की छालों की दरारों में जाड़ों के दौरान छिपे रहनेवाले कीटों की खोज करते हैं। टामटिट हमारे बगीचों के सबसे ईमानदार पहरेदार हैं। पर बर्फ़ को लिये पाला आता है और फिर पक्षियों को अपना भोजन मिलना दूभर हो जाता है। और जाड़ों के लिए तो उन्हें और भी बड़ी मात्रा में भोजन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार जब पक्षियों के लिए स्थिति बड़ी कठिन हो जाती है तो हमें उनकी सहायता और उनके भोजन का प्रबंध करना चाहिए।

जाड़ों में पक्षियों की परवरिश के लिए बगीचों में चुगाई का बंदोबस्त किया जाता है। आम तौर पर इसके लिए मेज़ें रखी जाती हैं और उनपर सन के बीज, सूखी रोटी के टुकड़े और चरबी के टुकड़े बिछा दिये जाते हैं (रंगीन चित्र ११)।

गरमियों के दौरान पक्षियों को बगीचों और खेतों की ओर आकृष्ट करना तो और भी महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टि से हमें उनके नीड़-निर्माण के लिए अनुकूल स्थितियां उपलब्ध करानी चाहिए। खुले घोंसले बनानेवाले पक्षियों के लिए सघन झाड़ी-झुरमुटों की आवश्यकता होती है। हमारे बगीचों की झाड़ी-झुरमुटों वाली (विशेषकर कांटेदार झाड़ी-झुरमुटों वाले) बाड़ों की ओर बहुत-से पक्षी घोंसले बनाने के लिए उपयुक्त स्थान मानकर खिंच आते हैं। बंद घोंसलों वाले पक्षियों को तख्तियों के बने और पेड़ों पर टंगे हुए पंछी-घरों (आकृति १२८) द्वारा आकृष्ट किया जा सकता है। इन पंछी-घरों का आकार-प्रकार संबंधित पक्षियों की आवश्यकता के अनुसार भिन्न हो सकता है।

चूहों का नाश करनेवाले शिकारभक्षी पक्षियों को खेतों और नये से लगाये गये जंगलों की ओर आकृष्ट करने के लिए लंबे लग्गे गाड़ दिये जाते हैं जिनपर बैठकर वे अपने शिकार पर नज़र लगाये रह सकते हैं।

सोवियत लड़के-लड़कियां प्राणि-शास्त्र के अध्ययन में प्राप्त किये गये ज्ञान का उपयोग करते हुए उपयोगी पक्षियों के संरक्षण और आकर्षण के काम में सक्रिय भाग लेते हैं।

व्यापारिक पक्षी

सोवियत संघ में रहनेवाले बहुत-से पक्षियों से स्वादिष्ट मांस और अति मूल्यवान् रोएं मिलते हैं। यदि ऐसे पक्षियों का काफ़ी बड़े पैमाने पर शिकार किया जाता है तो उन्हें व्यापारिक पक्षी (आकृति १२९) कहा जाता है।

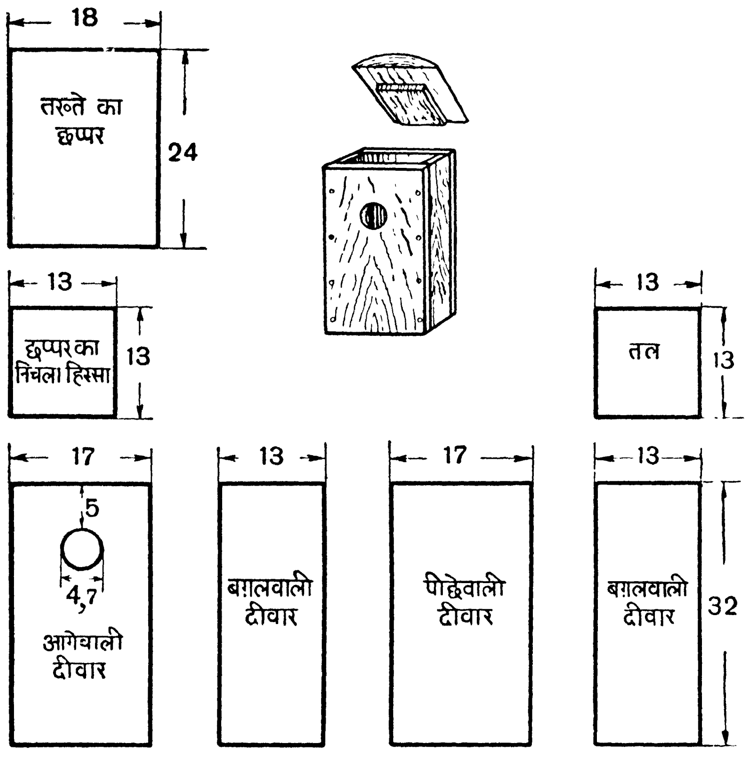

आकृति १२८ – पंछी-घर और उसके हिस्से।

सोवियत संघ के विभिन्न भागों में भिन्न भिन्न पक्षियों का शिकार किया जाता है – जंगलों में काले ग्राउज़, जैतून-मुर्गी और केपरकाल्यीज़ का, टुंड्रा में टारमीगन का, ताल-तलैयों में भिन्न भिन्न कलहंसों और बत्तखों का।

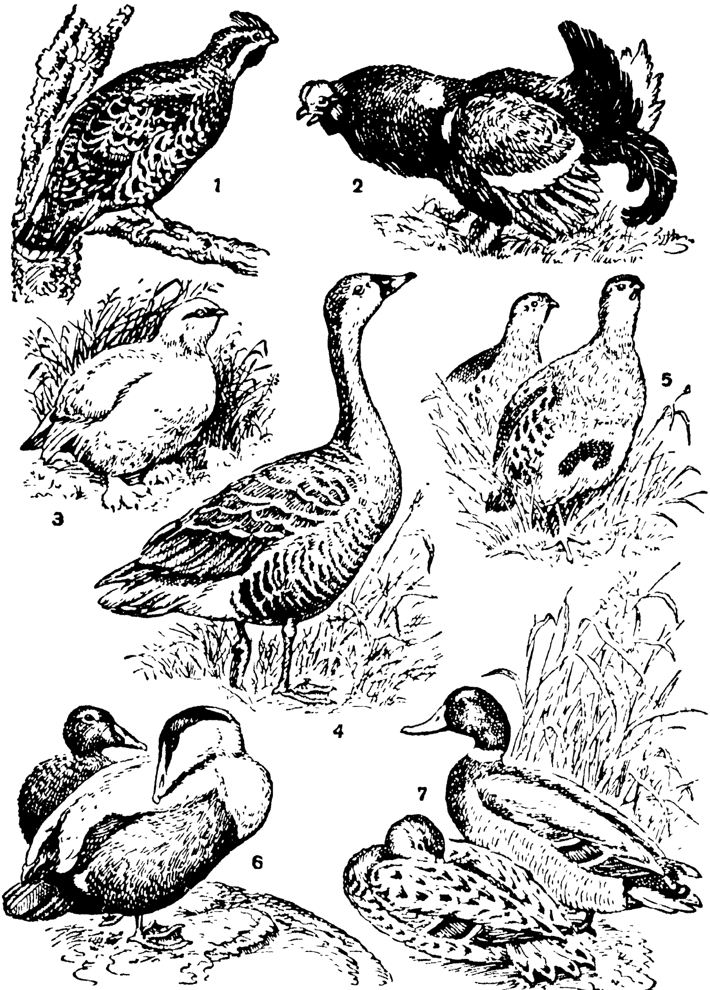

आकृति १२९—व्यापारिक पक्षी

१(1). जैतून मुर्गी ; २(2). काला ग्राउज़ ; ३(3). टारमीगन ; ४(4). जंगली कलहंस ; ५(5). भूरा तीतर ; ६(6). ईडेर ; ७(7). जंगली बत्तख़ ।

पक्षियों के मांस के अलावा उनके पर और रोएं भी उपयोगी होते हैं। ईडेर के रोएं विशेष मूल्यवान् होते हैं। ये बहुत ही मुलायम और गरमीदेह होते हैं। ईडेर एक जल-पक्षी है जो उत्तरी सागरों के किनारों पर रहता है। यहां वे एक विशेष उद्योग के विषय हैं। यहां पक्षियों को मारा नहीं जाता बल्कि लोग उनके रोएं इकट्ठे कर लेते हैं – ईडेर के घोंसलों में इन रोओं का मोटा-सा अस्तर लगा रहता है।

व्यापारिक पक्षियों के लोप की रोक-थाम के लिए सोवियत संघ में विशेष क़ानून जारी किये जाते हैं। इस प्रकार, अंडे देने और बच्चों के पालन-पोषण के मौसम में पक्षियों का शिकार करना मना है। जंगलों के कुछ ख़ास हिस्से सुरक्षित रखे गये हैं जहां शिकार की पूरी मनाही है।

प्रश्न – १. खेती की दृष्टि से पक्षियों का क्या उपयोग है?
२. खेतों और बगीचों की ओर पक्षियों को कैसे आकृष्ट किया जा सकता है?
३. कौनसे व्यापारिक पक्षियों का शिकार बड़े पैमाने पर किया जाता है?
४. ईडेर के पर कहां और कैसे प्राप्त किये जाते हैं?

व्यावहारिक अभ्यास – १. अपने स्कूली और घरेलू बगीचे में पक्षियों की चुगाई की व्यवस्था करो। २. पंछी-घर बनाकर समय पर उन्हें पेड़ों पर टांग दो और देखो उनमें कौनसे पक्षी बसेरा करते हैं।

§ ६३. पालतू मुर्ग़ियां

जंगली मुर्ग़ियां अविरल हरियाली से आवृत भारतीय सघन वनों में झड़-मुर्गियां या भारतीय मुर्गियां पायी जाती हैं (रंगीन चित्र १२)। इनकी जीवन-प्रणाली और स्वरूप घरेलू या पालतू मुर्गियों से मिलता-जुलता होता है। सिर पर कलगी और कानों के लटकते भाग होते हैं। मुर्ग़े मुर्गियों से बड़े होते हैं और उनका रंग ज़्यादा उजला होता है। यह लाल पालतू मुर्गे जैसे दीखते हैं। इनकी मज़बूत टांगों की अंगुलियों में खोंटे नखर होते हैं। जंगली मुर्ग़ियां पालतू मुर्ग़ियों की ही तरह बीजों और कीटों की खोज में अपने पैरों से ज़मीन खोदती हैं। यही उनका भोजन है। जंगली मुर्गियां अच्छी तरह उड़ नहीं पातीं। अपने छोटे वृत्ताकार डैनों का उपयोग वे केवल शाम के समय पेड़ों पर कूदने के लिए करती हैं।

भारतीय मुर्ग़ियों से स्वादिष्ट मांस और अपेक्षतया काफ़ी बड़ी संख्या में अंडे मिलते हैं। यही कारण है कि मनुष्य ने उन्हें पालतू प्राणी बना लिया।

पालतू मुर्गियों का मूल

सबसे पहले भारत ही में मुर्गियों को पालतू बनाया गया था। भारत से वे दूसरे देशों में फैल गयीं। पहली पालतू मुर्गियों के समय से पांच हज़ार वर्ष बीत गये हैं और इस लंबे अर्से में मनुष्य ने उनमें काफ़ी परिवर्तन कर दिये हैं। पालतू मुर्गियों में उनके जंगली पुरखों के कुछेक लक्षण तो क़ायम रहे हैं पर वज़न और दिये जानेवाले अंडों की संख्या की दृष्टि से वे अपने पुरखों से मूलतः भिन्न हैं। और यही बातें मनुष्य के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। जंगली झड़-मुर्गी आकार में छोटी होती है और वज़न उसका केवल ६००-८०० ग्राम होता है, जबकि पालतू मुर्गी का वज़न होता है २ से लेकर ५ किलोग्राम तक। जंगली मुर्गी जहां एक वर्ष के दौरान ६-१२ अंडे देती है, पालतू मुर्गी उतने ही समय में ३०० या इससे अधिक यानी ३० गुना अधिक अंडे देती है। पालतू मुर्गियों की विभिन्न नस्लों में परों का रंग और कलगी का आकार भी बदल गया है।

अच्छी ख़ुराक और देखभाल और संवर्द्धन के लिए सबसे बड़ी और ज़्यादा अंडे देनेवाली मुर्गियों के चुनाव के फलस्वरूप ही वज़न और अंडों की संख्या में वृद्धि हुई। फिर यह लक्षण आनुवंशिक रूप से जारी रहे और मनुष्य के प्रभाव के अंतर्गत पीढ़ी दर पीढ़ी सुधरते गये।

मुर्गियों की नस्लें

समय के साथ मुर्गियों की बहुत-सी नस्लें परिवर्द्धित की गयीं (रंगीन चित्र १२)। इनमें कुछ तो बहुत बड़ी संख्या में अंडे देती हैं। ये अंडे देनेवाली नस्लें कहलाती हैं। दूसरी मुर्गियों से अंडे तो अपेक्षतया कम मिलते हैं पर वे काफी बड़ी होती हैं और उनसे बहुत-सा मांस मिलता है। इन्हें आम उपयोग की मुर्गियां कहते हैं।

अंडे देनेवाली नस्लों में से रूसी सफ़ेद नस्ल का सोवियत संघ में सबसे ज़्यादा फैलाव है। ये अपेक्षाकृत छोटे आकार की (वज़न लगभग २ किलोग्राम) मुर्गियां हैं जो साल के दौरान २०० तक अंडे देती हैं। इस नस्ल की गिनी-चुनी मुर्गियां ३२० तक अंडे देती हैं।

रूसी सफ़ेद मुर्गियां सोवियत संघ के कोलखोज़ों और राजकीय फ़ार्मों में लेगहानों से पैदा की गयीं पर ये आकार में बड़ी होती हैं और मौसमी स्थितियों के अनुकूल।

आम उपयोग की नस्लों में हम यूरलोव बुलंद आवाज़ मुर्गियों की नस्ल का नाम ले सकते हैं। इस नस्ल के मुर्गे ज़ोर से बांग देते हैं और इसलिए वह इसी

नाम से मशहूर है। इस नस्ल का परिवर्द्धन क्रांति से पहले ओरेल प्रदेश के किसानों ने किया था। इन मुर्गियों का वज़न ४ किलोग्राम तक होता है जो अच्छा खासा वज़न है। ये सालाना २०० तक बड़े बड़े अंडे देती हैं। यूरलोव मुर्गियां जाड़ों में अच्छी तरह निभा लेती हैं।

हाल ही में प्राप्त की गयीं आम उपयोग की नस्लों में से हमें पेरवोमाइस्काया और नीज्नेदेवीत्स्काया नस्लों के ऊंचे गुणों पर ध्यान देना चाहिए।

मांस के लिए पाली जानेवाली विशेष नस्लें भी मौजूद हैं। इनका आकार असाधारण रूप में बड़ा होता है और मांस बड़ा ही जायकेदार; पर अंडे ये कम देती हैं। इन मुर्गियों का पालन सोवियत संघ में विरला ही किया जाता है।

प्रश्न – १. पालतू मुर्गियों में जंगली मुर्गियों के से कौनसे लक्षण पाये जाते हैं? २. घरेलू वातावरण में जंगली मुर्गियों में क्या क्या परिवर्तन हुए? ३. पालतू मुर्गियों में किन स्थितियों के प्रभाव से परिवर्तन आये? ४. पालतू मुर्गियों की कौनसी सर्वोत्तम नस्लें मौजूद हैं?

व्यावहारिक अभ्यास – देख लो कि तुम्हारे इलाक़े में मुर्गियों की कौनसी नस्लों का संवर्द्धन होता है। इन नस्लों के आर्थिक गुणों का बयान करो।

§ ६४. मुर्गियों की देखभाल और चुगाई

देखभाल पालतू मुर्गियों के पुरखे गरम मौसमवाले भारत के सायादार जंगलों में रहते थे। मुर्गियों पर गरमी और सरदी दोनों का बुरा असर पड़ता है। १० सेंटीग्रेड से कम तापमान में उनकी कलगिया ठिठुर जाती हैं। गरम मौसम में और खासकर धूप के समय छाया के अभाव में मुर्गियों का अंडे देना बंद हो जाता है। बारिश में वे भीग जाती हैं क्योंकि उनकी तैल-ग्रंथि सुविकसित नहीं होती और इस कारण उनके परों पर तेल का लेप नहीं होता।

गरमी और सरदी, बारिश और हवा से मुर्गियों के बचाव और रात में उनके रहने तथा अंडे देने के लिए विशेष स्थानों का प्रबंध किया जाता है। इन्हें मुर्गी-घर कहते हैं। मुर्गी-घर गरम, रोशन, हवादार और सूखा होना चाहिए और उसमें मुर्गियों के लिए काफ़ी जगह होनी चाहिए।

16—2007

मुर्ग़ी-घर की दीवारें मोटी होती हैं और उसका फ़र्श और छत उष्णताधारक। इससे उसमें गरमी बनी रहती है। छत बहुत ऊंचाई पर नहीं होनी चाहिए। वह लगभग २ मीटर की ऊंचाई पर होनी चाहिए। जाड़ों में मुर्ग़ी-घर का तापमान शून्य के नीचे कभी न जाना चाहिए। रोशनी के लिए इस घर में खिड़कियां होती हैं। अच्छे फ़ार्मों के मुर्ग़ी-घरों में बिजली का भी बंदोबस्त होता है। जाड़ों में सुबह-शाम अतिरिक्त प्रकाश के प्रबंध से अंडे देने की क्षमता बढ़ती है। कृत्रिम वायु-संचार के साधनों से मुर्ग़ी-घर को हवादार रखा जाता है। फ़र्श पर पीट या सूखी घास बिछाकर मुर्ग़ी-घर सूखा रखा जाता है। मुर्ग़ी-घर का क्षेत्रफल इस प्रकार निश्चित किया जाता है कि हर तीन मुर्ग़ियों के लिए एक वर्ग मीटर जगह मिल सके। ऐसे घरों में मुर्गियां जाड़ों में भी अंडे दे सकती हैं।

मुर्ग़ियों के पुरखे पेड़ों की शाखाओं पर रात बिताया करते थे। अतः मुर्ग़ी-घर में अड्डों का प्रबंध किया जाना चाहिए। मुर्ग़ियां अच्छी तरह नहीं उड़ सकती इसलिए अड्डे फ़र्श से बहुत ऊंचाई पर नहीं होने चाहिए। ७०-९० सेंटीमीटर की ऊंचाई ठीक है। अड्डे ५-१० सेंटीमीटर की चौड़ाई वाले चौपहले बल्लों के बनाये जाते हैं। इनके ऊपर के किनारे चिकने होते हैं और वे मुर्गियों के बैठने के लिए सुविधाजनक होते हैं। सभी अड्डे एक ही सतह पर होने चाहिए ताकि मुर्गियां एक दूसरी को गंदा न कर दें। बीट इकट्ठा करने के लिए फ़र्श पर खास तख़्ते बिछाने चाहिए।

अंडे देने के लिए सूखी घास के अस्तरवाले बक्सों के रूप में घोंसले बनाये जाते हैं। जिन फ़ार्मों में हर मुर्गी द्वारा दिये जानेवाले अंडों का हिसाब रखा जाता है वहां हिसाबी घोंसलों का प्रबंध किया जाता है। हिसाबी घोसले की आगे की दीवार में एक दुपल्ला किवाड़ होता है। एक पल्ला ऊपर का और दूसरा नीचे का। जब मुर्गी घोंसले में प्रवेश करती है तो किवाड़ अपने आप बंद हो जाता है। मुर्गी खुद किवाड़ खोलकर बाहर नहीं आ सकती और तब तक अंदर बैठी रहती है जब तक कोई आकर किवाड़ न खोल दे।

मुर्ग़ियां विशेष प्रकार के भोजन-पात्रों से खाना खाती है और जल-पात्रों से पानी पीती है। भोजन-पात्र लंबे और संकरे बक्सों के रूप में होते हैं जिनके ऊपर की ओर फिरती तख़्तियां होती हैं। ऐसे बक्सों में मुर्ग़ियां अपने पैर नही डाल सकतीं न उनपर बैठ ही सकती हैं। जल-पात्र तिपाइयों पर रखे हुए साधारण कटोरों के रूप में हो सकते हैं या स्वचालित ढंग के। स्वचालित जल-पात्र पानी के कटोरे में एक

औंधे पात्र के रूप में होता है। मुर्ग़ियां पानी पीती जाती हैं और कटोरा धीरे धीरे भरता रहता है। उक्त चीज़ों के अलावा मुर्ग़ी-घर में राख और बालू से भरा एक बक्स भी होना चाहिए। इसमें जैसे नहाकर मुर्ग़ियां परजीवी कीड़ों-मकोड़ों से मुक्ति पाती हैं।

मुर्ग़ियों को रोगों से बचाये रखने की दृष्टि से मुर्गी-घर को हर रोज़ साफ़ करना चाहिए, उसमें हवा दिलानी चाहिए, भोजन और जल के पात्र गरम पानी से धोने चाहिए। नियमित रूप से कीटमार दवाओं से सभी उपकरणों की सफ़ाई और मुर्ग़ी-घर में चूने की सफ़ेदी लगाना आवश्यक है। मुर्ग़ी-घर का अस्तर हर ७-१० दिन बाद बदलना जरूरी है।

मुर्ग़ी-घर में प्रवेश करने के स्थान पर पायंदाज़ रखे जाते हैं जिनपर बूटों का मैल साफ़ करना चाहिए। इसके अलावा कीटमार दवाओं में भिगोये गये नमदे या लकड़ी के भूसे से भरे ट्रे भी रखे जाते हैं। इससे बूटों पर रोगाणुओं का आना असंभव हो जाता है।

मुर्ग़ी-पालिकाएं हमेशा साफ़ चोग़े पहने हुए काम करती हैं।

मुर्ग़ियों को खुली हवा में छोड़ने के लिए मुर्ग़ी-घरों के साथ साथ हवाई आंगनों का प्रबंध किया जाता है। इनमें घास बोयी जाती है और धूप से बचने के लिए विशेष छत बनायी जाती है। जाड़ों में आंगनों से बर्फ़ हटायी जाती है ताकि मुर्ग़ियां खुले मैदान में आ सकें।

फ़सल कटाई के बाद खेतों में बचे हुए अनाज के दाने चुगाने के लिए मुर्ग़ियों को ले जाया जाता है। इस काम के लिए ख़ास उठाऊ मुर्ग़ी-घरों का उपयोग किया जाता है।

चुगाई

पालतू मुर्ग़ियों के लिए उनके पुरखों जैसा ही विविधतापूर्ण भोजन आवश्यक है। उनका मुख्य भोजन है विभिन्न प्रकार के अनाज – जई, मकई, बाजरा और चक्की की पछोरन – आटे के कण, चोकर, भूसी इत्यादि।

पर मुर्ग़ियों के लिए केवल अनाज का भोजन काफ़ी नहीं है। छोटी मात्रा में भी क्यों न हो, उनके लिए प्राणि-रूप भोजन आवश्यक है। निजी घरेलू मुर्ग़ियों को गर्मियों में खुली जगहों में घूमते हुए काफ़ी कीट, केंचुए इत्यादि मिल जाते हैं। बड़े बड़े फ़ार्मों में उन्हें बूचड़ख़ाने के बचे-खुचे मांस के टुकड़े और रक्त,

मांस तथा हड्डियों और मछलियों से बनायी गयी ख़ुराक खिलायी जाती है। इस हेतु से केंचुओं, मोलस्कों और काकचेफ़रों का भी उपयोग किया जा सकता है।

विटामिन की आवश्यकताएं पूरी करने की दृष्टि से मुर्ग़ियों को रसदार चारा (गाजर, चुकंदर) और हरा चारा (घास, कल्लेदार जौ, जई इत्यादि) खिलाया जाता है। जाड़ों के लिए विटामिन युक्त ख़ुराक तिनपतिया, बिच्छू-घास और अल्फ़ाल्फ़ा से तैयार की जाती है। अंडों के कवच की बनावट के लिए खनिज द्रव्यों की आवश्यकता होती है। मुर्ग़ियों को ये खड़िया, पीसे हुए मोलस्क-कवच और अस्थि-चूर्ण के रूप में खिलाये जाते हैं। मुर्ग़ियों के लिए अल्प मात्रा में नमक की भी आवश्यकता होती है।

विशेष भोजन-पात्रों में खनिज द्रव्य कंकड़ियों और बालू के साथ मिलाकर रखे जाते हैं। भोजन के साथ मुर्ग़ियां कंकड़ियों और बालू को निगल जाती हैं। इससे पेषणी में भोजन के पिसने में मदद मिलती है।

मुर्ग़ी जितनी बड़ी, उसके लिए आवश्यक भोजन की मात्रा उतनी ही अधिक। अंडों के परिवर्द्धन के लिए भी भोजन आवश्यक है। पोल्ट्री विशेषज्ञों ने विभिन्न उम्र, वज़न और अंडे देने की क्षमतावाली मुर्ग़ियों के लिए अलग अलग भोजन-मात्राएं निश्चित कर दी हैं। दैनिक भोजन की मात्रा दिन में दो या तीन बार निश्चित समय के अनुसार खिलायी जाती है।

उचित देखभाल और योग्य चुगाई का महत्व बहुत बड़ा है। भोजन के अभाव और अनुचित देखभाल का नतीजा यह होता है कि अच्छी ख़ासी नस्ल की मुर्ग़ियां भी कम अंडे देने लगती हैं।

प्रश्न – १. मुर्ग़ी-घर में मुर्ग़ियों की कौन कौनसी आवश्यकताओं पर ध्यान देना चाहिए? २. मुर्गियों की आवश्यकताओं के अनुसार मुर्ग़ी-घर में क्या प्रबंध किया जाता है? ३. मुर्ग़ियों के लिए कौनसा भोजन आवश्यक है? ४. मुर्ग़ियों की उचित देखभाल और योग्य चुगाई का महत्त्व क्या है?

व्यावहारिक अभ्यास – किसी पोल्ट्री-फ़ार्म में जाकर वहां की साधन-सामग्री और मुर्ग़ियों की देखभाल का निरीक्षण करो।

§ ६५. कलहंस, बत्तख़ और टर्की

कलहंस

कलहंसों का संवर्द्धन बड़ा लाभदायी है क्योंकि वे वसंत से लेकर शरद तक घास-मैदानों और चरागाहों में घास चरते हैं। उस समय कलहंसों के लिए व्यवहारतः किसी अतिरिक्त भोजन की आवश्यकता नहीं होती। शरद में अनाजों की फ़सल कटाई के बाद कलहंस खेतों में चर सकते हैं।

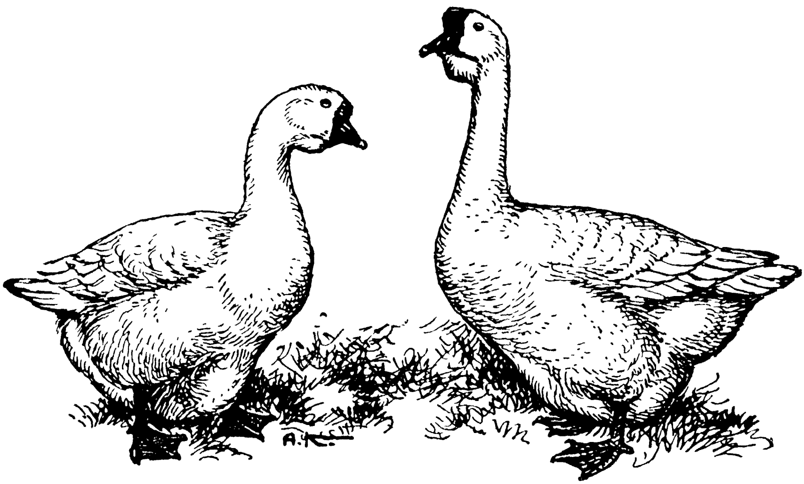

आकृति १३० – ख़ोल्मोगोर्स्क नस्ल के कलहंस।

पालतू कलहंसों की पैदाइश जंगली भूरे कलहंसों से ही हुई है। पर मनुष्य ने उनमें बहुत परिवर्तन कर दिये हैं। पालतू कलहंस जंगली कलहंसों से बहुत बड़े और मोटे-ताजे होते हैं और उड़ना लगभग नहीं जानते। मनुष्य से तैयार भोजन पाने के आदी होने के कारण उनमें प्रवासी सहज प्रवृत्ति बिल्कुल लुप्त हो गयी है।

सोवियत संघ में ख़ोल्मोगोर्स्क नस्ल के कलहंस सबसे मशहूर हैं (आकृति १३०)। ये बड़े और सफ़ेद पक्षी हैं जिनकी चोंच के मूल में एक गुमटा-सा होता है।

बत्तख़ें

पालतू बत्तख़ों के पुरखे जंगली बत्तख़ें हैं। यद्यपि उनमें उनके जंगली पुरखों की बहुत-सी विशेषताएं बची हुई हैं फिर भी दोनों में भिन्नता भी काफ़ी है। मनुष्य ने मुर्गियों और कलहंसों की तरह इन्हें भी बदल डाला है। पालतू बत्तख़ें जंगली बत्तख़ों से बड़ी और ज़्यादा चरबीदार हो

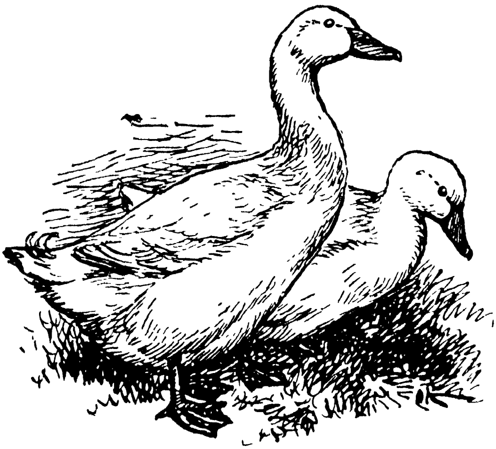

आकृति १३१ – पीकिङ बत्तखें।

गयी हैं, प्रवासी सहज प्रवृत्ति खो बैठी हैं और उनकी अंडे देने की क्षमता बढ़ गयी है।

इनकी सर्वोत्तम नस्लें हैं बड़ी पीकिङ बत्तख़ (आकृति १३१) और मास्को सफ़ेद। इन नस्लों के बच्चे बहुत जल्दी बड़े होते हैं और दो ही महीनों की उम्र में उनका वज़न २ किलोग्राम तक हो जाता है।

बत्तख़ जल-पक्षी है और उसका पालन नदियों या ताल-तलैयों के आसपास किया जाता है। वह तालाबों की सतह पर उगनेवाली वनस्पतियां खाती है। ये वनस्पतियां प्रकाश को पानी में पैठने से रोकती हैं। अपनी बीट से बत्तखें तालाब के तल को उपजाऊ बनाती हैं जिससे छोटे क्रस्टेशियनों और जल-कीटों की मात्रा बढ़ने में सहायता मिलती है। इस तरह मछलियों के लिए भोजन तैयार हो जाता

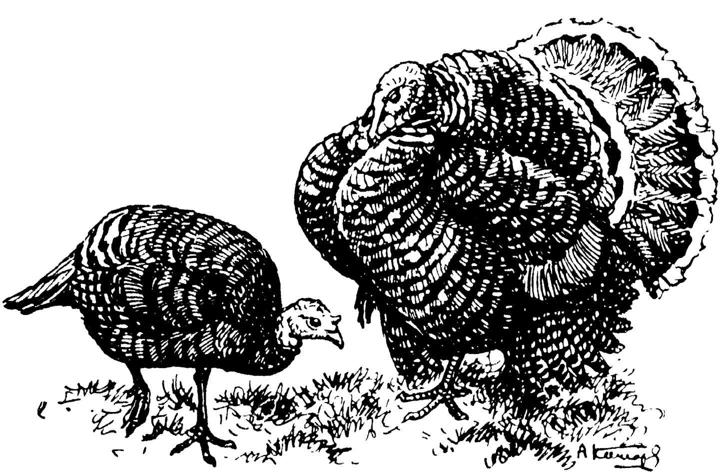

आकृति १३२ – स्तावरोपोल कत्थई टर्की।

है। अतः बत्तख़-पालन और मछली-पालन का मिलाप करना बड़ा लाभदायी है। मछलियों वाले चराई-जलाशय में बत्तख़ें पालने से कार्प-मछलियों की संख्या काफ़ी बड़े पैमाने पर बढ़ जाती है।

टर्की टर्कियां उनके रसदार, ज़ायक़ेदार और नरम सफ़ेद मांस के लिए बड़ी क़ीमती मानी जाती हैं। ये बड़े आकार के पक्षी हैं। मुर्ग़ियों की तरह इनके भी मज़बूत टांगें और छोटे पंख होते हैं।

टर्की के सिर पर और गले के हिस्से पर पर नहीं होते। इनपर मस्सेदार त्वचा का आवरण होता है। चोंच के ऊपर एक मांसल गुमटा होता है। मादाओं की अपेक्षा नर में यह अधिक बड़ा होता है। जब यह पक्षी उत्तेजित हो उठता है तो यह गुमटा और त्वचा रक्तवर्ण हो जाती है।

पालतू टर्कियों के पुरखे जंगली पक्षी हैं। ये आज भी उत्तरी अमेरिका के दक्षिणी हिस्से में पाये जाते हैं। यूरोपीयों द्वारा अमेरिका के आविष्कार के बाद ये पक्षी यूरोप लाये गये। टर्कियों की शरीर-रचना से आज भी देखा जा सकता है कि ये गरम देशवासी कुल के पक्षी हैं और यूरोप में उनका आगमन अपेक्षतया नया ही है। टर्की के चूज़ों पर शीत और नमी का बुरा असर पड़ता है, उन्हें यों ही ठंड लग जाती है।

सोवियत संघ में स्तावरोपोल टर्की की एक नस्ल का परिवर्द्धन किया गया है (इसके नर का वजन १२ किलोग्राम तक होता है)। ये टर्कियां स्थानीय मौसम की आदी हो चुकी हैं और चरागाहों में ही उनका संवर्द्धन किया जाता है (आकृति १३२)।

प्रश्न – १. मनुष्य के प्रभाव में कलहंसों में कैसे परिवर्तन आये? २. कलहंसों और बत्तखों का पालन क्यों लाभदायी है? ३. सोवियत संघ में टर्की की कौनसी नस्ल का परिवर्द्धन किया गया है और उससे क्या फ़ायदे होते हैं?

व्यावहारिक अभ्यास – देख लो कि तुम्हारे इलाक़े में कलहंसों, बत्तख़ों और टर्कियों की कौनसी नस्लें पाली जाती हैं और हर नस्ल किस लिए क़ीमती मानी जाती है।

§ ६६. पोल्ट्री-पालन

कृत्रिम सेहाई पक्षी के भ्रूण के परिवर्द्धन के लिए कुछ विशेष परिस्थिति आवश्यक है। अंडों के सेने के समय यह परिस्थिति उपलब्ध होती है। अंडों पर बैठते हुए मुर्ग़ी उन्हें अपने शरीर की गरमी पहुंचाती है। समय समय पर वह अंडों को उलटती-पुलटती है और घोंसले के अधिक गरम बिचले हिस्से से किनारों पर और फिर वापस लाती-ले जाती है। इससे अंडों के सभी हिस्सों में एक-सी गरमी पहुंचती है। मुर्ग़ी के पेट के नीचे नम हवा होती है और इससे अंडे सूखते नहीं। मुर्ग़ी समय समय पर अंडों पर से उठकर खाना चुगने जाती है और तब अंडो को ताज़ी हवा भी मिलती है।

इन्हीं स्थितियों – गरमी, काफ़ी नमी, अंडों की उलट-पुलट, हवा की खुली आवाजाही – का प्रबंध, अंडे सेने के एक विशेष साधन में किया गया है। यह साधन इनक्यूबेटर (सेहाई-घर) कहलाता है।

कृत्रिम सेहाई का तरीक़ा हज़ारों वर्ष पहले मिस्र और चीन में ज्ञात था। यूरोप में यह तरीक़ा १६ वीं सदी में जाकर अपनाया गया। मध्य युग में कैथोलिक चर्च के प्रभाव के कारण विज्ञान के विकास में देर तक रुकावट बनी रही। जब उस समय के एक इटालवी वैज्ञानिक ने इनक्यूबेटर ईजाद किया तो उसे इसकी क़ीमत लगभग अपनी ज़िंदगी से हाथ धोकर चुकानी पड़ी और उसका उपकरण धार्मिक न्यायालय ने जला डाला।

रूस में कृत्रिम सेहाई का विकास महान् अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद ही होने लगा। इस समय सोवियत संघ में भिन्न भिन्न प्रकार के इनक्यूबेटर उपलब्ध हैं।

बड़े पोल्ट्री-फ़ार्मों में बड़े बड़े इनक्यूबेटर होते हैं। इन्हें कमरा-इनक्यूबेटर कहते हैं। इनमें एकसाथ दसियों हज़ार अंडे रखे जा सकते है। इनक्यूबेटर में हवा का तापमान भ्रूण के परिवर्द्धन के लिए आवश्यक मात्रा तक रखा जाता है। कमरे की दीवारों में लगाये गये अनेकानेक ताक़ों पर अंडे रखे जाते हैं। स्थिर तापमान और नमी के रख-रखाव, हवा के संचार और अंडों की उलट-पुलट का काम स्वचालित उपकरणों की सहायता से अपने आप होता है।

इनक्यूबेटरों का उपयोग न केवल मुर्ग़ियों के बल्कि बत्तख़ों, कलहंसों और टर्कियों के अंडों की सेहाई के लिए भी किया जाता है।

चूज़ों की परवरिश इनक्यूबेटर में परिवर्द्धित चूज़ों के लिए विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। उनके लिए वही स्थितियां उपलब्ध करायी जानी चाहिए जो प्राकृतिक सेहाई के समय होती हैं। सबसे पहले आवश्यक है गरमी। बड़े पोल्ट्री-फ़ार्मों में ख़ास इमारतें होती हैं जिनके चूल्हों में आड़ी चिमनियां

आकृति १३३ – एक पोल्ट्री-प्लांट में।

(गरम पौध-घरों की तरह) लगायी जाती हैं। कभी कभी इन इमारतों में उष्णता-वाही नल लगाकर सेंट्रल हीटिंग का बंदोबस्त किया जाता है। चूज़े इन चिमनियों या नलों के नीचे इकट्ठे हो जाते हैं।

चूजे शीघ्र ही भोजन-पात्रों से खाना चुगने के आदी हो जाते हैं। कुछ समय बाद तो दरवाज़े पर मुर्गी-पालिका के दिखाई देते ही वे भोजन-पात्रों की ओर दौड़ने लग जाते हैं। मुर्गी-पालिका का दिखाई देना उनके मस्तिष्क में चुगाई के साथ संबद्ध हो जाता है। इस प्रकार नियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाएं विकसित होती हैं और इससे चूज़ों के पालन में सरलता आती है।

यदि अच्छी गरमी, योग्य चुगाई और उचित देखभाल का प्रबंध हो तो इनक्यूबेटर के चूज़े मुर्ग़ी द्वारा प्राकृतिक रूप से सेये गये चूज़ों से किसी भी तरह बुरे नहीं होते।

सोवियत संघ में पोल्ट्री-पालन

सोवियत संघ में पोल्ट्री-पालन प्राणि-संवर्द्धन की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण शाखा है।

कोलख़ोज़ों के अपने पोल्ट्री-फ़ार्म हैं। दसियों और शतियों हज़ार बढ़िया नस्ली मुर्ग़ियों वाले बड़े बड़े राजकीय पोल्ट्री-फ़ार्म संगठित किये गये हैं। ऐसे फ़ार्मों से प्रतिवर्ष करोड़ों अंडे मिलते हैं।

इनक्यूबेटर-फ़ार्म कोलख़ोज़ों और निजी मुर्ग़ी-पालकों के लिए उत्तम नस्ल की मुर्ग़ियों और बत्तख़ों के बच्चों का संवर्द्धन करते हैं।

पोल्ट्री-प्लांट बारहों मास ताज़े अंडों और मुर्ग़ी-बत्तख़ों के मांस की सपलाई करते हैं। यहां बड़ी बड़ी इमारतों में स्थित बहुमंज़िला पिंजड़ों (बैटरियों) में (आकृति १३३) लाखों-लाख मुर्ग़ियां रहती हैं। उचित तापमान, योग्य चुगाई और कृत्रिम रोशनी के बंदोबस्त की बदौलत ये मुर्ग़ियां बारहों मास अंडे देती हैं और इनक्यूबेटर बराबर उनको सेते रहते हैं। इससे सतत नये चूज़े पैदा होते रहते हैं।

नस्ली-फ़ार्म भी क़ायम किये गये हैं जो कोलख़ोज़ों को बराबर उत्कृष्ट नस्ल की मुर्ग़ी-बत्तख़ों की सपलाई करते रहते हैं।

प्रश्न – १. पक्षी के भ्रूण के परिवर्द्धन के लिए कौनसी स्थितियां आवश्यक हैं और इनक्यूबेटर में उनका प्रबंध कैसे किया जाता है? २. सेनेवाली मुर्ग़ी की तुलना में इनक्यूबेटर किस माने में अधिक सुविधाजनक है? ३. कृत्रिम रीति से सेये गये चूज़ों की परवरिश कैसे की जाती है?

व्यावहारिक अभ्यास – इनक्यूबेटर-केंद्र मे कुछ चूज़े ले आओ और उनकी परवरिश करो।

अध्याय १०

स्तनधारी वर्ग

§ ६७. शशक की जीवन-प्रणाली और बाह्य लक्षण

जंगली शशक जंगली शशक दक्षिणी यूरोप के सूखे पहाड़ी हिस्सों में रहते हैं। शशक झाड़ी-झुरमुटों से ढंकी हुई पहाड़ियों में अपनी बस्तियां बनाकर रहते हैं (रंगीन चित्र १३)। यहां वे ज़मीन में मांदें बनाते हैं। मांदों में रहकर शत्रुओं से अपना बचाव करते हैं और वहीं बच्चे देकर उनकी परवरिश करते हैं। शशक अपनी मांदों के इर्द-गिर्द उगनेवाली वनस्पतियां खाकर रहते हैं। वे शाम के झुटपुटे में भोजन के लिए मांदों से बाहर निकलते हैं।

जंगली शशक शश (बड़ा खरगोश) जैसा ही दीखता है पर आकार में उससे छोटा होता है। उसकी फ़र का रंग भूरा-कत्थई होने के कारण उसे झुटपुटे मे पहचानना मुश्किल होना है। शशक के अपेक्षतया छोटा धड़ तथा छोटा सिर होता है और दो जोड़े अंग (हाथ-पैर) तथा एक छोटी-सी पूछ। वह उछलता-कूदता हुआ चलता है। अपने अधिक विकसित पश्चांगों के सहारे वह ज़मीन पर से छलांग मारता है। प्रत्येक पश्चांग या टांग में ऊरु, पिंडली और पाद होते है और अग्रांग में बाहु, अग्रबाहु तथा हाथ।

शशक की नस्लें जंगली शशक से मनुष्य ने पालतू शशक का परिवर्द्धन किया है। अपने पुरखों की तरह यह भी तरह तरह की वनस्पतियां खाकर रहता है। शशक-उद्यानों में रखने पर ये ज़मीन में मांदें बना लेते हैं। पिंजड़ों में रखने पर वे पिंजड़े के सायादार हिस्से में घोंसले बना लेते हैं।

पालतू शशक जंगली शशकों से बड़े होते हैं और उनके रोग्रों के विविध रंगों तथा गुणों के कारण अलग से पहचाने जा सकते हैं। मांस के लिए पाले जानेवाले शशक उनके आकार के लिए विशेष मूल्यवान् माने जाते हैं, तो फ़रदार नस्लें उनकी फ़र के लिए। कुछ और शशक उनके मुलायम रोग्रों के लिए पाले जाते हैं। सभी नस्लों के मांस का उपयोग भोजन के रूप में किया जाता है (आकृति १३४)।

मांसवाली नस्ल का एक उदाहरण है सफ़ेद विशाल शशक। इसका वज़न सात किलोग्राम तक हो सकता है।

फ़रदार नस्लों में से हम रूसी एरमाइन नस्ल का नाम गिन सकते हैं। सोवियत संघ में नये से परिवर्द्धित की गयी रुपहला घूंघटधारी, काली-भूरी इत्यादि नस्लें विशेष मूल्यवान् हैं। उनकी खालें क़ीमती फ़रों जैसी होती हैं।

मुलायम रोएंदार नस्लों में से सबसे अधिक प्रसार अनगोर्स्क शशक का है। इसके लंबे सफ़ेद रोएं होते हैं।

त्वचा-आवरण

शशक के पूरे शरीर को ढंकनेवाले बाल शीत से उसकी रक्षा करते हैं। पर सभी बाल एक से नहीं होते। इनमें से जो लंबे और सख़्त होते है वे फ़र कहलाते हैं और फ़र के बीच उगनेवाले छोटे छोटे मुलायम बालों को कागर कहते है। उरगों के शल्कों और पक्षियों के परों की तरह ये बाल भी एक शृंगीय पदार्थ के बने होते हैं। बाल, स्तनधारियों का एक विशेष लक्षण है।

अन्य स्तनधारियों की तरह शशक में भी निर्मोचन-क्रिया होती है; यानी निश्चित समय पर उसके पुराने बाल झड़ जाते है और उनकी जगह नये बाल उगते हैं। फ़र का आवरण जाड़ों के समय सबसे मोटा होता है।

त्वचा की मेद-ग्रंथियों से चूनेवाली चरबी से बाल पुते रहते हैं। इससे बाल जलरोधक और लचीले बन जाते हैं (मुश्किल से टूट सकते हैं)।

स्तनधारियों की त्वचा में मेद-ग्रंथियों के अलावा स्वेद-ग्रंथियां भी होती हैं। शशक में ये ग्रंथियां अल्पविकसित होती हैं। पसीने के वाष्पीकरण से शरीर

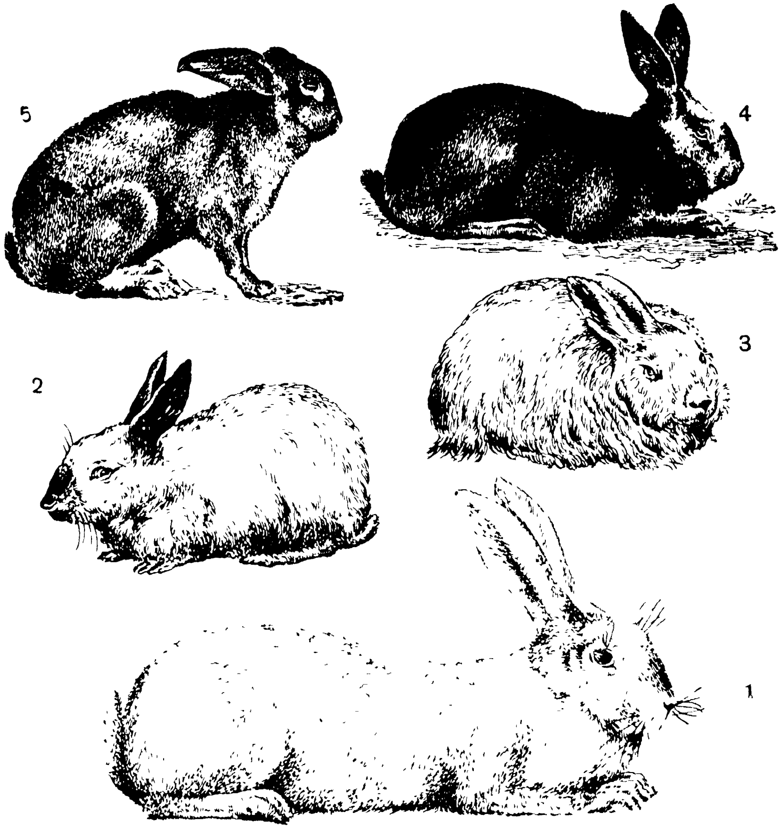

आकृति १३४ – शशकों की नस्लें

१ (1). सफ़ेद विशाल शशक ; २ (2). रूमी एरमाइन ; ३ (3). अनगोर्स्क शशक ; ४(4). काला-भूरा ; ५(5). रुपहला घूंघटधारी ।

को ठंडक मिलती है और ज़्यादा गरम हो जाने से शरीर का बचाव होता है।

शशक के शरीर में एक और शृंगीय रचना उसके नखर हैं जो उसकी अंगुलियों के सिरों पर होते हैं।

प्रश्न – जंगली और पालतू शशकों के बीच क्या साम्य-भेद हैं? २. शशक की नस्लें बतलाओ। ३. प्राणी के बालों का क्या महत्त्व है?

§ ६८. शशक की पेशियां, कंकाल और तंत्रिका-तंत्र

कंकाल और पेशियां

प्रधान लक्षणों की दृष्टि से शशक का कंकाल अन्य स्थलचर रीढ़धारियों के जैसा ही होता है पर उसमें कुछ फ़र्क़ भी है (आकृति १३५)।

रीढ़-दंड पांच हिस्सों में बंटा होता है – ग्रैव, वक्षीय, कटीय, त्रिक और पुच्छीय। ग्रैव या गर्दन के कशेरुक चल रूप में जुड़े होते हैं। स्तनधारियों में उनकी संख्या आम तौर पर सात होती है। वक्षीय या सीने के कशेरुक पसलियों से जुड़े होते हैं। इन्हें और वक्षास्थि को लेकर वक्ष बनता है जो हृदय और फुफ्फुसों की रक्षा करता है। कटीय या कमर के कशेरुकों के पसलियां नहीं होतीं। त्रिक कशेरुकों का एक हड्डी में समेकन होता है। यह अस्थि त्रिक-हड्डी या सैक्रम कहलाती है। सैक्रम के पीछे की ओर पुच्छीय या पूंछ के छोटे कशेरुक होते हैं।

शशक की खोपड़ी में सुविकसित कपाल होता है और जबड़े। कपाल में मस्तिष्क होता है और जबड़ों में दांत।

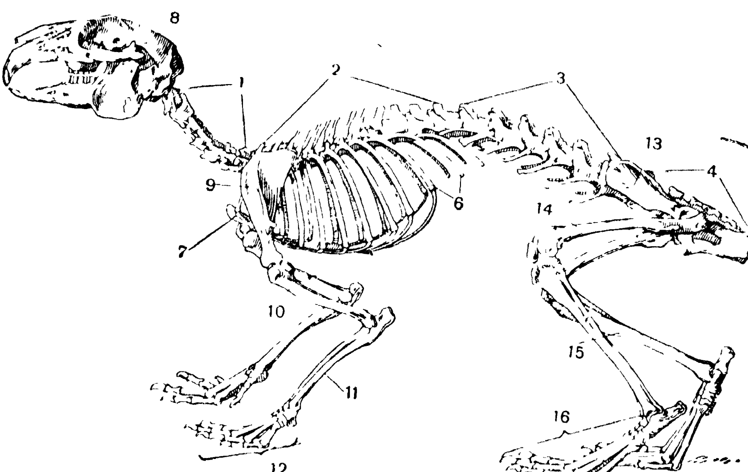

आकृति १३५ – शशक का कंकाल

१,२,३,४ (1,2,3,4). और ५ (5). रीढ़-दंड ; ६(6). पसलियां ; ७(7). वक्षास्थि ; ८(8). खोपड़ी ; ९ (9). स्कंधास्थि ; १०(10). बाहु की हड्डी ; ११ (11). अग्रबाहु की हड्डियां ; १२ (12). हाथ की हड्डियां ; १३(13). श्रोणि ; १४(14). ऊरु की हड्डी ; १५ (15). पिंडली की हड्डियां ; १६(16). पाद की हड्डियां।

अंस-मेखला में स्कंधास्थियां और अक्षक की पतली हड्डियां होती हैं। पक्षियों में सुविकसित कोराकोयड हड्डी शशक में नहीं होती। शशक के भ्रूण में तो वह दिखाई देती है, पर बाद में स्कंधास्थि में उसका समेकन हो जाता है। अग्रांग की हड्डियों में बाहु, अग्रबाहु की बहि:प्रकोष्ठिका और अंत:प्रकोष्ठिका और हाथ की अनेकानेक हड्डियां शामिल हैं। हाथ की हड्डियों के एक हिस्से से पांच अंगुलियों का कंकाल बनता है।

श्रोणि-मेखला की हड्डियां समेकृत होती हैं और सैक्रम के साथ मिलकर श्रोणि बनाती हैं। पश्चांग में ऊरु में स्थित ऊरु की हड्डी, पिंडली में स्थित बहिर्जंघिका और अंतर्जंघिका की हड्डियां और पाद की अनेकानेक हड्डियां होती है। पाद की हड्डियों के हिस्से मे चार पादांगुलियों का कंकाल बनता है।

पेशियां कंकाल से जुड़ी रहती हैं। पेशियों के समन्वित संकुचन से शशक की विभिन्न इंद्रिया और वैसे सारा शरीर गतिशील हो जाता है। पश्चांगों की और धड़ तथा गर्दन के पृष्ठीय हिस्से की पेशियां विशेप सुविकसित होती हैं।

तंत्रिका-तंत्र

अन्य स्तनधारियों की तरह शशक का तंत्रिका-तंत्र मस्तिष्क के ऊंचे विकास के लिए मशहूर है (आकृति १३६)। अग्रमस्तिष्क विशेप विकसित होता है। इसके बड़े गोलार्द्ध मस्तिष्क के अन्य सभी हिस्सों से अधिक बड़े होते हैं (आकृति १३७)। गोलार्द्धों की सतह पर तंत्रिका-कोशिकाएं होती है जिनसे प्रमस्तिष्कीय कोरटेक्स बनता है।

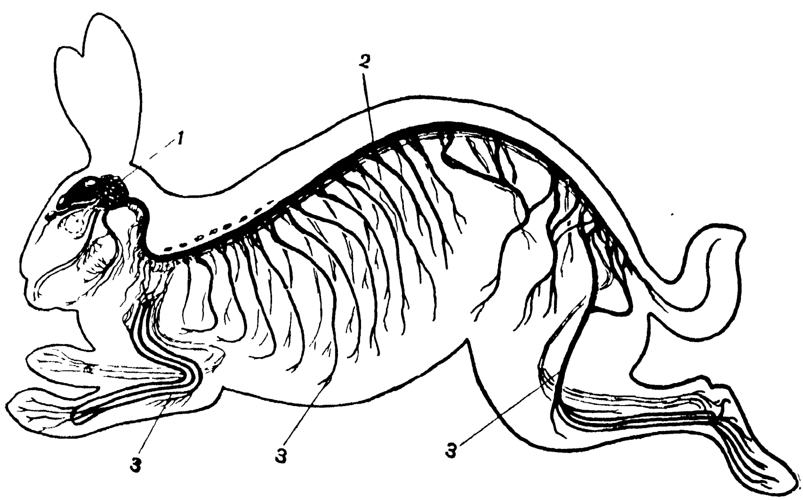

आकृति १३६ – शशक का तंत्रिका-तंत्र
१(1). मस्तिष्क; २(2). रीढ-रज्जु; ३(3). तंत्रिकाएं।

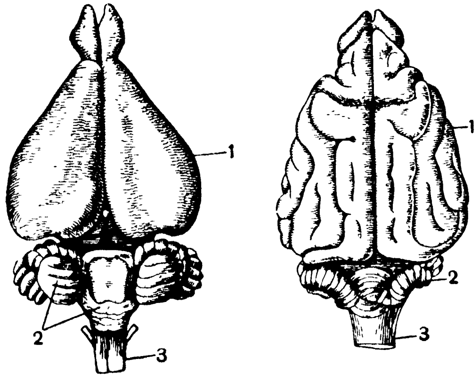

आकृति १३७—शशक का (बायें) और कुत्ते का (दायें) मस्तिष्क।
१ (1). अग्रमस्तिष्क; २ (2). अनुमस्तिष्क; ३ (3). मेड्यूला आबलंगेटा।

शशक के गोलार्द्ध चिकने होते है। अन्य स्तनधारियों में, उदाहरणार्थ कुत्ते में, उनकी सतहों में चुनटें होती हैं जिससे प्रमस्तिष्कीय कोरटेक्स की सतह बढ़ती है। गोलार्द्धों और उनके कोरटेक्सों के ऊंचे विकास के कारण स्तनधारियों के बरताव में काफ़ी जटिलता आती है। इन प्राणियों में नियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाएं आसानी से विकसित हो सकती हैं। इस प्रकार यदि शशकों को निश्चित समय पर खिलाया जाये तो उनमें समय की प्रतिवर्त्ती क्रिया उत्पन्न होती है और जब खाने का समय होता है तो वे भोजन-पात्र के पास इकट्ठे हो जाते हैं।

शशक की ज्ञानेंद्रियों में से घ्राणेंद्रियां और श्रवणेंद्रियां सर्वाधिक विकसित होती हैं।

घ्राणेंद्रियां भोजन की खोज में मुख्य भूमिका अदा करती है। ये इंद्रियां नासिका-गुहा में स्थित होती हैं। यहां मस्तिष्क से आनेवाली घ्राण-तंत्रिकाएं शाखाओं में विभक्त होती हैं। यदि हम शशक का निरीक्षण करें तो वह हमेशा अपनी नम नाक सिकोड़ता हुआ नजर आयेगा।

शशक की कर्ण-पालियां होती हैं। उरगों और पक्षियों में ये नही होतीं। अपने कानों को हिलाते हुए शशक विभिन्न दिशाओं से आनेवाली ध्वनियां सुनता है। ध्वनि-तरंगें अंतःकर्ण में चली जाती हैं।

शशक की आंखों पर सुविकसित पलकें और बरौनियां होती हैं जो आंखों को धूल और गंदगी से बचाये रखती हैं।

स्पर्शेन्द्रियां त्वचा में स्थित तंत्रिकाओं के सिरों के रूप में होती हैं। ये ऊपरवाले होंठ पर स्थित 'गलमुच्छों' और 'भौंहों' के बालों की जड़ों के इर्द-गिर्द विशेष विकसित होती है। रसनेंद्रियां जीभ में होती हैं।

प्रश्न – १. शशक के कंकाल की रचना कैसी होती है? २. कौनसे रचनात्मक लक्षण स्तनधारियों के मस्तिष्क की जटिलता दिखाते हैं? ३. शशक में कौनसी ज्ञानेन्द्रियां सबसे अधिक विकसित होती है?

व्यावहारिक अभ्यास – शशक का निरीक्षण करो और देखो कि वह किस तरह चलता है और गंध, ध्वनि तथा अन्य उद्दीपनों का जवाब किस प्रकार देता है। अपने निरीक्षण का ब्यौरा दो।

§ ६९. शशक की शरीर-गुहा की इंद्रियां

शरीर-गुहा

अन्य स्तनधारियों की तरह शशक की शरीर-गुहा के भी दो भाग होते हैं – वक्षीय और औदरिक। वक्षीय गुहा में फुफ्फुस और हृदय होते हैं और औदरिक गुहा में जठर, आंतें और अन्य इंद्रियां। इन दो गुहाओं को अलग करनेवाले पेशीय परदे को डायेफ़ाम कहते हैं (रंगीन चित्र १४)।

पचनेंद्रियां

शशक की पचनेंद्रियां शाकाहारी भोजन के अनुकूल होती हैं। मुख-द्वार मांसल ओंठों से घिरा रहता है। ऊपरवाला ओंठ दोहरा होता है इससे सख़्त भोजन कुतरते समय कोई चोट नही आती।

मुख-गुहा के अंदर दांत होते हैं। दांतों पर बहुत ही सख़्त इनैमल का आवरण होता है। ऊपरवाले और नीचेवाले जबड़ों में आगे की ओर दो दो लंबे और तेज़ सम्मुख दंत होते हैं। सम्मुख दंत झुके हुए और जबड़े में मज़बूती से गड़े हुए होते हैं। इससे वे ढीले नहीं पड़ते (आकृति १३८)। सम्मुख दंतों पर इनैमल की परत एक-सी नही होती। आगे की ओर वह मोटी होती है और पीछे की ओर पतली। सम्मुख दंत आगे की अपेक्षा पीछे की ओर अधिक जल्दी से घिस जाते हैं और इसलिए हमेशा उनकी तेज़ी बनी रहती है। ये दांत बराबर बढ़ते रहते हैं, अतः कभी छोटे नहीं होते। सम्मुख दंत की मदद से शशक लकड़ी तक को कुतर सकता है।

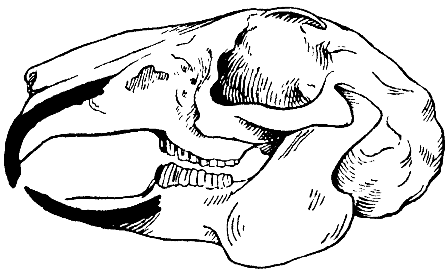

आकृति १३८ – शशक की खोपड़ी (सम्मुख दंत काले रंग में)।

ऊपरवाले जबड़े के बड़े सम्मुख दंतों के पीछे एक जोड़ा छोटे सम्मुख दंत होते हैं।

मुख-गुहा में पीछे की ओर चर्वण-दंत होते हैं। इनकी चौड़ी सतहों के बीच खाना चबाया जाता है। ये दांत खाने की सख्त चीजों को चक्की की तरह पीस डालते हैं। जबड़ों में चर्वण-दंतों और सम्मुख दंतों के बीच कोई दांत नहीं होते। अन्य स्तनधारियों में इस जगह में सुआ-दांत होते हैं। शिकारभक्षी प्राणियों में ये विशेष विकसित होते हैं।

भोजन का चर्वण और दांतों का सम्मुख दंतों, चर्वण-दंतों और सुआ-दांतों में विभाजन स्तनधारियों के विशेष लक्षण हैं। बाक़ी रीढ़धारी प्राणियों में सभी दांत एक-से होते हैं और वे शिकार को पकड़ रखने का काम करते हैं।

भोजन चबाया जाते समय लार से नम हो जाता है। लार-ग्रंथियों से लार रसती है। लार एक पाचक रस है। ग़रज़ यह कि स्तनधारियों में भोजन का पाचन मुख-गुहा से ही शुरू होता है।

चबाया और लार से नम किया जाने के बाद भोजन मांसल ज़बान के सहारे निगला जाता है। गले और ग्रसिका के ज़रिये भोजन जठर में चला जाता है और इसके बाद पतली तथा मोटी आंतों में। पतली आंत के आरंभिक हिस्से में अग्न्याशय और यकृत् की वाहिनियां खुलती हैं। पतली और मोटी आंत के बीच की सीमा से वर्मीफ़ार्म अपेंडिक्स सहित बड़ा सीकम निकलता है।

अधिकांश भोजन का पाचन जठर और पतली आंत में होता है। पाचन के लिए अत्यंत कठिन पदार्थ सीकम में रुक जाते हैं और बैक्टीरिया के प्रभाव से विघटित होते हैं।

आंत की कुल लंबाई शरीर की लंबाई से १५ गुनी होती है। लंबी आंत और बड़ा सीकम शाकाहारी स्तनधारियों की विशिष्टता है। इसका कारण यह है कि शाक-भोजन मांस की तुलना में कम पोषक होता है और उसका पाचन उतनी आसानी

से नहीं होता। प्राणियों को खानेवाले मांसाहारी प्राणियों में आंत काफ़ी छोटी और सीकम कम विकसित होता है।

श्वसनेंद्रियां शशक के सुविकसित फुप्फुस उसकी वक्षीय गुहा (रंगीन चित्र १४) में होते हैं। इनमें हवा नासा-द्वारों या नथुनों, नासा-गुहा, गले, स्वर-यंत्र और लंबी श्वास-नली तथा श्वास-नलिकाओं से होकर पहुंचती है। श्वास-नली तथा श्वास-नलिकाओं की दीवारों में उपास्थियां होती हैं जिससे ये अंदर धंसती नहीं।

डायेफ़ाम और पसलियों के बीचवाली पेशियों के संकुचन से वक्षीय गुहा फैलती है और इसके साथ हवा अंदर ली जाती है। पेशियों में ढील आने के साथ वक्षीय गुहा सिमटती है और हवा बाहर फेंकी जाती है।

स्वर-यंत्र उपास्थियों का बना रहता है। स्वर-यंत्र में स्वर-तार होते हैं। ये उपास्थियों के बीच तने रहते हैं। इन तारों के कंपन से शशक की आवाज़ उत्पन्न होती है।

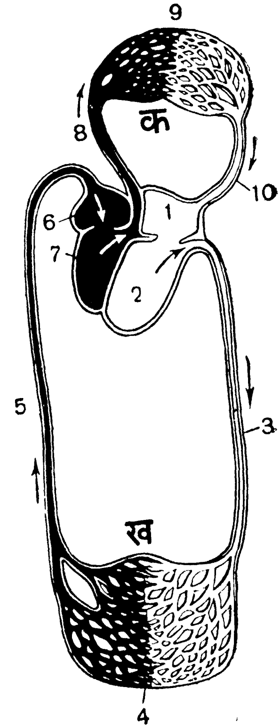

आकृति १३९ – शशक के रक्त-परिवहन का नक़्शा

क – गौण या फुप्फुसीय वृत्त, ख – प्रधान वृत्त; १,२ (1,2). हृदय का बायां आधा हिस्सा (अलिंद और निलय); ३ (3). धमनियां, जिनके जरिये सारे शरीर में रक्त का परिवहन होता है; ४ (4). शरीर की केशिकाएं; ५ (5). शिराएं, जिनके जरिये रक्त हृदय में वापस आता है; ६,७ (6,7). हृदय का दाहिना आधा हिस्सा (अलिंद और निलय); ८ (8). धमनियां जिनके जरिये रक्त फुप्फुसों में पहुंचता है; ९ (9). फुप्फुसों का केशिका-जाल; १० (10). शिराएं, जिनके जरिये रक्त फुप्फुसों से हृदय के बायें आधे हिस्से में पहुंचता है।

रक्त-परिवहन इंद्रियां शशक की रक्त-परिवहन इंद्रियां आम तौर पर पक्षियों की जैसी ही होती हैं।

हृदय के चार कक्ष होते हैं। हृदय के बायें आधे हिस्से का ऑक्सीजन समृद्ध रक्त दाहिने आधे हिस्से के कारबन डाइ-आक्साइड युक्त रक्त से मिश्रित नहीं होता। इससे शरीर की इंद्रियों को पहुंचाये जानेवाले रक्त में ऑक्सीजन की ऊंची मात्रा सुनिश्चित होती है।

शरीर में रक्त दो वृत्तों से होकर बहता है। प्रधान वृत्त बायें निलय से निकलकर सारे शरीर में से होता हुआ दाहिने अलिंद में पहुंचता है और गौण या फुफ्फुसीय वृत्त दाहिने निलय से निकलकर फुफ्फुसों में से होता हुआ बायें अलिंद में पहुंचता है (आकृति १३९)।

उत्सर्जन इंद्रियां सेम के आकार के गुरदे उत्सर्जन की इंद्रियां हैं। वे रीढ़-दंड की बग़लों में स्थित औदरिक गुहा में होते हैं (रंगीन चित्र १४)। गुरदों से मूत्र-वाहिनियां निकलकर मूत्राशय में पहुंचती हैं। मूत्राशय से मूत्र-मार्ग निकलकर शरीर के बाहर खुलता है।

अन्य स्तनधारियों की तरह शशक में भी उपापचय बड़े जोरों से होता है। शरीर का तापमान स्थायी होता है।

प्रश्न – १. शशक के शाकाहार से उसकी आंत के कौनसे संरचनात्मक लक्षण संबद्ध हैं? २. भोजन का पाचन कौनसी इंद्रियों में होता है? ३. शशक के शरीर में रक्त-परिवहन कैसे होता है? ४. उत्सर्जन इंद्रियों की संरचना क्या है?

व्यावहारिक अभ्यास – शशक जब खाना खाता है उस समय उसका निरीक्षण करो।

§ ७०. शशक का जनन और परिवर्द्धन

शशक की मादा एक वर्ष में कई बार औसतन पांच से आठ तक बच्चे देती है।

मादा के शरीर में भ्रूण का परिवर्द्धन अन्य रीढ़धारियों की तरह मादा की जननेंद्रियां हैं उसके अंडाशय। इनमें अंड-कोशिकाएं परिपक्व होती हैं। नर के वृषणों में शुक्राणुओं का परिवर्द्धन होता है।

अन्य स्थलचर रीढ़धारियों की तरह शशकों में भी आंतरिक संसेचन होता है और वह अंड-वाहिनियों के अंदर होता है। अंड-वाहिनियों से अंडा एक

विशेष इंद्रिय में चला जाता है। इसे गर्भाशय कहते हैं। इसी में भ्रूण का परिवर्द्धन होता है। भ्रूण को घेरनेवाली परतों का गर्भाशय की दीवारों से समेकन होता है। माता के रक्त में मिले हुए पोषक पदार्थ और ऑक्सीजन रक्त-वाहिनियों की पतली दीवारों से भ्रूण के रक्त में पहुंचते हैं। दूसरी ओर भ्रूण के रक्त का कारबन डाइ-आक्साइड और तरल उत्सर्जन रक्त-वाहिनियों की दीवारों के ज़रिये माता के रक्त में पहुंचता है।

गर्भाशय में भ्रूण के परिवर्द्धन के लिए आवश्यक सभी स्थितियां मौजूद रहती हैं, जैसे – ऑक्सीजन, भोजन, गरमी, नमी और विभिन्न प्रतिकूल बाह्य प्रभावों से बचाव।

शरीर में भ्रूण का परिवर्द्धन लगभग एक महीने तक जारी रहता है। सभी बहुकोशिकीय स्तनधारियों की तरह संसेचित अंडे के विभाजन से वह शुरू होता है। एक विशेष अवस्था में जल-श्वसनिका-छिद्र दिखाई देते हैं पर वे पूरी तरह कटे हुए नहीं होते। फिर एक रज्जु तैयार होती है। बाद में इसकी जगह कशेरुक लेते हैं। शुरू शुरू में शशक का भ्रूण उरग के भ्रूण जैसा लगता है और बाद में उसमें स्तनधारियों के लक्षण आ जाते हैं। इन सबसे यह संकेत मिलता है कि स्तनधारी अल्प-संगठित रीढ़धारियों से अवतरित हुए हैं।

जन्म के बाद का परिवर्द्धन

शशक जब पैदा होते हैं तो केशहीन, अंधे और स्वतंत्र रूप से चलने और भोजन ढूंढने के लिए असमर्थ होते हैं। मादा अपने बच्चों के लिए घोंसला बनाती है और उसके अंदर अपने कागरों का अस्तर लगाती है। यहां वह बच्चों को अपना दूध पिलाती है। शरीर के औदरिक हिस्से में स्थित स्तन-ग्रंथियों से यह दूध रसता है। बच्चे बड़े होते रहते हैं, देखने लग जाते हैं और उनपर फ़र की परत चढ़ने लगती है। लगभग तीन सप्ताहों में वे घोंसले से बाहर निकलते हैं। इस अवधि में उनकी आवश्यकताएं बदल जाती हैं। वे मां का स्तनपान करना छोड़ देते हैं और वनस्पतियां खाना शुरू कर देते हैं।

जन्म के पांच-छः महीने बाद शशक वयस्क हो जाता है और स्वयं बच्चे पैदा कर सकता है।

स्तनधारी वर्ग की विशेषताएं

स्तनधारी अत्यंत सुविकसित रीढ़धारियों का वर्ग है। उनका शरीर बालों से ढंका रहता है। उनके कोशिकाओं में गड़े हुए विभिन्न आकार के दांत, चार कक्षों वाला हृदय, शरीर का स्थायी तापमान और कोरटेक्स सहित सुविकसित मस्तिष्क गोलार्द्ध होते हैं।

स्तनधारियों का जनन जीवित बच्चों के रूप में होता है और वे माता का स्तनपान करते हैं।

इस समय स्तनधारियों के लगभग ४,००० प्रकार ज्ञात हैं।

प्रश्न – १. शशक का भ्रूण किस प्रकार सांस और भोजन करता है? २. तीन हफ़्ते के शशक और नवजात शशक में (संरचना और आवश्यकताओं की दृष्टि से) क्या अंतर है? ३. सजीव जन्म और स्तनपान में कौनसी सुविधाएं है? ४. स्तनधारी वर्ग की विशेषताएं क्या हैं?

व्यावहारिक अभ्यास – स्कूल के शशक-बाग़ में शशकों के परिवर्द्धन का निरीक्षण करो। शशक के नवजात बच्चों का स्वरूप और भोजन का तरीक़ा नोट कर लो। वह समय नोट कर लो जब शशक के बच्चे के शरीर पर बाल दिखाई देने लगते हैं; वह देखने, घोंसले के बाहर दौड़ने और वनस्पतियां खाने लग जाता है।

§ ७१. अंडज स्तनधारी

सभी स्तनधारियों का एक-सा जटिल संगठन नहीं होता। कुछ निम्नसंगठित स्तनधारी जीवित बच्चे नहीं बल्कि अंडे देते है और उनको सेते हैं। फिर भी ये प्राणी अंडों से निकलनेवाले बच्चों को अपना दूध पिलाते हैं। ऐसे स्तनधारी अंडज स्तनधारी कहलाते हैं। इनमें से एक है बत्तख़-चोंची प्लैटीपस (आकृति १४०)।

प्लैटीपस की जीवन-प्रणाली

बत्तख़-चोंची प्लैटीपस एक मध्यम आकार का प्राणी है। पूंछ के साथ इसकी लंबाई लगभग ६० सेंटीमीटर होती है। उसके सिर के अगले हिस्से के आकार के कारण उसे बत्तख़-चोंची प्लैटीपस नाम दिया गया। यह हिस्सा चौड़ी चोंच की तरह निकला हुआ होता है, उसपर एक शृंगीय परत होती है और वह बत्तख़ की चोंच-सा लगता है।

बत्तख़-चोंची प्लैटीपस छोटी छोटी नदियों के किनारे बसता है और अधिकांश जीवन पानी में बिताता है। यहां नदी-तल के कीचड़ में वह मोलस्क, कृमि, कीट-

डिंभ और दूसरे प्राणी पकड़कर खाता है। विशेष प्रकार की चोंच उसे नदी-तल में भोजन ढूंढने में मदद देती है।

प्लैटीपस अपने परदेदार अंगों की सहायता से ख़ूब तैरता है। चौड़ी और चपटी पूंछ उसे पतवार का काम देती है। प्लैटीपस की काली-भूरी फ़र इतनी मोटी होती है कि उसके ज़रिये शरीर में पानी नहीं पैठ सकता और जब वह पानी से बाहर निकलता है तो बिल्कुल गीला नहीं होता। उसके कर्ण-पालियां नहीं होतीं और जब वह गोता लगाता है तो उसके कर्ण-छिद्र बंद हो जाते हैं।

बत्तख़-चोंची प्लैटीपस की जनन-क्रिया

प्लैटीपस किनारे पर मांद बनाता है जो पानी में भी खुलती है। मांद में वह अपने बालों का अस्तर लगाता है। यहां मादा दो छोटे अंडे देती है और उन्हें सेती है। अंडों से निकलनेवाले बच्चे केशहीन, अंधे और असहाय होते हैं। मादा उन्हें अपना दूध पिलाती है।

प्लैटीपस की स्तन-ग्रंथियों की संरचना अन्य स्तनधारियों की अपेक्षा सरलतर होती है और उनमें चूचियां नहीं होतीं। बच्चे को पिलाते समय मादा पीठ के बल

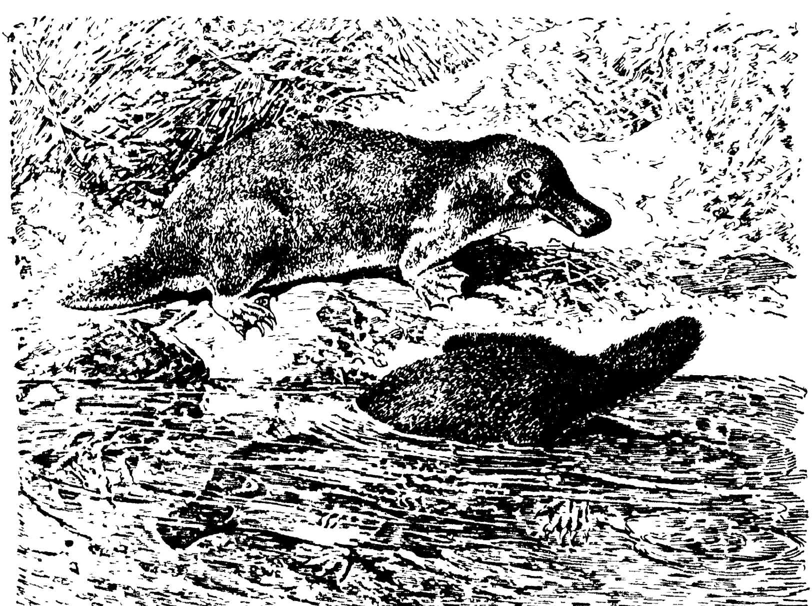

आकृति १४० – बत्तख़-चोंची प्लैटीपस।

लेटती है, बच्चे उसके पेट पर सवार हो जाते हैं, अपनी चोंच से दूध चूसते हैं और जीभ से उसे चाटते हैं।

बड़े होने पर बत्तख़-चोंची प्लैटीपस के बच्चे मांद से बाहर निकलते हैं और पानी में अपनी मां के पीछे पीछे तैरने लग जाते हैं।

प्लैटीपस की क़िस्म के अंडज स्तनधारी बहुत कम हैं। ये केवल आस्ट्रेलिया और उसके पासवाले टापुओं में पाये जाते हैं।

प्रश्न – १. प्लैटीपस की संरचना किस प्रकार जलचर जीवन के अनुकूल होती है? २. प्लैटीपस को स्तनधारी वर्ग में क्यों गिनते हैं? ३. अंडज और अन्य स्तनधारियों की जनन-क्रिया में कौनसे साम्य-भेद हैं?

§ ७२. मारस्यूपियल स्तनधारी

मारस्यूपियल स्तनधारियों में से भीम कंगारू सबसे विख्यात है (आकृति १४१)।

कंगारू की जीवन-प्रणाली

कंगारू एक बड़ा प्राणी है। इसकी लंबाई लगभग दो मीटर होती है। उसके शरीर पर भूरे रंग की मोटी फ़र होती है जिसके लिए उसका शिकार किया जाता है। कंगारू आस्ट्रेलिया में घास और झाड़ी-झुरमुटवाले खुले मैदानों में रहता है।

आकृति १४१ – भीम कंगारू।

आराम करते समय कंगारू अपने लंबे पश्चांगों और पूंछ का सहारा लिये बैठता है। छोटे अग्रांग नीचे की ओर झुके रहते हैं। ये घास तोड़कर मुंह तक पहुंचाने के काम आते हैं। कंगारू चरागाहों में अटपटी-सी चाल चलता है। चलते समय वह अपने अग्रांगों का भी उपयोग करता है। वह उछलता हुआ तेज़ चलता है। पश्चांगों के सहारे हवा में तीर की सी उड़ान भरता हुआ वह लंबी कूद लगाता है। अपने को शत्रुओं से बचाते समय वह कूदकर झुरमुटों और खाइयों को आसानी से पार कर सकता है। पूंछ उसके लिए पतवार का काम देती है।

जनन-क्रिया

मादा एक अंधे, केशहीन और अखरोट के आकार के बच्चे को जन्म देती है। यह बच्चा बिल्कुल असहाय होता है। आगे उसका परिवर्द्धन एक विशेष थैली में होता है। यह थैली मां के पेट की त्वचा की एक परत के रूप में होती है। स्तन-ग्रंथियां और चूचियां इस थैली में खुलती हैं। मादा नवजात बच्चे को अपने मुंह से उठाकर इस थैली में रख देती है। बच्चा एक चूची को अपने मुंह में पकड़ लेता है। चूची उसके मुंह में फूल जाती है। इससे ऐसा लगता है कि बच्चा चूची पर लटक रहा हो।

बच्चा इतना दुबला और असहाय होता है कि शुरू शुरू में वह दूध तक नहीं चूस सकता। विशेष पेशियों के संकुचन से उसके मुंह में दूध की जैसे पिचकारी चलती है। बाद में बच्चा चूची से छूट जाता है और फिर खुद ही मां का स्तनपान करने लगता है। वैसे वह थैली में लगभग आठ महीने बिताता है। पर खुद घास चरने लगने पर भी वह ख़तरे की आहट पाते ही झट थैली में छिप जाता है।

कंगारू की तरह अल्पपरिवर्द्धित बच्चे जनने और उन्हें थैली में रखनेवाले प्राणी मारस्यूपियल स्तनधारी कहलाते हैं। इस समय मारस्यूपियल केवल आस्ट्रेलिया में पाये जाते हैं और उनका सिर्फ़ एक प्रकार दक्षिणी अमेरिका में। दूसरे महाद्वीपों में ये बहुत समय पहले रहते थे पर बाद में उनका लोप हो गया।

मारस्यूपियल अल्पपरिवर्द्धित बच्चों को जन्म देते हैं इससे उनके निम्न संगठन का संकेत मिलता है। अंडज स्तनधारियों के साथ मारस्यूपियल भी निम्न स्तनधारियों की श्रेणी में गिने जाते हैं। बाक़ी सब स्तनधारियों की गिनती उच्च स्तनधारियों में होती है। उच्च स्तनधारी सुपरिवर्द्धित बच्चों को जन्म देते हैं और ये बच्चे खुद ही माता का स्तनपान कर सकते हैं।

स्तनधारियों का मूल

प्लैटीपस और कंगारू की विशेषताओं से हमें स्तनधारियों के मूल का पता लगाने में सहायता मिलती है। स्तनधारियों के अतिविशिष्ट लक्षण हैं मां का दूध पीनेवाले सजीव जात बच्चे ।यह स्पष्ट है कि ये लक्षण यकायक नहीं पैदा हुए। अंडज स्तनधारी अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं यह सही है, पर वे उरगों जैसे अंडे देते हैं। दूसरी ओर मारस्यूपियल जीवित जात बच्चे देते हैं, पर उनका अच्छा परिवर्द्धन होने तक उन्हें थैली में रखते हैं। सिर्फ़ उच्चविकसित स्तनधारी ही ऐसे हैं जो सुपरिवर्द्धित बच्चे जनते हैं। स्तन-ग्रंथियों की संरचना भी क्रमशः अधिकाधिक जटिल होती जाती है। प्लैटीपस के तो चूचियां भी नहीं होतीं।

अंडज स्तनधारी संरचनात्मक लक्षणों की दृष्टि से भी कुछ हद तक उरगों से मिलते-जुलते होते हैं। प्लैटीपस की जनन तथा मूत्र-वाहिनियां अवस्कर में खुलती हैं। उसकी अंस-मेखला में एक कोराकोयड होता है, जो अन्य स्तनधारियों में अल्पविकसित और स्कंधास्थि में मिला हुआ होता है।

एक बात और है। प्लैटीपस के शरीर का तापमान अन्य स्तनधारियों की तुलना में निम्नतर होता है और २४ से ३४ सेंटीग्रेड तक रहता है।

मेसोज़ोइक युग में रहनेवाले और बाद में लुप्त हो गये उरगों में स्तनधारियों के लक्षण विद्यमान थे। हमारा मतलब यहां साइनोग्नेथस (आकृति १०६) से है। इन प्राणियों के दांत स्तनधारियों की तरह पृथक् कोशिकाओं में गड़े रहते थे और सम्मुख दंतों, सुआ-दांतों और चर्वण-दंतों में विभाजित थे।

आज के विद्यमान प्लैटीपस और लुप्त साइनोग्नेथस की संरचनात्मक विशिष्टताएं इस बात का प्रमाण हैं कि स्तनधारी लुप्त प्राचीन उरगों से उत्पन्न हुए हैं।

प्रश्न – १. कंगारू बच्चे किस तरह देता है? २. निम्न और उच्च स्तनधारियों में क्या अंतर है? ३. हम कैसे इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि स्तनधारियों के पुरखे प्राचीन उरग है?

§ ७३. कीटभक्षी स्तनधारी

कीटभक्षी स्तनधारियों में से एक है छछूंदर (आकृति १४२)। हो सकता है कि तुममें से किसी ने खुद छछूंदर को न देखा हो पर चरागाहों में छछूंदर टीले तो सभी ने देखे होंगे। छछूंदर द्वारा उछाली गयी मिट्टी से ये बनते हैं।

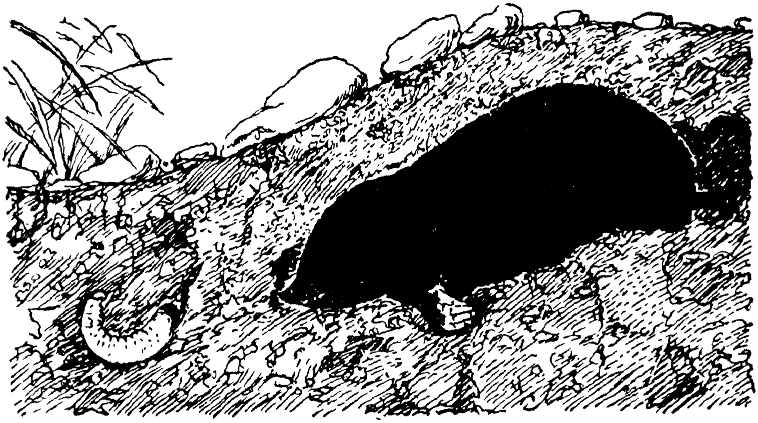

आकृति १४२ – छछूंदर।

छछूंदर अपना अधिकांश जीवन जमीन के नीचे बिताता है और कभी-कभा ही उसकी सतह पर निकल आता है। वह जमीन में कई लंबी लंबी सुरंग बनाता है औ वहीं केंचुओं और कीट-डिंभों का शिकार करता है। यह प्राणी जाड़ों में भी सक्रिय रहता है क्योंकि उस समय उसे जमीन की गहरी सतहों में अपना भोजन मिल जाता है।

छछूंदर के सिर और धड़ को लेकर एक सिलिंडर-सा बनता है जो आगे की ओर तीक्ष्ण होता है। इससे यह प्राणी ज़मीन के अंदर अधिक स्वतंत्रता से चल सकता है।

छछूंदर अपनी अगली टांगों से मिट्टी खोदता है। ये टांगें छोटी होती हैं पर उनके पंजे काफ़ी चौड़े होते हैं और अन्य प्राणियों की तरह नीचे की ओर नहीं बल्कि बग़लों की ओर झुके हुए होते हैं। उनके तलवे पीछे की ओर मुड़े होते हैं। तीक्ष्ण नखरवाली उंगलियां चमडीनुमा परदे से जुड़ी रहती हैं। उसका पंजा फावड़े जैसा लगता है। ऐसे पंजे आसानी से मिट्टी हटा सकते हैं। पंजों से उखाड़ी गयी मिट्टी सिर की मदद से बाहर ढकेली जाती है।

छछूंदर के छोटे छोटे बाल इतने घने होते हैं कि उनके बीच मिट्टी नहीं घुस सकती और त्वचा हमेशा साफ़ रहती है। उसकी फ़र का स्पर्श मखमल जैसा होता है। उसके बाल आगे और पीछे दोनों ओर लेट सकते हैं जिससे मिट्टी के बीच से गुजरने में उसे सुविधा मिलती है।

छछूंदर के सिर का अंतिम हिस्सा सूंड है। इसमें नथुने होते हैं और उसके दोनों ओर स्पर्शेंद्रिय का काम देनेवाले बाल। छछूंदर की ज्ञानेंद्रियों में से घ्राणेंद्रियां और स्पर्शेंद्रियां अत्यंत विकसित होती हैं। भूमिगत जीवन के लिए ये अत्यावश्यक हैं क्योंकि वहां घुप्प अंधेरे में छछूंदर को अपना शिकार ढूंढना पड़ता है।

छछूंदर की छोटी छोटी आंखें अल्पविकसित होती हैं और बालों में छिपी रहती हैं। यह प्राणी प्रकाश और अंधेरे का फ़र्क़ शायद ही समझ सकता है। उसके कर्ण-पालियां नहीं होतीं। कर्ण-छिद्र बंद हो सकते हैं और इससे उनमें मिट्टी नहीं जा सकती। छछूंदर काफ़ी अच्छी तरह सुन सकता है।

छछूंदर के ऊपरवाले ओंठ से मुंह पर एक चमड़ीनुमा परत लटकती है और इससे मुंह में मिट्टी नहीं जा सकती।

ज़मीन के नीचे छछूंदर सुरंगों का एक पूरा जाल बनाता है और वहीं घोंसला भी तैयार करता है। वसंत में मादा तीन से लेकर पांच तक नन्हे नन्हे बच्चों को जन्म देती है। ये बच्चे केशहीन और अंधे होते हैं। मां उनको लगभग एक महीने तक अपना दूध पिलाती है।

मनुष्य के लिए छछूंदर कुछ उपकारक है और कुछ हानिकारक भी। कीटों और विशेषकर काकचेफ़र के डिंभों का संहार करके वह हमारा उपकार करता है। पर साथ साथ वह उपयुक्त केंचुओं को चट कर जाता है, पौधों की जड़ें उखाड़ देता है और अपने टीलों से चरागाह को नुक़सान पहुंचाता है।

छछूंदर उनकी काफ़ी क़ीमती फ़र के लिए बड़ी संख्या में पकड़े जाते हैं। उनकी फ़र टोप, कालर, फ़रकोट इत्यादि में इस्तेमाल की जाती है।

कीटभक्षी स्तनधारियों में साही भी शामिल है।

प्रश्न – १. भूमिगत जीवन का छछूंदर पर क्या प्रभाव पड़ा है?
२. छछूंदर से क्या हानि-लाभ है?

§ ७४. काईराप्टेरा (कर-पंखी स्तनधारी)

काईराप्टेरा या कर-पंखी स्तनधारियों का एक उदाहरण चमगादड़ है। चमगादड़ दूसरे स्तनधारियों से इस माने में भिन्न है कि वे उड़ सकते हैं। चमगादड़ का अधिकांश सक्रिय जीवन हवा में बीतता है। वहीं उसे अपना भोजन मिलता है। चमगादड़ कभी ज़मीन पर नहीं उतर आते।

चमगादड़ों की संरचना और बरताव हवा में उड़ने के अनुकूल होता है। बहुतायत में पाये जानेवाले विशालकर्णी चमगादड़ (आकृति १४३) से यह स्पष्ट हो जाता है। हवा में उसका छोटा-सा शरीर उड़न-झिल्लियों से बने बड़े चमड़ीनुमा पंखों के चलने से टिकाया जाता है। ये झिल्लियां अग्रांगों की लंबी अंगुलियों के बीच तनी रहती हैं और अग्रांगों से निकलकर शरीर की बग़लों से होती हुई पश्चांगों तक और फिर पूंछ तक पहुंचती है। चमगादड़ की हड्डियां पतली और हल्की होती हैं। वक्ष की हड्डी में पक्षियों की तरह एक उरःकूट होता है। उरःकूट में पंखों की गति देनेवाली पेशियां जुड़ी रहती हैं।

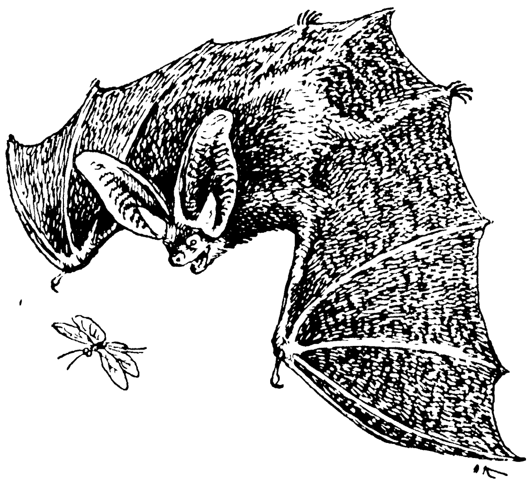

आकृति १४३ – विशालकर्णी चमगादड़।

दिन के समय विशालकर्णी चमगादड़ अन्य चमगादड़ों की तरह घर की बरसाती, गुफ़ा या खोह जैसे आश्रय-स्थानों में अपनी पिछली टांगों की अंगुलियों के सहारे सिर नीचे किये लटका रहता है। चमगादड़ झुटपुटे में शिकार करने निकलते हैं और रात में यह काम जारी रखते हैं। वे विभिन्न उड़ते प्राणियों को मारकर खाते हैं। इनमें तितलियां, बीटल, मच्छर, इत्यादि शामिल हैं। चमगादड़ इन्हें अपने नन्हे तेज़ दांतों के बीच पीस डालते हैं।

चमगादड़ की दृष्टि विकसित नहीं होती और कीटों को पकड़ते समय वे मुख्यतया अपनी श्रवण-शक्ति का उपयोग करते हैं। विशालकर्णी चमगादड़ बड़े

सर्राटे से उड़ता है पर हवा में कभी किसी बाधा से टकराता नहीं। एक प्रयोग में अंधे किये गये एक चमगदड़ को एक ऐसे कमरे में छोड़ा गया जिसमें कई धागे ताने गये थे और उनमें छोटी छोटी घंटियां लगायी गयी थीं। यह प्राणी वहां बिना किसी कठिनाई के उड़ता रहा और उसने एक भी धागे का स्पर्श नहीं किया। ऐसा पाया गया कि चमगादड़ न केवल साधारण ध्वनि दे और ग्रहण कर सकता है बल्कि मनुष्य को न सुनाई देनेवाली सूक्ष्मतम ध्वनियां (ultra sounds) भी। चमगादड़ द्वारा छोड़ी गयी सूक्ष्मतम ध्वनियां जब किसी बाधा से टकराती हैं तो वे वहां से परावर्तित होकर वापस आती हैं और चमगादड़ की श्रवणेंद्रियां उन्हें ग्रहण करती हैं। इस प्रकार का संकेत पाकर यह प्राणी अपनी उड़ान की दिशा बदल लेता है और बाधा को टाल देता है।

जाड़ों में कीटों के अभाव के कारण चमगादड़ सुषुप्तावस्था में रहते हैं। वे गोदामों, बरसातियों, गुफ़ाओं, और तहख़ानों में पूरे जाड़ों-भर उल्टे टंगे रहते हैं। इस समय चमगादड़ की जीवन-प्रक्रियाएं बहुत धीरे चलती हैं। गरमियों में इकट्ठी की गयी चरबी के सहारे ही यह काम चलता है। जाड़ों की आहट पाने के साथ कुछ चमगादड़ दूर दक्षिणी देशों को चले जाते हैं।

गरमियों के आरंभ में विशालकर्णी चमगादड़ की मादा एक-दो बच्चों को जन्म देती है। शुरू शुरू में मां उन्हें अपने साथ ले चलती है। बच्चे उसकी छाती से ऐसी मज़बूती से चिपके रहते हैं कि उड़ान के समय भी टस से मस नहीं होते।

चमगादड़ हानिकर कीटों का नाश करके हमारा उपकार करते हैं और इस लिए हमें उनकी रक्षा करनी चाहिए।

प्रश्न – १. चमगादड़ के पंख पक्षियों के डैनों से किस प्रकार भिन्न है? २. चमगादड़ के कौनसे संरचनात्मक लक्षण उसकी उड़ने की क्षमता से संबंध रखते हैं? ३. चमगादड़ जाड़ों में सुषुप्तावस्था में क्यों रहते हैं? ४. चमगादड़ों की रक्षा क्यों करनी चाहिए?

व्यावहारिक अभ्यास – गरमियों में झुटपुटे के समय चमगादड़ों की उड़ान का निरीक्षण करो। इसका निरीक्षण करो कि वे दिन का समय कहां बिताते हैं।

§ ७५. कुतरनेवाले प्राणी

कुतरनेवाले प्राणियों में शशक, गिलहरियां, शश, गोफर, घूसें, चूहे और कई अन्य छोटे छोटे स्तनधारी शामिल हैं। वनस्पतियां और अनाज इनका भोजन है और जहां कही यह उन्हें मिल सकता है विभिन्न कुतरनेवाले प्राणी वहीं अपना डेरा डालते हैं। कुतरनेवाले प्राणियों में से कुछ उपयोगी हैं और कुछ हानिकर।

गिलहरियां कुतरनेवाले उपयोगी प्राणियों में गिलहरी अव्वल है (आकृति १४४)। इससे क़ीमती फ़र मिलती है। गिलहरी एक बड़ा ही खूबसूरत और शानदार प्राणी है। उसके लंबी झब्बेदार पूंछ होती है और लंबे कान। कानों के ऊपरी सिरों पर बालों के गुच्छे होते हैं। गिलहरी ग्राम तौर पर शंकुल वृक्षों पर रहती है और गरमियों में उसका ललौहां रंग इन पेड़ों के तनों के रंग जैसा ही होता है। शरद में उसका निर्मोचन होता है और जाड़ों के समय उसके शरीर पर भूरे रंग की विभिन्न झलकों वाली घनी फ़र बढ़ती है। इस प्राणी की शिशिरकालीन खाल से गरमीदेह, मुलायम और खूबसूरत फ़र मिलती है।

गिलहरी जंगलों में रहती है और उसके शरीर की संरचना पेड़ों पर के जीवन के लिए अच्छी तरह अनुकूल होती है। उसकी पिछली टांगें अगली टांगों से लंबी होती है क्योंकि वह उछलती हुई चलती है। असाधारण चपलता के साथ वह एक शाखा से दूसरी शाखा पर और कभी कभी तो एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर छलांग मारती है। उसकी झब्बेदार पूंछ अंशतः पतवार का और अंशतः पैराशूट का काम देती है। तेज़ नखरों वाली अंगुलियां इस प्राणी को पेड़ के तनों से चिपके रहने और पतली टहनियों को पकड़े रहने में मदद देती हैं।

आकृति १४४ – गिलहरी।

गिलहरी के भोजन में चीड़ और सनोबर के बीज, देवदार और हैज़ल वृक्ष के काष्ठफल, ओक वृक्ष के बीज और कुकुरमुत्ते शामिल हैं। गरमियों में गिलहरी कुकुरमुत्तों को पेड़ों पर टांगकर सुखाती है और जाड़ों के लिए उनका संग्रह करती है।

गिलहरी के दांत शशक के दांतों से मिलते-जुलते होते हैं। उसके लंबे और तेज़ सम्मुख दंत होते हैं जिनसे वह आसानी से काष्ठफल तोड़ सकती है। भोजन को चबाने के लिए चर्वण-दंत होते हैं। कुतरनेवाले अन्य प्राणियों की तरह गिलहरी के सुआ-दांत नहीं होते। सम्मुख दंतों और चर्वण-दंतों के बीच कोई दांत नहीं होते। वह जगह ख़ाली होती है।

बच्चे जनने और बुरे मौसम से बचाव करने के लिए गिलहरी पेड़ों की चोटियों के पास या उनके खोडरों में टहनियों और काइयों का घोंसला बनाती है। वह जाड़ों में सुषुप्तावस्था में नहीं रहती क्योंकि उसे तब भी भोजन मिलता है।

भारतीय धारीदार गिलहरी

भारत में जंगलों तथा बगीचों में और यहां तक कि मकानों के आसपास भी, यानी सब जगह, हमें छोटी धारीदार गिलहरी दिखाई देगी। लंबी झब्बेदार पूंछ और भूरी-काली पीठ पर की तीन सफ़ेद-सी धारियों के कारण यह आसानी से पहचानी जा सकती है। वह पी-पी-पी की कर्कश ध्वनि से अपना अस्तित्व घोषित करती है।

धारीदार गिलहरी पेड़ों पर रहनेवाला प्राणी है। संकट की ज़रा-सी भी आहट पाते ही वह ज़मीन से भागकर जल्दी जल्दी अपने छोटे और तेज़ नखरों के सहारे पेड़ पर चढ़ जाती है। वह पेड़ों पर (और कभी कभी छप्परों पर) घास तथा रेशेदार पदार्थों से घोंसला बनाती है और उसमें २-४ बच्चे देती है। चूंकि वह उछलती हुई दौड़ती है इसलिए उसकी पिछली टांगें अगली टांगों से लंबी होती हैं। एक शाखा से दूसरी शाखा पर छलांग मारने में उसकी झब्बेदार पूंछ भी मदद देती है। गिलहरी विभिन्न पेड़ों के फल, कलियां और बीज खाकर रहती है।

भारत में गिलहरी मकानों के पास नज़र आती है और कभी कभी तो कमरे तक में चली आती है। लोग इस अहानिकर प्राणी को प्यार करते हैं। इस कारण उसके बरताव में परिवर्तन आया है। सभी जंगली जानवरों में मनुष्य से दूर भाग जाने की सहज प्रवृत्ति होती है। पर गिलहरी में इसका स्थान एक नयी

नियमित प्रतिवर्त्ती क्रिया ने लिया है। गिलहरी मनुष्य से डरती नहीं और चुपचाप उसे अपने पास आते देखती है। धारीदार गिलहरी को नीम-पालतू प्राणी कहा जा सकता है।

उड़न-गिलहरी

भारत के जंगलों मे उड़न-गिलहरी मिलती है। इसमें साधारण गिलहरी की अपेक्षा एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर छलांग मारने की अधिक अनुकूलता होती है। इसकी अगली और पिछली टांगों के बीच त्वचा की एक चौडी परत तनी रहती है। उछलते समय इसे फैलाकर

आकृति १४५ – उडन-गिलहरी।

गिलहरी एक पेड से दूसरे पेड़ पर उड़ती-सी चली जाती है। इससे भोजन ढूंढने के काम मे शीघ्रता आती है। इस गिलहरी का भोजन फल और काष्ठफल हैं। उड़न-गिलहरी को शाम के समय देखा जा सकता है जब वह चुपचाप पेड़ों के बीच हवा में सरकती रहती है। दिन के समय वह खोडरों में छिपकर सो रहती है (आकृति १४५)।

शश

गिलहरी की फर से कम कीमती फर शश (आकृति १४६) से मिलती है। मांस के लिए भी इस प्राणी का शिकार किया जाता है। जंगलों में सफेद शश रहते है। यह नाम इसलिए पड़ा कि गरमियों में उनकी फ़र का रंग अदरक का सा भूरा रहता है जबकि जाड़ों में वह सफ़ेद बन जाता है। हां, कानों के सिरे हमेशा काले होते है। ऐसे रंग के कारण यह प्राणी बर्फ़ में छिपा रह सकता है।

शश बाहरी तौर पर शशक के समान ही होता है। उसके वैसा ही छोटा धड़, अग्रांगों से लंबी पिछली टांगें, लंबे कान और छोटी पूंछ होती हैं। शश चौकड़ी भरता हुआ दौड़ता है। उसके चौड़े पंजों पर घने बाल होते हैं जिससे वह भुरभुरी बर्फ़ पर भी आसानी से दौड़ सकता है।

सफेद शश विविध पौधे और पेड़ों की छालें खाकर रहता है। उसके दात गिलहरी के से ही होते हैं पर ऊपरवाले सम्मुख दंतों के पीछे शशक की तरह एक जोडा छोटे सम्मुख दंत होते हैं।

शश नियमित रूप से रात के समय भोजन के लिए बाहर निकलता है। दिन के समय वह किसी झाड़ी-झुरमुट मे पड़ा रहता है। अपनी छिपने की जगह की ओर लौटते समय वह सीधे नहीं दौड़ता बल्कि अपने पदचिह्नों के इधर-उधर छलांगे लगाता हुआ उन्हें उलझा देता है। इससे वह भेड़ियो और लोमड़ियों जैसे अपने अनेकानेक शत्रुओं से अपने को बचाये रख सकता है।

शश को उसकी गंध से ढूंढ लेना भी मुश्किल होता है क्योंकि उसके बहुत कम स्वेद-ग्रंथियां होती हैं। ये पंजो पर होती हैं और इसी कारण कुत्ते शश को उसके पदचिह्नों के सहारे ढूढ निकालते हैं। सुविकसित श्रवणेंद्रियों और सिर के दोनो ओर स्थित आंखों के सहारे शश समय पर अपने शत्रुओं की आहट पा सकता है।

गरमियो मे दो या तीन बार शश की मादा बच्चे देती है। शशक के विपरीत शश मांद नही खोदते। इनके बच्चे पैदाइश के समय शशक के बच्चों से अधिक परिवर्द्धित होते है। वे देख सकते हैं, उनके कान जन्म से ही सीधे खड़े होते है और उनकी त्वचा मोटे भूरे फर मे ढकी रहती है। नवजात शश मां का दूध (जो गाय के दूध से छ: गुना गाढ़ा होता है) आकंठ पी लेने के बाद घास के बीच किसी सूराख़ मे छिप जाते हैं और दो-चार दिन वही पड़े रहते हैं। अपने रंग के कारण और गंध के अभाव के कारण वे अच्छी तरह छिपे रह सकते हैं। तीन-चार दिन बाद भूख लगने पर वे अपने आश्रय-स्थान से बाहर आते है और अपनी मां या दूसरी मादा को ढूंढकर फिर भरपेट दूध पी लेते हैं। आठवें या नवें दिन उनके दांत निकलते हैं और वे घास खाने लग जाते है।

अधिकतर दक्षिण के वनरहित प्रदेशों में भूरा शश मिलता है। भूरा शश सफ़द शश से बड़ा होता है और उसकी रंग-रचना भिन्न होती है। जाड़ों के आरंभ

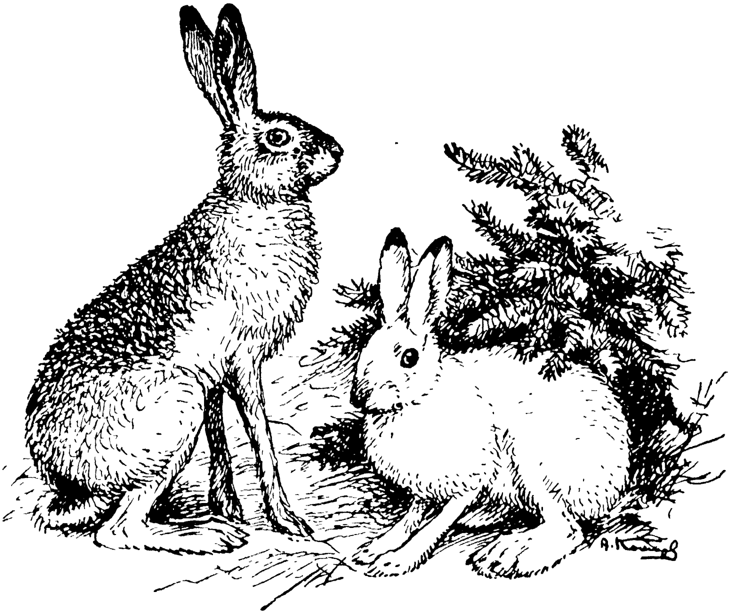

आकृति १४६ – शश
बायें – भूरा शश, दाहिने – सफेद शश।

मे केवल उसकी बग़लें सफेद हो जाती है, पर पीठ भूरी ही बनी रहती है। जाड़ों मे हल्की हिम-वर्षा वाले स्थानों में रक्षा की दृष्टि मे यह रंग-रचना बड़ी काम की है।

भूरा शश कभी कभी बडी हानि पहुंचाता है। वह फल-बागों में पेड़ों की छाल खा जाता है।

गोफर नुक़सानदेह कुतरनेवाले प्राणियो मे सबसे त्रासदायी कृषिनाशक प्राणी – विशेषकर रूस के दक्षिणी हिस्सों में – गोफर है। उदाहरणार्थ टप्पेदार गोफर (रंगीन चित्र ३) को लो।

गोफर स्तेपियों के विशिष्ट निवासी है। काली मिट्टीवाले प्रदेशों में ये बहुत बड़े पैमाने पर फैले हुए हैं। गरमियों में गोफर आम तौर पर सड़क के किनारे अपनी पिछली टांगों के बल बैठे हुए नज़र आते हैं। संकट की ज़रा-सी आशंका होते ही वे भागकर ज़मीन के नीचे खोदी गयी मांदों में छिप जाते हैं।

गोफर का भोजन है पौधे। वे अनाज के दानों और खाद्यान्न की फ़सलों की डंडियों पर मुह मारते हैं। जिन खेतों में गोफर बड़ी संख्या में होते हैं वहां की फ़सल में काफ़ी घाटा आता है।

जाड़ों में जब खेत और स्तेपी के मैदान बर्फ की चादर ओढ़ लेते है और भोजन की कमी होती है तो गोफर अपनी मांदों में सुषुप्तावस्था में मग्न हो जाते हैं। मांद का द्वार वे मिट्टी से बंद कर देते है। उस समय उनकी जीवन प्रक्रियाएं काफ़ी कम सक्रिय होती हैं। उनका श्वसन और हृदय-स्पंदन मंदा पड़ जाता है; शरीर का तापमान ४ सेंटीग्रेड पर पहुंच जाता है और उपापचय बहुत धीरे धीरे चलता है। सुषुप्तावस्था में मग्न गोफर इतना जड हो जाता है कि कहना मुश्किल होता है कि वह ज़िंदा है या नही।

सुषुप्तावस्था से जागृत होने के तीन-चार सप्ताह के अंदर मादा छः से आठ या अधिक बच्चे देती है। बच्चे अंधे होते है। मा उनके लिए माद की गहराई में घोंसला बनाती है। गोफर के बच्चे बडी तेजी से बडे होते है और पैदाइश के एक महीने बाद ही अपना स्वतंत्र जीवन बिताने लगते है। वे अपने लिए नयी मांद खोद लेते है।

इधर काली मिट्टीवाली स्तेपियो में ठप्पेदार गोफरो की मात्रा घटने लगी है। उनके विरुद्ध क़दम उठाये गये और कोलखोजो में कोई ऐसी अनजोती ज़मीन नहीं रही जहां ये प्राणी मादें बना सके और बच्चे पैदा कर सकें।

सोवियत संघ की दक्षिण-पूर्वी स्तेपियो मे एक और प्राणी खेती को बहुत बड़ा नुक़सान पहुंचाता है। यह है छोटा गोफर। यह न केवल फसलो का बल्कि चरागाहों का भी सत्यानाश कर डालता है। मवेशियो के लिए जरूरी बढ़िया घास वह चट कर जाता है। इसके अलावा गोफरो की मादों से उखाड़ी गयी मिट्टी में उगी हुई घास मवेशियो के लिए उपयुक्त नही होती।

घूसें और चूहे घूसे और चूहे बडे बदनाम अनाज-चोर है और सब जगह पाये जाते है। दोनों तथाकथित मूषक समान कुतरनेवाले प्राणियों की श्रेणी में शामिल है।

कत्थई घूस उसके बड़े आकार के कारण चूहे से अलग पहचानी जा सकती है। उसकी लंबी पूंछ पर शल्क होते हैं और उनके बीच छोटे छोटे बाल।

घूस फ़र्श के नीचे, तहख़ानों में और दीवारों में गुप्त-सा जीवन बिताती है। अपने तेज़ सम्मुख दंतों से वह लकड़ी को कुतरकर आने-जाने के लिए कई सूराख़ बनाती है। स्टीमरों की पेंदियों में घुसकर ये प्राणी सारे संसार में फैल जाते हैं।

घूसें तरह तरह की वनस्पतियां, अनाज और प्राणिज पदार्थ खाती हैं। गोदामों और घरों में घुसकर ये बड़ा नुक़सान पहुंचाती हैं।

कत्थई घूस की पूरी ज़िंदगी दो-तीन वर्ष की होती है, पर यह जल्दी जल्दी बच्चे पैदा करती है। मादा साल में चार-पांच बार बड़ी संख्या में (हर समय छः से आठ) बच्चे देती है। उनके लिए वह घोंसला बनाती है। बच्चे अंधे, बालों से ख़ाली और असहाय होते हैं। वे जल्दी बड़े होते हैं और तीन महीने के अंदर अंदर ख़ुद बच्चे पैदा कर सकते हैं।

एक और हानिकर कुतरनेवाला प्राणी है घरेलू चूहा। यह मनुष्य को बड़ी घूस जितना ही नुक़सान पहुंचाता है।

खेतों में चूहे जैसे कई कुतरनेवाले प्राणी रहते हैं। इनका एक उदाहरण है धानी चूहा। घरेलू चूहे से यह इस माने में भिन्न है कि इसकी कत्थई पीठ पर एक काली धारी होती है। भूरे धानी चूहे की पूछ अपेक्षतया छोटी होती है।

घूसें और गोफर इसलिए भी बडे खतरनाक हैं कि वे प्लेग जैसी भयंकर महामारी फैलाते हैं।

सूअर-घूस या बेंडीकूट

साधारण चूहों और घूसों के अलावा भारत में सूअर-घूसें भी मिलती हैं। यह एक बड़ी घूस है। उसकी लंबाई ६० सेंटीमीटर तक और वज़न एक किलोग्राम से अधिक हो सकता है। उसकी मोटी फ़र ऊपर की ओर ख़ाकी लिये काली और नीचे की ओर भूरी-सी होती है। सूअर-घूस ज़मीन में रहती है और वहां लंबी लंबी सुरंगें बनाती है। पेड़ों की जड़ों को वह तहस-नहस कर देती है। वह इमारतों के नीचे भी मांदें बनाती है और मिट्टी के बांध आदि को नष्ट करके काफी नुक़सान पहुंचाती है। वह वनस्पति-भोजन पर निर्वाह करती है।

वह रात में मांद से बाहर निकलती है और फलों और यहां तक कि मुर्ग़ी-बत्तखों तक को उड़ा ले जाती है। सूअर-घूस भी पिस्सुओं के ज़रिये प्लेग की भयंकर महामारी फैला सकती है। कुतरनेवाले अन्य प्राणियों की तरह सूअर-

घूस भी जल्दी जल्दी बच्चे पैदा करती है और हर बार दस से अधिक बच्चे। इस अत्यंत हानिकर प्राणी का निर्दयता से नाश करना चाहिए।

पोरक्यूपाइन

कुतरनेवाले प्राणियों में से एक और है भारतीय पोरक्यूपाइन। इसकी पीठ पर और बगलो में लंबे और तेज़ कांटे होते है। पूछ के सिरे में कांटे पोले होते हैं और सिरों पर खुलते हैं। इनकी मदद से पोरक्यूपाइन अपने शत्रुओं को डराने के लिए शोर पैदा करता है। अगर शत्रु उसका पीछा जारी रखता है तो पोरक्यूपाइन रुक जाता है और अपने कांटे पीछा करनेवाले प्राणी के शरीर में गड़ा देता है। ये कांटे इतने तेज़ होते हैं कि त्वचा में घुस जाते है। इस प्रकार ये कांटे शत्रु से बचाव का एक अच्छा साधन है। वे बालो का ही एक परिवर्तित रूप है।

पोरक्यूपाइन रात्रिचर प्राणी है। वे पहाड़ियों में बनायी गयी मांदों में दिन का समय बिताते है। यह इन प्राणियों का मनपसंद वासस्थान है। इसी कारण भारत में बड़े पैमाने पर फैले हुए होने पर भी पोरक्यूपाइन विरले ही दिखाई पडते हैं। सूर्यास्त के बाद वे भोजन की खोज में निकलते है। कुतरनेवाले अन्य प्राणियों की तरह पोरक्यूपाइन भी विभिन्न वनस्पति भोजन पर निर्वाह करते हैं। खेतों और बगीचों मे लगाये गये पौधो को नष्ट करके वे गहरा नुक़सान पहुंचाते है।

पोरक्यूपाइन हर बार दो-चार बच्चे देता है। पैदाइश के समय बच्चों के शरीर पर छोटे और मुलायम कांटो की परत होती है।

कुतरनेवाले प्राणियों के विरुद्ध उपाय

हानिकारक कुतरनेवाले प्राणियों के विरुद्ध जोरदार लड़ाई की जा रही है। उन्हें तरह तरह के फदो, जालो और मूसादानियों मे पकड़ा जाता है, मांदों ही में नष्ट कर दिया जाता है, जहरीले चारे की मदद से (उदाहरणार्थ, जहरीली जई खिलाकर) मार डाला जाता है।

इनके विनाश का बायोलोजिकल तरीक़ा भी अपनाया जाता है। यह है इन प्राणियों के प्राकृतिक शत्रुओं की रक्षा। इनमें शिकारभक्षी पक्षी, साही, गंधबिलाव इत्यादि शामिल हैं। इस तरीक़े का महत्त्व इस बात से स्पष्ट है कि स्तेपियों के गंधबिलाव का एक एक परिवार सालाना ८०० गोफरों का नाश करता है। वह गरमियों और जाड़ों में उनकी मांदों में घुसकर यह काम करता है।

कुतरनेवाले प्राणियों की रोक-थाम संबंधी कार्रवाइयां बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से कुछ यों हैं – गोदामों में इस प्रकार माल व्यवस्थित रखना कि कुतरनेवाले प्राणी वहां पहुंच न पायें, समय पर और सावधानी से फ़सल की कटाई।

कुतरनेवाले प्राणियों का वर्गीकरण

गिलहरियों, शशों, गोफरों, घूसों और चूहों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उनमें कई समान लक्षण हैं। ये सभी प्राणी वनस्पति-भोजन खाते हैं। उनके दांतों की संरचना एक-सी होती है – सम्मुख दंत जबड़ों में गहरे गड़े रहते हैं; कुतरते समय वे तेज होते हैं और बराबर बड़े होते रहते हैं, चर्वण-दंतों में चौड़ी चबानेवाली सतह होती है; सुग्रा-दांतों का अभाव रहता है। अन्य समान लक्षण भी देखे जा सकते हैं – अपेक्षतया छोटा आकार, शीघ्रता से जनन। इन सभी कारणों से गिलहरियों, शशों, गोफरों, घूसों और चूहों तथा उन्ही के जैसे लक्षणों वाले अन्य प्राणियों को कुतरनेवाले प्राणियों की श्रेणी में रखा जाता है।

इसी प्रकार कई समान लक्षणों के कारण छछूंदर और साही को कीटभक्षी स्तनधारियों और विभिन्न चमगादड़ों को काइराप्टेरा की श्रेणी में गिना जाता है।

एक श्रेणी में शामिल प्राणियों के सभी लक्षण समान नही होते। इस प्रकार कुतरनेवाले अन्य प्राणियों मे शश और शशक न केवल बाह्य स्वरूप की दृष्टि से पर इस लिए भी भिन्न है कि इनके ऊपरवाले जबडे के बड़े सम्मुख दंतों के पीछे एक जोड़ा छोटे सम्मुख दंत भी होते है। इन प्राणियों के बड़े सम्मुख दंतों पर आगे और पीछे दोनों ओर इनैमल की परत होती है। कुतरनेवाले अन्य प्राणियों के दातों पर सिर्फ़ आगे की ओर इनैमल होता है। शशों और शशकों को शश कुल मे रखा जाता है इसके कुछ अन्य लक्षणात्मक कारण भी हैं। गिलहरियों और गोफरों से गिलहरी कुल बनता है।

चूहो और घूसो को उनकी परस्पर समानता और शश तथा शशकों से भिन्नता के कारण मूषक कुल मे रखा जाता है।

दूसरी ओर एक ही कुल के प्राणियों में भी भिन्नता होती है। उदाहरणार्थ, शशक मांद में घोंसले बनाता है और उसके बच्चे पैदाइश के समय अंधे होते हैं; तो शश मांद नही बनाता और पैदाइश के समय उसके बच्चों के दृष्टि होती है और फ़र भी। इस कारण कुलों को जातियों में विभक्त किया जाता है। शश कुल मे दो जातियां है – शशक जाति और शश जाति।

कुतरनेवाले प्राणियों का वर्गीकरण

वर्ग	श्रेणी	कुल	जाति	प्रकार
स्तनधारी	कुतरनेवाले	शश	शश	सफ़ेद शश
				भूरा शश
			शशक	जंगली शशक
		मूषक	चूहे	घरेलू चूहा
				धानी चूहा
			घूसे	भूरी घूस
				काली घूस
		गिलहरी	गिलहरी	साधारण गिलहरी
				धारीदार गिलहरी
			गोफर	ठप्पेदार गोफ़र
				छोटा गोफर
		पोरक्यूपाइन	पोरक्यूपाइन	पोरक्यूपाइन

शशों के प्रकार हैं – सफ़ेद शश और भूरा शश। सफ़ेद शश जंगलों में रहता है, जाड़ों के शुरू में उसके सफ़ेद फर निकलती है, उसके पंजे चौड़े और अधिक बालदार होते हैं जोकि भुरभुरी बर्फ़ पर चलने के लिए अनुकूल हैं। भूरा शश सफ़ेद शश से बड़ा होता है, वन्य-स्तेपियों और स्तेपियों में रहता है और जाड़ों के समय उसका रंग अंशत: बदलता है। ये शश विभिन्न प्रकारों में आते हैं। एक को कहते हैं सफ़ेद शश प्रकार और दूसरे को भूरा शश प्रकार।

प्राणी के हर प्रकार का दोहरा नाम होता है (सफ़ेद शश, भूरा शश)। नाम का दूसरा शब्द प्राणी की जाति सूचित करता है जबकि पहला शब्द – प्रकार। ऐसे

दोहरे नामो की प्रणाली १८ वी शताब्दी में विख्यात स्वीडिश वैज्ञानिक लिन्नेय (१७०७-१७७८) ने शुरू की।

कुतरनेवाले प्राणियों के अन्य कुल भी जातियों और प्रकारो मे विभाजित किये जाते है। उदाहरणार्थ मूषक कुल घूस जाति और चूहा जाति में बंटा हुआ है। घूस जाति भूरी घूस और काली घूस इन दो प्रकारों में और चूहा जाति घरेलू चूहा और धानी चूहा इन दो प्रकारों में विभाजित है। गोफर जाति के भी दो प्रकार है– ठप्पेदार गोफर और छोटा गोफर।

प्रत्येक प्रकार मे ऐसे प्राणी आते है जो सभी लक्षणो मे अधिक से अधिक समानता रखते है।

प्रश्न – १. किन लक्षणो से यह सूचित होता है कि गिलहरी की संरचना पेड़ पर के जीवन के अनुकूल है? २. भारतीय धारीदार गिलहरी और साधारण गिलहरी के बरताव मे क्या फ़र्क है और उसका कारण क्या है? ३. पोरक्यूपाइन के कांटे क्या काम देते है? ४ सफेद शश का शरीर जाड़ों में सफ़ेद फ़र से ढंकता है इसका क्या महत्त्व है? ५. जाड़ों में गोफर सुषुप्तावस्था में क्यों रहते है जब कि गिलहरी सक्रिय रहती है? ६. कुतरनेवाले प्राणियों के ख़िलाफ़ कौनसे क़दम उठाये जाते हैं? ७. हमने कुतरनेवाले जिन प्राणियों का अध्ययन किया उनका विभाजन किन कुलों, जातियों और प्रकारों मे किया जाता है?

व्यावहारिक अभ्यास – 'कुतरनेवाले प्राणियों के वर्गीकरण' की सारणी स्मरण से अपनी कापी में लिखो।

§ ७६. शिकारभक्षी प्राणियों की श्रेणी

शिकारभक्षी (हिंसक) स्तनधारी मुख्यतया प्राणि-भोजन पर निर्वाह करते हैं और अधिकतर ज़िंदा शिकार मारकर खाते है। मांसभक्षी प्राणियों में बिल्ली, भेड़िया, कुत्ता, लोमड़ी, भाल इत्यादि शामिल हैं।

पालतू बिल्ली

पालतू बिल्ली जंगली अफ़्रीकी बिल्ली के वंश में पैदा हुई है। मनुष्य ने चूहों और घूसों का नाश करने के लिए इस प्राणी को साध लिया। स्वाभाविक ही पालतू बिल्ली में ज़िंदा शिकार मारनेवाले शिकारभक्षी प्राणियों की सभी आदतें बनी रही हैं।

चूहे पकड़ते समय पालतू बिल्ली अपने जंगली पुरखों की तरह ही घात लगाये रहती है, दबे पांव अपन शिकार के पास पहुंचती है और फिर उसे पकड़ने के लिए आगे झपट पड़ती है। बिल्ली को अपना शिकार पकड़ने में सुविकसित ज्ञानेंद्रियों से बड़ी सहायता मिलती है। बिल्ली की चल कर्ण-पालियां चूहे की हल्की-सी आहट भी सुन लेती हैं। आंखों की पुतलियां दिन के समय खड़ी सिकुड़ी हुई रहती हैं पर रात को फैलकर बड़ी हो जाती हैं। इससे बिल्ली न केवल दिन में बल्कि झुटपुटे में और रात में भी अच्छी तरह देख सकती है। शिकार में स्पर्शेंद्रियां भी अच्छी खासी मदद देती हैं; ये हैं मुंह और आंखों के इर्द-गिर्दवाले सख्त बाल – 'गलमुच्छे' और 'भौंहें'।

बिल्ली के पंजों पर मुलायम चमड़ीनुमा गद्दियां होती हैं जिससे वह ज़रा-सी भी आहट न देते हुए अपने शिकार के पास पहुंच सकती है। बिल्ली अपने तेज नखरों से शिकार को पकड़ रखती है। ये नखर पीछे की ओर झुके हुए और सभी अंगुलियों से जुड़े हुए होते हैं। चलते और आराम से खड़े रहते समय ये नखर गद्दियों के ऊपरवाले संपुटों में दबे रहते है। ऐसी हालत में वे जमीन का स्पर्श नहीं करते और खोंटे नहीं होते।

बिल्ली अपने शिकार को अपने तेज और बड़े सुआ-दातों से मार डालती है। ये शंकु के आकार के होते है। बिल्ली अपने चर्वण-दंतों से शिकार के टुकड़े टुकड़े कर देती है (आकृति १४७)। चर्वण-दंतों की सतह कुतरनेवाले प्राणियों की तरह चौड़ी नहीं होती बल्कि उनमें तेज उठाव या छोटे छोटे दांते होते है। हर तरफ़ के दो चर्वण-दंत विशेष बड़े होते है। ये श्व-दंत कहलाते हैं। उपरले श्व-दंत का तेज़ किनारा कैंची के फल की तरह निचले श्व-दंत की बाहरी सतह से सटा रहता है। इन दांतों से बिल्ली शिकार की पेशिया और कंडराएं (Tendon) आसानी से काट सकती है। बिल्ली के सम्मुख दंत छोटे होते है। अन्य सभी शिकारभक्षी प्राणियों में भी दांतों की संरचना ऐसी ही होती है।

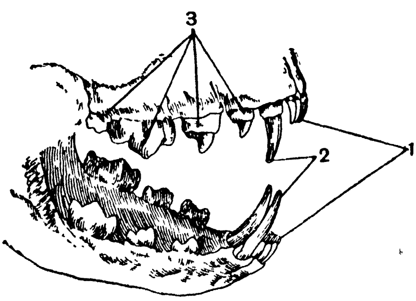

आकृति १४७ – बिल्ली का जबड़ा, दांतों सहित
१ (1). सम्मुख दंत; २ (2). सुआ-दांत; ३ (3). चर्वण-दंत।

अन्य सभी शिकार-भक्षी प्राणियों की तरह बिल्ली की आंत भी कुतरनेवाले प्राणियों की आंत की तुलना में छोटी होती है। प्राणि-भोजन अधिक पोषक होता है और आसानी से पचाया जा सकता है। बिल्ली में सीकम अल्पविकसित रहता है।

सभी शिकारभक्षी प्राणियों की तरह बिल्ली का भी मस्तिष्क कुतरनेवाले प्राणियों की अपेक्षा सुविकसित होता है। इसका संबंध दौड़ते शिकार को पकड़ने से है। अग्रमस्तिष्क के गोलार्द्धों की सतह सिलवटों से ढंकी होती है जिससे कोरटेक्स की सतह बढ़ती है। बिल्ली में नियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाएं आसानी से विकसित हो सकती हैं। उदाहरणार्थ, यदि हम अपने भोजन के समय बिल्ली को खिलाते जायें तो वह थालियों की पहली झनक सुनते ही खाने की मेज की ओर दौड पड़ती है, यहां तक कि यदि वह उस समय सोयी हुई हो तो फौरन जाग पड़ती है। बिल्ली को उसके नाम से पुकारने पर वह झट दौड़ आती है। बिल्ली के बच्चों को अच्छे कौर खिलाकर तुम उसे तरह तरह के करतब सिखा सकते हो।

बिल्ली को अक्सर दुलपित्ती की बीमारी होती है और आदमी उसकी त्वचा का स्पर्श करे तो उसे भी आसानी से इसकी छूत लग सकती है। अतः ऐसी बिल्लियों को हाथों में नही लेना चाहिए और उनसे नही खेलना चाहिए।

भेड़िया भेड़िया जंगली बिल्ली से अलग तरीके से शिकार करता है (आकृति १४८)। वह अपने शिकार का पीछा करता है और फिर उसे दबोच लेता है। शिकार की खोज में भेड़िया हर रोज दर्जनो किलोमीटर दौड़ सकता है। उसकी टांगें बिल्ली की टांगों से लंबी होती हैं और लंबी दौड़ के अनुकूल। भेड़िये के पंजों के नखर खोंटे और पीछे न दबनेवाले होते हैं। उसकी सुविकसित घ्राणेंद्रियां शिकार की खोज में उसकी सहायता करती हैं।

भेड़िये के दांत आम शिकारभक्षी प्राणियों जैसे यानी बिल्ली के जैसे ही होते हैं। लेकिन जबड़े उसके बिल्ली की अपेक्षा लंबे होते हैं और उनमे ज़्यादा चर्वण-दंत होते हैं।

भेड़िये की मादा हर वसंत में चार से नौ तक बच्चे देती है। शरद में ये बच्चे वयस्क भेड़ियों के साथ स्वयं शिकार करने लगते हैं।

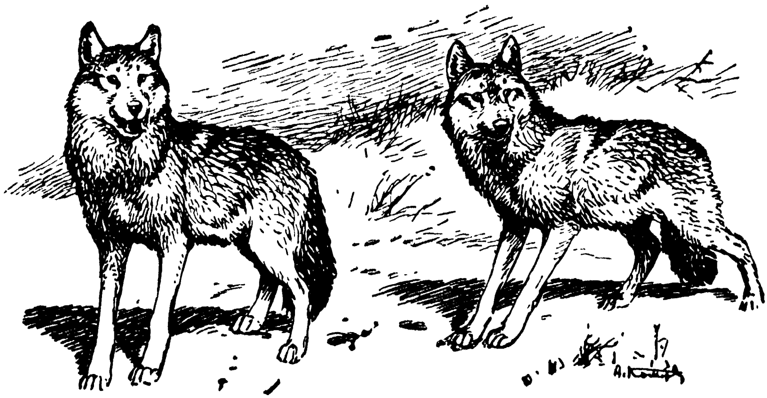

आकृति १४८ – भेड़िये।

भेड़िये बडे हानिकर शिकारभक्षी प्राणी हैं। वे बड़े पैमाने पर मवेशियो और विशेषकर भेड़ों को खा जाते हैं। सोवियत संघ में भेड़ियों के खिलाफ ज़ोरदार संघर्ष किया जा रहा है। उन्हे फंदों में फंसाया जाता है और हवाई जहाज़ों से गोली से मार डाला जाता है। हर मारे गये भेडिये पर उसकी खाल के दामों के अलावा नक़द इनाम दिया जाता है।

कुत्ते

बहुत समय पहले पालतू कुत्ते भेड़ियों से पैदा हुए। उनमें से कुछेक की शक्ल-सूरत उनके जंगली पुरखों से बहुत ही मिलती है। जर्मन शीप-डॉग इसका एक उदाहरण है। भेड़ियों की तरह कुत्तों के भी मज़बूत टांगें और लंबी थूथनी होती है और वे अपने शिकार का पीछा करके उसे पकड़ लेते हैं।

मनुष्य ने कुत्तों की प्रकृति बदल दी और अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उनकी कई नस्लें पैदा करायी (आकृति १४६)। कुत्तों की नस्लें आकार, शरीर के गठन, रंग-रचना और फ़र की दृष्टि से भिन्न होती हैं।

कुत्ते आसानी से नियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाएं अपनाते हैं और विभिन्न कामों के लिए उन्हें सिखाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, खोजी कुत्ते अपराधियों को उनके पदचिह्नों से ढूढ लेते हैं। युद्ध के दौरान तो कुत्तों को टैंक उड़ा देना तक सिखाया गया था। इसके लिए उन्हें टैंक के कैटरपिलरों के नीचे खुराक खाने की आदत डलवायी गयी थी।

आकृति १४६—विभिन्न नस्लों के कुत्ते

१ (1). हस्की ; २ (2). डच हाउंड ; ३ (3). बुलडाग ; ४ (4). ग्रे-हाउंड ; ५ (5). सेंट बर्नार्ड ; ६ (6). बोलोनीज ।

भूरा भालू

दांतों की संरचना के कारण भूरा भालू शिकारभक्षी प्राणियों की श्रेणी में आता है। फिर भी है वह सर्वभक्षी प्राणी। वह प्राणि-भोजन खाता है और वनस्पति-भोजन भी (रंगीन चित्र २)।

भालू घने जंगलों का निवासी है। यह आकार में बड़ा और दीखने में बेढंगा होता है। फिर भी वह काफ़ी तेज़ दौड़ता है और पेड़ों पर चढ़ सकता है। यह जानवर अपने पैरों और हाथों के सहारे चलता है। इन अंगों पर बाल नहीं होते। यह जानवर पैर के पूरे तलवे के सहारे चलता है और इस माने में वह दूसरे शिकारभक्षी प्राणियों से भिन्न है क्योंकि वे अपनी अंगुलियों पर खड़े रहते हैं। भालू केवल पिछले पंजों के बल भी चल सकता है। पंजों का उपयोग वह बचाव और हमले के लिए करता है।

भालू की सर्वभक्षी आदते उसके दांतो की संरचना मे प्रतिबिंबित हैं। उसके सुआ-दांत अन्य शिकारभक्षियों के जैसे ही बड़े और तेज़ होते है पर चर्वण-दंतों में बिल्ली की अपेक्षा अधिक खोंटे उठाव होते है। चर्वण-दंतों का उपयोग वनस्पति-भोजन चबाने मे होता है।

जाड़ों में जब भोजन की कमी होती है तो भालू कही पेड़ों की जड़ों के बीच बनायी गयी मांद में छिप जाता है। उस समय वह शरद में अपने शरीर में इकट्ठी की गयी चरबी के सहारे निर्वाह करता है। भालू वस्तुत: सुपुप्तावस्था में नही रहता। उसे यदि परेशान किया जाये तो वह जाड़ों में भी अपनी मांद से बाहर चला आता है। मादा भालू जाडो के मध्य में अपनी मांद में तीन या चार बच्चे देती है। वे वसंत तक बहुत ही धीरे धीरे बड़े होते है।

शिकारभक्षी प्राणियों का वर्गीकरण

शिकारभक्षी श्रेणी के प्राणी उनके दांतों से आसानी मे पहचाने जा सकते है। उनके सुआ-दांत बड़े सुविकसित होते है जबकि चर्वण-दंत आम तौर पर दांतेदार। यह श्रेणी निम्नलिखित कुलों में विभाजित है – (१) बिडाल-दंत (बिल्लियां, बाघ, सिंह, चीते, शिकारी चीते); (२) श्व-दंत (कुत्ते, भेड़िये, लोमड़ियां, सियार); (३) भल्लुक-दंत (भूरा भालू, मंदगामी भालू, सफ़ेद भालू); (४) मारटेन (एरमाइन, मारटेन और सैबल जैसे क़ीमती फ़रदार जानवर); (५) नेवले।

प्रश्न – १. कौनसे संरचनात्मक लक्षणों के कारण बिल्ली को शिकारभक्षी प्राणी माना जाता है? २. भेड़िये और बिल्ली के शिकार करने के तरीक़े में क्या फ़र्क़ है? ३. भालू की सर्वभक्षी आदतें उसके दांतों की संरचना में किस प्रकार प्रतिबिंबित हैं? ४. शिकारभक्षी श्रेणी किन कुलों में विभाजित है?

व्यावहारिक अभ्यास – १. पाठ्य पुस्तक में दिये गये वर्णन की सहायता से बिल्ली के बाह्य स्वरूप का निरीक्षण करो। २. देखो, क्या सचमुच बिल्ली की घ्राणेंद्रियां और श्रवणेंद्रियां सुविकसित होती हैं? (खोज के अपने तरीक़े का उपयोग करो)। ३. बिल्ली के बरताव पर नजर रखो और निश्चित करो कि उसकी कौनसी प्रतिवर्त्ती क्रियाएं आनुवंशिक हैं और कौनसी अर्जित।

§ ७७. भारत के शिकारभक्षी प्राणी

भारत में विविध प्रकार के शिकारभक्षी प्राणी बहुत बड़ी संख्या मे रहते हैं। पहले बड़े बड़े शिकारभक्षी प्राणी अतिविशाल मात्रा मे विद्यमान थे और उनसे लोगो को बड़ी हानि पहुंचती थी। आज वे बहुत कुछ नष्ट हो चुके हैं।

बिल्ली कुल में सर्वप्रसिद्ध और सबसे बडे पैमाने पर फैले हुए प्राणी बाघ और चीता है।

बाघ

बाघ शिकारभक्षी प्राणियो मे सबसे बड़ा जानवर है। उसका वजन १५०-२०० किलोग्राम तक हो सकता है। यह उत्तर और मध्य भारत के घने घास मैदानों और जंगलों मे रहता है (आकृति १५०)।

बाघ की फर पीला लिये कत्थई होती है और उसके सारे शरीर पर आड़ी काली धारियां होती हैं। इस रंग-रचना के कारण उसे पेड़-पौधों के बीच पहचानना मुश्किल होता है क्योंकि ये धारियां पौधों की डंडियों की परछाइयां-सी लगती हैं।

यह बड़ा जानवर बारहसिंगों, हरिणों, जंगली सूअरों जैसे बड़े बड़े शिकार मारता है और गायों, घोड़ों जैसे पालतू प्राणियों पर भी मुह मारता है। कुछ खुर्राट बाघ तो आदमी तक को चट कर जाते है।

बाघ रात में शिकार के लिए निकलते है और उसकी खोज में काफ़ी लंबा फ़ासला तय करते हैं। शिकार के नज़र आते ही बाघ दबे पांव उसकी ओर बढ़ता है और फिर उसपर झपटकर उसका काम तमाम कर देता है। बाघ में शिकारभक्षी

जीवन की अच्छी अनुकूलताएं होती हैं। उसके होते हैं सशक्त और चपल शरीर, अंदर दबनेवाले तेज़ नखरों सहित मज़बूत टांगें और बड़े बड़े सुआ-दांत सहित तेज दांत। उसका रंग ऐसा होता है कि जंगलों में वह मुश्किल से पहचाना जा सकता है। बाघ का बरताव भी शिकार पकड़ने के अनुकूल होता है।

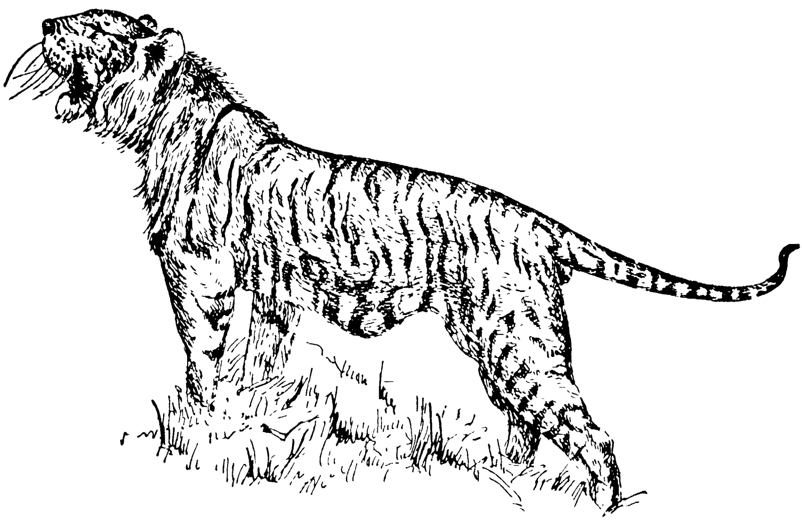

आकृति १५० – बाघ।

नुक़सानदेह और खतरनाक जानवर होने के कारण बाघों का शिकार किया जाता है और हर मारे गये बाघ पर इनाम दिया जाता है।

चीता

बिल्ली कुल का एक और शिकारभक्षी प्राणी है चीता। इसकी ताकत बाघ से कम होती है पर चपलता अधिक। बाघ के विपरीत चीता पेडो पर अच्छी तरह चढ सकता है। अपने शिकार (तरह तरह के जंगली और पालतू जानवर, जिनमें कुत्ता भी शामिल है) पर हमला करते समय चीता लंबी छलांगें लगाता है।

बाघ की अपेक्षा चीते का फैलाव अधिक है और वह ज़्यादा अक्सर पाया जाता है। मध्य भारत के जंगली इलाकों मे वह विशेष तौर पर पाया जाता है।

बाघ की तरह चीते की रंग-रचना भी उसके लिए बचाव का एक साधन है। उसकी चमड़ी ललाई लिये पीली होती है और उसपर होती हैं काली चित्तियां। आसाम और त्रिवांकूर राज्यों में काले तेंदुए पाये जाते हैं।

सिंह भारत में सिंह भी पाये जाते हैं। पहले उनकी संख्या बड़ी थी पर अब वे केवल काठियावाड़ के प्रायद्वीप में पाये जाते हैं। अफ़्रीकी सिंहों के विपरीत भारतीय सिंहों के अयाल नही होती।

शिकारी चीता बिल्ली कुल में शिकारी चीता भी शामिल है (आकृति १५१)। बाघ, चीते और सिंह से शिकारी चीता इस माने में भिन्न है कि ये जानवर दबे पांव अपने शिकार की ओर बढ़ते हैं, उसपर अचानक धावा बोल देते हैं जबकि चीता अपने शिकार का पीछा करके तब उसे दबोच लेता है। वह बहुत तेज़ दौड़नेवाले बारहसिंगे तक को मात दे सकता है। शिकारी चीते में शिकार का यह तरीक़ा विकसित हुआ इसका कारण यह है कि वह खुले मैदानों में रहता है, जंगलों या घने झाड़ी-झुरमुटों में नहीं। शिकार का तरीक़ा उसकी टांगों की संरचना में प्रतिबिंबित है। उसकी टांगें लंबी होती हैं और उनमें अंदर दबनेवाले नखर नहीं होते।

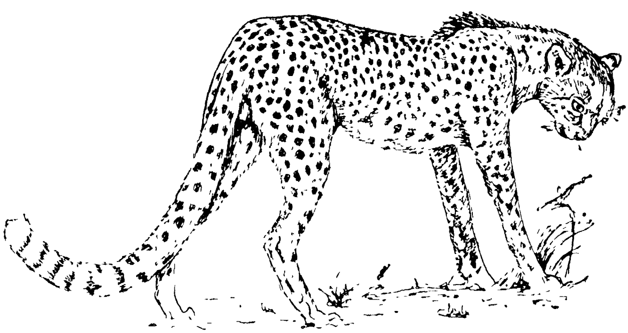

आकृति १५१ – शिकारी चीता।

प्राचीन समय से शिकारी चीते को साधा गया है और बारहसिंगों के शिकार में इस्तेमाल किया जाता है। इसी कारण उसका नाम शिकारी चीता पड़ा।

कुत्ता कुल में से हम भारतीय भेड़िये और सियार का परीक्षण करेंगे।

भारतीय भेड़िया भारतीय भेड़िया भारत के सभी हिस्सों में पाया जाता है। यह साधारण भेड़िये से छोटा होता है पर किसी भी माने में कम ख़तरनाक नहीं होता। वह भेड़-बकरियों और छोटे बच्चों तक पर हमला करता है।

अनपढ़ लोगों का ख़्याल है कि भेड़ियों को नहीं मारना चाहिए क्योंकि जिस ज़मीन पर भेड़िये का ख़ून गिरता है वहां कोई फ़सल नहीं उगती। यह साफ़ साफ़ ग़लत है। अन्य ख़तरनाक जानवरों की तरह भेड़ियों को भी निर्दयता के साथ मार डालना चाहिए।

सियार

भारत में सियार भेड़ियों से ज़्यादा पाये जाते हैं (आकृति १५२)। रात में अक्सर उनकी लंबी, अप्रिय चीखें सुनाई पड़ती हैं। बीच बीच में वे भूंकते हैं। सियार भेड़िये से छोटा होता है। वह सिर्फ़ छोटे छोटे जानवरों और मुर्ग़ी-बत्तख़ों को खाता है पर मृत मांस और मनुष्य की बस्ती

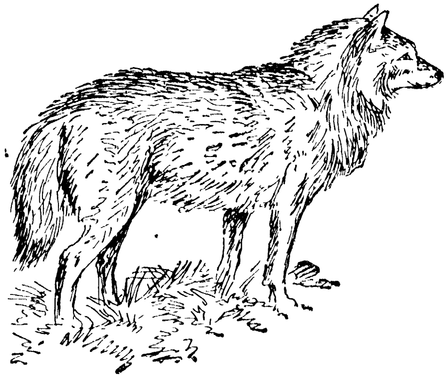

आकृति १५२ – सियार।

के पास पड़ा हुआ सब तरह का कूड़ा-करकट भी उसके भोजन में शामिल है। वह फलों और गन्ने पर भी मुह मारता है। सियार किसी भी माने में भेड़िये से कम ख़तरनाक नही होता।

धारीदार लकड़बग्घा

लकड़बग्घे का अपना पृथक् कुल है (आकृति १५३)। सच्चे शिकारभक्षी प्राणियों के विपरीत यह मुर्दा जानवर खाता है। हां, कभी कभी वह कुत्तों, बकरियों और दूसरे छोटे छोटे प्राणियों का भी शिकार करता है। उसका रंग मटियाला-भूरा होता है और उसके शरीर पर आड़ी काली धारियां होती हैं।

चूंकि लकड़बग्घे को आम तौर पर शिकार का पीछा नहीं करना पड़ता इसलिए उसकी टांगें भेड़िये जितनी मज़बूत नही होतीं। अगली टांगें पिछली

टांगों से लंबी होती हैं। लकड़बग्घे के जबड़े विशेष सुविकसित होते हैं। दांत उसके इतने मज़बूत होते हैं कि वह हड्डियां तक चबा सकता है। मृत मांस हमेशा आसानी से नहीं मिल सकता, अतः लकड़बग्घे के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि जो भी मृत मांस मिले उसे हड्डियों सहित पूरा का पूरा खा जाये।

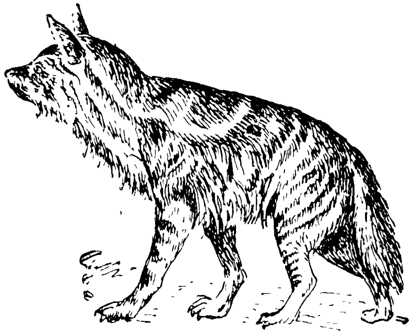

आकृति १५३ – धारीदार लकड़बग्घा।

मंदगामी भालू

हिमालय पर्वत के जंगलों में रहनेवाले काले भालुओं के अलावा भारत मंदगामी भालू का घर है। इस भालू के लंबा थूथुन होता है और उभड़े हुए ओंठ। मटियाला-भूरा चेहरा उसका विशेष लक्षण है। शरीर के अधिकांश बाक़ी हिस्से काले रंग के होते हैं। सिर्फ़ सीने पर घोड़े के नाल जैसा एक चिह्न होता है और नखर सफ़ेद होते हैं। लंबे अंकुड़ीदार नखर भी उसे अन्य भालुओं से अलग दिखाते हैं। मंदगामी भालू अपने नखरों से दीमकों की मज़बूत बांबियां आसानी से उखाड़ देता है और दीमकों के डिंभों और प्यूपों पर मुंह मारता है। वह मधुमक्खियां, बीटल और उनके डिंभ और तरह तरह के फल भी खाता है।

उसके तेज़ नखर मुख्यतया भोजन पाने के साधन का काम देते हैं पर वे शत्रुओं से बचाव करने का साधन भी हैं। नखरों की सहायता से यह भालू पेड़ों पर चढ़ सकता है।

हिमालयी भालू की तरह मंदगामी भालू को भी साधा जाता है और मदारी उसे तरह तरह के करतब सिखाते हैं।

नेवला

शिकारभक्षी श्रेणी में नेवला शामिल है (आकृति १५४)। उरगों से संबंधित अध्याय में इसका उल्लेख सर्प-संहारक के नाते किया गया है।

नेवला एक छोटा प्राणी है। उसकी लंबाई (पूंछ को छोड़कर) ३६-३८ सेंटीमीटर होती है। शरीर लंबा-सा, मुंह गावदुम-सा, टांगें छोटी छोटी और पूंछ लंबी। उसकी झबरीली फ़र का रंग खाकी लिये भूरा होता है और उसपर छोटी छोटी चित्तियां होती हैं।

नेवला घने जंगलों को टालकर झाड़ी-झुरमुटों से सदा हरे भरे खुले मैदानों में रहता है। वह खेतों में और रिहायशी मकानों के पास भी पाया जाता है। इसके बच्चे माता-पिता द्वारा बनाये गये बिलों में पैदा होते हैं।

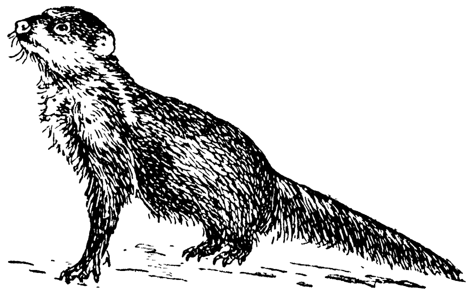

आकृति १५४ – नेवला।

नेवला एक चलता-फिरता चपल प्राणी है और चूहों, घूसों, पक्षियों, पक्षियों के अंडों, छिपकलियों, सांपों तथा कीटों को खाता है। सांप पर हमला करते समय वह आसानी से उसके दंशों से बचता है। सांप से लड़ते समय उसके मोटे बाल खड़े होते हैं और ये भी उसे दंशों से बचाते हैं।

नेवले को आसानी से साधा जा सकता है और है वह बड़ा उपयोगी प्राणी। वह घूसों का सफ़ाया कर डालता है और सांपों से घर की रक्षा करता है। घूसों और चूहों के एक उत्तम संहारक के नाते नेवले भारत से जमैका टापू में आयात भी किये जाते थे।

प्रश्न – १. भारत में कौन कौनसे शिकारभक्षी प्राणी मिलते है? २. शिकारी चीते के कौनसे संरचनात्मक लक्षण शिकार को पीछा करके पकड़ने के उसके तरीक़े से संबंध रखते है? ३. लकड़बग्घे की संरचना में मृत मांस भोजन की प्रवृत्ति किस प्रकार प्रतिबिंबित है? ४. भूरे भालू से मंदगामी भालू किस प्रकार भिन्न है? ५. नेवला हानिकर है या उपयोगी?

§ ७८. पिन्नीपेडा और सिटेसिया श्रेणियां

पिन्नीपेडा और सिटेसिया श्रेणियों में पानी में रहने की अनुकलताओं वाले स्तनधारी शामिल हैं। ये हैं सील और ह्वेल।

पिन्नीपेडा श्रेणी

सील (आकृति १५५) समुद्रों और कुछ झीलों में रहते हैं। यहां उन्हें अपना भोजन मिलता है। मछली उनका भोजन है। सील मार्के के तैराक और ग़ोताख़ोर होते हैं। पर जब आराम करने या बच्चे देने के लिए ज़मीन पर निकल आते हैं तो बड़ी मुश्किल से इधर-उधर घूम-फिर सकते हैं। संकट का ज़रा-सा भी संकेत मिलते ही वे फ़ौरन पानी में चले जाते हैं।

सील का छोटे-से सिर और छोटी-सी गर्दन सहित लंब वृत्ताकार शरीर पानी को आसानी से काटता जाता है। इस प्राणी के अग्रांग और पश्चांग मीन-पक्षों जैसे अंगों में परिवर्तित हो चुके हैं। ये अंग छोटे होते हैं और उनकी अंगुलियां त्वचा की एक परत से जुड़ी रहती हैं। ये मछली के मीन-पक्षों जैसा ही काम देते हैं।

सील के चमकीले बाल छोटे और सख्त होते हैं। त्वचा के नीचेवाली चरबी की सुविकसित परत शरीर को ठंडा पड़ने से बचाती है। सील के कर्ण-पालियां नहीं होतीं। जब सील पानी के नीचे चला जाता है तो उसके कर्ण-द्वार और नासा-द्वार बंद हो जाते हैं।

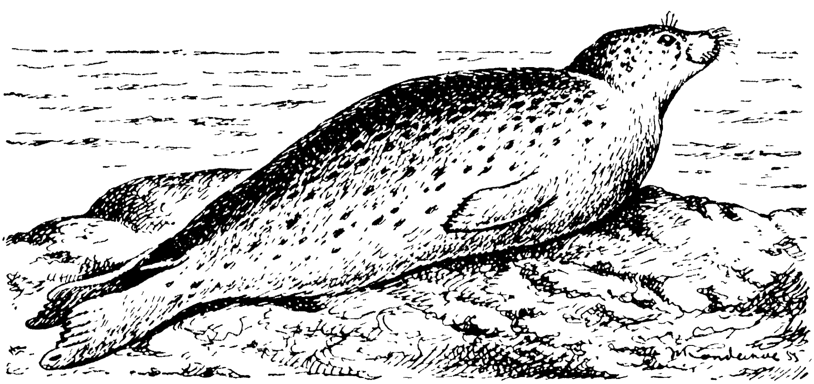

आकृति १५५ – बर्फ़ के तूदे पर सील।

जलचर जीवन के बावजूद सील वस्तुतः स्तनधारी प्राणी हैं। वे उष्णरक्तीय होते हैं, उनके फुफ्फुस और चार कक्षों वाला हृदय होता है और वे वायुमंडलीय हवा में श्वसन करते हैं। सांस लेने के लिए वे कम से कम हर दस मिनट बाद पानी की सतह पर आते हैं। उनके मीन-पक्षों में वैसी ही हड्डियां होती हैं जैसी अन्य स्तनधारियों

के अग्रांगों और पश्चांगों में। सील किनारे पर या बर्फ़ के तूदों पर जीवित बच्चे देते हैं और उन्हें अपना दूध पिलाते हैं। नवजात सील के शरीर पर लंबी, सफ़ेद फ़र का आवरण होता है। वे तैर नहीं सकते और निर्मोचन के बाद ही पानी में रहने लगते हैं। इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि सीलों के पुरखे स्थलचर प्राणी थे और बाद में पानी में जीवन बिताने लगे।

सिटेसिया श्रेणी

सीलों की अपेक्षा ह्वेल जलगत जीवन से कहीं अधिक संबद्ध हैं। ह्वेल पानी के बाहर कभी नहीं निकलते। इस कारण ह्वेलों में सीलों की अपेक्षा बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है। ह्वेल के शरीर का आकार मछली जैसा होता है (आकृति १५६)। सिर धड़ से सटकर जुड़ा रहता है। धड़ क्रमशः गावदुम होता हुआ पूंछ में समाप्त होता है। अग्रांगों का आकार मछली के मीन-पक्षों जैसा ही होता।

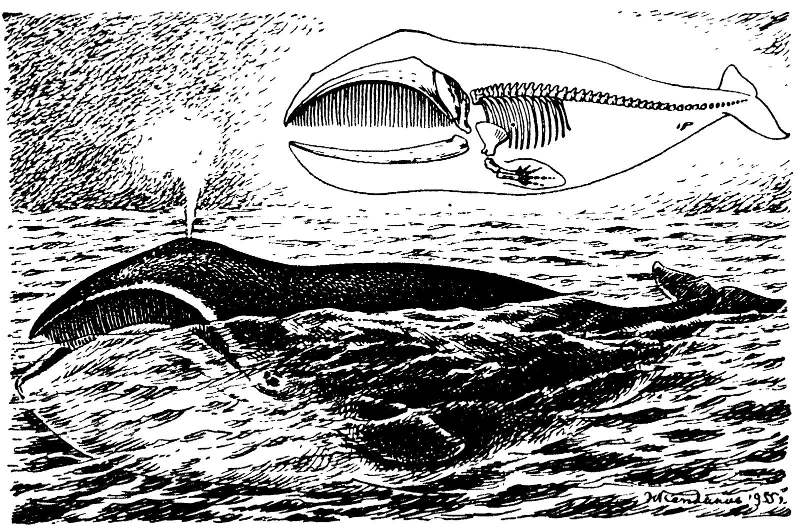

आकृति १५६ – ह्वेल।

पिछले मीन-पक्ष नहीं होते पर श्रोणि के अवशेष दिखाई देते हैं। लंबी पूंछ के अंत में एक दुपल्ला मीन-पक्ष होता है। पर यह आड़ा होता है, मछली की तरह खड़ा नहीं। मीन-पक्ष की ऐसी स्थिति के कारण ह्वेल बड़ी तेज़ी से पानी की सतह के नीचे जा सकता है और ऊपर आ सकता है।

मुंह के इर्द-गिर्दवाले थोड़े-से बालों को छोड़कर ह्वेल के कोई बाल नहीं होते। बालों से ख़ाली चिकने शरीर के कारण वह पानी से कम रगड़ खाता है। त्वचा के नीचेवाली चरबी की मोटी परत ह्वेल के शरीर को ठंडे पड़ने से बचाती है। चरबी पानी से हल्की होती है और ह्वेल के शरीर में चरबी की बड़ी मात्रा होने के कारण उसका विशिष्ट गुरुत्व घटता है।

ह्वेल वायुमंडलीय हवा में सांस लेते हैं। इसके लिए वे हर १०-१५ मिनट बाद पानी की सतह पर आते हैं। सांस छोड़ते समय पानी का फ़व्वारा छूटता है। इससे ह्वेल को सतह पर आते समय फ़ौरन पहचाना जा सकता है। ह्वेल द्वारा छोड़ी गयी सांस में स्थित ठंडा जल-वाष्प और पानी की सतह से आनेवाली झींसी से मिलकर यह फ़व्वारा छूटता है। ह्वेल के फुफ्फुस बहुत बड़े होते हैं और वह काफ़ी मध्यावधि छोड़कर सांस ले सकता है। नासा-द्वार सिर के ठीक ऊपर होते हैं और जब ह्वेल सतह पर उतराता आता है तो सबसे पहले यही पानी के ऊपर निकल आते हैं। पानी के नीचे वे पेशियों के संकुचन के कारण बंद हो जाते हैं। ह्वेल का उपास्थीय स्वर-यंत्र उभाड़दार होता है और सीधे पिछले नासा-द्वारों से संबद्ध। नासा-द्वारों में प्रवेश करनेवाली हवा मुंह को टालकर सीधे स्वर-यंत्र के ज़रिये श्वास-नली और फुफ्फुसों में पहुंचती है। इससे भोजन निगलते समय ह्वेल की श्वसनेंद्रियों में पानी नहीं घुसता।

जलगत जीवन के प्रभाव में ह्वेल के शरीर में काफ़ी परिवर्तन हुए हैं, फिर भी उनमें स्तनधारियों के मुख्य लक्षण बने रहे हैं। वे सजीव बच्चों को जन्म देते हैं और उन्हें अपना दूध पिलाते हैं।

धरती पर पैदा हुए स्तनधारियों में ह्वेल सबसे बड़े हैं। इनमें सबसे बड़ा नीला ह्वेल होता है। इसकी लंबाई ३० मीटर तक और वज़न १५० टन तक हो सकता है। नवजात ह्वेल की लंबाई ७-८ मीटर और वज़न २ टन से अधिक होता है। ऐसे प्राणी केवल पानी में ही रह सकते हैं क्योंकि वहां शरीर हवा में रहने की अपेक्षा जैसे ज्यादा हल्कापन महसूस करता है। तूफ़ान के कारण किनारे पर फेंका गया ह्वेल चलकर पानी में नहीं जा सकता और किनारे पर ही आख़िरी दम लेता है।

बड़े बड़े दंतविहीन ह्वेल छोटे छोटे क्रस्टेशियनों, छत्रक-मछलियों, मोलस्कों और छोटी मछलियों को खाकर रहते हैं। ह्वेल जब अपना मुह खोलता है तो हर

समय पानी के साथ वह बड़ी संख्या में इन प्राणियों को मुंह में लेता है। तालु से लटकनेवाली अनेकानेक शृंगीय पट्टिकाएं भोजन को रोक रखती हैं। ह्वेल इन पट्टिकाओं के छिदे हुए सिरों के बीच से पानी छान लेता है और भोजन को जीभ के सहारे गले और ग्रसिका में ठेल देता है। शृंगीय पट्टिकाओं का आम नाम ह्वेल हड्डी (whale bone) है।

ह्वेल के भ्रूण के दांत होते हैं पर बाद में उनका लोप हो जाता है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ह्वेलों के पुरखों के दांत हुआ करते थे।

सदंत ह्वेल भी विद्यमान हैं और वे शिकारभक्षी जीवन बिताते हैं। काले सागर में अक्सर पाये जानेवाले डाल्फ़िन इसके उदाहरण हैं।

सीलों और ह्वेलों का आर्थिक महत्त्व

सील और ह्वेल आर्थिक महत्त्व रखनेवाले प्राणियों में से हैं। उनसे चरबी, चमड़ा इत्यादि चीज़ें मिलती हैं। आर्कटिक सागरों के तटों पर और कास्पीयन सागर में सीलों का शिकार किया जाता है।

ह्वेलों का शिकार सुदूर पूर्वीय सागरों और अंटार्कटिका में ख़ास ह्वेलमार जहाज़ी बेड़ों द्वारा किया जाता है। हर बेड़े में आम तौर पर एक बड़ा जहाज़ और सरपट चलनेवाली बहुत-सी ह्वेलमार नौकाएं होती हैं। वे शिकार करती हैं और मारे गये शिकार को बड़े जहाज़ तक ले आती हैं। यहां ह्वेलों को चीर-फाड़कर विभिन्न उपयुक्त चीज़ें बनायी जाती हैं। इनमें चरबी, डिब्बाबंद मांस इत्यादि शामिल हैं।

प्रश्न – १. जलचर जीवन के लिए सील की अनुकूलता किन बातों से स्पष्ट होती है? २. हम क्यों यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि सीलों के पुरखे स्थलचर स्तनधारी थे? ३. ह्वेल जब भोजन करता है तो उसका गला पानी से क्यों नहीं घुटता? ४. ह्वेल और पिन्नीपेडा की तुलना करके यह बतलाओ कि जलगत जीवन के प्रभाव से ह्वेल में कौनसे अधिक परिवर्तन हुए हैं?

§ ७६. समांगुलीय और विषमांगुलीय स्तनधारियों की श्रेणियां

वराह

जंगली सूअर या वराह (आकृति १५७) जंगलों में बेंत के झुरमुटों में रहते है। वराह के अग्रांगों और पश्चांगों में चार चार अंगुलियां होती हैं और प्रत्येक के अंत में शृंगीय खुर होते हैं। दो

बिचली अंगुलियां सुविकसित और किनारे की दो अंगुलियां अल्पविकसित होती हैं। किनारे की अंगुलियां ज़मीन का स्पर्श नहीं करतीं। नरम दलदली भूमि पर बिचली अंगुलियां कुछ फैल जाती हैं और किनारे की अंगुलियों के खुर आधार के क्षेत्र को कुछ बड़ा कर देते हैं। इस कारण उस प्राणी के पैर दलदल में फंसते नहीं।

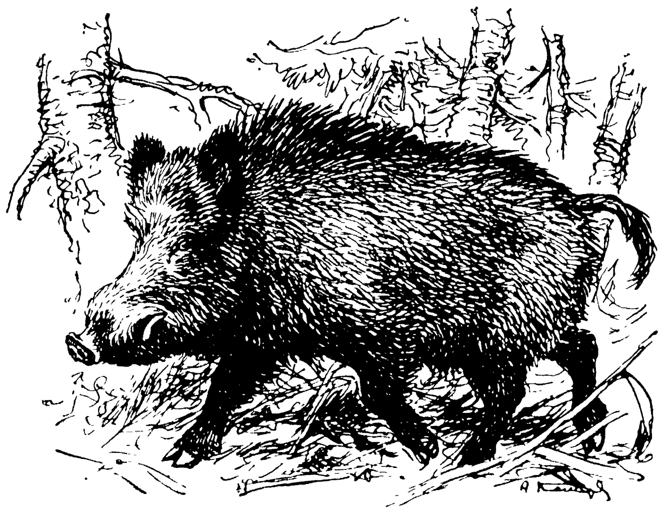

आकृति १५७ – वराह।

अंगुलियों की सम संख्या (चार या दो) वाले सखुर स्तनधारी प्राणी समांगुलीय कहलाते हैं। वराह समांगुलीय स्तनधारियों में शामिल है।

वराह की टांगें वैसे छोटी होती हैं जिससे उसका शरीर जमीन से बहुत ऊंचाई पर नहीं रहता। उसका धड़ लंबा और थूथनी पच्चड़ के आकार की होती है। वह घनी से घनी झाड़ियों के बीच से आसानी से गुज़र सकता है।

झाड़ी-झुरमुटों और नम जगहों में रहने के कारण वराह की त्वचा में काफ़ी परिवर्तन हुए हैं। उसकी मोटी चमड़ी कड़े बालों से ढंकी रहती है। ये कड़े बाल न टहनियों में फंसते हैं और न पानी से तर होते हैं। फिर भी वराह का यह आवरण ठंड से बचाव करने के लिए काफ़ी नहीं है। त्वचा के नीचे चरबी की एक मोटी परत होती है जिससे उसके शरीर में उष्णता बनी रहती है।

वराहों को जंगलों में पर्याप्त भोजन मिलता है। अन्य सखुर प्राणियों के विपरीत वराह सर्वभक्षी होते हैं। वे घास, ओक वृक्ष के फल, पौधों की जड़ें, कीट और उनके डिंभ और चूहे खाते हैं। अपना कुछ भोजन वे ज़मीन के ऊपर पाते हैं और कुछ उसके अंदर। अपनी लंबी थूथनी से वे ज़मीन खोदते हैं। थूथनी के अगले हिस्से में उपास्थीय गोलाकार चद्दरें होती हैं। वराह सूंघने के ज़रिये भोजन का पता लगाता है और उक्त चद्दरों की मदद से मिट्टी हटाकर उसे ज़मीन में से निकाल लेता है। उसका भारी सिर गर्दन की मज़बूत पेशियों से संभला हुआ रहता है।

वराह के दांत विभिन्न प्रकार का भोजन खाने के अनुकूल होते हैं। ज़मीन खोदने में बाधा डालनेवाली जड़ों को वह अपने बड़े बड़े सुआ-दांतों से काट डालता है। नरों के सुआ-दांत ऊपर की ओर झुके और मुंह से बाहर निकले हुए होते हैं। यह बचाव के साधन का काम देते हैं। सम्मुख दंत बड़े-से होते हैं और उनका रुख आगे की ओर होता है। इनसे वराह अपने भोजन के टुकड़े करता है और उन्हें ज़मीन पर से उठा लेता है। चर्वण-दंतों पर उभाड़ होते हैं और वे वनस्पति तथा प्राणि-भोजन दोनों चबा सकते हैं। वराह हर समय चार से छः तक बच्चे देते हैं।

बारहसिंगा

बारहसिंगा (आकृति १५८) जंगली और पालतू दोनों प्रकार का हो सकता है। यह वृक्षहीन टुंड्रा का विशिष्ट निवासी है। टुंड्रा में जाड़े बहुत लंबे और बड़े कड़ाके के होते हैं। वहां की भूमि दलदली है और लगभग वनस्पतिहीन।

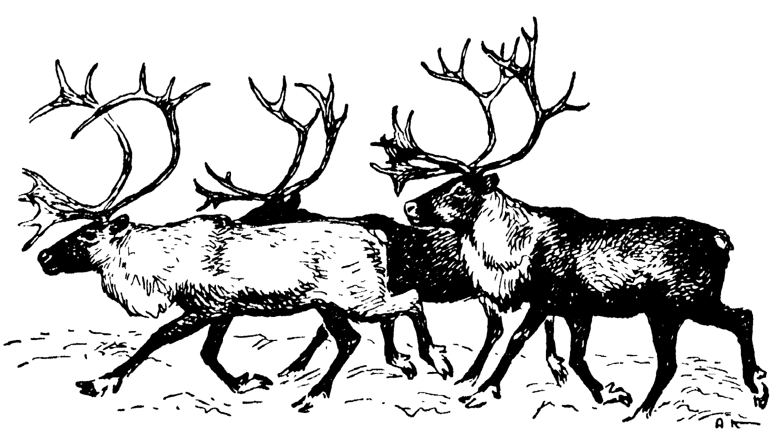

आकृति १५८ – बारहसिंगे।

बारहसिंगे की संरचना टुंड्रा की विषम परिस्थिति में जीवन बिताने के अनुकूल होती है। जाड़ों में उसका विशाल शरीर मोटी फ़र से ढंक जाता है। जाड़ों वाले बालों के अंदर हवा रहती है और वे सर्दी से बचने के विशेष अच्छे साधन का काम देते हैं।

लंबी टांगों की बिचली और किनारे की अंगुलियों के खुर होते हैं और वे एक दूसरे से काफ़ी दूर फैल सकती हैं। इससे शरीर को अच्छा ख़ासा आधार मिलता है। इनकी सहायता से बारहसिंगा गरमियों में नम ज़मीन पर और जाड़ों में बर्फ़ पर आसानी से चल सकता है।

टुंड्रा की अत्यल्प वनस्पतियां बारहसिंगे की आवश्यकताएं पूरी कर सकती हैं। गरमियों में वह घास तथा झाड़ी-झुरमुटों की पत्तियां खाता है और जाड़ों में टुंड्रा की लिकेन या हरिण-काई पर निर्वाह करता है। पक्के खुरों वाली टांगों से वह बर्फ़ में से काई खोद निकालता है।

उत्तरी बारहसिंगे के विशेष लक्षण हैं उसके मज़बूत शाखदार सींग। ये हड्डीदार होते हैं। ये नर और मादा दोनों के होते हैं। बारहसिंगे के अन्य प्रकारों मे सीग केवल नरों के होते है। सींग हर साल झड़ते है और कुछ ही महीनों बाद नये सीग निकलते हैं। नये सींगों पर मख़मली त्वचा की परत होती है पर बाद में वह नष्ट हो जाती है।

टुंड्रा के बाशिंदों के लिए पालतू उत्तरी बारहसिंगे का बड़ा महत्त्व है। उससे मांस, दूध, गरम फ़रदार कपड़े और जूते मिलते हैं और भारवाही पशु के रूप में भी उसका उपयोग किया जाता है। सोवियत संघ के सुदूर उत्तरी प्रदेशों में बारहसिंगा-पालन अर्थ-व्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है।

पालतू उत्तरी बारहसिंगे और जंगली बारहसिंगे के बीच न के बराबर फ़र्क़ होता है। पालतू बारहसिंगे की फ़र ज़्यादा घनी और लंबी होती है और सींग कमज़ोर। दोनों की बड़ी समानता का कारण यह है कि दोनों का जीवन बहुत कुछ एक-सा होता है। सारे साल दोनों खुले मैदानों में रहते हैं और स्वयं अपना भोजन ढूंढ लेते हैं। पालतू बारहसिंगे के बारे में (पशु-चिकित्सा के इलाज को छोड़कर) यदि कोई चिंता करनी हो तो इतनी ही कि उनके रेवड़ों की निगरानी करना और उन्हें नये नये चरागाहों में ले जाना।

वराह की तरह बारहसिंगा भी समांगुलीय स्तनधारियों में शामिल है। मवेशी और भेड़ें भी इसी श्रेणी में आती हैं।

घोड़ा

पालतू घोड़े जंगली घोड़ों से पैदा हुए हैं। मध्य एशिया की स्तेपियों में अभी तक प्रजेवाल्स्की नस्ल का जंगली घोड़ा (आकृति १५६) पाया जाता है। यह नाम इस घोड़े की खोज करनेवाले विख्यात रूसी शोध-यात्री न० म० प्रजेवाल्स्की के नाम पर पड़ा है।

घोड़े के खूबसूरत, शानदार शरीर पर छोटे छोटे बाल होते हैं। सिर (अगली लट), गर्दन (अयाल) और पूंछ पर लंबे बाल होते हैं। अपनी पूंछ को लहराकर घोड़ा मक्खियों और गोमक्खियों को भगा देता है।

घोड़ों के जंगली पुरखे खुले मैदानों में रहते थे। वहां वे शत्रुओं से छिप न पाते थे और उन्हें भोजन तथा पानी ढूंढने के लिए लंबे लंबे फ़ासले तय करने पड़ते थे। ऐसी स्थितियों में जीते हुए उनके अग्रांगों और पश्चांगों की संरचना धीरे धीरे बदलती गयी। उनके नये लक्षण पालतू घोडों में भी आनुवंशिक रीति से आये। घोड़ा अपनी लंबी, सुडौल टांगों के सहारे सूखी, सख्त ज़मीन पर बड़ी तेजी और चुस्ती के साथ दौड़ सकता है। घोड़े के पैर की केवल बिचली अंगुली सुविकसित होती है और उसपर बड़ा खुर होता है। खुर से शरीर को पर्याप्त आधार मिलता है और वह सहज ही ज़मीन से ऊपर उठ सकता है। तेज़ दौड़ के लिए यह ज़रूरी है। घोड़े के पैर के कंकाल में दो और अंगुलियों के अवशेष छोटी छोटी हड्डियों के रूप में होते हैं।

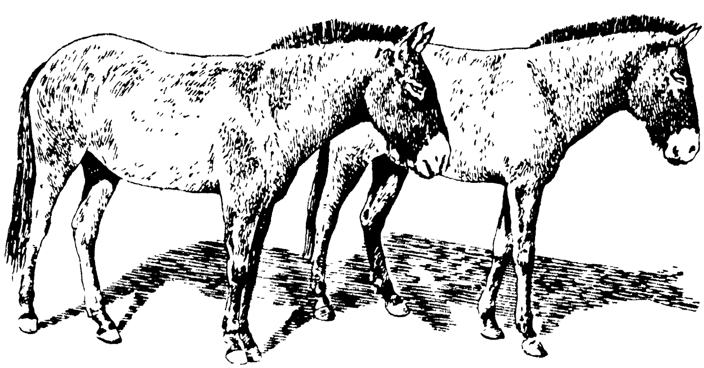

आकृति १५६ – प्रजेवाल्स्की घोड़े।

सुविकसित नेत्रेंद्रिय और घ्राणेंद्रिय के कारण घोड़ा स्तेपियों में दूर दूर से अपने शत्रुओं के आगमन को समय पर भांप सकता है।

घोड़ा शाकभक्षी प्राणी है। उसके दांत और आंत वनस्पति-भोजन के अनुकूल होते हैं। सिर को लंबा आकार देनेवाले बड़े जबड़ों में आगे की ओर सम्मुख दंत होते हैं – छः ऊपर और छः नीचे। ये दांत एक दूसरे से सटे होते हैं और उनका रुख़ आगे की ओर होता है। घोड़ा अपने मुलायम ओंठों से और फिर सम्मुख दंतों से घास को पकड़ता है और सिर को झटका देकर उसे काटता है। सुआ-दांत केवल सांड़ों के होते हैं। सुआ-दांतों के पीछे जबड़ों के दांतों से ख़ाली हिस्से होते हैं। मुह में पीछे की ओर ऊपर और नीचे छः छः चर्वण-दंत होते हैं। उनकी चबानेवाली सपाट सतहों पर सख़्त इनैमल की चुनटें होती हैं। इन दांतों से घोड़ा भोजन चबाता है। चबाते समय वह उसे लार से काफ़ी तर कर देता है।

घोड़े का जठर बड़ा-सा होता है। आंत में सुविकसित सीकम होता है जिसमें भोजन रुककर फ़रमेंट होता है।

घोड़ी हर समय एक बछेड़ा देती है। बछेड़ा शीघ्र ही अपनी मां का अनुसरण करने लगता है। खुली स्तेपियों में इसका बड़ा महत्त्व है क्योंकि वहां नवजात बछेड़े को छिपने की कोई जगह नहीं होती।

घोड़ा विषमांगुलीय स्तनधारियों की श्रेणी में शामिल है क्योंकि उसकी हर टांग में एक ही सुविकसित अंगुली होती है। इसी श्रेणी में हर टांग में तीन तीन अंगुलियों वाले सखुर प्राणी शामिल हैं। गैंडा इनमें से एक है।

प्रश्न – १. वराह के लिए त्वचा के नीचेवाली चरबी की परत का क्या महत्त्व है? २. यह किन बातों से स्पष्ट होता है कि बारहसिंगे की संरचना टुंड्रा में जीने के अनुकूल है? ३. पालतू और जंगली उत्तरी बारहसिंगों में क्यों अत्यल्प अंतर है? ४. हम क्यों इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि पालतू घोड़े के पुरखे खुली स्तेपियों में रहा करते थे? ५. कौनसे प्राणी समांगुलीय स्तनधारियों की श्रेणी में शामिल हैं और कौनसे विषमांगुलीय स्तनधारियों की श्रेणी में?

§ ८०. सूंडधारी श्रेणी

सूंडधारी श्रेणी में हाथियों के दो प्रकार शामिल हैं – भारतीय और अफ़्रीकी। विद्यमान स्थलचरों में ये सबसे बड़े प्राणी हैं।

भारतीय हाथी (आकृति १६०) तीन मीटर लंबा होता है और उसका वज़न चार टन से अधिक। वह घने, छायादार और गीले उष्णकटिबंधीय जंगलों में रहता है। वहां वह बड़ी आसानी से घूम-फिर सकता है।

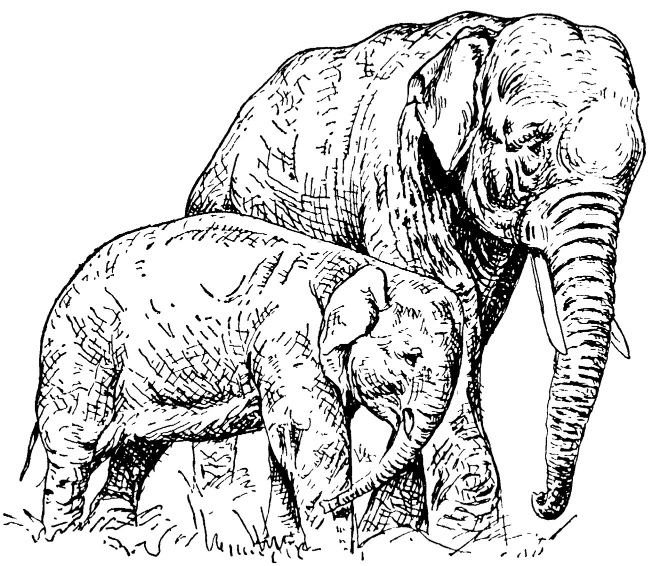

आकृति १६० – हाथी।

हाथी के विशाल किंतु अपेक्षतया कम लंबे शरीर को उसकी भारी भरकम टांगों से आधार मिलता है। इन टांगों में अंगुलियों के ऊपर छोटे छोटे खुर होते हैं। हाथी की बहुत ही मोटी त्वचा पर बाल लगभग नहीं होते।

हाथी की एक विशेष इंद्रिय उसकी सूंड है। यह सिर के अगले भाग से लटकती है। सूंड उपरले ओंठ में समेकित अत्यंत सुविकसित और लंबी नाक का ही स्वरूप है। सूंड बहुत ही लचीली होती है क्योंकि वह अनगिनत पेशियों से बनी होती है। यह सभी दिशाओं में मुड़ सकती है। सूंड की नोक पर नासा-द्वार होते

हैं जिनसे हाथी श्वसन करता है। इस नोक पर एक छोटा और अत्यंत संवेदनशील अंगुली सदृश अवयव होता है।

सूंड की सहायता से हाथी पेड़ों की शाखाएं तोड़कर मुंह में डाल लेता है। इसी इंद्रिय से वह पानी खींचकर मुंह में या गरमियों के दिनों में अपनी पीठ पर डालता है। सूंड से वह बड़े बड़े पेड़ उखाड़ सकता है जबकि अंगुली सदृश अवयव

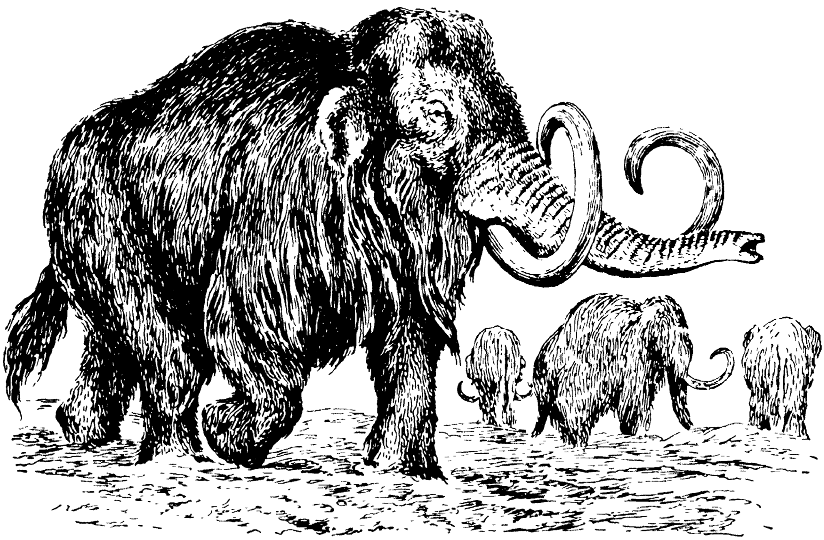

आकृति १६१ – वृहत् गज (मैमथ)।

उसे छोटी से छोटी चीज़ें उठाने में मदद देता है। शत्रुओं के हमलों का मुक़ाबिला भी वह सूंड ही से करता है। हाथी की गर्दन छोटी होती है और इसलिए उसकी सूंड का बड़ा महत्त्व है।

हाथी वनस्पति-भोजन खाता है। इसमें पेड़ की पत्तियां, शाखाएं और छालें शामिल हैं। भोजन वह बहुत बड़ी मात्रा में खाता है। मास्को के प्राणि-उद्यान में एक हाथी को हर रोज़ विभिन्न प्रकार का लगभग ६५ किलोग्राम भोजन खिलाया जाता है। पेड़ की शाखाएं वह इसके अलावा खाता है।

हाथी के दांत बड़ी ख़ासियत रखते हैं। दो दीर्घ दंत मुंह से सामने की ओर बाहर निकले हुए होते हैं। ये दीर्घ दंत सम्मुख दंतों का ही परिवर्तित रूप है।

भारतीय हाथियों में केवल नर के दीर्घ दंत सुविकसित होते हैं। अफ़्रीकी हाथियों में मादा के भी नर जैसे दीर्घ दंत होते हैं। दीर्घ दंतों के सख़्त पदार्थ को हाथी-दांत कहते हैं। इससे बिलियर्ड के गेंद, कपड़े की पिनें इत्यादि चीज़ें बनायी जाती हैं। मुंह में पीछे, ऊपर और नीचे की दोनों ओर एक एक बड़ा चर्वण-दंत (लगभग ७ सेंटीमीटर चौड़ा और २६ सेंटीमीटर तक लंबा) होता है। उसकी सपाट सतह पर इनैमल की बहुत-सी चुनटें होती हैं। इन दांतों से हाथी वनस्पति-भोजन की सख़्त से सख़्त चीज़ें चबा सकता है। काफ़ी ज़्यादा उपयोग के बाद जब ये दांत नष्ट होते हैं तो उनकी जगह नये दांत लेते हैं। ये पुराने दांतों के पीछे की ओर से निकल आते हैं। हाथी के न सुआ-दांत होते हैं और न निचले सम्मुख दंत ही।

हाथी धीरे धीरे बच्चे देते हैं। कई वर्षों में वे एक बच्चा पैदा करते हैं। पाले गये हाथी आम तौर पर ६० से ८० वर्ष तक जीते हैं।

भारत में हाथियों को साधकर लट्ठे उठाने जैसे भारी कामों में लगाया जाता है। हाथी को बड़ी शीघ्रता से सिखाया जा सकता है।

हाथी के ही एक प्राचीन रिश्तेदार वृहत् गज या मैमथ (आकृति १६१) के दांत और हड्डियां सोवियत संघ में, विशेषकर साइबेरिया में, फ़ौसिलीय रूप में अक्सर पायी जाती हैं।

प्रश्न – १. हाथी के लिए सूंड का क्या महत्त्व है? २. हाथी की लंबी टांगों और छोटी गर्दन के कारण उत्पन्न होनेवाली असुविधा किस प्रकार दूर हुई है? ३. हाथी के दांतों में कौनसी संरचनात्मक विशेषताएं पायी जाती हैं?

§८१. प्राइमेट श्रेणी

प्राइमेट श्रेणी में बंदर आते हैं। ये सबसे सुसंगठित स्तनधारी हैं।

मारमोसेट

अन्य बंदरों की तरह मारमोसेट के चेहरे, हथेलियों और तलवों को छोड़कर बाक़ी सारे शरीर पर बाल होते हैं। आंखें आगे की ओर होती हैं। इस प्राणी के लंबी पूंछ होती है।

नदी-घाटियों और झीलों के किनारे के उष्णकटिबंधीय जंगल मारमोसेटों का आम वासस्थान है। यहां बंदर अपना अधिकांश जीवन पेड़ों पर बिताते हैं (रंगीन

चित्र १५)। जंगलों में बंदरों को अपना भोजन मिलता है। इसमें फल, कोंपलें, पक्षियों के अंडे और कीट शामिल हैं।

मारमोसेट अपने अग्रांगों और पश्चांगों का उपयोग करते हुए पेड़ों के बीच मुक्त संचार कर सकते हैं। अग्रांग का अंगूठा बाक़ी अंगुलियों की विरुद्ध दिशा में होता है।

मारमोसेट के लगभग मनुष्य के जितने ही दांत होते हैं और उनका आकार भी क़रीब वैसा ही होता है; सिर्फ़ सुआ-दांत कुछ बड़े होते हैं। उनके मुंह के अंदर विशेष गल-थैलियां होती हैं। इनमें वे भोजन भर लेते हैं और उसे फ़ुरसत के समय शौक़ से खाते हैं।

मारमोसेट झुड बनाकर रहते हैं और उनमें से एक खुर्राट उनका अगुआ होता है। झुड में रहने से उन्हें शत्रुओं से भाग जाने और भोजन ढूंढने में मदद मिलती है। बंदरों के झुंड मकई और अन्य पौधों के खेतों-बगीचों पर हमला करते हैं। वहां वे जितना खाते हैं उससे कहीं ज़्यादा तहस-नहस कर डालते हैं। मारमोसेट हर बार आम तौर पर एक और कभी कभी दो बच्चे देते हैं। मारमोसेट के कई भिन्न भिन्न प्रकार हैं।

मनुष्य सदृश बंदर

मनुष्य सदृश बंदरों में अफ़्रीका के चिंपैंज़ी और गोरिल्ला और बोर्निओ तथा सुमात्रा के टापुओं में रहनेवाले ओरांग-उटांग शामिल हैं। चिंपैंज़ी (रंगीन चित्र १६) अपना आधा जीवन पेड़ों पर और आधा ज़मीन पर बिताता है। दिन के समय वह आम तौर पर जमीन पर रहता है पर रात में हमेशा पेड़ का सहारा लेता है। चिंपैंज़ी एक बड़ा-सा पुच्छहीन बंदर है। वह १५० सेंटीमीटर तक लंबा हो सकता है। उसके गोल सिर और मनुष्य की जैसी ही बड़ी कर्ण-पालियां होती हैं। आंखें आगे की ओर होती हैं। उसके हाव-भाव काफ़ी हद तक मनुष्य के से होते है।

चिंपैंज़ी का मस्तिष्क अन्य स्तनधारियों की तुलना में कही अधिक सुविकसित होता है। मस्तिष्क का वज़न रीढ़-रज्जु के वज़न से १६ गुना भारी होता है (कुत्ते में यह पांच गुना होता है)। फिर भी बड़े आकार के बावजूद चिंपैंज़ी का मस्तिष्क मनुष्य के मस्तिष्क से काफ़ी छोटा होता है।

चिंपैंज़ी में नियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाएं आसानी से विकसित हो सकती हैं। उसे खाने के लिए मेज़ पर बैठना, नेपकिन और चम्मच का उपयोग करना इत्यादि बातें सिखायी जा सकती हैं। केले आदि जैसा मनपसंद खाना यदि छत में टांग दिया जाये तो यह सिखा-सिखाया चिंपैंज़ी लाठी के सहारे उसे पाता है। प्राणि-उद्यानों में चिंपैंज़ी अपने रक्षक को हमेशा पहचान लेते हैं।

चिंपैंज़ी के अग्रांग पश्चांगों से लंबे होते हैं। अग्रांग का अंगूठा बाक़ी अंगुलियों की विरुद्ध दिशा में होता है पर मनुष्य के अंगूठे से वह छोटा होता है। चिंपैंज़ी जमीन पर झुका हुआ तलवों के सहारे चलता है। अग्रांगों की अधझुकी अंगुलियों से उसे आधार मिलता है।

चिंपैंज़ी झुंड बनाकर रहते हैं। हर झुंड में ६ से १४ चिंपैंज़ी होते हैं। वे रसदार फल, काष्ठफल, कोंपलें और पक्षियों के अंडे तथा कीट खाते हैं। चिंपैंजी हर रात पेड़ों पर टहनियों का नया घोंसला बनाता है।

मादा चिंपैंज़ी हर बार एक बच्चा देती है और बड़ी चिंता से उसकी परवरिश करती है। चिंपैंज़ी कई दर्जन वर्ष ज़िन्दा रहते हैं।

गोरिल्ला मनुष्य सदृश बंदरों में सबसे बड़ा है। उसकी लंबाई १८० सेंटीमीटर या इससे अधिक होती है। गोरिल्ला मुख्यतया जमीन पर रहता है।

दूसरी ओर ओरांग-उटांग हमेशा घने वृक्षों के बीच रहते हैं और कभी-कभार ही ज़मीन पर चले आते हैं। मलाया की भाषा में ओरांग-उटांग का अर्थ है बनमानुस।

मनुष्य सदृश बंदर प्राणि-संसार के अत्यंत सुविकसित जीव हैं।

भारत के बंदर

भारत में बंदर एक आम प्राणी है और सब इसे जानते हैं। भारत में इनके १० से अधिक प्रकार हैं। भारत में बंदरों की कुल संख्या लगभग छः करोड़ है। अफ़्रीका में जिस प्रकार मारमोसेट बड़े पैमाने पर फैले हुए हैं उसी प्रकार भारत में मेकैक या मर्कट।

मर्कटों के बड़े बड़े झुंड जंगलों में पेड़ों पर नज़र आते हैं। झुंडों में बड़े बड़े नर, मादा और बच्चे होते हैं। अपने अग्रांगों और पश्चांगों के सहारे वे पेड़ों पर बड़ी आसानी से चढ़ और कूद सकते हैं। इन अंगों में अंगूठा अन्य उंगलियों की विरुद्ध दिशा में होता है। वे जमीन पर भी उतर आते हैं। मर्कट अक्सर मनुष्यों की बस्तियों के पास भी दिखाई देते हैं। मर्कटों को कभी कोई छूता नहीं

और वे आदमियों से डरते नहीं। वे वनस्पति और प्राणि-भोजन खाते हैं। इसमें फल, बीज तथा विभिन्न कीट शामिल हैं। भोजन पाते ही वे पहले पहल उसे अपनी गल-थैलियों में ठूंस लेते हैं और फिर आराम से खाते हैं।

अन्य बंदरों की तरह मर्कट का चेहरा भी बालों से खाली होता है। आंखें उसकी आगे की ओर होती हैं। उसके केशरहित अग्रांग और पश्चांग मनुष्य के हाथ-पैरों से मिलते-जुलते होते हैं। हाव-भाव में भी वे लगभग मनुष्य के समान होते हैं। अन्य बंदरों की तरह मर्कट के भी सुविकसित प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध होते है और उनमें कई दरारें होती हैं। उनमें आसानी से नियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाएं

आकृति १६२(१) – लंबी पूंछवाला टोपधारी मर्कट।

आकृति १६२ (२)–सिंह-पुच्छधारी मर्कट।

विकसित हो सकती हैं। मर्कटों को साधकर आसानी से विभिन्न करतब सिखाये जा सकते हैं। सिखे-सिखाये मर्कट शहरों और देहातों की सड़कों पर देखे जा सकते हैं। मर्कट हर बार आम तौर पर एक बच्चा देता है।

दक्षिण भारत में लंबी पूंछवाला टोपधारी मर्कट एक आम प्राणी है (आकृति १६२, १)। यह जंगली और पालतू दोनों प्रकार का होता है। टोपधारी मर्कट बड़ा ही मज़ाक़िया, कुलबुला और नटखट होता है। लंबी पूंछ और सिर पर टोप की तरह उगे हुए बालों के लक्षणों से यह झट पहचाना जा सकता है।

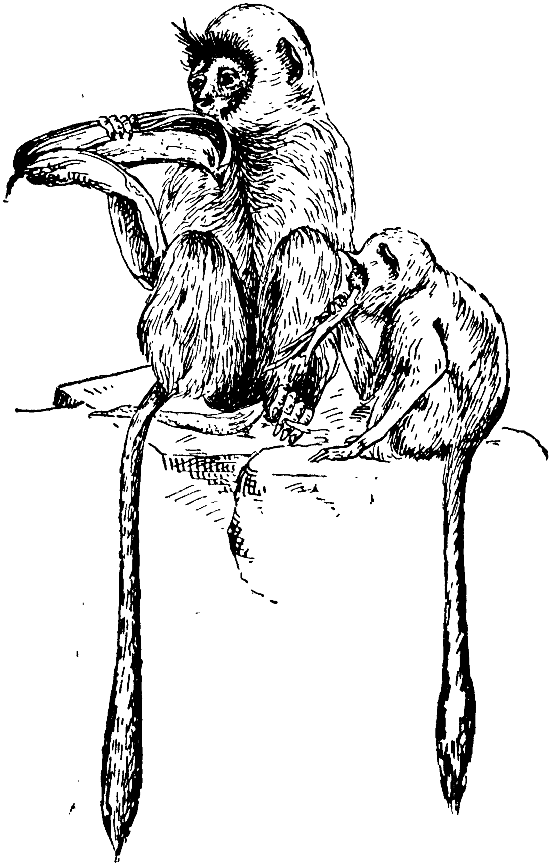

आकृति १६३ — लंगूर या हनूमान ।

छोटी पूंछवाला बंगाली मर्कट भारत के उत्तर में पाया जाता है।

मलाबार तट पर सिंह-पुच्छधारी मर्कट मिलता है। इसकी पूंछ के सिरे में सिंह की पूंछ की तरह बालों का गुच्छा होता है (आकृति १६२, २)। सिर को कालर की तरह घेरनेवाली भूरी दाढ़ी से भी यह पहचाना जा सकता है।

इनसे भी अधिक सुपरिचित और बड़े पैमाने पर फैले हुए हैं पतले शरीरवाले लंगूर या हनूमान (आकृति १६३)। ये बंदर मर्कटों से बड़े होते हैं और उनके लंबे अग्रांग तथा पश्चांग और लंबी पूंछ होती है।

हनूमान भी झुंड बनाकर रहते हैं। ये केवल जंगलों ही में नहीं बल्कि देहातों के आसपास और खुद देहातों में भी पाये जाते हैं। वहां वे ज़रा भी न

डरते हुए छप्परों पर चढ़ जाते हैं। ज़मीन पर भी वे बड़ी चुस्ती से छलांगें मारते हुए सहूलियत से चलते हैं।

उनकी आवाज़ अक्सर सुनाई देती है। यह प्रसंगानुसार बदलती है। जब वे खेलते-कूदते हैं तो वह कुछ मधुर-सी और लयबद्ध-सी लगती है जबकि संकट के समय खरखरी।

हनूमान केवल शाकभक्षी होते हैं। वे कोंपलें, फल और बीज खाते हैं। खेतों की फ़सलों पर हमला करके वे बड़ा उत्पात मचाते हैं। वे लोगों से डरते नहीं क्योंकि लोग उल्टे उनकी रक्षा करते हैं।

कुछ स्थानों में तो उन्हें पवित्र प्राणी माना जाता है। बनारस में एक विशेष मंदिर है जहां उनका एक झुंड का झुंड पाल रखा गया है। उन्हें वहां खिलाया जाता है।

भारत के विभिन्न भागों में इनके पांच प्रकार पाये जाते हैं। उत्तर भारत में ज़्यादातर पवित्र मर्कट या भूरा हनूमान पाया जाता है और दक्षिण भारत में नीलगिरि लंगूर।

प्रश्न – १. मारमोसेटों में पेड़ों पर के जीवन की दृष्टि से कौनसी अनुकूलताएं पायी जाती हैं? २. भारत में कौनसे बंदर मिलते हैं? ३. बंदर उपयोगी प्राणी है या हानिकर? ४. मनुष्य सदृश बंदर और मारमोसेट में क्या फ़र्क़ है? ५. मनुष्य सदृश बंदर के कौनसे प्रकार हैं?

§ ८२. फ़रदार प्राणियों का शिकार और पालन

फ़रदार प्राणियों का शिकार

बहुत-से स्तनधारियों से हमें फ़र मिलती है। फ़रदार प्राणियों की दृष्टि से दुनिया में सोवियत संघ का कोई सानी नहीं है। फ़र पाने की दृष्टि से गिलहरियां, लोमड़ियां, आर्कटिक लोमड़ियां, ओंडाट्रा (आकृति १६४) और शश सबसे महत्त्वपूर्ण प्राणी हैं।

सैबलों (आकृति १६५), मारटेनों, एरमाइनों, बीवरों (आकृति १६६) और ओट्टरों से गरम और ख़ूबसूरत फ़र मिलती है। छछूंदरों और गोफरों की खालों का

भी उपयोग फ़र के उत्पादन में किया जाता है; यह फ़र उतनी क़ीमती और टिकाऊ नहीं होती।

फ़रदार प्राणियों का शिकार आम तौर पर शरद्कालीन निर्मोचन के बाद जाड़ों में किया जाता है। इस समय उनके शरीर पर घने मुलायम रोएं उगे हुए होते हैं।

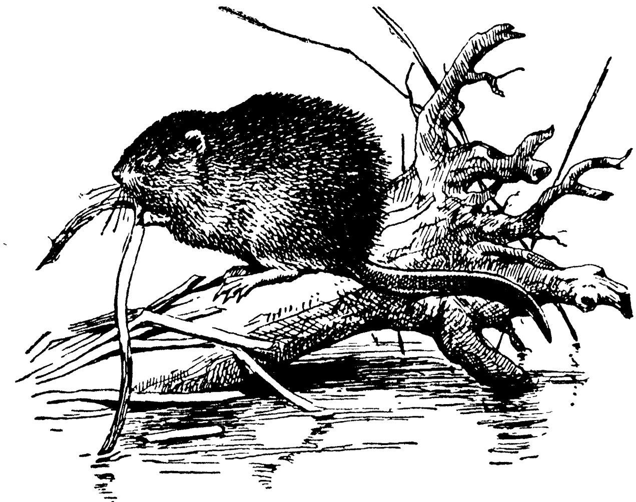

आकृति १६४ – ओंडाट्रा।

इन प्राणियों का शिकार विभिन्न साधनों से किया जाता है। इनमें फंदे, कुत्ते और बंदूक़ें शामिल हैं। सभी प्रकार के शिकार में संबंधित प्राणियों के जीवन और आदतों का अच्छा ज्ञान आवश्यक है।

रूस में रहनेवाली विभिन्न जातियां एक लंबे अरसे से फ़रदार प्राणियों का शिकार करती आयी हैं। आज भी उत्तर के कुछ प्रदेशों के निवासी मुख्य पेशे के रूप में फ़रदार प्राणियों का शिकार करते हैं।

क्रांतिपूर्व रूस में शिकार के वहशियाना तरीक़ों के नतीजे में बीवर और सैबल जैसे अत्यंत मूल्यवान् फ़रदार प्राणियों का लगभग लोप हो रहा था। सोवियत संघ में योजनाबद्ध सोवियत अर्थ-व्यवस्था के अधीन फ़रदार प्राणियों की रक्षा के लिए

कार्रवाइयां की जाती हैं। शिकार के नियम और अवधि निर्दिष्ट की गयी है। प्राणियों को विष देकर मार डालना या पंगु बना देना मना है। सैबल, ओट्टर और मारटेन जैसे मूल्यवान् और दुर्लभ प्राणियों का शिकार विशेष आज्ञा प्राप्त करके ही किया जा सकता है। बीवर जैसे कुछ प्राणियों के शिकार की तो पूरी मनाही है।

फ़रदार प्राणियों की रक्षा और फैलाव

दुर्लभ प्राणियों की संख्या बढ़ाने के उद्देश्य से विशेष रक्षित उपवन संगठित किये गये हैं (वोरोनेज बीवर-उपवन, बर्गुज़िन सैबल-उपवन इत्यादि)। इन उपवनों में प्राणियों की रक्षा की जाती है और उनकी आदतों आदि का सर्वांगीण अध्ययन किया जाता है। उपवनों की कृपा से बीवर जैसे फ़रदार प्राणियों की रक्षा और वृद्धि हो रही है। ऐसे उपवनों के अभाव में यह प्राणी सदा के लिए लुप्त हो जाता।

आकृति १६५ — सैबल।

सोवियत संघ में फरदार प्राणियों का पालन केवल उनके प्राकृतिक वासस्थानों में ही किया जाता हो सो बात नहीं। उनके जीवन के लिए आवश्यक स्थितियां जहां उपलब्ध हैं ऐसे अन्य नये प्रदेशों में भी उनके फैलाव के लिए कदम उठाये जाते हैं।

उदाहरणार्थ, गिलहरियां अब काकेशिया और क्रीमिया के जंगलों में पलती हैं। वहां काफ़ी मात्रा में शंकुल वृक्ष हैं जिनके बीज गिलहरियों का भोजन है। राक्कून पहले केवल आमूर प्रदेश में पाये जाते थे पर अब वे देश के कई अन्य प्रदेशों में एक आम प्राणी बन गये हैं। भूरे शश अब पश्चिमी साइबेरिया में भी फैले हुए हैं जहां पहले उनका बिल्कुल अस्तित्व न था।

आकृति १६६ – बीवर।

कुछ क़ीमती फ़रदार प्राणी सोवियत संघ में विदेशों से आयात किये गये हैं। इस प्रकार कुतरनेवाले प्राणी ओंडाट्रा को अमेरिका से लाया गया है।

ओंडाट्रा अपनी आधी ज़िंदगी पानी में बिताता है। वह किसी भी ऐसी झील या नदी में रह सकता है जिसपर वनस्पतियां उगी हुई हों। यही उसे अपना भोजन मिलता है। उसके भोजन में विभिन्न पौधों की जड़ें और डंडियां शामिल हैं। वह मोलस्कों और कीटों को भी खाता है। कुतरनेवाले अन्य सभी प्राणियों की तरह ओंडाट्रा भी जल्दी जल्दी बच्चे देता है। हर वर्ष दो-तीन बार वह चार से दस तक बच्चे पैदा करता है।

सोवियत संघ में १९२७ में आयात किया गया ओंडाट्रा अब देश के कई प्रदेशों और इलाक़ों में फैला हुआ है। फ़र देनेवाले प्राणियों में इसे चौथा स्थान (गिलहरी और लोमड़ी तथा आर्कटिक लोमड़ी के बाद) प्राप्त है।

फ़रदार प्राणियों के फैलाव और ऋतु-अनुकूलन में उनके जीवन से संबंधित वैज्ञानिक अनुसंधान से बड़ी सहायता मिलती है।

फ़रदार प्राणियों का पालन

अत्यंत मूल्यवान् फ़रदार प्राणियों का पालन विशेष फ़ार्मों के अधीन किया जाता है। कोलख़ोज़ों और राजकीय फ़ार्मों के अपने विशेष पशु-संवर्द्धन फ़ार्म होते हैं जो रुपहली-काली लोमड़ी, नीली आर्कटिक लोमड़ी और सैबल का संवर्द्धन करते हैं। पशु-पालन की यह नयी शाखा इस समय सफलतापूर्वक विकसित हो रही है। फ़ार्मों पर पाले जानेवाले फ़रदार प्राणियों की संख्या वर्ष प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है।

फार्मों पर फ़रदार प्राणियों का संवर्द्धन संभव हुआ इसका बहुत कुछ श्रेय वैज्ञानिकों के कार्य को है। इस प्रकार मास्को स्थित प्राणि-उद्यान के विज्ञान-कर्मियों द्वारा सैबल के जीवन और पोषण के संबंध में विस्तृत अध्ययन किया जाने के बाद ही इस प्राणी का पालन फ़ार्मों पर पहली बार शुरू किया गया। वोरोनेज के रक्षित उपवन में बीवरों को पिंजड़े में रखकर पालने के संबंध में पहली सफलता प्राप्त हुई है।

वैज्ञानिक विभिन्न प्राणियों की खिलाई और उनमें फैले हुए विभिन्न कृमि-जन्य रोगों के इलाज की उचित पद्धतियों का अध्ययन करते हैं। उदाहरणार्थ, एक बात यह सिद्ध की गयी कि फ़रदार प्राणियों को अस्थि-चूर्ण बहुत अधिक मात्रा में नहीं खिलाना चाहिए क्योंकि उससे उनके बाल कुड़कीले हो जाते हैं और फ़र का दर्जा गिर जाता है।

पशु-संवर्द्धन फ़ार्म प्राणियों की नयी नस्लों की पैदाइश में भी लगे हुए हैं। उदाहरणार्थ, रुपहली-काली लोमड़ी से हल्के रंग की फरवाली प्लैटिनम लोमड़ी पैदा की गयी है।

फ़रदार प्राणियों का संवर्द्धन व्यावहारिक कार्य में विज्ञान के महत्त्व का एक बढ़िया उदाहरण है।

प्रश्न – १. सोवियत संघ में कौनसे फ़रदार प्राणी मिलते हैं? २. फ़रदार प्राणियों की रक्षा के लिए सोवियत संघ में कौनसी कार्रवाइयां की जाती हैं? ३. रक्षित उपवनों का महत्त्व क्या है? ४. नये प्रदेशों में फ़रदार प्राणियों के फैलाव के कौनसे उदाहरण तुम जानते हो? ५. व्यावहारिक दृष्टि से फ़रदार प्राणियों के पालन में विज्ञान किस प्रकार सहायक है?

अध्याय ११

कृषि क्षेत्र के प्राणी

§ ८३. ढोर

गाय के संरचनात्मक लक्षण

ढोरो में गायें, बैल और भैंसे शामिल हैं। ये समांगुलीय प्राणी हैं और उनके शरीर मोटे-ताज़े होते हैं। उनके मज़बूत अंगों के अंत में श्रृंगीय खुरों के साथ दो दो अंगुलियां होती हैं। इसके अलावा ऊपर की ओर टांगों की बग़लों में दो दो छोटे खुर होते हैं।

गायें केवल वनस्पति-भोजन खाती है। प्राणि-भोजन से यह कम पुष्टिकर होता है और इसलिए विशेषकर गायों जैसे बड़े प्राणियों के लिए बड़ी मात्रा में आवश्यक होता है। गाय की पचनेंद्रियां बड़ी मात्रा में वनस्पति-भोजन के शरीरस्थीकरण और पाचन के अनुकूल होती हैं।

गाय के मुंह की गहराई में ऊपर और नीचे की ओर दोनों तरफ़ छः छः चर्वण-दंत होते हैं (आकृति १६७)। इनकी सहायता से वह घास चबाती है। चर्वण-दंतों की सतहें सपाट होती हैं और उनपर इनैमल की चुनटें होती हैं। सम्मुख दंत और उन्हीं के समान सुआ-दांत केवल निचले जबड़े में होते हैं। इन दांतों और चर्वण-दंतों के बीच ख़ाली जगह होती है। गाय के उपरले जबड़े में सम्मुख दंत और सुआ-दांत नहीं होते। इनके स्थान में सख़्त फुलाव होता है। घास की मुट्ठी को निचले दांतों से इस फुलाव पर दबाकर गाय अपनी जीभ से उसको काटती है। इस क्रिया में उसकी जीभ मुंह से बाहर निकलती है।

कटी घास को गाय जल्दी जल्दी निगल लेती है, यहां तक कि उसे अच्छी तरह चबाती भी नहीं। लार से अच्छी तरह तर किया गया भोजन जठर में चला जाता

है। जठर की संरचना जटिल होती है (आकृति १६८)। उसके चार हिस्से होते हैं–उदर, जाल, बड़ी झिल्ली, छोटी झिल्ली। निगला गया भोजन पहले बड़े-से उदर में पहुंचता है। यहां बहुत-से बैक्टीरिया और इनफ़ुसोरिया होते हैं जिनकी क्रिया से

आकृति १६७ – गाय की खोपड़ी
१ (1). चर्वण-दंत; २ (2). निचले जबड़े के सम्मुख दंत। नीचे की ओर – चर्वण-दंतों के सिरे, सतहों पर इनैमल की चुनटों के साथ।

भोजन में परिवर्तन होता है। उदर का आकार काफ़ी बड़ा (इसकी समाई लगभग १८० लिटर या १५ बाल्टियों के बराबर होती है) होता है जिससे गाय एक समय में बहुत-सी घास खा सकती है। भोजन उदर से जाल में पहुंचता है। जाल की अंदरूनी दीवारें मधुमक्खी के छत्ते जैसी होती हैं।

जठर के पहले दो हिस्से भर लेने के बाद गाय आराम से लेट जाती है। इस समय भोजन अलग अलग घूंटों के रूप में जठर से मुंह में वापस आता रहता है।

यहां चर्वण-दंतों से वह अच्छी तरह चबाया जाता है। चबाते समय गाय का निचला जबड़ा दायें-बायें हिलता है (ऊपर-नीचे नहीं)।

अच्छी तरह चबाया गया और लार से तर भोजन अर्द्ध-तरल पदार्थ बन जाता है। निगलने के बाद यह पदार्थ एक नाली से होकर जठर के तीसरे हिस्से में यानी बड़ी झिल्ली में और फिर चौथे हिस्से में यानी छोटी झिल्ली में चला जाता है। छोटी झिल्ली की दीवारों से पाचक रस चूते हैं। गाय की छोटी झिल्ली अन्य स्तनधारियों के जठर के समान होती है, जबकि उसके जठर के पहले तीन हिस्सों से ग्रसिका-सी बनती है।

गाय की तरह जठर की जटिल रचनावाले समांगुलीय स्तनधारी जुगाली करनेवाले प्राणी कहलाते हैं। इनमें गाय-भैंसों के साथ बारहसिंगे और भेड़-बकरियां शामिल हैं।

गाय के जठर के बाद लंबी आंत होती है। इसकी दीवारों में पाचक ग्रंथियां होती हैं। इन ग्रंथियों से निकलनेवाले रस तथा पित्त और अग्न्याशयिक रस के प्रभाव से भोजन पूर्णतया पचकर रक्त में अवशोषित किया जाता है।

पचनेंद्रियां जितनी अधिक विकसित, गाय उतना ही अधिक भोजन खाती है और उतनी ही अधिक मात्रा में दूध देती है। अच्छे फार्मों में गायों को बचपन से ही भरपूर घास खाने की आदत डलवायी जाती है। इससे उनकी पचनेंद्रियों का विकास होता है।

गाय का विशेष लक्षण है उसकी अत्यंत सुविकसित स्तन-ग्रंथियां। इनके दो जोड़ों से गाय के थन बनते हैं जिनमें चार चूचियां होती हैं। इन ग्रंथियों में दूध तैयार होता है और चूचियों के अग्रों पर स्थित छिद्रों से बाहर आता है। बड़ी मात्रा में दूध देनेवाली गायों के सुविकसित थन होते हैं जिनमें बड़ी बड़ी रक्त-वाहिनियां पहुंचती हैं। इन वाहिनियों के जरिये उन पोषक पदार्थों सहित रक्त आता है जिनसे दूध तैयार होता है।

गाय के पुरखों के मामले में दूध का उपयोग बछड़े को पिलाने के लिए ही होता था। पालतू गाय भी पहले पहल अपने बछड़े को ही दूध पिलाती है।

आम तौर पर गाय हर बार एक सुविकसित बछड़ा देती है जो लगभग फ़ौरन अपनी मां का अनुसरण करने लगता है। बछड़े के ये गुण गाय के जंगली पुरखों के समय ही विकसित हुए थे क्योंकि तब शत्रुओं से बचने के लिए बछड़ों को वयस्क प्राणियों के साथ ही दौड़ना पड़ता था।

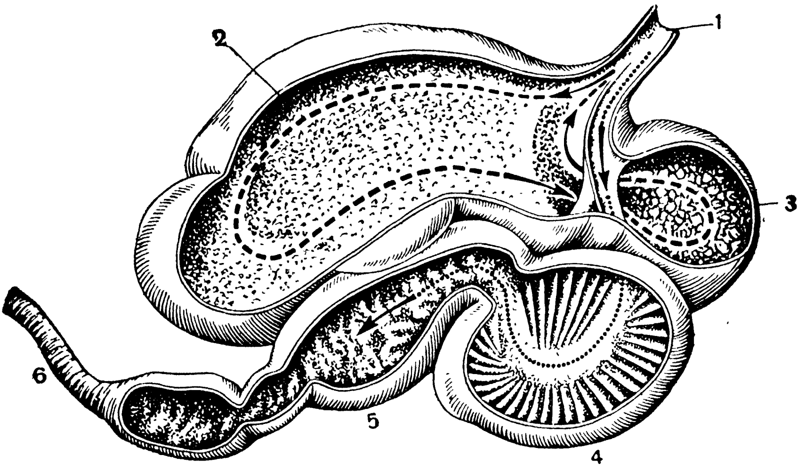

आकृति १६८—गाय का जठर
१(1). ग्रसिका; २(2). उदर; ३(3). जाल;
४(4). बड़ी झिल्ली; ५(5). छोटी झिल्ली; ६(6). आंत।
बिंदु-रेखा और बाण भोजन की गति दिखाते हैं।

ढोरों के विशिष्ट बाह्य लक्षण उनके सींग हैं। सींग पोले होते हैं और खोपड़ी के हड्डीदार प्रवर्द्धों पर निकल आते हैं। भेड़ियों जैसे शिकारभक्षी प्राणियों से बचाव करने में सींगों का उपयोग होता है।

ढोरों का मूल

जंगली सांड पालतू ढोरों का पुरखा माना जाता है (आकृति १६६)। यह अभी ३०० वर्ष पहले लुप्त हुआ। वह वर्तमान नस्लों में से भूरे उक्रइनी गाय-बैलों से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था।

जंगली सांडों को बहुत प्राचीन समय में पालतू बनाया गया था। तब से बीती हुई अनेकानेक शताब्दियों के दौरान मनुष्य के प्रभाव के फलस्वरूप उनमें काफ़ी परिवर्तन हुए।

आज के ढोर कुछ हद तक जंगली सांड से मिलते-जुलते हैं, पर इनके बीच काफ़ी फ़र्क़ भी है। सबसे पहले दूध की मात्रा को ही लो। जंगली गायें कितना दूध देती थीं यह ज्ञात नहीं है। पर कुछ भी हो, बछड़े के लिए आवश्यक मात्रा (सालाना लगभग ५००

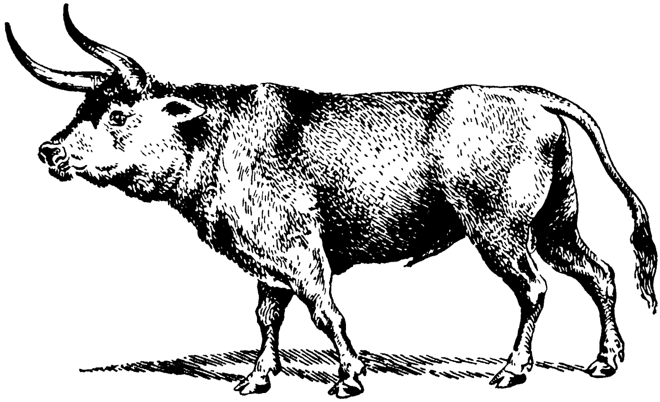

आकृति १६६ – यूरोपीय जंगली सांड।

लिटर) से अधिक दूध वे नही देती थीं। आज की पालतू गायें इससे कहीं अधिक दूध देती हैं। स्पष्ट है कि जंगली गायें सिर्फ़ तीन-चार महीने यानी बछड़े के बड़े होने तक ही दूध देती थीं। आज की गायें बछड़े की पैदाइश के बाद दस महीने दूध देती हैं। जंगली सांडों के वंशधरों का बरताव भी बदल गया है। पालतू गायें प्रकृति से शांत होती हैं और उन्हें पालनेवाले लोगों को अच्छी तरह पहचानती हैं।

मनुष्य ने जंगली प्राणी को केवल साधा ही नहीं बल्कि अपने लिए उपयुक्त बनाने की दृष्टि से उसकी प्रकृति तक बदल डाली।

प्रश्न – १. ढोरों की पचनेंद्रियों की संरचना कैसी होती है? २. ढोर किन प्राणियों से पैदा हुए हैं और उनमें तथा उनके पुरखों में क्या फ़र्क़ है?

§ ८४. ढोरों की नस्लें

पालतू ढोरों की बहुत-सी विभिन्न नस्लें हैं। सभी नस्लों को तीन आर्थिक समूहों में विभाजित किया जा सकता है – दूध देनेवाली, मांस देनेवाली, दूध और मांस देनेवाली।

दूध और मांस देनेवाली नस्लें

इन नस्लों से बहुत बड़ी मात्रा में दूध मिलता है और बड़े आकार के मोटे-ताज़े जानवर होने के कारण उनसे मांस भी बड़ी मात्रा में मिलता है। सोवियत संघ में इनकी एक सर्वोत्तम नस्ल कोस्त्रोमा नस्ल है (आकृति १७०)। इससे बहुत बड़ी मात्रा में दूध और मांस मिलता है। कारावायेवो (कोस्त्रोमा प्रदेश) स्थित राजकीय पशु-संवर्द्धन फ़ार्म की हर गाय सालाना औसत ६,००० किलोग्राम से अधिक दूध देती है। सर्वोत्तम गायें सालाना १०,००० किलोग्राम से अधिक दूध देती हैं। एक एक गाय से रोज़ाना ५०-६० किलोग्राम दूध पाना एक साधारण बात है। रेकार्ड तोड़नेवाली ग्रोज़ा नामक गाय ने एक वर्ष में १४,२०३ किलोग्राम दूध दिया। दूसरी ओर कोस्त्रोमा गाय आकार में बड़ी होती है और उसका वज़न ६००-७०० किलोग्राम होता है।

आम तौर पर गायें ग्यारह-बारह वर्ष की होने के साथ बुढ़ाने और कम दूध देने लगती हैं। पर कारावायेवो फ़ार्म की बारह साल के ऊपरवाली बहुत-सी गायों

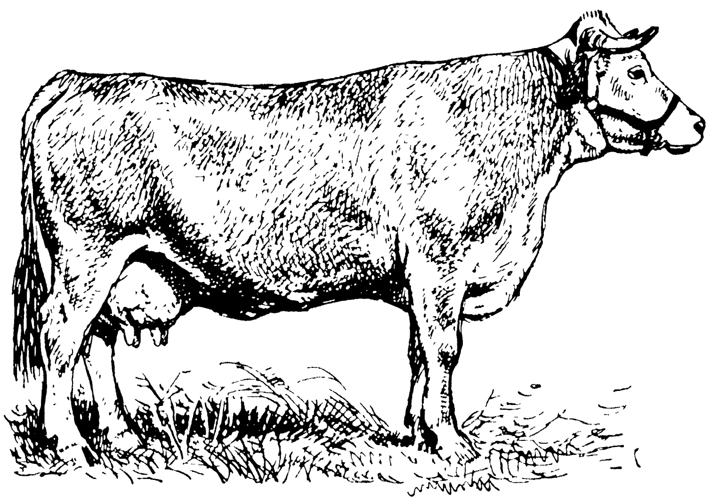

आकृति १७० – कोस्त्रोमा नस्ल की गाय।

से भी सालाना ५ से लेकर १० हज़ार किलोग्राम तक दूध मिलता है। गायें तीन साल की होने पर दूध देने लगती हैं। गाय के जीवन की दुग्धदायी अवधि बढ़ाना बहुत लाभकारी है।

दूध देनेवाली नस्लें

ये गायें दूध तो बहुत देती हैं पर इनका आकार दूध और मांस दोनों देनेवाली नस्लों से छोटा होता है। सोवियत संघ में खोलमोगोर और यारोस्लाव नस्लों की गायें सबसे ज़्यादा दुधारू होती हैं।

खोलमोगोर नस्ल अर्खांगेल्स्क प्रदेश के खोलमोगोर इलाक़े में स्थित समृद्ध चरागाहों में विकसित की गयी (आकृति १७१)। यह गाय उत्तरी प्रदेशों के मौसम की अच्छी तरह आदी है और वहीं उसका अधिकतर संवर्द्धन भी होता है। अच्छी खिलाई और देखभाल करने पर खोलमोगोर गायों से सालाना ५,००० किलोग्राम से अधिक दूध मिल सकता है।

यारोस्लाव प्रदेश के बाढ़ के पानी से सिंचित चरागाहों में विकसित की गयी यारोस्लाव नस्ल की गायें भी बहुत बड़ी मात्रा में दूध देती हैं। इनके दूध में चरबी की मात्रा काफ़ी ऊंची यानी औसत ४.२ प्रतिशत होती है (आकृति १७२)। सर्वोत्तम फ़ार्मों में यारोस्लाव नस्ल की गायों से सालाना ५,००० किलोग्राम से अधिक दूध मिलता है।

मांस देनेवाली नस्लें

इन नस्लों का उपयोग मांस के लिए किया जाता है। वे दूध कम देती हैं। हमारी मांस देनेवाली नस्लों में से सबसे मशहूर आस्त्राखान नस्ल है। इसका पालन कास्पियन सागर के समीपस्थ स्तेपियों में किया जाता है। इस नस्ल के प्राणी स्थानीय परिस्थिति में

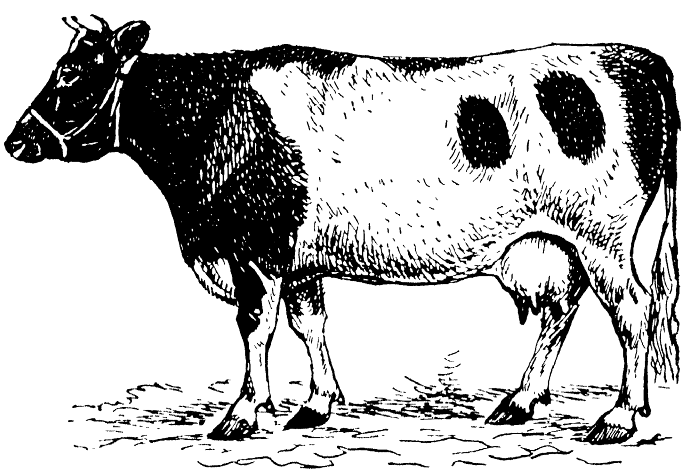

आकृति १७१ – खोलमोगोर नस्ल की गाय।

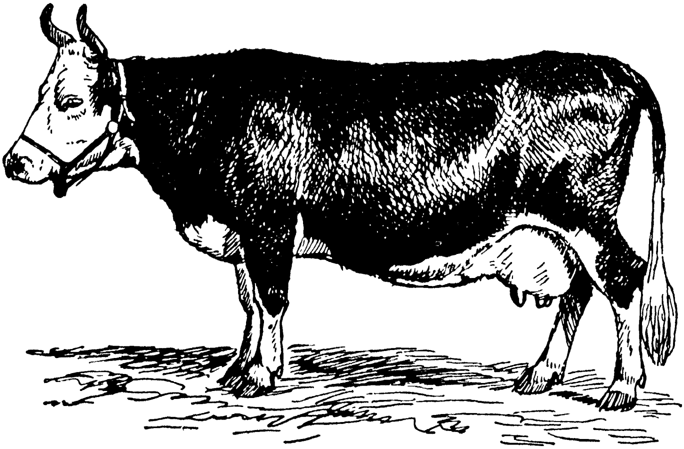

आकृति १७२ – यारोस्लाव नस्ल की गाय।

रहने के अनुकूल होते हैं। वे कड़ाके की सर्दी और तेज़ गरमी आसानी से सह सकते हैं और चरागाहों की घास खाकर रहते हैं। आस्त्राख़ान नस्ल की गायें जल्दी जल्दी बड़ी होने के लिए मशहूर हैं। उनसे बढ़िया मांस और खाल मिलती हैं। कम उम्रवाले जानवरों की खाल विशेष क़ीमती होती है।

मांस देनेवाली नयी नस्लों में से हम सफ़ेद सिरवाली कज़ाख़ नस्ल का उल्लेख कर सकते हैं।

भारत के ढोर

भारत के ढोरों में कुब्बड़धारी गाय-बैल शामिल हैं। कंधों के बीचवाले कुब्बड़ के कारण भारतीय ढोर यूरोपीय ढोरों से अलग पहचाने जा सकते हैं।

कुब्बड़धारी गाय-बैल भारतीय-तुर्किस्तानी जंगली सांडों से पैदा हुए। ये जंगली सांड अब लुप्त हो चुके हैं। कुब्बड़धारी गाय-बैलों का पालन भारत में पांच हज़ार से अधिक वर्ष से हो रहा है।

उनका रंग हल्का कत्थई होता है और उनकी टांगों पर काले ठप्पे होते हैं।

मनुष्य के लिए ढोर बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उनसे महत्त्वपूर्ण खाद्य पदार्थ – अर्थात् दूध और मांस – मिलते हैं और खेती तथा बोझ उठाने में भी उनका उपयोग होता है। इनकी कुछ दौड़ाक नस्लें तो घोड़े की तेज़ी से दौड़ सकती हैं। गोबर का उपयोग खेती में खाद के रूप में किया जाता है।

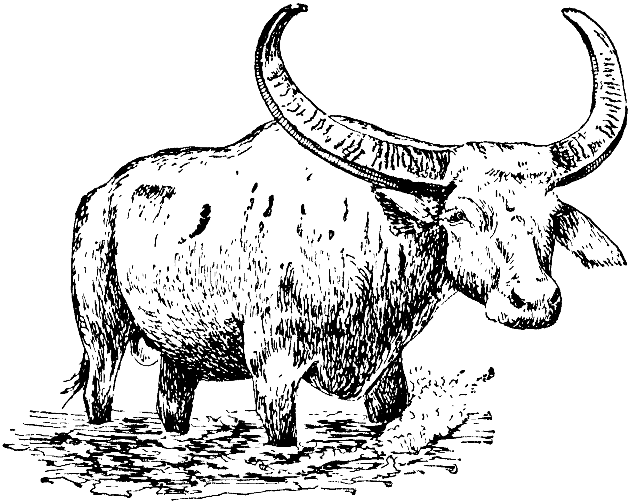

आकृति १७३—पालतू भैंस।

भारत में किसी भी देश की अपेक्षा अधिक ढोर हैं पर उनका काफ़ी उपयोग नहीं किया जा रहा है। बहुत-सी गायें बिना देखभाल के घूमती-घामती रहती हैं और दूध बहुत कम देती हैं।

इधर के वर्षों में डेयरी फ़ार्म खोले गये है। इनमें गायों की अच्छी खिलाई और देखभाल होती है और वे दूध भी अधिक देती हैं। बंबई के निकटवर्ती आदर्श फ़ार्म में चौदह हज़ार ढोर हैं। दूध देनेवाली सर्वोत्तम नस्लें 'सहोरी' और 'थरपाकर' हैं।

पालतू भैंस दूध देनेवाला एक और प्राणी है। खेती और बोझ उठाने में भी इसका उपयोग किया जाता है (आकृति १७३)। पालतू भैंस की पैदाइश जंगली भैंस से हुई है। यह जंगली भैंस भारत में नम, दलदली और घास से समृद्ध जगहों में अभी भी मिलती है। वहां उनके झुड चरते हुए नजर आते है। पालतू भैंस बाह्य दृष्टि से अपनी जंगली नस्ल से मिलती-जुलती लगती है पर वह होती है जंगली भैंस से कुछ नाटी और उसके सींग छोटे होते हैं। ये सींग त्रिभुज, पीछे की ओर मुड़े हुए और कुछ चपटे-से होते हैं। गरमी के दिनों में पालतू भैंस पानी में बैठना-लोटना पसंद करती है। नम जगहों में जीवन बिताने के अनुकूल कई लक्षण उसमें बने रहे हैं। उसके चौड़े खुर एक दूसरे से काफ़ी दूर हो सकते हैं और उसकी मोटी खाल बालों से लगभग खाली होती है।

भैंस कुब्बड़धारी गाय-बैलों से नाटी और मोटी होती है। वह ज्यादा मज़बूत और सहनशील होती है और उसमें रोग-संक्रमण आसानी से नहीं होता।

अर्थ-व्यवस्था में भैंस की कई नस्लों का उपयोग किया जाता है।

आसाम के पहाड़ी इलाक़ों में एक पालतू और अर्द्ध-पालतू बैल पाया जाता है। इसे गैयल कहते हैं। भारत के पहाड़ी जंगली इलाक़े गौर का घर हैं। जंगली भैंसों की बची-खुची नस्लों में से यह सबसे बड़ा जानवर है।

प्रश्न – १. सोवियत संघ में ढोरों की कौनसी नस्लें पाली जाती हैं? २. भारत में कौनसे ढोर पाले जाते हैं? ३. पालतू और जंगली भैंसों में क्या समानता है? ४. तुम्हारे इलाक़े में गाय-भैंसों की कौनसी नस्लों का पालन होता है?

व्यावहारिक अभ्यास – यह देखो कि तुम्हारे इलाक़े में कौनसी नस्लों के ढोर पाले जाते हैं और उनके कौनसे गुण आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं?

§ ८५. ढोरों की देखभाल

डेयरी-घर

उचित देखभाल के अभाव में किसी भी नस्ल की गायें काफ़ी दूध नहीं दे सकतीं। सबसे पहले उन्हें गरम, सूखे, रोशन और हवादार डेयरी-घर में रखना ज़रूरी है।

आकृति १७४ – डेयरी-घर।

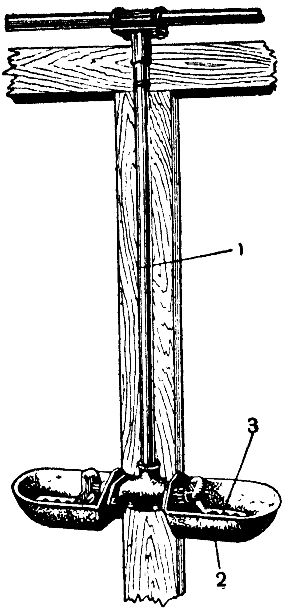

आकृति १७५ – स्वचालित जल-पात्र
१ (1). नल; २ (2). कटोरा; ३ (3). कल।

ढोरों को रखने के लिए विशेष डेयरी-घर बनाये जाते हैं (आकृति १७४)। आम तौर पर ये लंबी चौकोर इमारतें होती हैं। इनमें आम तौर पर एक रास्ता बीच में और दूसरे दो बग़ल की दीवारों के साथ साथ होते हैं। गायों को बीच के और दोनों ओर के रास्तों के बीच, दीवार की ओर सिर किये रखा जाता है। बिचले रास्ते से गोबर हटाया जाता है। इस रास्ते के साथ साथ दो नालियां होती हैं। ढोरों को चारा बग़ल के रास्तों से पहुंचाया जाता है।

डेयरी-घरों को जाड़ों में गरम नहीं किया जाता। ढोरों के शरीर से निकलनेवाली गरमी इमारत में आवश्यक तापमान रखने के लिए काफ़ी होती है। पर डेयरी-घर की दीवारों, खिड़कियों और द्वारों में कोई दरारें नहीं होनी चाहिए। यदि ऐसी दरारें हों तो उनके ज़रिये हवा के झोंके अंदर आयेंगे और ढोरों के स्वास्थ्य को हानि पहुंचेगी।

डेयरी-घर में प्रकाश के लिए बड़ी बड़ी शीशेदार खिड़कियां रखी जाती हैं।

डेयरी-घर का फ़र्श कुछ ढालू होता है और पूरे घर की लंबाई में उथली-सी नालियां होती हैं। इनके ज़रिये पशुओं का मूत्र इमारत के बाहर एक विशेष गड्ढे में पहुंचता है। इसके अलावा जानवरों के इर्द-गिर्द फ़र्श पर सूखी घास, पीट या लकड़ी के भूसे की परत बिछायी जाती है।

ताज़ी हवा पहुंचाने के लिए उचित प्रबंध किया जाता है। इस वायु-संचार-प्रणाली में निकास नलियों से बुरी हवा बाहर चली जाती है और प्रवेश नलियों से ताज़ी हवा अंदर आती है।

बछड़ों की देखभाल के लिए विशेष मकान बनाये जाते हैं।

साधन-सामग्री

डेयरी-घर को संबंधित प्राणियों की आवश्यकताओं के अनुसार सज्जित किया जाता है।

हर जानवर के सामने एक नांद और एक स्वचालित जल-पात्र होता है। यह

जल-पात्र कच्चे लोहे के कटोरे के रूप में होता है (आकृति १७५)। कटोरे के तल में थोड़ा-सा पानी होता है और जब गाय को प्यास लगती है तो वह सिर झुकाकर उसे पीने लगती है। इस समय गाय के मुंह से एक कल दबती है और पानी के नल का ढक्कन खुलकर कटोरा भर जाता है। भरपूर पानी पीने के बाद गाय सिर ऊपर उठाती है, कल पर से दबाव हट जाता है और पानी का प्रवाह बंद हो जाता है। गायों को इस जल-पात्र की आदत आसानी से डलवायी जा सकती है। उनमें संबंधित नियमित प्रतिवर्त्ती क्रिया आसानी से विकसित हो सकती है।

पानी के नलों और स्वचालित जल-पात्रों की सहायता से गायों को पानी पिलाने का काम कहीं आसान हो जाता है और उन्हें हमेशा ताज़ा पानी काफ़ी मात्रा में मिलता है।

डेयरी-घर को साफ़-सुथरा रखना ज़रूरी है। हर रोज़ गोबर हटाया जाता है और नांदों तथा जल-पात्रों को साफ़ किया जाता है। फ़र्श और खिड़कियों के शीशों को समय समय पर धोकर साफ़ किया जाता है।

गोबर को हटाने और घास-चारा पहुंचाने का काम ज़मीन पर या जानवरों के सिर के ऊपर की ओर से चलनेवाले ट्रकों की सहायता से किया जाता है। इससे श्रम की काफ़ी बचत होती है।

प्रश्न – १. डेयरी-घर में किस प्रबंध की आवश्यकता होती है?
२. स्वचालित जल-पात्र की संरचना का वर्णन दो।

§ ८६. ढोरों की खिलाई

खिलाई का महत्त्व

पशु-पालन में उचित खिलाई का महत्त्व बहुत बड़ा है। गायों के लिए अच्छी ख़ुराक आवश्यक है ताकि उनकी सभी इंद्रियों की जीवन-निर्वाहक गतिविधियां सुचारु रूप से जारी रहें, अंशतः क्षीण होनेवाली इंद्रियों का पुनर्निर्माण हो सके और दूध तैयार हो। इसके अलावा जवान पशुओं की वृद्धि के लिए भी ख़ुराक आवश्यक है।

गाय की जीवन-निर्वाहक गतिविधियों और क्षीण इंद्रियों के पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक ख़ुराक को पोषक ख़ुराक कहते हैं। गाय का डीलडौल जितना बड़ा,

आवश्यक खुराक की मात्रा उतनी ही अधिक। जिस खुराक से दूध तैयार होता है उसे उत्पादक खुराक कहते हैं। गाय से मिलनेवाले दूध की मात्रा जितनी अधिक, उतनी ही उत्पादक खुराक की आवश्यकता भी अधिक।

चारे की क़िस्में ढोरों की ख़ुराक मोटी (सूखी घास), रसदार (हरी घास, कंद-मूलों की फ़सलें, सीलेज), सारकृत (आटा, भूसी, खली) और खनिज (नमक) हो सकती है। फ़ार्मों में अक्सर मिश्रित खुराक का उपयोग किया जाता है। इसमें विभिन्न चारों का मिश्रण शामिल है और आम तौर पर इसका उत्पादन विशेष कारख़ानों में किया जाता है।

रसदार चारा सुरक्षित रखने की दृष्टि से विशेष बंद गोदामों या गड्ढों में सीलेज बनायी जाती है। सीलेज के लिए मक्के, सूरजमुखी और शकर-चुक़ंदर की पत्तियों आदि का उपयोग किया जाता है।

विभिन्न खुराकों की पोषकता जई के साथ उनकी तुलना करके निश्चित की जाती है। एक किलोग्राम जई को खुराक की एक इकाई माना जाता है। इस प्रकार खुराक की एक इकाई २.५ किलोग्राम सूखी घास और ८ किलोग्राम चारे की चुक़ंदर के बराबर है।

चारे का राशन उचित खिलाई की दृष्टि से एक जानवर के लिए खुराक का राशन निश्चित किया जाता है। इसमें चारे के सभी प्रकार शामिल किये जाते हैं। यदि केवल मोटे चारे से काम लिया जाये तो अधिक दूध देनेवाली गाय को वह काफ़ी बड़ी मात्रा में खिलाना पड़ेगा। अकेली सारकृत खुराक भी नही दी जा सकती क्योंकि गाय की पचनेंद्रियों की संरचना बड़ी मात्रा में खुराक पचाने के अनुकूल होती है।

खिलाई की दृष्टि से हर गाय की निजी हालत पर ध्यान दिया जाता है। उदाहरणार्थ, बछड़ा जनने के पहले गाय को विशेष पोषक और विविधतापूर्ण खुराक दी जाती है। उसकी खिलाई में विटामिनयुक्त गाजर शामिल किये जाते हैं। उक्त अवधि में गाय को खुद अपने जीवन के लिए और भ्रूण की वृद्धि और परिवर्द्धन के लिए पर्याप्त खुराक मिलनी चाहिए। इस अवस्था की खिलाई का प्रभाव बछड़े के स्वास्थ्य और परिवर्द्धन पर और गाय की दूध देने की भावी क्षमता पर भी पड़ता है।

पोषक और उत्पादक ख़ुराक के अलावा गायों को दुग्धवर्द्धक ख़ुराक भी दी जाती है। यदि ऐसी ख़ुराक देने पर दूध देने की क्षमता बढ़ जाये तो इस ख़ुराक की मात्रा बढ़ायी जाती है। इस प्रकार गाय की दूध देने की क्षमता बढ़ायी जाती है।

ख़ुराक का राशन तय करते समय हर जानवर की पसंद पर ध्यान देना चाहिए और आवश्यकतानुसार ख़ुराक में हेरफेर करना चाहिए।

गायों को चारा खिलाने से पहले वह काटा जाता है और उसे गरम भाप दी जाती है। चारा घास-कटाई, कंद-मूल-कटाई और खली-पिसाई की तथा अन्य विशेष मशीनों से काटा जाता है। वाष्प-पात्रों में ख़ुराक को (उदाहरणार्थ आलू) गरम भाप दी जाती है। बड़े बड़े फ़ार्मों में ख़ुराक तैयार करने के काम का यंत्रीकरण करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न – १. ख़ुराक की क़िस्में कौनसी हैं? २. राशन तय करते समय किस बात पर ध्यान देना ज़रूरी है? ३. ख़ुराक तैयार करने में कौनसी मशीनों का उपयोग किया जाता है? ४. ढोरों की उचित खिलाई का महत्त्व क्या है?

§ ८७. ढोरों की चिंता और पशुरोग विरोधी उपाय

चिंता

गायों की अच्छी तरह चिंता करना आवश्यक है। सबसे पहली बात यह कि उन्हें हमेशा साफ़ रखना चाहिए। उनकी त्वचा और बालों में मैल इकट्ठा होता है अतः उन्हें नियमित रूप से ब्रुश से साफ़ करना चाहिए और मैले स्थान धोने चाहिए। सप्ताह में एक बार गायों को साबुन लगाकर धोना चाहिए। जाड़ों में जब गायें बाड़ों में रहती हैं और शायद ही बाहर जाती हैं उस समय उनके खुर बहुत अधिक बढ़ते हैं। इन खुरों को काटकर ठीक करना चाहिए।

ढोरों के बाड़े में एक निश्चित दिन-क्रम के अनुसार काम करना चाहिए। हर रोज़ निश्चित समय पर गायों को चारा देना, खुली हवा में घुमाना और दुहना चाहिए। जानवर इस दिन-क्रम के आदी हो जाते हैं और उनमें संबंधित नियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाएं विकसित होती हैं।

दूध दुहनेवाली एक ही औरत को हमेशा संबंधित गाय का दूध दुहना चाहिए। दुहनेवाली को गाय के साथ शांति और कोमलता से पेश आना चाहिए। यदि गाय

के साथ हड़-धत और चीख़-चिल्लाहट का बरताव किया जाये तो उसके दूध की मात्रा घट जायेगी।

गरमियों में गायें चरागाहों में ताज़ी घास चरती हैं। देर तक खुली हवा में रहने से जानवरों का स्वास्थ्य सुधरता है।

सोवियत संघ के बहुत-से फ़ार्मों में गायों को सारे समय बाड़ों में रखा जाता है। गरमियों में भी चारा डेयरी-घर में पहुंचाया जाता है। पर इस स्थिति में भी गायों को हर रोज़ बाड़े के बाहर खुली हवा में ले जाया जाता है।

अच्छी देखभाल, खिलाई और चिंता के फलस्वरूप दूध की मात्रा में काफ़ी बढ़ोतरी होगी।

रोगविरोधी उपाय

अन्य प्राणियों की तरह ढोर भी बीमार पड़ सकते हैं। बीमार गायें बहुत ही कम दूध देती हैं और उनके दूध के ज़रिये लोगों में तपेदिक़ जैसी गंभीर बीमारियों का संक्रमण हो सकता है। अतः ढोरों की स्वास्थ्य-रक्षा के और बीमारी की रोक-थाम के उपाय किये जाने चाहिए।

ढोरों का स्वास्थ्य उचित देखभाल, खिलाई और चिंता पर निर्भर है। साल में दो बार (वसंत और शरद में) डेयरी-घरों में कीटमार दवाओं का छिड़काव किया जाता है। तरल कीटमार दवाओं से दीवारें, फ़र्श और सारी साधन-सामग्री धोयी जाती है और इमारत को चूने से रंगा जाता है।

इसलिए कि बाड़े में रोगोत्पादक कीटाणुओं का प्रवेश न हो, डेयरी-घर के दरवाज़े पर कीटमार दवाओं में भिगोया हुआ पायंदाज़ बिछाया जाता है। डेयरी-घर में आनेवाले लोग यहां अपने पांव पोंछ लेते हैं।

ढोरों के गल्लों की नियमित जांच की जाती है और कोई जानवर बीमार दिखाई दे तो उसे गल्ले से अलग किया जाता है। गाय की आंखों की श्लेष्मिक झिल्लियों में एक विशेष द्रव्य (टयूबरक्युलाइन) की कुछ बूंदों की सूई लगाकर देखा जा सकता है कि उसमें कहीं तपेदिक़ का अस्तित्व तो नहीं है। यदि संबंधित जानवर इस रोग से ग्रस्त हो तो कुछेक घंटों बाद उसकी पलकें सूजकर लाल हो जाती हैं और आंखों से मवाद निकलने लगता है। स्वस्थ गायों में यह प्रतिक्रिया नहीं होती।

यदि गल्ले में संक्रामक रोगों का अस्तित्व पाया जाये तो फ़ौरन उसके फैलाव को रोकनेवाले क़दम उठाये जाते हैं। बीमार जानवरों को स्वस्थ जानवरों से दूर

कर दिया जाता है। क्वारेंटाइन का प्रबंध करके नये जानवरों को गल्ले में नहीं आने दिया जाता और संबंधित फ़ार्म के बाहरवाले ढोरों को उसके क्षेत्र से होकर नहीं गुज़रने दिया जाता।

बीमार गायों का इलाज विशेषज्ञों – पशु-चिकित्सकों और सहायक पशु-चिकित्सकों – द्वारा किया जाता है।

प्रश्न – १. ढोरों की उचित देखभाल का महत्त्व बतलाओ। २. गायों की उचित देखभाल में कौनसी बातें शामिल हैं? ३. बाड़े की देखभाल किसे कहते हैं? ४. यदि गल्ले में संक्रामक रोग का अस्तित्व पाया जाये तो कौनसे क़दम उठाये जाते हैं?

व्यावहारिक अभ्यास – तुम्हारे इलाक़े के सबसे नज़दीकवाले डेयरी-घर में जाकर देखो कि वहां किस प्रकार के दिन-क्रम का पालन किया जाता है। इस दिन-क्रम को अपनी कापी में लिख लो।

§ ८८. कोस्त्रोमा नस्ल का विकास कैसे किया गया

कारावायेवो का गल्ला

सोवियत पशु-संवर्द्धन विशेषज्ञों द्वारा ढोरों की नयी नस्लें विकसित करने में जो तरीक़े अपनाये जाते हैं उनका एक उदाहरण कोस्त्रोमा नस्ल प्रस्तुत करती है। यह नस्ल कारावायेवो स्थित राजकीय पशु-संवर्द्धन फ़ार्म में और कोस्त्रोमा प्रदेश के कोलख़ोज़ों में विकसित की गयी। क्रांतिपूर्व काल के एक कृषि-मज़दूर, ज्येष्ठ प्राणि-प्रविधिज्ञ स० इ० श्तैमन के मार्गदर्शन में कारावायेवो में सर्वोत्तम गल्ला प्राप्त किया गया।

कारावायेवो गल्ले के सुधार का काम शुरू होने से पहले उसमें विभिन्न मिश्रित नस्लें शामिल थीं। स० इ० श्तैमन ने ऐसी गायों की पैदाइश का काम हाथ में लिया जो दसों महीनों में अच्छा, मक्खनदार दूध बड़ी मात्रा में और बराबर दे सकें। वे ऐसी नस्ल पैदा कराना चाहते थे जो स्वस्थ और सुदृढ़ हो और जिससे स्वस्थ बछड़े पैदा हों। यह काम धीरे धीरे किया गया और हर साल अच्छे से अच्छे जानवर मिलते गये।

९ वर्षों में (१९३२ से १९४० तक) कारावायेवो गल्ले में दूध की औसत मात्रा तिगुनी से अधिक हो गयी और जानवरों का ज़िंदा वज़न आधे से अधिक बढ़ गया। दूध में मक्खन की मात्रा घटी नहीं और गायों का स्वास्थ्य भी सुधर गया।

खिलाई पुरानी नस्ल के सुधार और नयी नस्ल के विकास की बुनियादी शर्त है उचित और भरपूर खिलाई।

कारावायेवो राजकीय फ़ार्म में खिलाई पर पूरा ध्यान दिया गया। ढोरों को अत्यंत पुष्टिकर और विभिन्न ख़ुराकों के राशन बड़ी मात्रा में दिये गये और आज भी दिये जा रहे हैं। राशन निश्चित करते समय हर गाय की पसंद पर ध्यान दिया गया और उसे जो ख़ुराक सबसे ज़्यादा पसंद आयी उसकी मात्रा बढ़ायी गयी। गाभिन गायों को भी ज़्यादा राशन दिये गये। बछड़ों और जवान गायों को उनके बढ़ते हुए शरीर के अनुसार उचित चारा-दाना दिया गया। इस प्रकार जानवरों को उनकी सारी ज़िन्दगी-भर, यहां तक कि उनकी पैदाइश के पहले से भी (उनकी माताओं के शरीरों के द्वारा) अच्छी तरह खिलाया गया।

अच्छी खिलाई के फलस्वरूप दूध की मात्रा बढ़ी और गायें अधिक सशक्त हुईं।

देखभाल और चिंता कारावायेवो के गल्ले को सूखे, साफ़-सुथरे, रोशन और हवादार डेयरी-घर में रखा गया। निश्चित दिन-क्रम का ठीक ठीक पालन किया गया।

यह ध्यान में लेते हुए कि शरीर की उचित गतिविधि के लिए तंत्रिका-तंत्र की स्थिति बहुत महत्त्वपूर्ण है, जानवरों के साथ कोमलतापूर्ण बरताव किया गया न कि हड़-धत और चीख़-चिल्लाहट का। शांत वातावरण में जानवर अपना खाना अच्छी तरह हज़म करते हैं और उनसे अधिक मात्रा में दूध मिलता है। कारावायेवो गल्ले के अपेक्षित विकास में अच्छी देखभाल से बड़ी सहायता मिली।

दोहन कोस्त्रोमा नस्ल के विकास में कुशलतापूर्ण दोहन ने बड़ा हाथ बंटाया। वहां की गायों को दुहने से पहले उनके थन गरम पानी से धोये जाते थे और तौलिये से पोंछे जाते थे। दुहने से पहले और दुहाई के दौरान भी थनों की मालिश की जाती थी। जब थनों में दूध बाक़ी नहीं रहता, दुहाई तभी बंद की जाती थी। इस प्रकार की दुहाई से स्तन-ग्रंथियों की क्रिया सुधरती है और थन बड़े होते जाते है।

स्तन-ग्रंथियों की अच्छी क्रिया तभी संभव है जब उन्हें दूध तैयार होने के लिए आवश्यक पोषक द्रव्यों से भरपूर रक्त अधिकाधिक मात्रा में मिलता रहता है। अधिक मात्रा में दूध देनेवाली गायें ख़ूब खाती हैं, अच्छी तरह भोजन पचाती है और उनकी पचनेंद्रियां सुविकसित होती हैं। जैसे जैसे स्तन-ग्रंथियों और पचनेंद्रियों की क्रिया में वृद्धि

होती है वैसे वैसे अन्य इंद्रियों (फुफ्फुस, हृदय आदि) की गतिविधि में भी सुधार होता है। इससे उनके विकास में उद्दीपन मिलता है। इस प्रकार दोहन के समय थनों की क्रिया के फलस्वरूप गाय के समूचे शरीर में परिवर्तन होते हैं।

गाय के शरीर पर कुशल दुहाई का सुप्रभाव तभी पड़ सकता है जब उसे उचित और भरपूर खिलाई और देखभाल का साथ दिया जाये।

बछड़ों की देखभाल

कारावायेवो में स्वस्थ और सशक्त बछड़ों के परिवर्द्धन पर पूरा ध्यान दिया जाता है।

बछड़े को पहले पंद्रह दिन तक सिर्फ़ उसकी मां का दूध पिलाया जाता है। बाद में उन्हें सर्वोत्तम गायों का दूध पर्याप्त मात्रा में दिया जाता है। इसके अलावा आठवें महीने तक उन्हें स्किम दूध (मलाई हटाया गया दूध) भी पिलाया जाता है। बछड़ों को रबड़ की चूचियों वाले टीन या कांच के बरतनों में से दूध पिलाया जाता है। इससे बछड़ों को मां के स्तन-पान का सा मज़ा आता है। दूध धीरे धीरे उनके पेट में चला जाता है और गंदा नहीं होता। परिणामतः बछड़े बड़ी शीघ्रता से बड़े होते हैं।

बछड़ों के शरीर को मज़बूत बनाने और रोग के प्रादुर्भाव को रोकने की दृष्टि से उन्हें जाड़ों तक के दौरान सूखी घास में लपेटकर, बिना गरम किये गये बाड़ों में रखा जाता है (आकृति १७६)।

बिना गरम किये गये बाड़े में तापमान अधिक सम, नमी कम और हवा ताज़ी रहती है। गरम और नम जगहों में सहूलियत से बढ़नेवाले रोगाणु सर्दी में मर जाते हैं और इस प्रकार बीमारियों का ख़तरा कम हो जाता है। कम तापमान के कारण

आकृति १७६ – सूखी घास में लिपटा हुआ नवजात बछड़ा।

बछड़ों का शरीर मज़बूत हो जाता है और अंदरूनी इंद्रियों की गतिविधियां बढ़ती हैं।

उक्त प्रकार की देखभाल और रख-रखाव के फलस्वरूप बछड़े स्वस्थ और सशक्त बनते हैं। विगत २० वर्षों में कारावायेवो में जाड़ों के दौरान कोई महामारी नहीं हुई।

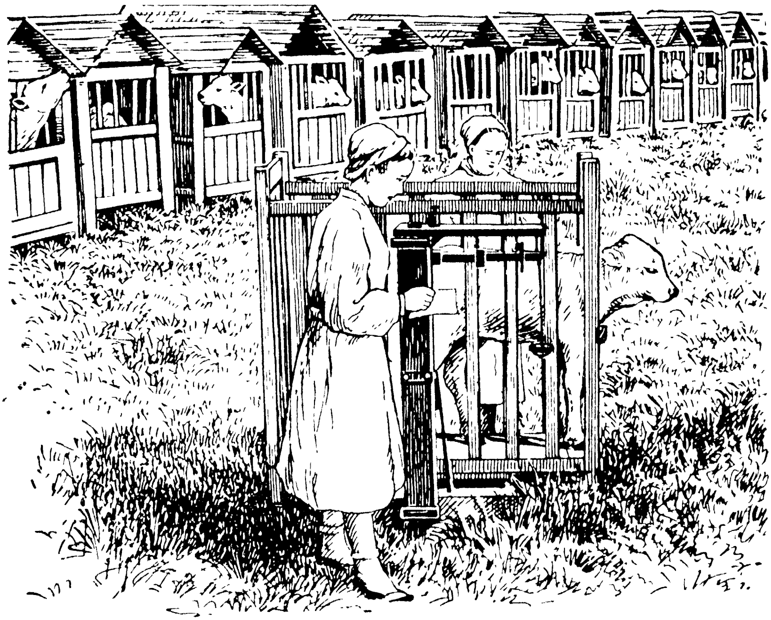

आकृति १७७—गरमी की छावनी में रखे गये बछड़े; सामने—एक बछड़े का वज़न किया जा रहा है।

बछड़ों की स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से दूसरे क़दम भी उठाये गये। बाड़ों को हमेशा साफ़ रखा गया। बछड़ों को हर दिन मुलायम ब्रुश से साफ़ किया गया। गरम मौसम के समय उन्हें गरमी की छावनियों में रखा गया (आकृति १७७)।

चुनाव

उचित खिलाई, अच्छी देखभाल, कुशल दुहाई और बछड़ों के उचित पालन-पोषण के फलस्वरूप नस्ल में जो ऊंचे गुण प्राप्त किये गये वे संबंधित जानवरों की बाद की पीढ़ियों में आनुवंशिक रूप से बने रहे। फिर भी किसी गल्ले की गायें एक दूसरी से भिन्न होती हैं—कुछ ज़्यादा अच्छी

तो कुछ उनसे कम। कारावायेवो में हर गाय की ग़ौर से जांच-पड़ताल की गयी। दूध की दैनिक तथा वार्षिक मात्रा नोट की गयी, दूध में मक्खन का अनुपात निश्चित किया गया और संतान के गुणों (स्वास्थ्य, वज़न और दूध की मात्रा) को ध्यान में लिया गया।

पशु-संवर्द्धन-केंद्रों में विशेष वंशावलि पुस्तकें रखी गयी हैं। इनमें संबंधित जानवर के गुण और उसके वंश (माता-पिता, दादा-दादी) के संबंध में सूचना लिखी जाती है। नयी अच्छी नस्लें पैदा कराने के लिए जानवरों का चुनाव करते समय इस सूचना से महत्त्वपूर्ण सहायता मिलती है। पैदा हुए बछड़ों का भी चुनाव किया जाता है और नस्ल-संवर्द्धन के लिए उनमें से सर्वोत्तम बछड़े चुन लिये जाते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ढोरों की कोस्त्रोमा नस्ल उचित तथा भरपूर खिलाई, अच्छी देखभाल तथा चिंता, कुशल दुहाई तथा बछड़ों के पालन-पोषण और नस्ल-संवर्द्धन के लिए सर्वोत्तम जानवरों के चुनाव के ज़रिये प्राप्त की गयी। अन्य नयी नस्लों की पैदाइश और पुरानी नस्लों के सुधार में भी यही तरीक़े अपनाये जाते हैं।

प्रश्न – १. कोस्त्रोमा नस्ल के विकास में कौनसी समस्याएं प्रस्तुत थीं? २. कारावायेवो स्थित राजकीय फ़ार्म में ढोरों की खिलाई किस प्रकार की जाती है? ३. कारावायेवो में गायों की दुहाई कैसे होती है? ४. भरपूर खिलाई और कुशल दुहाई के मेल का क्या महत्त्व है? ५. 'सर्दी में' बछड़ों के पालन-पोषण का अर्थ क्या है? ६. संवर्द्धन के लिए जानवरों का चुनाव कैसे किया जाता है? ७. कोस्त्रोमा नस्ल के संवर्द्धन में कौनसे तरीक़े अपनाये गये थे?

§ ८९. सूअर

सूअरों का महत्त्व

खाद्य-पदार्थों की प्राप्ति की दृष्टि से सूअर-पालन बहुत महत्त्वपूर्ण है। सूअर जल्दी जल्दी बड़े होते हैं और उनकी संख्या भी बहुत जल्द बढ़ती है। सूअर की सर्वोत्तम नस्ल की मादा वर्ष में दो बार दस दस, बारह बारह बच्चे देती है। पालतू सूअर तरह तरह की चीज़ें खाते हैं। इससे सूअर किसी भी फ़ार्म में पाले जा सकते हैं।

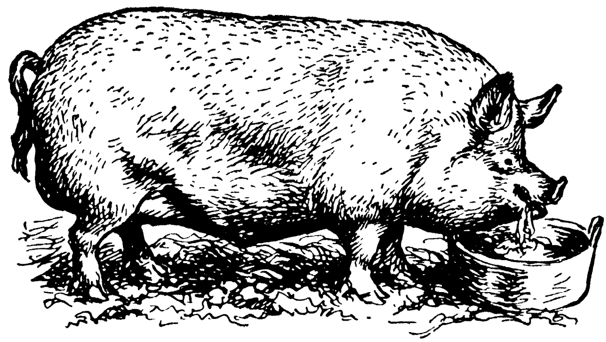

आकृति १७८—उक्रइनी स्तेपीय सफ़ेद नस्ल का सूअर।

पालतू सूअरों का मूल

पालतू सूअर की उत्पत्ति जंगली वराह से हुई है (आकृति १५७)। जंगली सूअरों के प्राकृतिक गुणों का उपयोग करते हुए मनुष्य ने उन्हें पालतू बना लिया। मनुष्य ने देखा कि यह प्राणी सर्वभक्षी है, सहज संतोषी है, उससे काफ़ी बड़ी मात्रा में चरबी और मांस मिलता है और वह जल्दी जल्दी बच्चे जनता है।

पालतू सूअर के पुरखे अभी जीवित हैं। पालतू सूअर इस बात का एक स्पष्ट उदाहरण है कि प्राणियों के प्राकृतिक गुणों को मनुष्य किस प्रकार इच्छित दिशा में मोड़ सकता है। सूअर की सर्वोत्तम नस्लें शीघ्र परिवर्द्धन और वज़न की दृष्टि से जंगली वराह को मात करती हैं और उनका मांस तथा चरबी ज़्यादा नरम और जायकेदार होते हैं। यह बहुत ज़्यादा बच्चे देते हैं। साथ ही साथ जंगल के जीवन में विशेष महत्त्व रखनेवाले गुण पालतू सूअरों में कम विकसित हुए होते हैं—वे उतने मज़बूत नहीं होते, उनकी टांगें छोटी और कमज़ोर होती है और उनके सुआ-दांत छोटे होते हैं।

सूअर की नस्लें

सूअर की सर्वोत्तम नस्लों में से एक है उक्रइनी स्तेपीय सफ़ेद नस्ल (आकृति १७८)। यह अकादमीशियन म० फ़० इवानोव (१८७१-१९३५) ने उक्रइन के दक्षिण में पैदा करायी। स्थानीय और ब्रिटिश सूअरों के संकर, निर्द्धारित पालन-पोषण और नस्ल-संवर्द्धन के लिए उत्कृष्ट जानवरों के चुनाव के ज़रिये इस नस्ल का विकास किया गया।

स्थानीय उक्रइनी सूअर स्तेपी के जीवन के आदी थे पर काफ़ी उत्पादनशील न थे। दो वर्ष की उम्रवाले सूअर का औसत वज़न सिर्फ़ १०० किलोग्राम होता था। उक्रइन में आयात किये गये बड़े ब्रिटिश सफ़ेद सूअरों के लिए विदेशी हवा-पानी में

अच्छी तरह निभा लेना मुश्किल था; गरमियों में उन्हें उष्णता और सूखे से तकलीफ़ होती थी और शरद, शिशिर तथा वसंत के दौरान आबोहवा में आनेवाले तीव्र परिवर्तनों से वे परेशान रहते थे।

अकादमीशियन इवानोव ने एक ऐसी नस्ल पैदा कराने का काम हाथ में लिया जो बहुत उत्पादनशील हो और स्थानीय परिस्थितियों में निर्वाह कर सके।

इस काम को संपन्न कराने में उन्होंने वही तरीक़े अपनाये जो इ० व० मिचूरिन ने पौध-संवर्द्धन में अपनाये थे। इवानोव ने स्थानीय नस्ल में से कई सर्वोत्तम मादाएं चुन लीं और सर्वोत्तम बड़े ब्रिटिश सफ़ेद नर से उनका जोड़ा खिलाया। इस तरह पैदा हुई संकर पीढ़ी में से उन्होंने फिर से सर्वोत्तम मादाएं भावी संवर्द्धन के लिए चुन लीं। फिर इनका तथा एक और बड़े ब्रिटिश सफ़ेद नर का संकर कराया गया। दूसरी पीढ़ी में से उन्होंने स्थानीय परिस्थिति के लिए अत्यंत अनुकूल और उच्च उत्पादनशील नस्ल-संवर्द्धन की दृष्टि से मादाओं का चुनाव किया। नस्ल-संवर्द्धन के लिए चुने गये सूअरों को अच्छी तरह खिलाया और पाला-पोसा गया।

नस्लों के संकर, बच्चों के कुशलतापूर्ण पालन-पोषण, अच्छी खिलाई और उचित चुनाव के फलस्वरूप सूअरों की एक नयी नस्ल पैदा हुई। इसका नाम है उक्रइनी स्तेपीय सफ़ेद नस्ल। नयी नस्ल के सूअर उक्रइन की दक्षिणी स्तेपी के मौसम के अनुकूल निकले। इस नस्ल के गुण संकर में उपयोग की गयी ब्रिटिश सफ़ेद नस्ल के गुणों से बढ़कर हैं।

उत्कृष्ट गुणों के बावजूद उक्रइनी स्तेपीय नस्ल के सूअर सोवियत संघ के अति विभिन्न प्राकृतिक परिस्थितियों वाले सभी प्रदेशों में प्रभावशील ढंग से नहीं पाले जा सकते। अतः विभिन्न जनतंत्र और प्रदेश सूअर की अपनी अपनी नस्लों का संवर्द्धन करते हैं। उदाहरणार्थ, पश्चिमी साइबेरिया में उत्तर साइबेरियाई नस्ल विकसित की गयी है। इस नस्ल के मोटे और सख़्त बाल होते हैं। ये सूअर आसानी से जाड़ों का मुक़ाबिला कर सकते हैं और गरमियों में उन्हें मक्खियों से कोई तकलीफ़ नही पहुंचती।

प्रश्न – १. पालतू सूअर और जंगली वराह में क्या फ़र्क़ है? २. अकादमीशियन म० फ़० इवानोव ने उक्रइनी स्तेपीय सफ़ेद नस्ल का विकास कैसे किया? ३. तुम किन तथ्यों के आधार पर कह सकते हो कि नयी साइबेरियाई नस्ल स्थानीय परिस्थिति के अनुकूल है?

व्यावहारिक अभ्यास – यह देखो कि तुम्हारे इलाक़े के सबसे नज़दीकवाले फ़ार्म में सूअर की कौनसी नस्ल पाली जाती है और उसका आर्थिक महत्त्व क्या है।

§ ९०. भेड़

भेड़ों का महत्त्व

भड़ जुगाली करनेवाला समांगुलीय प्राणी है। गायों की तरह इनके भी जटिल जठर और लंबी आंतें होती हैं।

भेड़ों से हमें मांस, चरबी और दूध के अलावा चमड़ा और ऊन मिलते हैं। इनसे विभिन्न ऊनी कपड़े, फ़ेल्ट बूट, फ़ेल्ट और अन्य चीज़ें बनायी जाती हैं। इनकी कुछ नस्लों से रोएंदार खालें (शीप-स्किन, अस्त्राख़ान, इत्यादि) मिलती हैं।

भेड़ों का पालन व्यवहारतः सब जगह किया जा सकता है। सूखी स्तेपियां, अध-रेगिस्तान और पहाड़ी प्रदेश भी जहां चरागाहें उतनी अच्छी नहीं होतीं, इसके अपवाद नहीं हैं। जिन चरागाहों में बड़े बड़े ढोरों के लिए काफ़ी चारा नहीं होता वहां भेड़ों का गुज़ारा हो सकता है। सोवियत संघ के सभी जनतंत्रों में भेड़ों का पालन होता है।

पालतू भेड़ों का मूल

भेड़ों को बहुत ही समय पहले पालतू बनाया गया। स्पष्ट है कि मनुष्य ने इतिहासपूर्व काल में पहले पहल कुत्तों के साथ भेड़ों को पालतू बनाया। भेड़ों की विभिन्न नस्लें विभिन्न पुरखों से पैदा हुई हैं। एक ऐसा पुरखा जंगली भेड़—मफ़लोन—माना जाता है। यह आज भी भूमध्य सागर के कुछ टापुओं में पाया जाता है (आकृति १७९)।

आकृति १७९—मफ़लोन।

मनुष्य के प्रभाव में भेड़ों के गुणों में काफ़ी परिवर्तन हुए। यह विशेषकर उनके ऊन पर लागू है। ऊन भेड़ों से मिलनेवाला मुख्य पदार्थ है।

भेड़ों की नस्लें ऊन के अनुसार भेड़ों की विभिन्न नस्लों को तीन समूहों में बांटा जा सकता है – मुलायम रोएंदार, मोटे रोएंदार और मध्यम मोटे रोएंदार।

मुलायम रोएंदार भेड़ों के लंबा, महीन और एक-सा ऊन होता। इसमें केवल मुलायम या रेशमी रोएं होते हैं। अलग अलग वाल मेद-ग्रंथियों और स्वेद-ग्रंथियों से चूनेवाले मेद और पसीने के मिश्रण से एक दूसरे से चिपके रहते हैं। इससे मुलायम रोएं बनते हैं। यह ऊन की एक अखंडित परत होती है जो बारिश में भीगती नही और ऊन उतारते समय भी छितराती नही। मुलायम रोएंदार भेड़ों के ऊन का उपयोग विभिन्न ऊनी कपड़ों के उत्पादन में किया जाता है।

सोवियत संघ में विकसित की गयी मुलायम रोएंदार भेड़ों की सर्वोत्तम नस्ल अस्कानिया मुलायम रोएंदार भेड़ की नस्ल है (आकृति १८०)। यह नस्ल सोवियत शासन-काल में म० फ़० इवानोव द्वारा उक्रइन के अस्कानिया-नोवा में विकसित की गयी।

आकृति १८० – अस्कानिया मुलायम रोएंदार भेड़।

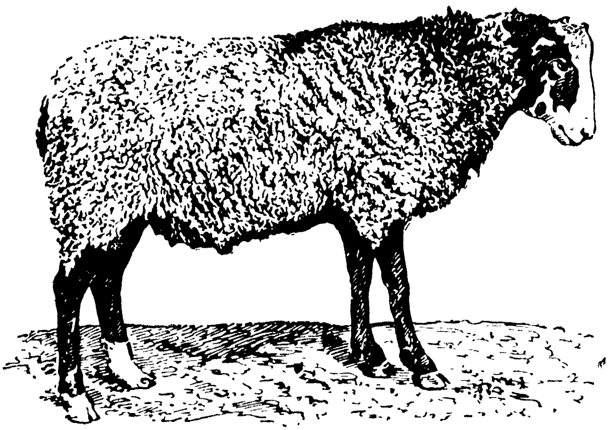

आकृति १८१ – रोमानोव भेड़।

अस्कानिया मुलायम रोएंदार भेड़ों से बड़ी भारी मात्रा में मुलायम ऊन और मांस मिलता है। एक एक भेड़ से साल-भर में तीन-चार मर्दाना सूटों के लिए काफ़ी ऊन मिल सकता है। सर्वोत्तम ज्ञात भेड़ से तो आठ सूटों के लिए काफ़ी ऊन (२९.४ किलोग्राम) मिला।

मोटे रोएंदार भेड़ों का ऊन दरदरा और विषम होता है। इसमें ऊपरी बाल, मुलायम रोएं और बीच के बाल शामिल हैं।

इनकी एक बढ़िया नस्ल रोमानोव नस्ल है (आकृति १८१)। इसमें शीप-स्किन मिलता है। यह ऐसी फ़र है जिसमें अधिकतर मुलायम रोएं ऊपरी बालों से लंबे होते हैं। इससे इन खालों से बनाये गये फ़रदार कपड़ों में ऊन के गुमटे नहीं बनते। रोमानोव भेड़ की खालें वज़न में बहुत हल्की और टिकाऊ होती हैं। भेड़ खाल के गरम कोट बनाने के लिए यह सर्वोत्तम मानी जाती है। इसके अलावा यह नस्ल बड़ी बहुप्रसू है। नियमतः भेड़ हर बार एक और कभी कभी दो मेमने देती है। पर रोमानोव भेड़ हर बार दो और कई बार तो तीन, चार या इससे भी ज़्यादा मेमने जनती है।

कराकुल या अस्त्राख़ान भेड़ें दुनिया-भर में मशहूर हैं (आकृति १८२)। इनकी फ़र से कालर और जाड़ों के टोप बनते हैं। सर्वोत्तम खालें दो या तीन दिन की उम्रवाले मेमनों से मिलती हैं। इनके नन्हा नन्हा, चमकीला और बढ़िया घुंघराला ऊन होता है। जिनके दूध से बच्चे छुड़ाये गये है उन भेड़ों का दूध

ग्राकृति १८२ – कराकुल भेड़ें।

निकाला जाता है ग्रौर उससे ब्रीजा नामक एक विशेष क़िस्म का पनीर बनाया जाता है।

मध्यम मोटे रोएंदार भेड़ों की नस्लों में सबसे मशहूर त्सिगाइस्क नस्ल है। इनसे ग्रच्छी फर मिलती है ग्रौर इनके ऊन से कपड़ा तैयार किया जाता है।

भेड़ों से सर्वोत्तम दर्जे का ऊन ग्रौर मांस प्राप्त करने के लिए उन्हें ग्रच्छी तरह खिलाना ग्रौर पालना-पोसना जरूरी है। यदि खिलाई ग्रच्छी न हो तो भेड़ों का ऊन विषम ग्रौर दोषपूर्ण हो जाता है। बुरी देखभाल के कारण ऊन धूल-मिट्टी ग्रौर तरह तरह के पौधों की पत्तियों ग्रादि से गंदा हो जाता है।

भेड़-पालन-फ़ार्मों में उचित ढंग से ऊन उतारना बड़ा महत्त्वपूर्ण है। पहले यह काम हाथ से होता था। ग्रब बिजली की मशीनों से ऊन उतारा जाता है। इससे काम में काफ़ी तेजी ग्राती है ग्रौर ऊन का भारी उत्पादन (एक एक भेड़ से २०० से ४०० ग्राम ग्रधिक) सुनिश्चित होता है।

प्रश्न – १. राष्ट्रीय ग्रर्थ-व्यवस्था में भेड़-पालन का क्या महत्त्व है? २. पालतू भेड़ें किस माने में उनके जंगली पुरखों से सर्वाधिक भिन्न हैं? ३. सोवियत संघ में मुलायम रोएंदार भेड़ों की कौनसी नस्लें विकसित की गयी हैं? ४. सोवियत संघ में मोटे रोएंदार भेड़ों की कौनसी सर्वोत्तम नस्लें हैं?

व्यावहारिक ग्रभ्यास – यह देखो कि तुम्हारे इलाक़े में भेड़ों की कौनसी नस्लें पाली जाती हैं ग्रौर उनमें कौनसे क़ीमती गुण हैं।

§ ६१. घोड़े

घोड़ों का महत्त्व घोड़ों का उपयोग भारवाही पशु के रूप में, यातायात के लिए और खेती के विभिन्न कामों में किया जाता है। सोवियत संघ के कुछ जनतंत्रों में घोड़े का मांस खाया जाता है और घोड़े के दूध से कूमिस नामक बहुत ही पुष्टिकर और स्वास्थ्यदायी पेय बनाया जाता है। घोड़े की खाल से चमडे की विभिन्न चीज़ें तैयार की जाती है।

घोड़ों का मूल हम पहले उल्लेख कर चुके है कि प्रजेवाल्स्की घोड़ा मंगोलिया के मैदानों में आज भी पाया जाता है। एक सौ वर्ष पहले उक्रइन की दक्षिणी स्तेपियों में तरपन नाम के जंगली घोड़े पाये जाते थे। उससे भी पहले, दूसरे जंगली घोड़े विद्यमान थे। जंगली घोड़ों से पालतू घोड़ों की उत्पत्ति हुई। मनुष्य के प्रभाव में पालतू घोड़े अपने पुरखों से ज्यादा मज़बूत और बड़े तगड़े हो गये।

घोड़ों की नस्लें उपयोग की दृष्टि से घोड़ों की नस्लों को निम्नलिखित समूहों में बांटा जा सकता है—भारवाही घोड़े, सवारी के घोड़े और हल्की गाड़ियों में जुतनेवाले घोड़े जो सवारी के घोड़ों के समान ही होते हैं।

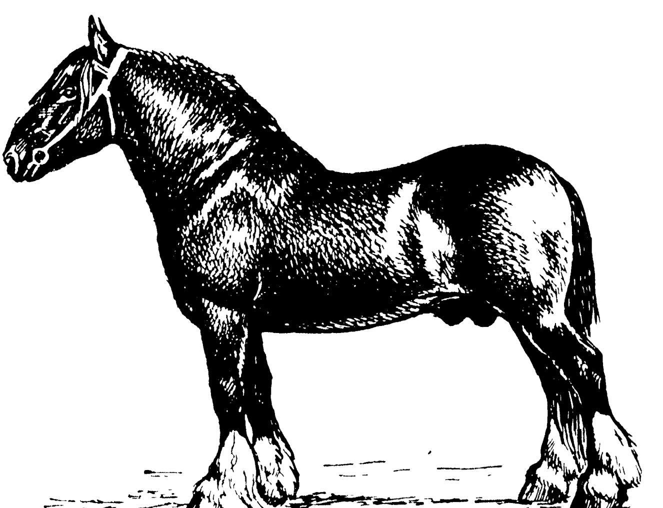

आकृति १८३—व्लादीमिर भारवाही घोड़ा।

भारवाही घोड़ों की सर्वोत्तम नस्लों में से एक है व्लादीमिर भारवाही घोड़ा (आकृति १८३)। यह नस्ल व्लादीमिर प्रदेश के कोलखोज़ों में विकसित की गयी। इस नस्ल के घोड़े लंबे, मोटे-ताज़े होते है और लंबे डग भरते हैं। ये भारी भारी बोझ खीच सकते हैं।

सवारी के घोड़ों की एक सर्वोत्तम नस्ल दोन घोड़े की नस्ल है। इसका संवर्द्धन विशाल स्तेपी क्षेत्रों की चरागाहों में चरनेवाले गल्लों में हुआ। इस कारण यह सहज सतोषी नस्ल बड़ी मज़बूत निकली। घुड़दल के लिए यह बढ़िया जानवर है और भार-वहन तथा खेत की जुताई में भी उसका उपयोग किया जा सकता है।

इधर सोवियत संघ के मारशल स० म० बुद्योन्नी के व्यक्तिगत मार्गदर्शन में दोन घोड़े से एक नयी नस्ल विकसित की गयी जो बुद्योन्नी नस्ल कहलाती है। यह दोन घोड़े की तरह ही बड़ा सहनशील घोड़ा है और दौड़ता है उससे तेज़।

हल्की गाड़ियों में जुतनेवाले घोड़ों में से ओर्योल दुलकी चालवाली नस्ल सर्वोत्तम है। इसका विकास डेढ़ सौ से अधिक वर्ष पहले वोरोनेज प्रदेश में किया गया।

सोवियत संघ के विभिन्न जनतंत्रों और प्रदेशों में उत्कृष्ट घोड़ों की कई अन्य नस्लें है जो स्थानीय परिस्थिति की आदी हैं।

प्रश्न – १. पालतू घोड़े के पुरखे कौन हैं? २. भारवाही घोड़ों के विशेष लक्षण कौनसे है? ३. सवारी के घोड़ों की सर्वोत्तम नस्लें कौनसी हैं?

§ ६२. सोवियत संघ में पशु-पालन का विकास

बुनियादी खाद्य-पदार्थ और जूतों तथा कपड़ों के लिए कच्चा माल प्राप्त करने की दृष्टि से पालतू जानवरों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पशु-पालन के विकास में निर्णायक महत्त्व की बात है चारे की पूर्ति में सुधार ताकि ढोरों को सारे साल विविध और भरपूर भोजन मिलता रहे। इस उद्देश्य से अनाज की और विशेषकर मक्के की फ़सलों की बुआई में वृद्धि की गयी है। मक्के की डंडियों और पत्तियों से ढोरों के लिए बढ़िया चारा बनाया जाता है

श्रौर उसके भुट्टों श्रौर दानों का उपयोग मुर्ग़ी-बत्तख़ों श्रौर सूश्ररों की खिलाई में होता है। कंद-मूल, श्रालू श्रौर चारा-गोभी जैसी रसदार चारे की फ़सलें श्रधिक विस्तृत क्षेत्रों में उगायी जाते हैं। मोथों की निराई श्रौर उपयुक्त घास-चारे की बुश्राई के रूप में चरागाहों को सुधारने के क़दम उठाये जाते है। विशेष खेतों में मूंग-मोठ श्रौर जई की मिश्रित फ़सलें श्रौर तिनपतिया, टिमोथी घास, ल्यूसर्न घास श्रादि उगायी जाती हैं।

उन्नत कोलख़ोज़ों में तथाकथित हरे कन्वेयरों का संगठन किया जाता है। इनसे वसंत के पूर्वार्द्ध से लेकर शरद के उत्तरार्द्ध तक बराबर हरे चारे की पूर्ति होती है।

पशु-पालन में बाड़ों का बड़ा महत्त्व है। कोलख़ोज़ों श्रौर राजकीय फ़ार्मों ने श्रच्छे ख़ासे बाड़े बनाये हैं। जाड़ों में इन जगहों में रखे गये जानवरों का बुरे मौसम श्रौर पाले से श्रच्छी तरह बचाव होता है।

पशु-पालन के विकास में भारी कामों के चहुंमुखी यंत्रीकरण का भी विशेष स्थान है। नियमतः डेयरी-घरों को नल के ज़रिये पानी पहुंचाया जाता है श्रौर वहां स्वचालित जल-पात्र लगाये जाते हैं। पहियेदार या केबिल के सहारे चलनेवाले ट्रकों द्वारा चारा-दाना श्रंदर लाया जाता है श्रौर गोबर हटाया जाता है।

ख़ुराक तैयार करने में कंद-मूल-कटाई श्रौर खली-पिसाई के यंत्रों, चारे को गरम भाप देने के बरतनों इत्यादि का उपयोग किया जाता है। गायों का दूध दुहने श्रौर भेड़ों का ऊन उतारने जैसे कामों में बिजली भी इस्तेमाल की जाती है।

गल्ले बढ़ाने की दृष्टि से ज़रूरी क़दम उठाये जाते है। इस सिलसिले में बछड़ों की रक्षा पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है।

वर्तमान नस्लों के सुधार श्रौर नयी नस्लों के विकास की दृष्टि से बड़े पैमाने पर कार्रवाइयां की जाती हैं। कोलख़ोज़ों को सर्वोत्तम नस्लों के ढोर उपलब्ध कराने की दृष्टि से सरकारी पशु-संवर्द्धन-फ़ार्मों का एक जाल-सा संगठित किया गया है।

पशु-चिकित्सा-सेवा के विकास के फलस्वरूप देश-भर में पशुरोगों के विरुद्ध वस्तुतः बहुत ज़ोरदार कार्रवाइयां की जा रही हैं।

ये सभी कार्य संपन्न कराने में कोलख़ोज़ों श्रौर राजकीय फ़ार्मों के पशु-पालक, गायों को दुहनेवाली श्रौरतें, पशु-पालिकाएं, चरवाहे इत्यादि सक्रिय रूप से हाथ

बंटाते हैं। इनमें से बहुत-से लोग असाधारण सफलताएं प्राप्त करते हैं। उदाहरणार्थ, कारावायेवो राजकीय फ़ार्म की बछड़ा-पालिका समाजवादी श्रमवीर म०त०स्मिरनोवा को ही लो। उन्होंने २२ वर्ष की अवधि में २,००० से अधिक बछड़ों को बड़ा किया। इस अवधि में कोई महामारी नहीं पैदा हुई।

वोलोग्दा प्रदेश की कोलखोज़ी किसान स्त्री अ० ये० ल्युस्कोवा ने बड़ा नाम कमाया है। उन्होंने एक साल और २० दिन में एक सूअर से (बाद की पीढ़ियों को लेकर) १७१ संतानें प्राप्त की। इन सब का कुल वज़न ५,३३० किलोग्राम रहा।

पशु-पालन के विकास में वैज्ञानिक बड़ी सहायता देते हैं। वे उचित खिलाई और रोग नियंत्रण की समस्याओं पर अनुसंधान करते है। वैज्ञानिकों के मार्गदर्शन में कोलखोज़ों और राजकीय फ़ार्मों में बहुत-सी उत्तम नयी नस्लें पैदा की गयी हैं। सारा अनुसंधान-कार्य कोलखोज़ों और राजकीय फ़ार्मों के किसानों की व्यावहारिक सफलताओं के अध्ययन के आधार पर किया जाता है। अपनी ओर से पशु-पालक अपने व्यावहारिक कार्य में कृषि-विज्ञान की सफलताओं से सहायता पाते हैं। इस प्रकार हमारे देश में वैज्ञानिक सिद्धांत और व्यवहार हाथ में हाथ डाले विकास के पथ पर अग्रसर होते हैं।

पशु-पालन के क्षेत्र में सफल काम करने पर पशु-पालकों को पदक और तमग़े दिये जाते हैं। इनमें से सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों को समाजवादी श्रमवीर की उपाधि और लेनिन पदक से विभूषित किया जाता है।

प्रश्न – १. पशु-पालन के विकास के लिए कौनसी बातें सबसे महत्त्वपूर्ण हैं? २. पशु-पालन में वैज्ञानिकों से किस प्रकार की सहायता मिलती है?

उपसंहार

§ ६३. प्राणि-जगत् की सामान्य रूप-रेखा

प्राणि-जगत् का परिचय प्राप्त करने पर पता चलता है कि विविधता के साथ साथ प्राणियों में बहुत-सी समानता भी होती है। हर प्राणी के शरीर में उपापचय-क्रिया होती है; हर प्राणी अपनी जाति की संतान उत्पन्न करके पीछे छोड़ता है, बच्चे बड़े और परिवर्द्धित होते हैं। प्राणियों की संरचना में भी समानता होती है – उनका शरीर कोशिकाओं से बना हुआ होता है (प्रोटोज़ोआ में एक कोशिका और दूसरे प्राणियों में अनेक)। दूसरी ओर संरचना की जटिलता के कारण प्राणी एक दूसरे से भिन्न पहचाने जा सकते हैं।

हमने जिन प्राणियों का अध्ययन किया वे उनकी भिन्नताओं के आधार पर निम्नलिखित समूहों में विभाजित हैं – १) प्रोटोज़ोआ, २) सीलेंट्रेटा, ३) कृमि (सपाट कृमि, गोल कृमि और छल्ला कृमि), ४) मोलस्क, ५) आरथ्रोपोडा, ६) रज्जुधारी (रीढ़धारियों सहित)।

प्रोटोज़ोआ समूह में अतिप्राचीन एककोशिकीय प्राणी (अमीबा, पैरामीशियम, मलेरिया परजीवी) शामिल हैं।

सीलेंट्रेटा समूह में ऐसे बहुकोशिकीय प्राणी (हाइड्रा, आदि) आते हैं जिनके संगठन में काफ़ी सरलता दिखाई देती है। इनके शरीरों में कोशिकाओं की केवल दो परतें होती हैं।

कृमि समूह में सीलेंट्रेटा से अधिक जटिल संरचनावाले प्राणी (केंचुआ, एस्कराइड, फ़ीता-कृमि) शामिल हैं। कृमि का शरीर पेशियों और त्वचा से बनी थैली का सा होता है जिसमें पचनेंद्रियां, उत्सर्जनेंद्रियां और जननेंद्रियां होती हैं और तंत्रिका-तंत्र भी।

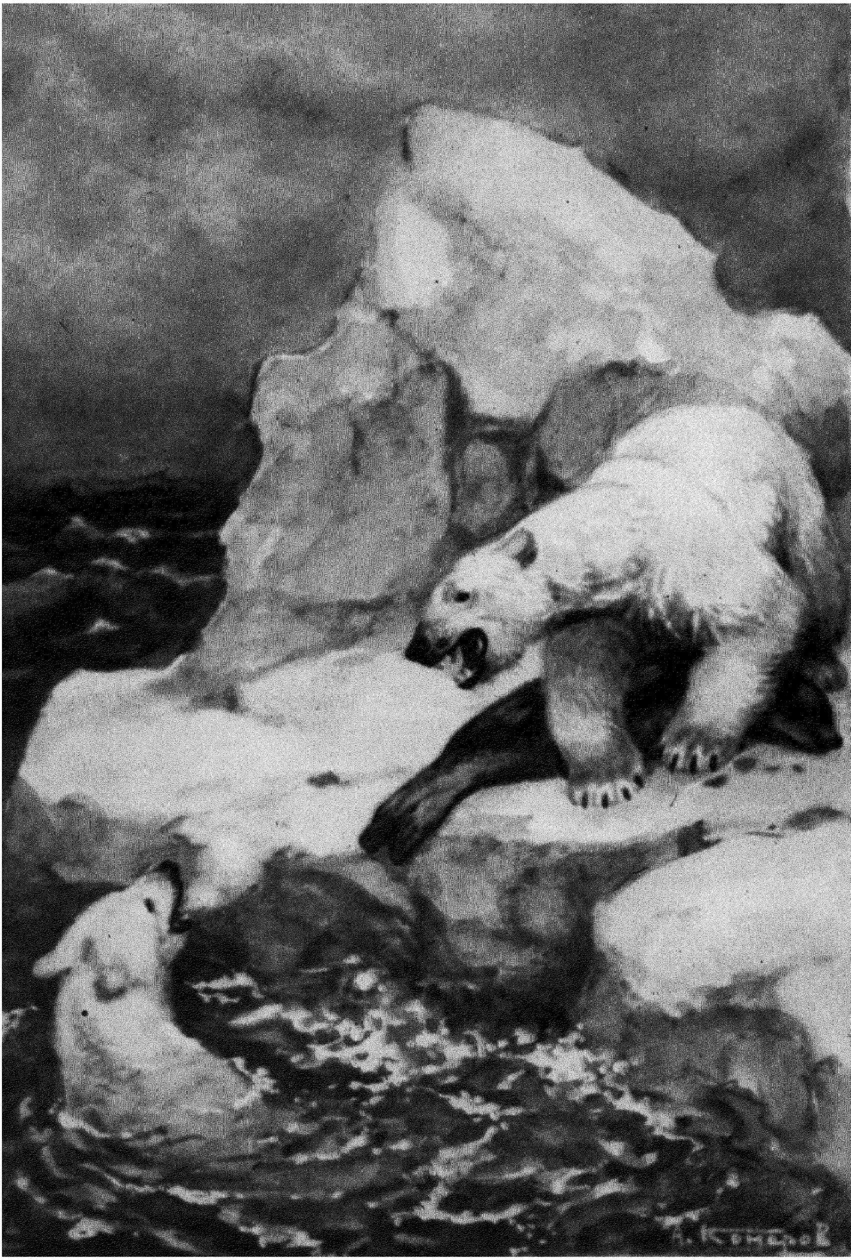

रंगीन चित्र १. सफ़ेद भालू

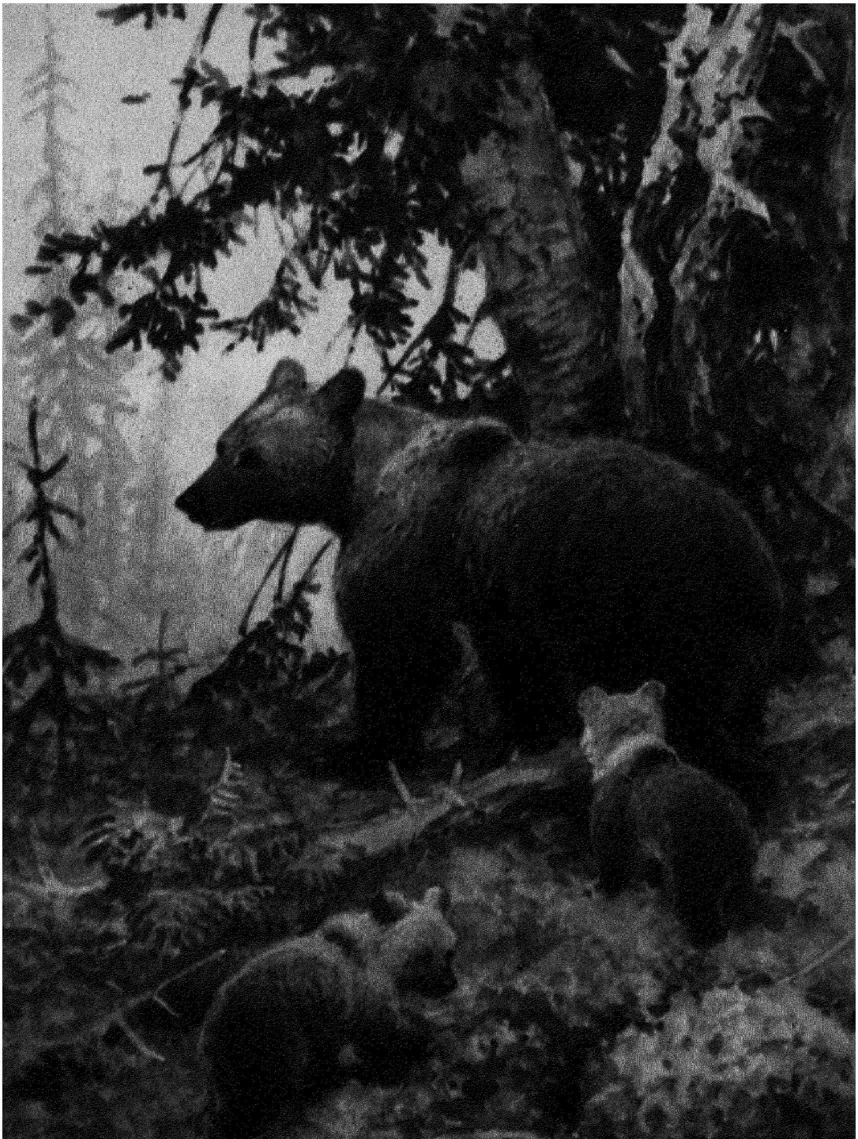

रंगीन चित्र २. भूरा भालू

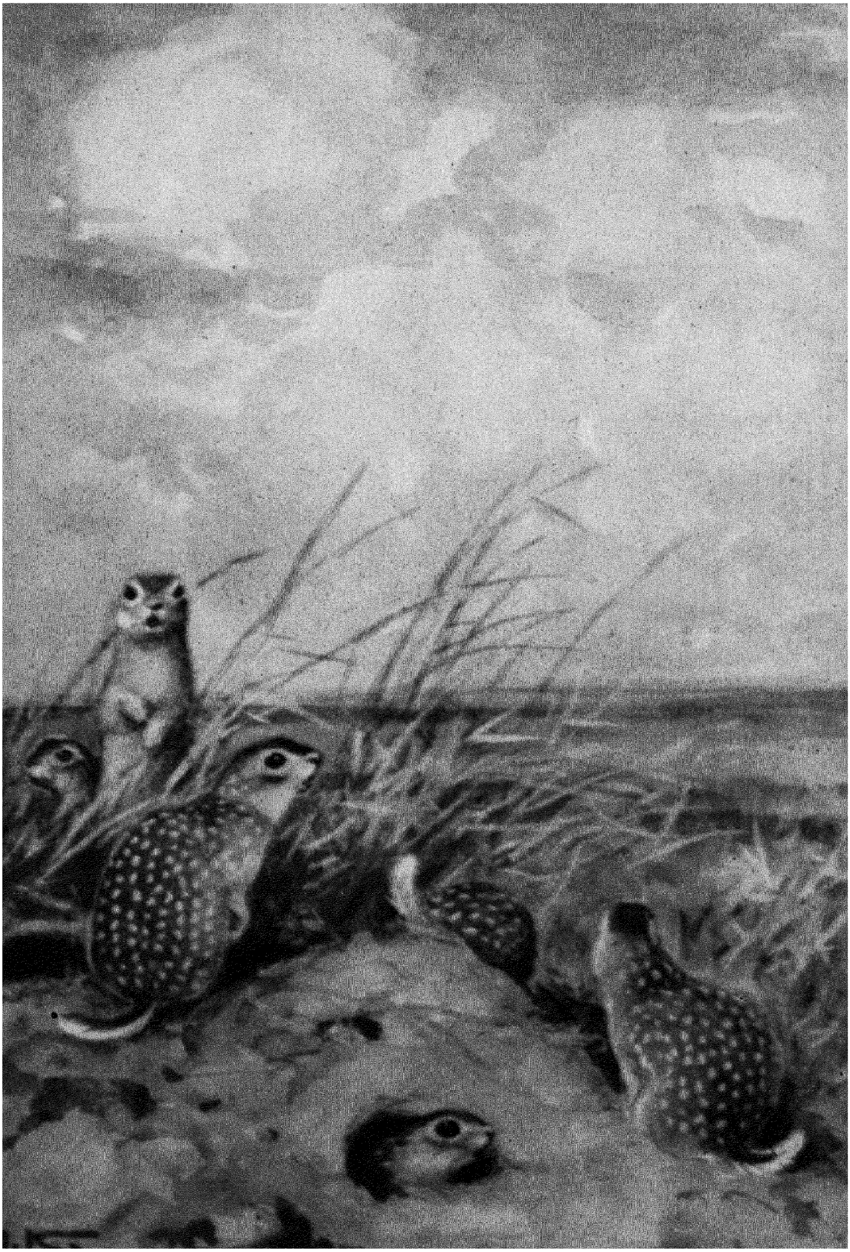

रंगीन चित्र ३. गोफर

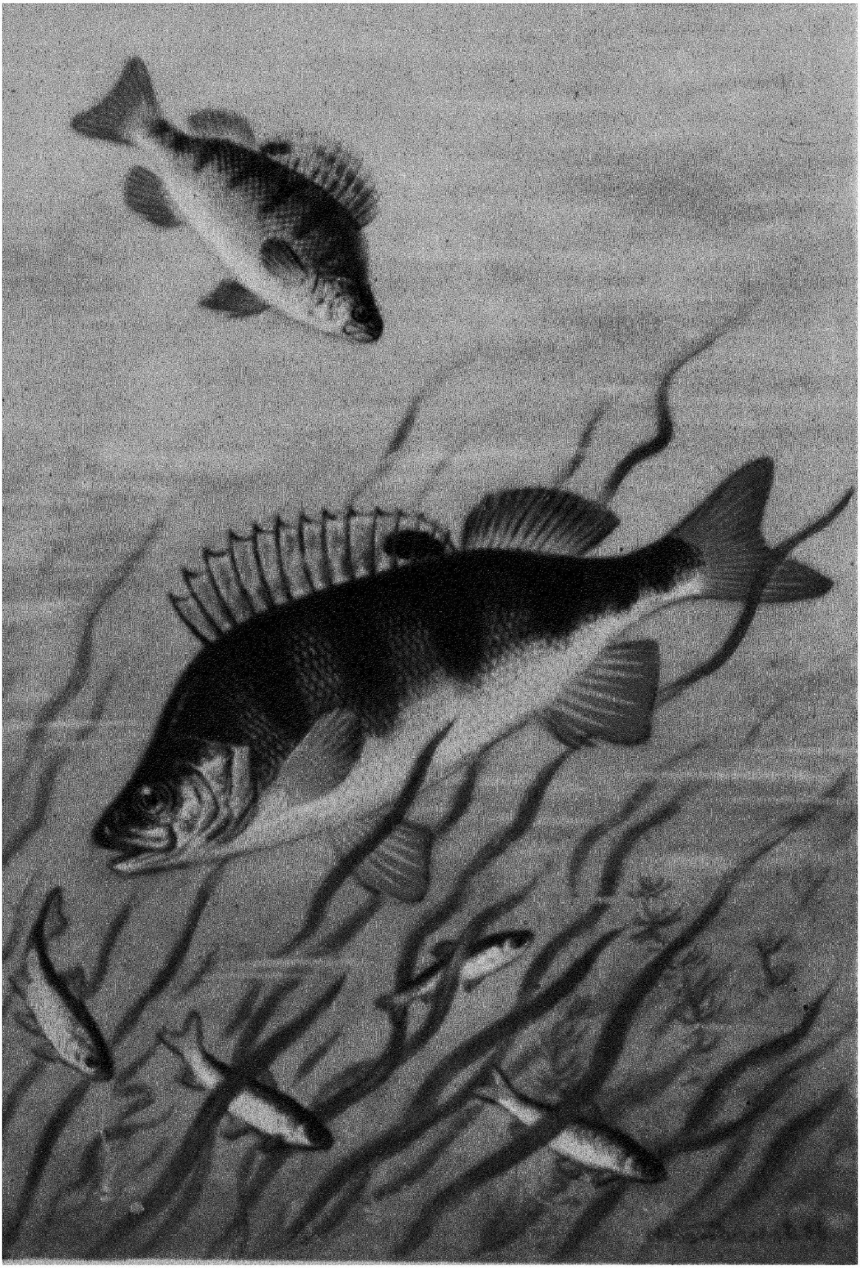

रंगीन चित्र ४. पर्च-मछलियां

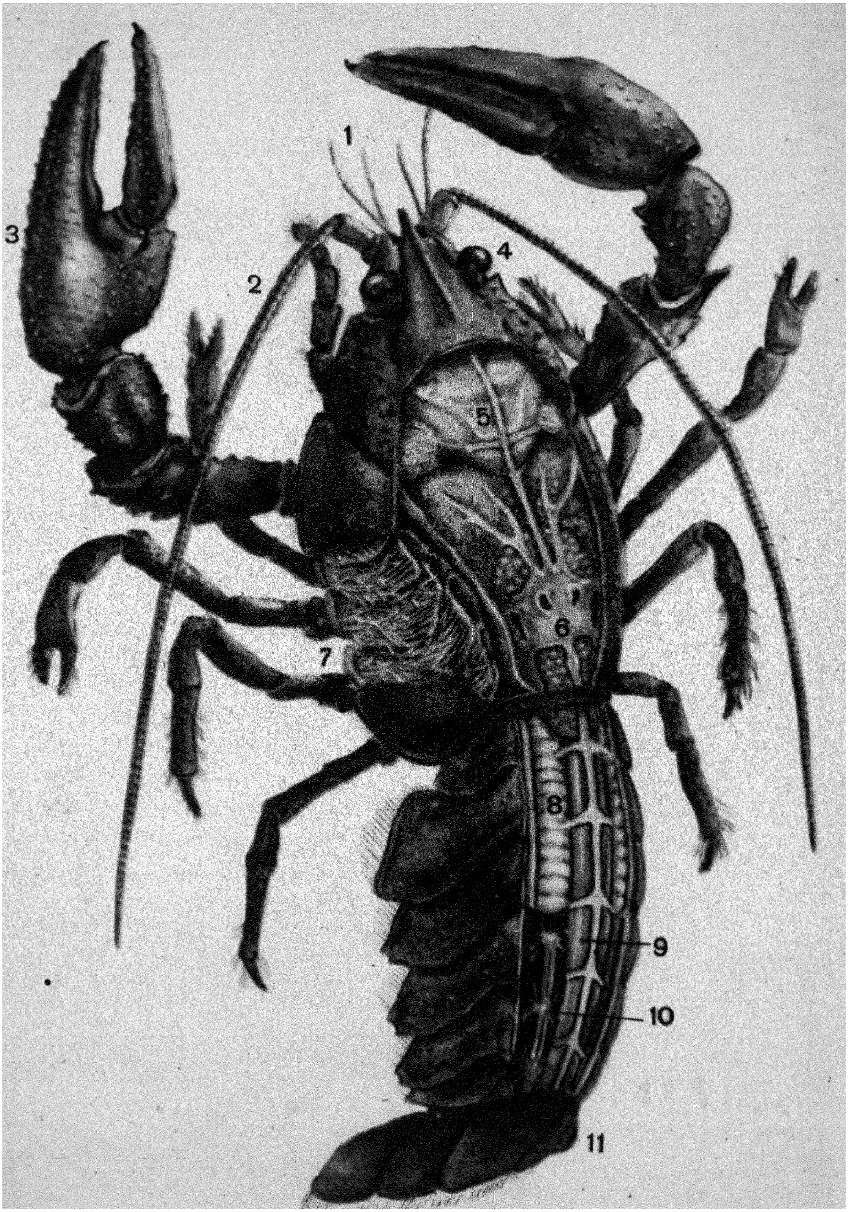

रंगीन चित्र ५. नदी की क्रे-मछली

1 – लघु शृंगिकाएं ; 2 – दीर्घ शृंगिकाएं ; 3 – नखर ; 4 – आंख ; 5 – जठर ; 6 – रक्त-वाहिनियों की शाखाओं सहित हृदय (हृदय के नीचे अंडों से भरा अंडकोश है) ; 7 – जल-श्वसनिकाएं ; 8 – औदरिक

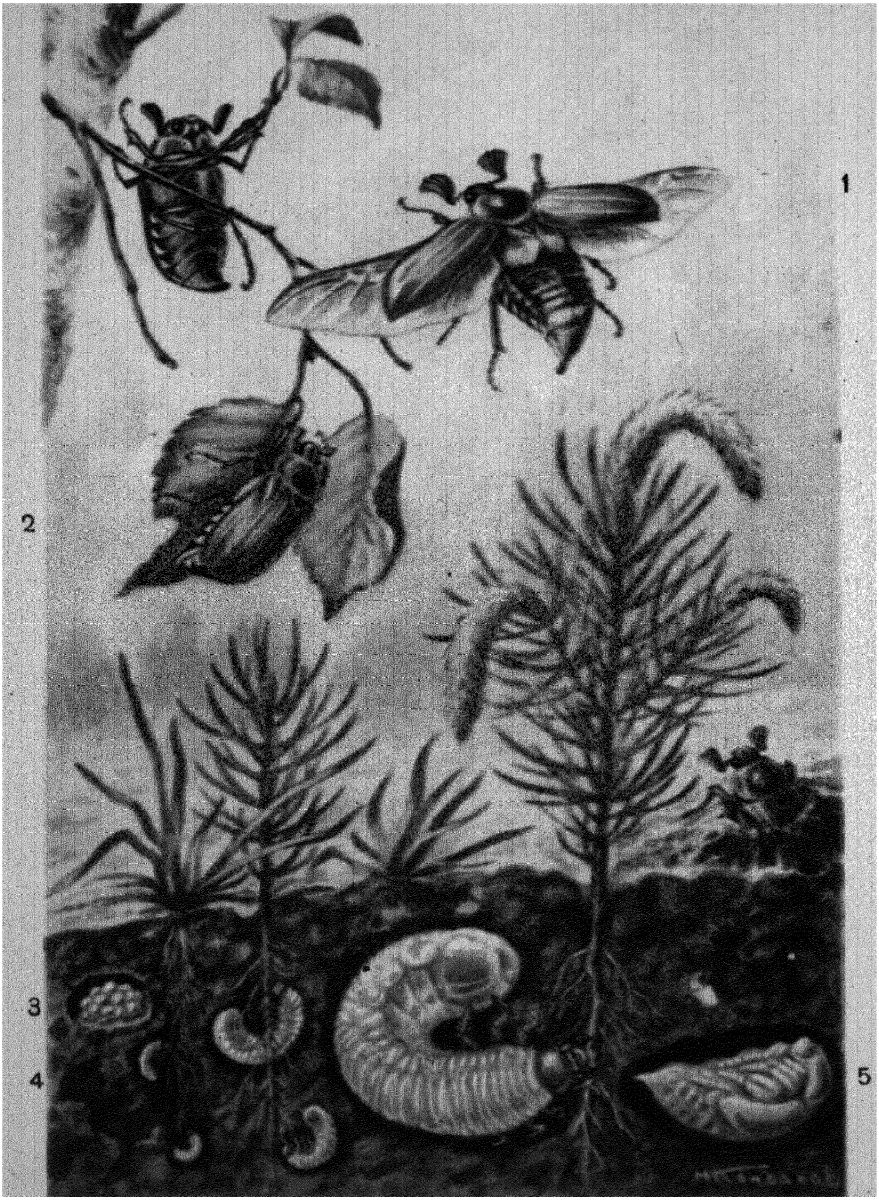

रंगीन चित्र ६. काकचेफ़र

1 – नर (श्रृंगिकाएं बड़ी पट्टियों की बनी रहती हैं); 2 – मादा (श्रृंगिकाएं छोटी पट्टियों की बनी रहती हैं); 3 – अंडे; 4 – विभिन्न अवस्थाओं वाले डिंभ; 5 – प्यूपा।

रंगीन चित्र ७. कोलोरैडो बीटल
1 – अंडे ; 2 – डिंभ (ऊपर – यथातथ ; नीचे – विशालीकृत) ; 3 – प्यूपा ;
4 – वयस्क बीटल (बायें – विशालीकृत)

4

3

2

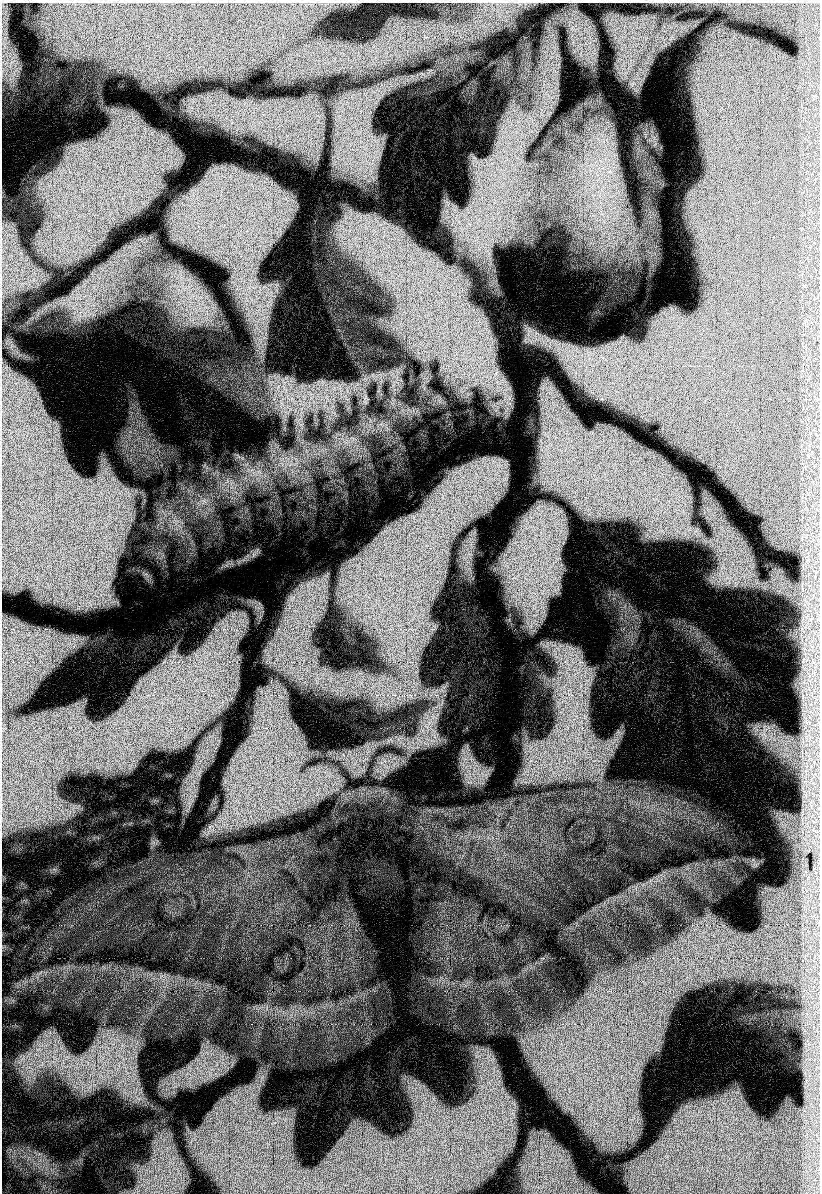

1

रंगीन चित्र ८. चीनी बलूत का रेशमी कीड़ा
1 – तितली ; 2 – अंडे ; 3 – इल्ली ; 4 – कोआ ।

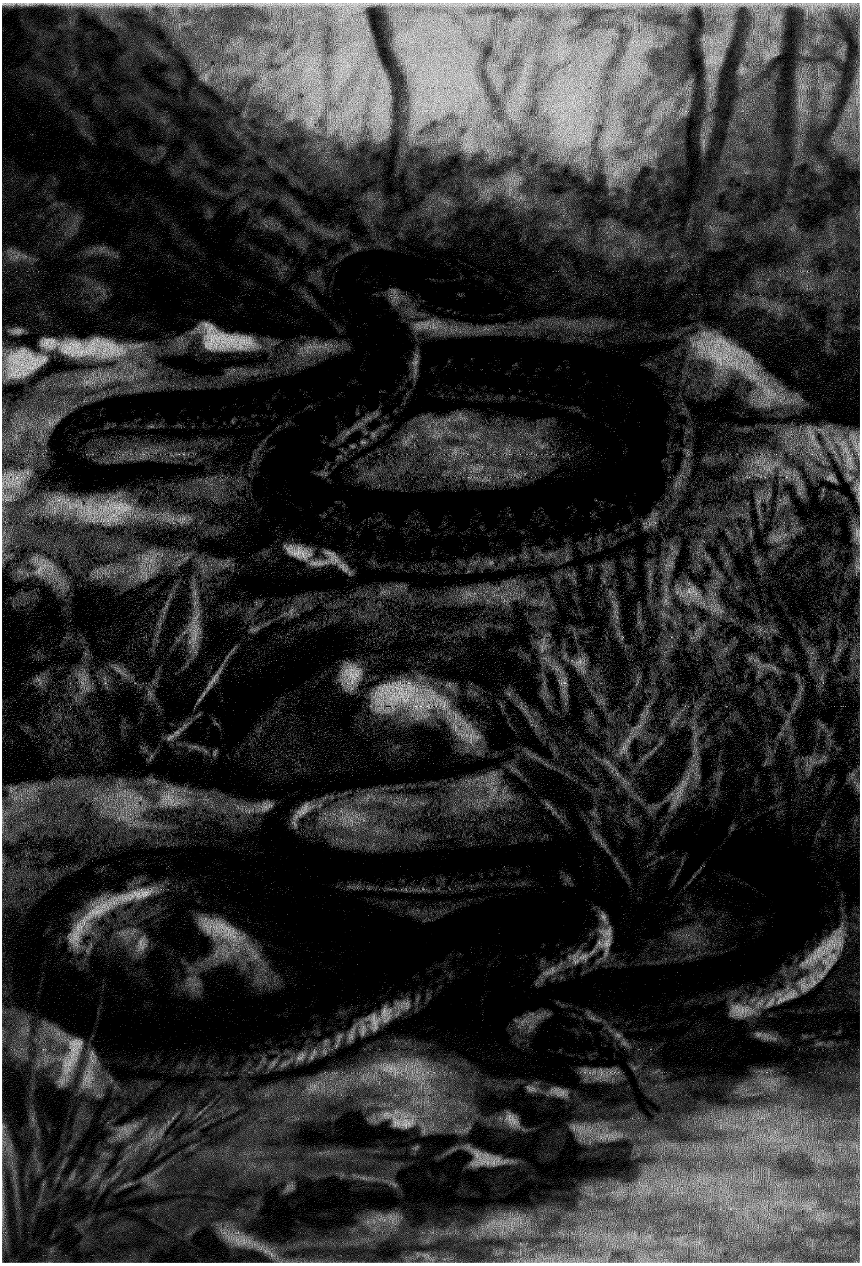

रंगीन चित्र ६. तृण-सर्प और वाइपर

रंगीन चित्र १०. रूक

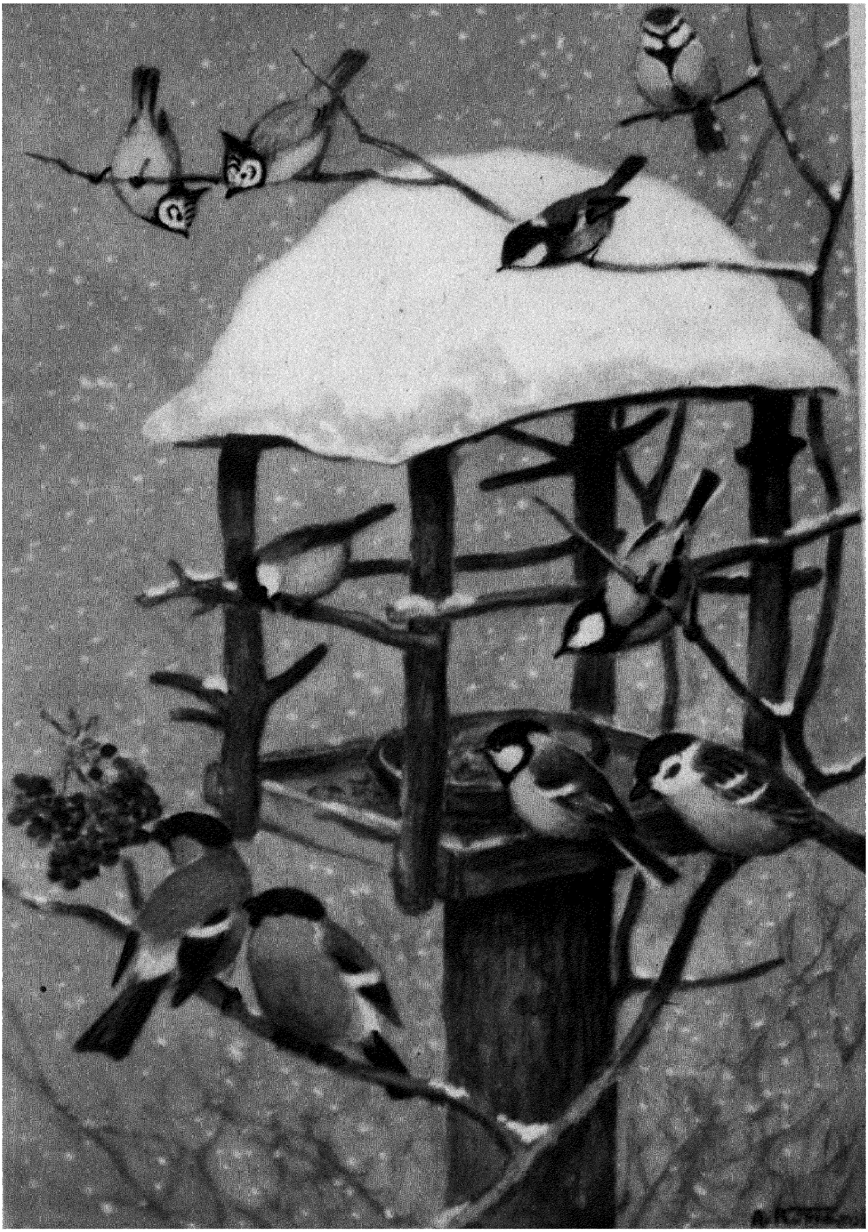

रंगीन चित्र ११. पक्षियों की चुगाई

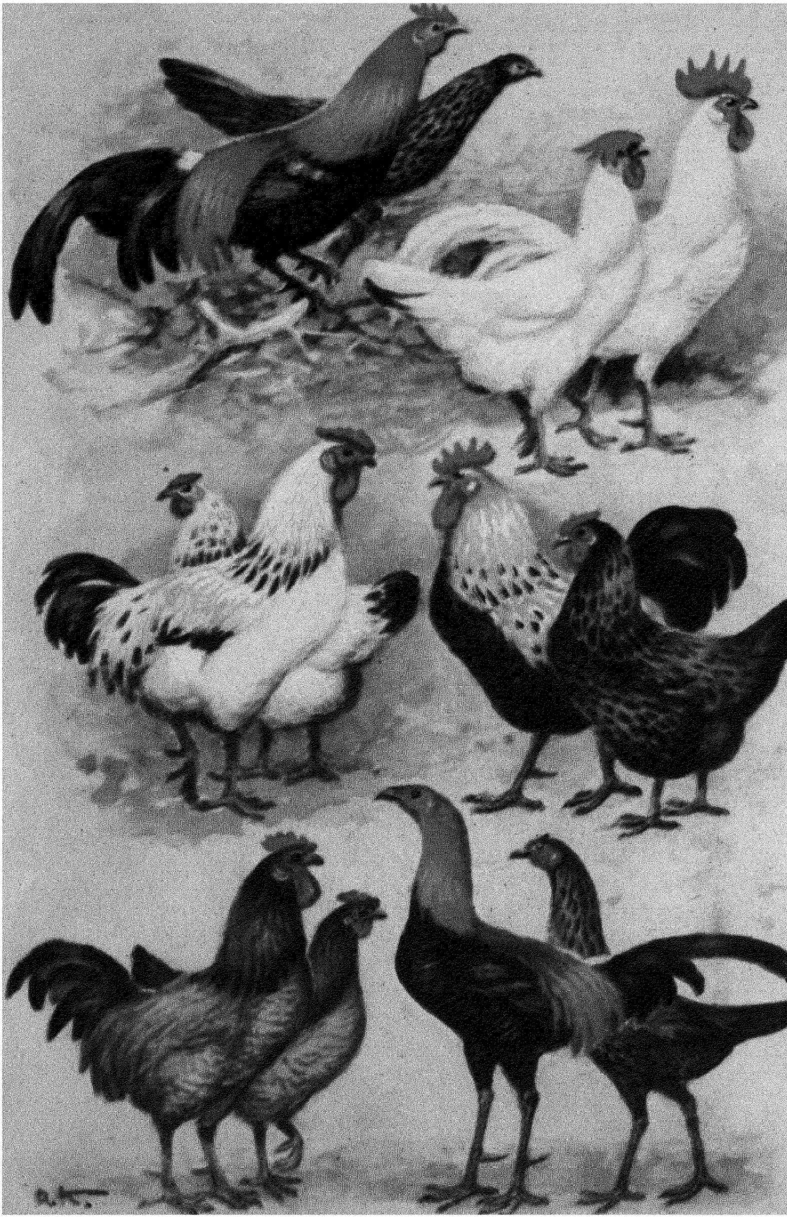

रंगीन चित्र १२. मुर्ग़ियां

1 – भारतीय जंगली मुर्ग़ी ; 2 – रूसी सफ़ेद मुर्ग़ी ; 3 – पेरवोमाइस्काया नस्ल ; 4 – यूरलोव ज़ोरदार आवाज़वाली नस्ल ; 5 – नीज्नेदेव्रीत्स्काया नस्ल ; 6 – ब्रिटिश लड़ाकू मुर्ग़ ।

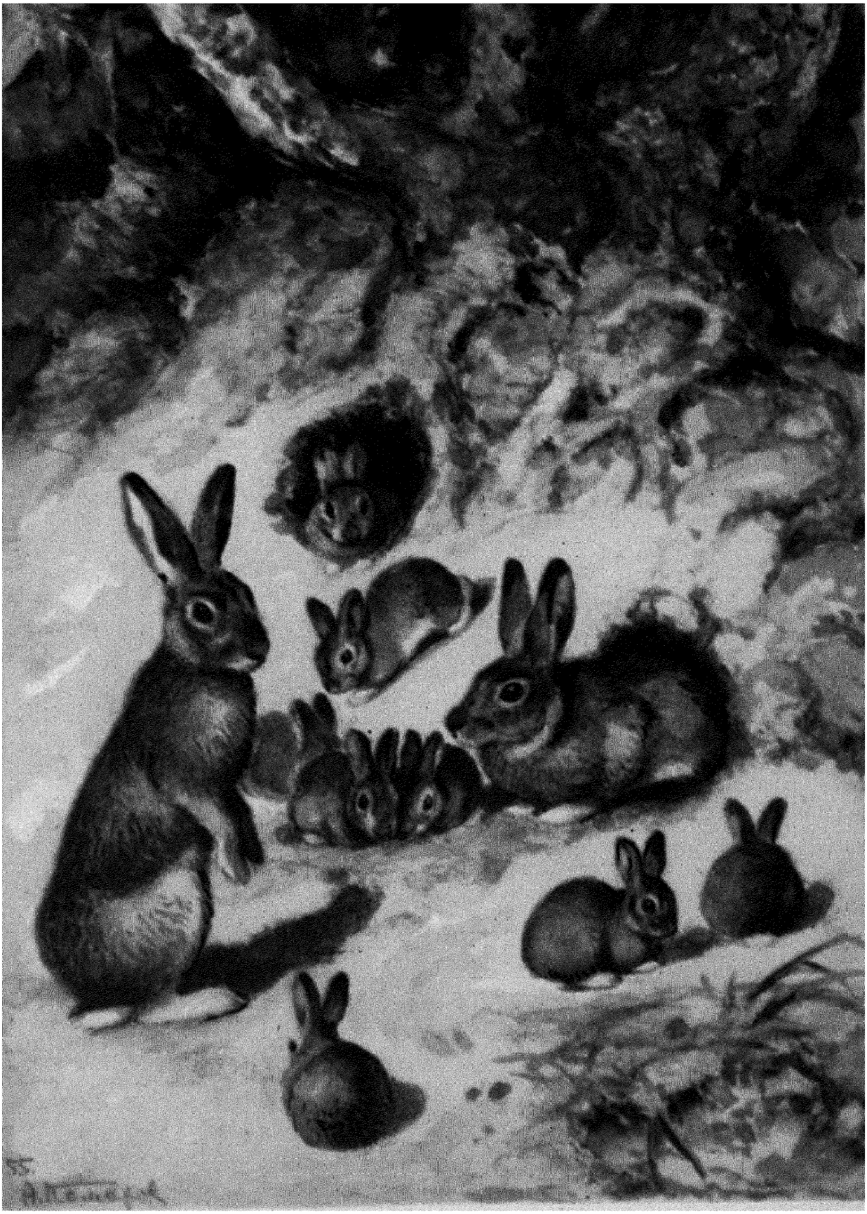

रंगीन चित्र १३. जंगली शशक

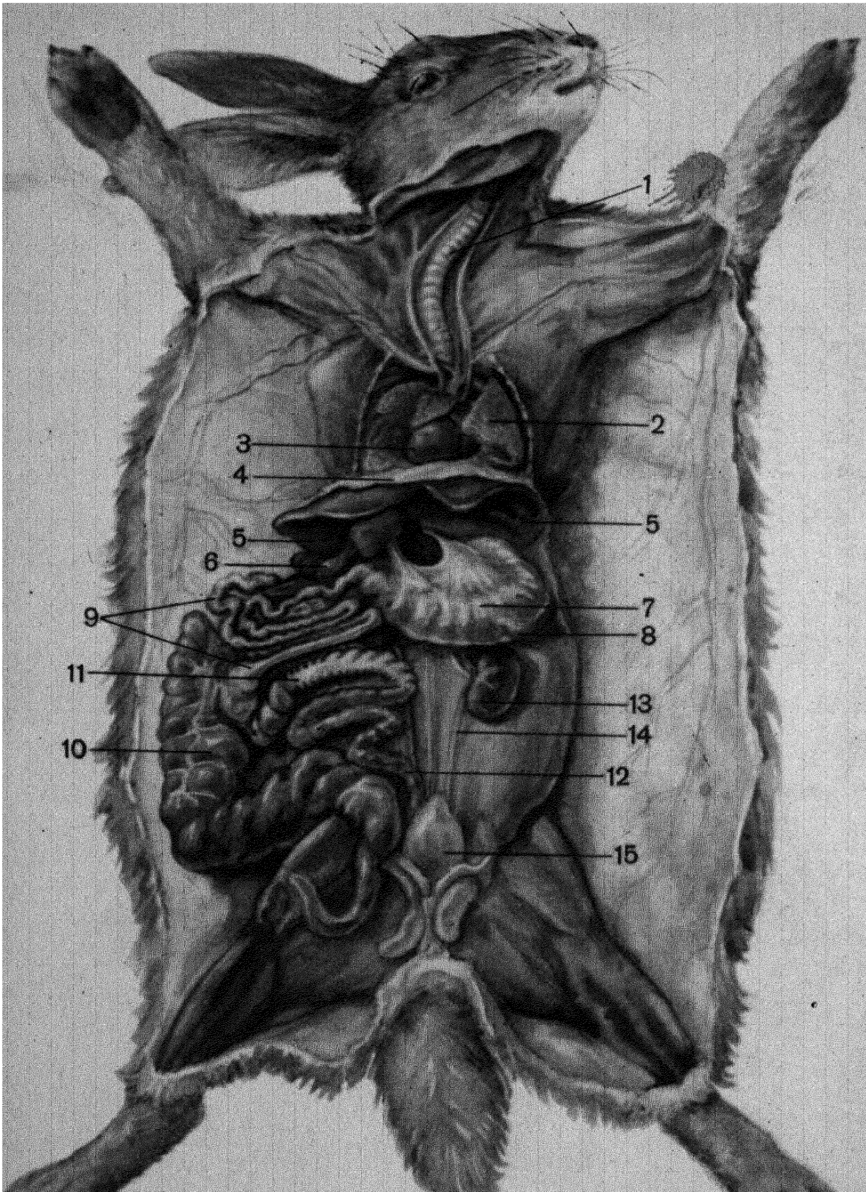

रंगीन चित्र १४. शशक की अंदरूनी इंद्रियां

1 – श्वास-नली ; 2 – फुफ्फुस ; 3 – हृदय ; 4 – डायेफ़्राम ;
5 – यकृत् ; 6 – पित्ताशय ; 7 – जठर ; 8 – प्लीहा ; 9 – पतली आंत ;
10 – सीकम ; 11 – मोटी आंत ; 12 – मलाशय ; 13 – गुरदा ;
14 – मूत्र-वाहिनी ; 15–मूत्राशय ।

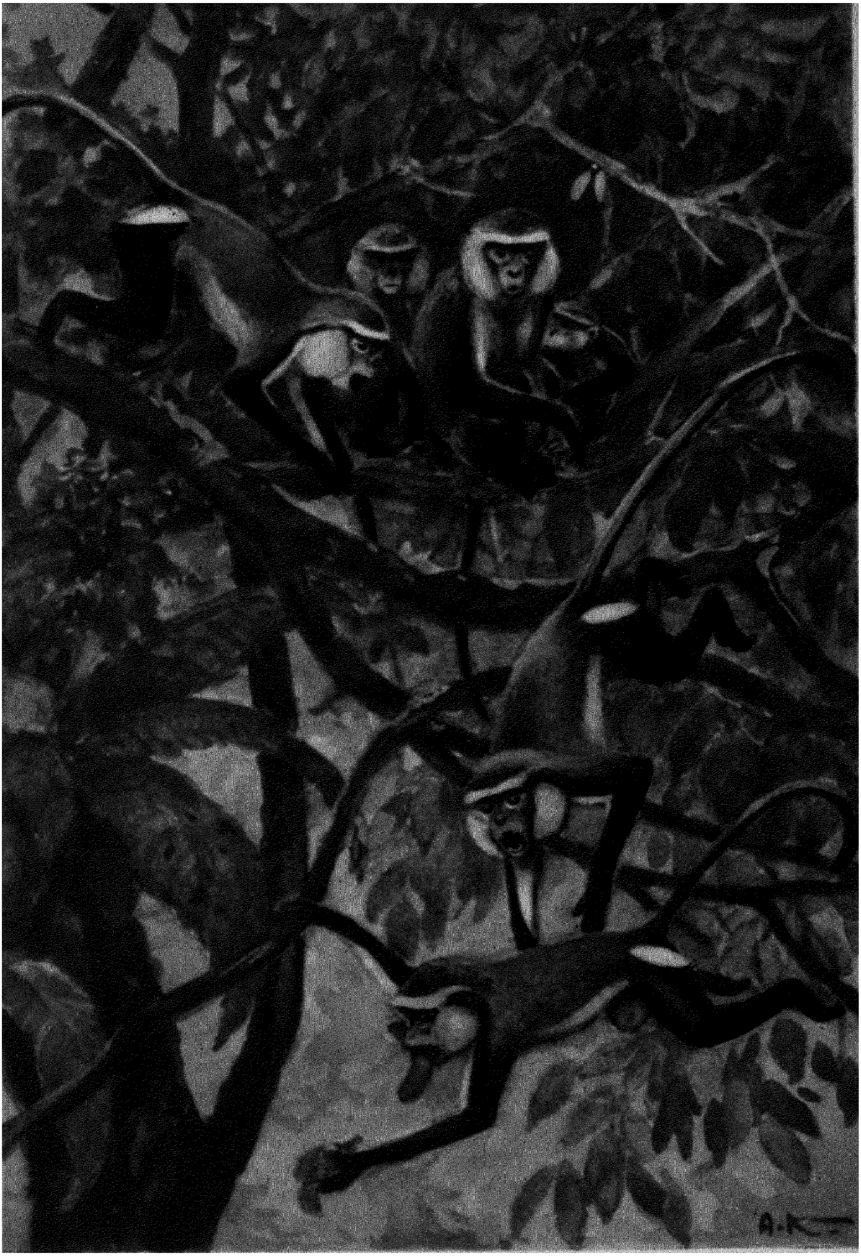

रंगीन चित्र १५. मारमोसेट

रंगीन चित्र १६. चिंपैंज़ी

मोलस्क समूह के प्राणियों के मुलायम, वृत्तखंडरहित शरीर होते हैं और उनपर के आवरणों से सख़्त चूने के कवच रसते हैं।

आरथ्रोपोडा समूह में क्रस्टेशिया, अरैकनिडा और कीट शामिल हैं। इनकी अंदरूनी इंद्रियां कृमियों और मोलस्कों की तुलना में अधिक जटिल होती हैं। उनका शरीर एक काइटिनीय आवरण में बंद रहता है। यह आवरण इंद्रियों की रक्षा करता है और बहिःकंकाल का काम देता है।

आरथ्रोपोडा के सुविकसित गतिदायी इंद्रियां – वृत्तखंडधारी अंग होते हैं; अधिकांश कीटों के पंख भी होते हैं।

वे अधिक गतिशील जीवन व्यतीत करते हैं जिससे उनके तंत्रिका-तंत्र के विकास में और ज्ञानेंद्रियों की पूर्णता में अधिक उद्दीपन मिलता है। आरथ्रोपोडा का बरताव अन्य समूहों के प्राणियों के बरताव से जटिलतर होता है। उनमें जटिल अनियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाओं (सहज प्रवृत्तियों) का अस्तित्व होता है और अपने जीवन-काल में वे नियमित प्रतिवर्त्ती क्रियाएं अपना सकते हैं।

रज्जुधारी समूह में अत्यंत सुविकसित प्राणी शामिल हैं, जैसे रीढ़धारी और कुछ अन्य। अन्य में सबसे ज्यादा दिलचस्प प्राणी लैंसेट-मछली है। यह समुद्र में रेत में घुसकर रहती है। तल की सतह के ऊपर केवल उसके शरीर का अगला सिरा निकला हुआ रहता है। इसमें उक्त प्राणी का स्पर्शिकाओं से घिरा हुआ मुंह शामिल है। पानी के साथ मुह और गले के ज़रिये नन्हे नन्हे समुद्री जीव इस प्राणी के पेट में चले जाते हैं। यही लैंसेट-मछली का भोजन है।

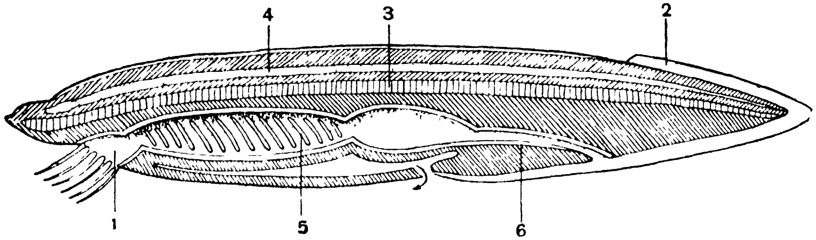

आकृति १८४ – लैसेट-मछली का लंबाई में काट (रूप-रेखा)
१(1). स्पर्शिकाओं से घिरा हुआ मुंह; २(2). पुच्छ मीन-पक्ष; ३(3). रज्जु; ४(4). तंत्रिका-नलिका; ५(5). जल-श्वसनिका-छिद्र; ६(6). आंत।

बाहरी तौर पर लैंसेट-मछली एक छोटी-सी मछली (लंबाई ७-८ सेंटीमीटर) जैसी ही दीखती है पर उसकी संरचना सरलतर होती है (आकृति १८४)। उसके सिर नहीं होता और शरीर का अगला हिस्सा केवल मुख-द्वार से ही पहचाना जा सकता है। उसके सयुग्म मीन-पक्ष भी नहीं होते। अयुग्म मीन-पक्ष पीठ से होकर पूंछ को घेरता हुआ औदरिक हिस्से पर जारी रहता है।

सारे शरीर मे फैली हुई रज्जु से कंकाल बनता है। रज्जु के ऊपर तंत्रिका-तंत्र होता है। यह एक सीधी तंत्रिका-नलिका के रूप में होता है, मस्तिष्क और रीढ़-रज्जु में बंटा हुआ नही। लैंसेट-मछली का रक्त-परिवहन तंत्र रीढ़धारियों की तरह बंद होता है पर उसके हृदय नहीं होता। रज्जु के नीचे पाचन-नलिका होती है। इसके अगले सिरे में बहुत-से जल-श्वसनिका-छिद्र होते हैं।

इस प्रकार, संरचना की सरलता के बावजूद लैंसेट-मछली बहुत कुछ रीढ़धारियों के समान है। फ़्रे० एंगेल्स ने उसे "कशेरुक रहित कशेरुक दंडी" कहा था।

लैंसेट-मछली को रज्जुधारी समूह में रीढधारियों के साथ रखा जाता है। वयस्कों या भ्रूणों में रज्जु का अस्तित्व इस समूह के प्राणियों का एक सर्वाधिक विशेष लक्षण है। रज्जु के ऊपर तंत्रिका-तंत्र होता है और नीचे – आहार-नली।

संरचनात्मक लक्षणों के कारण लैंसेट-मछली को एक विशेष 'खोपड़ी रहित' उप-समूह में रखा जाता है। रीढधारियों या खोपड़ीधारियों से रज्जुधारियों का दूसरा उप-समूह बनता है। रीढ़धारियों के अंतःकंकाल होता है जिसका आधार रीढ या कशेरुक दंड होता है; उनके खोपड़ी होती है; उनके रक्त-परिवहन तंत्र में हृदय शामिल है। रीढ़धारियों के उप-समूह में मछलियां, जल-स्थलचर, उरग, पक्षी और स्तनधारी शामिल हैं।

प्रश्न – १. प्राणि-जगत् किन समूहों में विभाजित है? २. प्रत्येक समूह की विशेषताएं क्या हैं? ३. रज्जुधारी समूह कौनसे उप-समूहों में विभाजित है? ४. लैंसेट-मछली को रज्जुधारी समूह में क्यों रखा जाता है?

§ ९४. प्राणि-जगत् की विविधता और उसके स्रोत

प्राणियों की विविधता

इस पुस्तक में प्राणि-जगत् की जो संक्षिप्त रूप-रेखा प्रस्तुत की गयी है उससे उसकी अतिविविधता की काफ़ी अच्छी कल्पना मिल सकती है। एककोशिकीय शरीरों वाले प्रोटोज़ोआ के साथ साथ हमने बंदर जैसे अत्यंत संगठित स्तनधारियों का भी परिचय प्राप्त किया। बंदर कई एक लक्षणों और बरताव की दृष्टि से मनुष्य के समान होता है।

प्राणियों के लिए अनुकूल वातावरण और उनकी जीवन-प्रणाली के लिए आवश्यक परिस्थितियों में भी यही विविधता दिखाई देती है। कुछ प्राणी पानी में रहते हैं तो कुछ ज़मीन की सतह पर; कुछ ज़मीन के अंदर तो कुछ अधिकांश समय हवा में। पर विभिन्न प्राणियों के लिए आवश्यक पानी और ज़मीन में भी फ़र्क़ होता है। इस प्रकार कुछ मछलियां समुद्रों और महासागरों में रहती हैं तो कुछ केवल ताज़े पानी की नदियों और झीलों में। बहुत-सी मछलियां जीवन का आरंभ ताज़े पानी में करती हैं पर बाद में खारे पानी में रहने लगती हैं या कुछ मामलों में इसके विपरीत होता है। उदाहरणार्थ, सर्पमीन समुद्र में पैदा होता है पर बाद में नदियों में प्रवसन करता है। स्थलचर प्राणियों का भी यही हाल है। उनमें से कुछ जंगलों मे रहते हैं, तो कुछ स्तेपियों में और कुछ और रेगिस्तानों में।

प्राणियों के भोजन में भी काफ़ी विविधता पायी जाती है। शिकारभक्षी हिंस्र प्राणी दूसरे प्राणियों और अक्सर बड़े बड़े प्राणियों को खा जाते है जबकि शाक-भक्षी प्राणी दूसरों को नहीं खाते बल्कि उनके लिए केवल वनस्पति-भोजन की आवश्यकता होती है। कुछ प्राणी दूसरों के परजीवी कहलाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं – बाहरी और अंदरूनी।

वैज्ञानिकों की गिनती के अनुसार विभिन्न प्राणियों के दस लाख से अधिक प्रकार हैं (विशेष बहुलता कीटों की है)। प्रत्येक प्राणी अपने वातावरण और परिस्थितियों से अच्छी तरह अनुकूलित पाया जाता है। इस प्रकार, जैसा कि कुछ विस्तारपूर्वक दिखाया गया है, मछलियां पानी में रहने के लिए अनुकूलित होती हैं, तो पंछी हवा में उड़ने के लिए और परजीवी कृमि अपने 'मेज़बान' को

नुक़सान पहुंचाकर जीने के लिए। यदि किसी प्राणी को उसके लिए आवश्यक परिस्थिति से वंचित कर दिया जाये या प्रतिकूल वातावरण में तबदील कर दिया जाये तो वह मर जाता है।

हमारी धरती पर रहनेवाले प्राणियों की विविधता का, हर प्रकार के प्राणी के अपने वातावरण से अनुकूलित होने का स्पष्टीकरण हम कैसे दे सकते हैं? आखिर इस विविधता का स्रोत क्या है? प्राणी की संरचना और बरताव के अनुकूलन का विकास किस प्रकार हुआ? वैज्ञानिकों के सामने हमेशा से ये प्रश्न खड़े रहे हैं और उनके अलग अलग उत्तर दिये गये हैं। १६ वीं शताब्दी से पहले, यानी जब तक प्राणियों के जीवन का विस्तृत अध्ययन नहीं हुआ था, हर कोई इस स्पष्टीकरण में संतोष मान लेता था कि "सिरजनहार ने ऐसा बनाया है"। धर्म ऐसे दृष्टिकोणों का बड़ी उत्सुकता से समर्थन और प्रचार करता था।

पर जैसे जैसे प्राणियों से संबंधित ज्ञान में वृद्धि होती गयी वैसे वैसे स्पष्ट होता गया कि उक्त स्पष्टीकरण ग़लत है और वैज्ञानिक खोजों के खिलाफ़ है। १६ वीं शताब्दी में फ़्रेंच वैज्ञानिक जीन बैप्तिस्त लामार्क (१७४४-१८२६) और ब्रिटिश वैज्ञानिक चार्लस डार्विन (१८०६-१८८२) ने इस प्रश्न का सही और वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित उत्तर प्रस्तुत किया। उन्होंने सिद्ध किया कि प्राणि-जगत् हमेशा से वैसा ही नहीं रहा है जैसा उनके समय में था पर परिवर्तित और विकसित हुआ है; और यह कि धरती पर सबसे पहले एककोशिकीय प्रोटोज़ोआ अवतरित हुए और उनमें से जटिलतर प्राणी विकसित हुए। आज का प्राणि-जगत्, उसकी विविधता और वातावरण से उसका अनुकूलन धरती पर जीवों के अस्तित्व में डेढ़ करोड़ से भी अधिक वर्षों के दौरान हुए विकास के फल हैं।

प्राणि-जगत् के ऐतिहासिक विकास से संबंधित लामार्क और डार्विन का सिद्धांत बहुत-से तथ्यों की कसौटी पर सही उतरा है। हम देख चुके हैं कि फ़ौसिलीय प्राणियों में बहुत-से ऐसे प्राणी शामिल थे जो आज अस्तित्व में नहीं हैं। उदाहरणस्वरूप फ़ौसिलीय उरगों, आरकिओप्टेरिक्सों, मैमथों और बहुत-से रीढ़विहीन प्राणियों को लिया जा सकता है। रीढ़विहीन प्राणियों में प्रोटोज़ोआ, प्रवाल, मोलस्क और आरथ्रोपोडा शामिल हैं। इसका अर्थ यह है कि प्राणि-जगत् बराबर परिवर्तित होता आया है।

आगे यह दिखाई देता है कि धरती का स्तर जितना प्राचीनतर उतने ही वहां के प्राणी अधिक सरलता से संरचित। इस प्रकार आरकिओज़ोइक युग से संबंधित स्तरों में (पृष्ठ १८७ देखो) रीढ़धारी प्राणियों के कोई अवशेष नहीं मिलते। ये केवल पेलिओज़ोइक युग से संबंधित स्तरों में पाये जाते हैं और यहां भी केवल मछलियां, जल-स्थलचर और उरग ही मिलते हैं। पक्षी और स्तनधारी मेसोज़ोइक युग के ठीक अंत में जाकर अवतरित हुए। फिर सेनोज़ोइक युग में ही उनमें बहुलता और विविधता आयी। धरती के स्तरों में प्राणियों के इस प्रकार के विभाजन से प्राणि-जगत् के विकास और सरलतर संरचनावाले प्राणियों से उन्नतर संरचनावाले प्राणियों की उत्पत्ति से संबंधित लामार्क–डार्विन के सिद्धांत का सहीपन साबित होता है।

इसी प्रकार हम डार्विन और लामार्क के इस सिद्धांत के आधार पर ही कि धरती पर सबसे पहले अवतरित एककोशिकीय प्राणियों से ही बहुकोशिकीय प्राणियों की उत्पत्ति हुई, यह स्पष्टीकरण दे सकते हैं कि प्रत्येक प्राणी का विकास, भले ही उसकी संरचना कितनी भी जटिल क्यों न हो, एक कोशिका से ही शुरू हुआ। प्राणि-जगत् के ऐतिहासिक विकास के सिद्धांत के आधार पर ही हम इस तथ्य का स्पष्टीकरण दे सकते हैं कि बेंगची और मछली बाहरी और अंदरूनी दोनों प्रकार की संरचना की दृष्टि से समान हैं; पक्षियों और स्तनधारियों के भ्रूण उरगों के भ्रूणों के समान होते हैं। इसी प्रकार के अन्य तथ्य भी स्पष्ट किये जा सकते हैं।

प्राणियों के परिवर्तन और विकास का तथ्य पालतू प्राणियों की उत्पत्ति से सिद्ध होता है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि डील-डौल, रंग, कलगी के आकार और अंडे देने की क्षमता की दृष्टि से भिन्नता रखनेवाली मुर्ग़ियों की विभिन्न नस्लें मूलतः भारतीय जंगली मुर्ग़ियों से ही पैदा हुई हैं। इसी प्रकार शशक की विभिन्न नस्लें जंगली शशक से उत्पन्न हुईं। चार्लस डार्विन ने सिद्ध किया कि कबूतरों की सभी नस्लों के पुरखे जंगली चट्टानी कबूतर हैं। यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि पालतू प्राणियों के परिवर्तन और नयी नस्लों की पैदाइश काफ़ी जल्दी, यहां तक कि एक पीढ़ी के देखते देखते होती है।

डार्विन केवल प्राणि-जगत् के विकास से संबंधित तथ्य सिद्ध करके ही नहीं रहे बल्कि उन्होंने इसके कारणों और तरीक़ों पर भी प्रकाश डाला।

इस बात को ठीक से समझने के लिए हम पहले यह देखेंगे कि पालतू प्राणियों की नयी, अधिक अच्छी नस्लें किस प्रकार पैदा की जाती हैं। प्रत्येक प्राणी अपने समान संतान पैदा करता है – शशक से शशक पैदा होते हैं, गाय से बछड़े, मुर्ग़ी के अंडों से चूज़े और इसी प्रकार अन्यान्य प्राणियों से उनके समान संतानें। प्रत्येक प्राणी में आनुवंशिक रूप से उसके माता-पिता के सामान्य लक्षण आते हैं। पर सभी बच्चे बिल्कुल एक-से नहीं होते। एक ही मुर्ग़ी द्वारा दिये गये अंडों से निकलनेवाले सभी चूज़े पूर्णतया समान नहीं होंगे। उनमें से कुछ बड़े होंगे तो कुछ छोटे, कुछ स्वस्थ और सशक्त तो दूसरे अशक्त। उनका रंग भी भिन्न हो सकता है। जब चूज़े बढ़कर मुर्ग़ियां बन जायेंगे तो उनमें से कुछेक मुर्ग़ियां दूसरों की अपेक्षा अधिक अंडे देंगी। यह विविधता सबसे पहले और मुख्यतया माता-पिता (यहां मुर्ग़ा और मुर्ग़ी) के लक्षणों पर निर्भर करती है। दूसरे महत्त्वपूर्ण पहलू हैं विकास की स्थितियां – अंडे तैयार होते समय मुर्ग़ी के लिए काफ़ी भोजन की उपलब्धि, मुर्ग़ी द्वारा या इनक्यूबेटर में सेहाई की स्थिति, चूज़ों के भोजन का दर्जा, काफ़ी मात्रा में उष्णता, इत्यादि।

नस्ल-संवर्द्धन के लिए चुनते समय स्वाभाविक ही हम सर्वोत्तम मुर्ग़ियों का चुनाव करेंगे। यदि हम अंडों वाली नस्लें पैदा करना चाहेंगे तो सबसे अधिक अंडे देनेवाली मुर्ग़ियां चुनेंगे और मांसवाली नस्लों के लिए आकार में सबसे बड़ी मुर्ग़ियां। यदि कई पीढ़ियों में इस प्रकार का चुनाव जारी रखा जाये तो एक नयी नस्ल पैदा की जा सकती है। नयी नस्लें पैदा करने का यह तरीक़ा कृत्रिम चुनाव कहलाता है। कृत्रिम चुनाव की सहायता से अच्छी नस्लें पैदा करने के लिए उचित देखभाल और योग्य खिलाई पर पूरा ध्यान देना ज़रूरी है।

डार्विन ने सिद्ध किया कि चुनाव प्रकृति में भी होता है। यदि पालतू प्राणी व्यवहारतः एक-सी जीवन-स्थितियों में (समान देखभाल, काफ़ी भोजन. अच्छी परवरिश) भी भिन्न हो सकते हैं तो जंगली प्राणियों में और ज़्यादा फ़र्क़ आना स्वाभाविक ही है। जंगली प्राणियों के जीवन पर सर्दी, सूखा, भारी वर्षा इत्यादि प्राकृतिक परिवर्तनों का सीधा प्रभाव पड़ता है। उनका भोजन भी हमेशा एक-सा नहीं रह पाता। कभी वह काफ़ी बड़ी मात्रा में मिलता है, कभी साधारण आवश्यक मात्रा में और कभी कभी तो अपर्याप्त मात्रा में।

प्राणियों के अस्तित्व के बहुत लंबे समय के दौरान धरती में बराबर

परिवर्तन होते आये हैं और आज भी हो रहे हैं। कहीं नये पहाड़ उभर आये है तो कहीं भूमि धंस गयी है, किसी इलाक़े में मौसम सख़्त हो जाता है या इसके विपरीत नरम। इन सतत परिवर्तनशील प्रभावों के कारण प्राणियों में भी परिवर्तन होता है और नयी परिस्थितियों में वही जीवित रहते हैं जो बचे रहने के लिए सर्वाधिक अनुकूलित हुए हैं और जो परिवर्तित नहीं हुए वे लुप्त हो सकते हैं। मेसोज़ोइक युग के अंत में यही हुआ। नये पर्वतों की रचना के कारण ठंड पैदा हुई और बहुत-से उरग, जिनके शारीरिक तापमान परिवर्तनशील थे, नयी स्थितियों में जीवित रहने के अनुकल नहीं रहे और नष्ट हो गये।

दूसरी ओर पक्षी और स्तनधारी अपनी अधिक विकसित श्वसनेंद्रियों, रक्त-परिवहन इंद्रियों और स्थायी शारीरिक तापमान के कारण नयी स्थिति में रहने के लिए अनुकूल थे और वे न केवल बचे रहे बल्कि उनका विकास और सारी धरती पर फैलाव भी शुरू हुआ। सेनोज़ोइक युग में रीढ़धारियों में से इनका सबसे अधिक फैलाव हुआ।

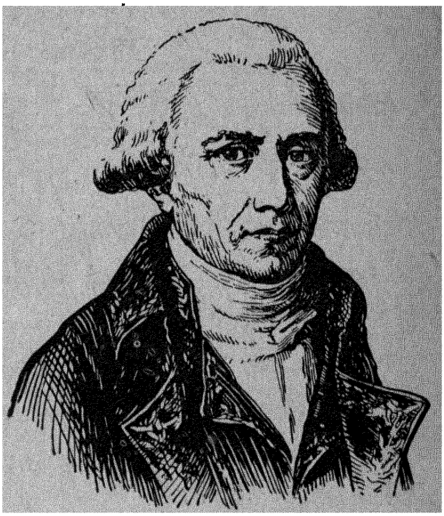

जीन बैप्तिस्त लामार्क

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रकृति में भी जीवन के लिए आवश्यक वातावरण और परिस्थितियों की दृष्टि से सर्वाधिक अनुकूलित प्राणियों के चुनाव की प्रक्रिया जारी रहती है। प्राणियों की आनुवंशिकता और परिवर्तन-शीलता से संबंधित इस प्रक्रिया को चार्लस डार्विन ने प्राकृतिक चुनाव का नाम दिया।

प्राकृतिक चुनाव के फलस्वरूप केवल वही प्राणी बचे रह सकते हैं जो नयी स्थितियों के लिए अधिक अनुकूलित हैं, जिनकी संरचना जटिलतर है। अतः प्राणियों के विकास के साथ साथ उनकी संरचना में क्रमशः अधिकाधिक जटिलता आती गयी। फिर भी जहां कहीं जीवन के लिए अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त हुईं, वहां सरलतर संरचनावाले प्राणी भी (प्रोटोज़ोआ, सीलेंट्रेटा और दूसरे) बचे रहे।

§ ६५. प्राणि-जगत् का विकास

लुप्त और विद्यमान प्राणियों के विकास और संरचना का अध्ययन करते हुए प्राणि-शास्त्रियों ने प्राणियों के ऐतिहासिक विकास का तरीक़ा निश्चित किया है।

रीढ़रहित प्राणियों का विकास

इसमें कोई संदेह नही कि धरती पर सबसे पहले एककोशिकीय प्रोटोज़ोम्रा उत्पन्न हुए। एककोशिकीय प्रोटोज़ोम्रा से बहुकोशिकीय प्राणियों का विकास हुआ। सीलेंट्रेटा इनमें अव्वल थे।

प्राचीन सीलेंट्रेटा ने कृमियों को जन्म दिया। कृमि जटिल संरचनावाले जीव है जिनमें विभिन्न कार्यों के लिए पृथक् इंद्रियां होती हैं।

प्राचीन कृमियों से मोलस्क और आरथ्रोपोडा उत्पन्न हुए। कृमियों से इनका संबंध इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि बहुत-से कीटों की इल्लियां और डिंभ कृमि की शक्ल के होते हैं और उनमें औदरिक तंत्रिका-रज्जु आदि होते हैं।

काइटिनीय आवरण के कारण आरथ्रोपोडा का जलचर जीवन स्थलचर जीवन में परिवर्तित हुआ और वे धरती की सतह पर बड़ी मात्रा में फैल सके (अरैकनिडा, कीट)।

रीढ़धारियों का विकास

रीढ़धारियों या कशेरुक दंडियो की उत्पत्ति लैंसेट-मछली जैसे सरलतर संरचनावाले दूसरे प्राणियों से हुई। इन प्राणियों में रज्जु के इर्द-गिर्द उपास्थीय या अस्थीय कशेरुक परिवर्द्धित हुए। कशेरुकों ने रज्जु का स्थान लिया। रज्जु केवल कई मछलियों में बची रही जबकि अन्य रीढ़धारी प्राणियों में वह केवल भ्रूणों में पायी जाती है।

लैंसेट-मछली जैसे प्राणियों की सरल तंत्रिका-नलिका से रीढ़धारियों के मस्तिष्क और रीढ़-रज्जु विकसित हुए। खोपड़ी के तैयार होने से मस्तिष्क की रक्षा होने लगी। आधुनिक रीढ़धारियों के पुरखों के रक्त-परिवहन तंत्र में हृदय की रचना हुई। सयुग्म अंग उत्पन्न हुए। बाक़ी इंद्रियां भी जटिलतर हो गयी। इस कारण रीढ़धारी विकास की दृष्टि से अपने पुरखों से आगे बढ़े। इन पुरखो के लक्षण काफ़ी हद तक लैंसेट-मछली में बने रहे हैं।

हमने जिन रीढ़धारियों का अध्ययन किया उनमें निम्नतम संरचनावाली प्राचीन मछलियां हैं जो पानी में रहती हैं। पेलिओज़ोइक युग में मछलियों का बहुत ज़्यादा फैलाव हुआ। उस समय उच्चतर संरचनावाले पक्षी और स्तनधारी नहीं थे।

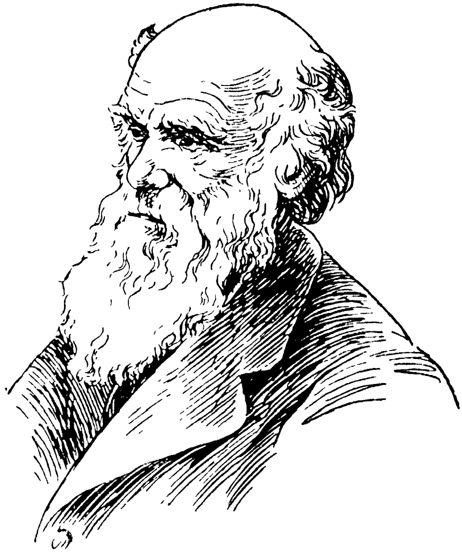

चार्लस डार्विन

प्राचीन क्रासोप्टेरीगी से जल-स्थलचर परिवर्द्धित हुए (§ ४८)। धरती पर क्रासोप्टेरीगी के आने के कारण उनकी संरचना में संबंधित परिवर्तन आये। पेलिओज़ोइक युग के कारबनिफ़ेरस कालखंड में जल-स्थलचरों का बहुत बड़ा फैलाव था। उस समय मौसम गरम और नम था। नम स्थानों में पेड़नुमा फ़र्न, क्लब मॉस तथा हार्स-टेल इत्यादि वनस्पतियों की समृद्धि थी। इनके अवशेषों मे कोयला तैयार हुआ।

पेलिओज़ोइक युग के अंत में मौसम फिर से अधिक सूखा हो गया। इससे प्राचीन जल-स्थलचरों में परिवर्तन हुए और उनसे उरग परिवर्द्धित हुए जो स्थलचर जीवन के लिए पूर्णतया अनुकूल रहे (§ ५२)। मेसोज़ोइक युग में उरगों का काफ़ी फैलाव हुआ और उनमें काफ़ी विविधता भी आयी।

मेसोज़ोइक युग के मध्य मे उरगों से पक्षी उत्पन्न हुए (§ ५८)। ये उड़ान के लिए अनुकूलित बन गये और इस माने में उरगों से अधिक सुविधा उन्हें प्राप्त हुई। पक्षियों में और महत्त्वपूर्ण पहलू रहे उपापचय की तीव्रता और उष्णरक्तता का विकास। साइनोग्नेथस नामक प्राचीन उरगों से प्राचीन स्तनधारी उत्पन्न हुए (§ ६७)।

पक्षियों और स्तनधारियों के उष्ण रक्त, उससे संबंधित जनन की अधिक विकसित प्रणालियों (अंडे सेना और जीवित बच्चे देना) और मस्तिष्क के सशक्त विकास के कारण इन प्राणियों का विस्तृत फैलाव सुनिश्चित हुआ।

मेसोज़ोइक युग के अंत में जब मौसम अधिक ठंडा हुआ तो उरगों की अपेक्षा पक्षी और स्तनधारी नयी परिस्थितियों के लिए अधिक अनुकूल बन गये। मेसोज़ोइक या 'उरग-युग' के बाद सेनोज़ोइक युग आया जिसमें पक्षियों और स्तनधारियों की प्रधानता रही। विभिन्न परिस्थितियों में जीवन बिताने के साथ उन्होंने बहुत-से नये नये रूपों वाले प्राणियों को जन्म दिया।

स्तनधारियों के बाद के विकास के फलस्वरूप अत्यधिक उच्च मात्रा में संरचित प्राणी अर्थात् बंदर और फिर आदमी पैदा हुए।

अतः आधुनिक प्राणि-जगत् निम्न संरचित प्राणियों से उच्च संरचित प्राणियों के लंबे ऐतिहासिक विकास का परिणाम है। धर्म प्राणियों के विकास की प्रक्रिया से इनकार करता है और मानता है कि उन सब को भगवान् ने उत्पन्न किया है। प्राणियों की उत्पत्ति से संबंधित ऐसी धारणाएं विज्ञान से कोसों दूर और स्पष्टतया वैज्ञानिक खोजों के ख़िलाफ़ हैं।

प्रश्न – १. रीढ़रहित प्राणि-जगत् का विकास किस क्रम से हुआ? २. कौनसे लक्षण यह दिखाते हैं कि मछलियों की अपेक्षा जल-स्थलचरों की संरचना अधिक जटिल है? ३. किन स्थितियों में और किस प्रकार क्रासोप्टेरीगी जल-स्थलचरों में परिवर्तित हुए? ४. प्राचीन जल-स्थलचरों से उरग किस प्रकार उत्पन्न हुए? ५. हम किन तथ्यों के आधार पर कह सकते हैं कि पक्षी उरगों से उत्पन्न हुए? ६. इसके प्रमाण क्या है कि स्तनधारी उरगों से विकसित हुए? ७. किन संरचनात्मक और जननात्मक लक्षणों के कारण सेनोज़ोइक युग में पक्षियों और स्तनधारियों का विस्तृत फैलाव हो सका?

§ ६६. मनुष्य और प्राणियों के बीच साम्य-भेद

मनुष्य और प्राणियों के बीच साम्य

अत्यधिक विकसित प्राणियों अर्थात् स्तनधारियों का जो परिचय हमने प्राप्त किया उससे यह स्पष्ट होता है कि उनकी संरचना में बहुत-से लक्षण ऐसे है जो मनुष्य की संरचना से मिलते-जुलते है।

मनुष्य और स्तनधारियों के शरीर में हमें एक ही प्रकार के इंद्रिय तंत्र नज़र आते हैं – गति की इंद्रियां, पचनेंद्रियां, श्वसनेंद्रियां, रक्त-परिवहन इंद्रियां, उत्सर्जनेंद्रियां, मस्तिष्क तथा रीढ़-रज्जु और ज्ञानेंद्रियां।

शरीर-गुहा की अंदरूनी इंद्रियों की व्यवस्था भी एक-सी पायी जाती है। डायेफ़ाम द्वारा यह गुहा वक्षीय और औदरिक गुहाओं में विभाजित रहती है।

मनुष्य और स्तनधारियों की पृथक् इंद्रियों की संरचना में भी समानता है। दोनों के हृदय के चार कक्ष होते हैं और दांत सम्मुख दांतों, सुआ-दांतों और चर्वण-दंतों में बंटे हुए।

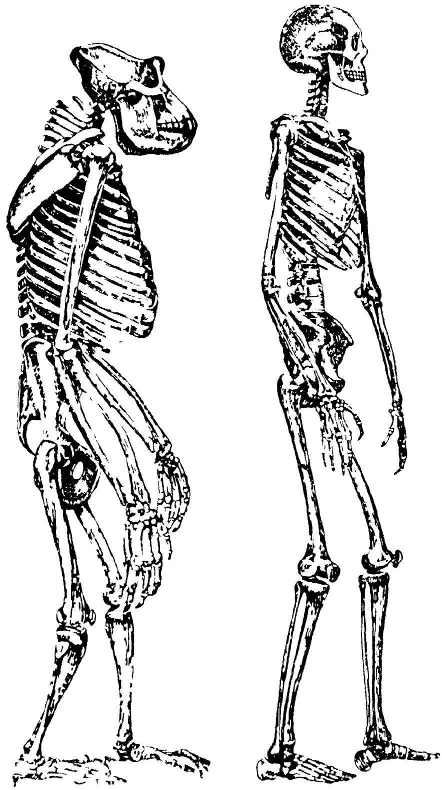

आकृति १८५ – मनुष्य सदृश बंदर और मनुष्य के कंकाल।

मनुष्य और स्तनधारियों में जनन भी समान होता है (जीवित बच्चों का जन्म और स्तनपान)।

विशेषकर मनुष्य और मनुष्य सदृश बंदरों में काफ़ी अधिक साम्य है। ध्यान रहे कि उनका नाम वानर से ही निकला है। उनके पूंछ नहीं होती, उनके चेहरों

पर बाल नहीं होते, कर्ण-पालियां मनुष्य की सी होती हैं, अंगुलियों पर सपाट नाखून होते हैं, अंगूठा अन्य अंगुलियों की विरुद्ध दिशा में रहता है, इत्यादि।

अन्य किसी भी स्तनधारी की अपेक्षा मनुष्य सदृश बंदर का मस्तिष्क मनुष्य के मस्तिष्क से अधिक मिलता-जुलता होता है। बंदर सक्रिय रूप से अपने इर्द-गिर्द की परिस्थिति के अनुसार बरतते हैं और मनुष्य की ही तरह सुख, आनंद, भय और क्रोध प्रकट करते हैं। वे हंस और रो भी सकते हैं यद्यपि मनुष्य के समान उनके आंसू और ध्वनियां नहीं होतीं।

मनुष्य और प्राणियों के बीच भेद

यद्यपि मनुष्य के कुछ लक्षण मनुष्य सदृश बंदरों के समान होते हैं तथापि अत्यंत महत्त्वपूर्ण लक्षणों की दृष्टि से मनुष्य उनसे भिन्न है।

मनुष्य केवल पैरों के सहारे और खड़ी स्थिति में चलता है। मनुष्य सदृश बंदर आसानी से पेड़ों पर चढ़ सकते हैं और ज़मीन पर चल सकते हैं पर ऐसा करते हुए वे झुककर अपने अग्रांगों का सहारा लेते हैं। मनुष्य की टांगें उसके हाथों से लंबी होती हैं जबकि बंदरों के अग्रांग पश्चांगों मे लंबे होते हैं (आकृति १८५)।

यद्यपि मनुष्य का हाथ आम तौर पर बंदर के अग्रांग से मिलता-जुलता होता है फिर भी उनमें काफ़ी फर्क है (आकृति १८६)। यह मही है कि बंदर का

आकृति १८६ – चिंपैंज़ी का हाथ (बायें) और आदमी का हाथ (दायें)।

अंगूठा अन्य अंगुलियों की विरुद्ध दिशा में होता है पर होता है वह अल्पविकसित। उसके अंग मुख्यतया पेड़ों की शाखाओं को पकड़ने के काम आते हैं। मनुष्य का अंगूठा सुविकसित होता है और उसके हाथ तरह तरह के काम कर सकते हैं क्योंकि ये उसकी श्रमेंद्रियों या कर्मेंद्रियों में से हैं।

मनुष्य के शरीर के कुछ पृथक् स्थानों में बाल रहते हैं जबकि बंदर में ये अधिक विकसित रूप में सारे शरीर पर होते है।

खोपड़ी की संरचना में काफ़ी फ़र्क़ पाया जाता है। बंदरों में जबड़ों से बना हुआ अगला हिस्सा अधिक विकसित होता है जबकि मनुष्य में कपाल का हिस्सा, जिसमें मस्तिष्क होता है।

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण अंतर मस्तिष्क की संरचना में है। मनुष्य के उच्च विकसित प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध होते हैं। मनुष्य के मस्तिष्क का वज़न कभी भी १,२०० ग्राम से कम नहीं होता और २,००० ग्राम तक वज़नी हो सकता है पर बंदरों के मस्तिष्क का वज़न ४००-६०० ग्राम होता है।

मनुष्य उपकरण बनाता है और श्रम के लिए उनका उपयोग करता है। यह अत्यंत सुसंरचित बंदरों की बिसात के बाहर है। मनुष्य की सचेतन गतिविधि उसके मस्तिष्क के ऊंचे विकास और श्रम से संबद्ध है। मनुष्य स्पष्टोच्चारित भाषा बोलते हैं और एक दूसरे को अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं। पर मनुष्यों का सबसे विशिष्ट लक्षण है उनका मामाजिक जीवन। मानव-समाज का विकास विशेष नियमों पर आधारित है।

उपकरण बनाने और सचेतन रूप में उनका श्रम के लिए प्रयोग करने की क्षमता और स्पष्टोच्चारित भाषा तथा सामाजिक जीवन के कारण मनुष्य को प्राणि-जगत् के बाहर और उससे ऊंचा स्थान प्राप्त हुआ।

प्राणियों का जीवन आसपास की प्रकृति पर निर्भर है। दूसरी ओर मनुष्य ने प्रकृति के नियम खोज निकाले हैं और वह उसे अपने हितानुसार परिवर्तित करता है।

प्रश्न – १. मनुष्य और स्तनधारियों के बीच कौनसी समानता है? २. मनुष्य और मनुष्य सदृश बंदरों में कौनसी समानताएं हैं? ३. मनुष्य और प्राणियों के बीच कौनसी भिन्नताएं है? ४. हम मनुष्य को प्राणी क्यों नहीं मानते?

§ ६७. मनुष्य का मूल

मनुष्य और प्राणियों, विशेषकर मनुष्य सदृश बंदरों के बीच की समानता केवल संयोगजनित नहीं हो सकती। उससे मनुष्य का प्राणियों के साथ घनिष्ठ संबंध और प्राचीन मनुष्य सदृश बंदरों से उसकी उत्पत्ति का संकेत मिलता है।

बहुत-से तथ्यों से इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है। उदाहरणार्थ, मनुष्य के भ्रूण के जल-श्वसनिका-छिद्र और पूंछ होती है और उसके विकास की बाद की अवस्था में वह बंदर के भ्रूण के समान दिखाई देता है।

कुछ लोगों में पूंछ के विकास और सारे शरीर पर बालों के अस्तित्व जैसी अत्यंत विरली घटनाओं का स्पष्टीकरण केवल प्राणियों से मनुष्य की उत्पत्ति मानने पर ही मिल सकता है। स्पष्टतया ये हमारे प्राणि-पूर्वजों के विशिष्ट लक्षण थे।

मनुष्य के शरीर में कुछ इंद्रियां अविकसित और आम तौर पर अकार्यशील होती हैं इसका स्पष्टीकरण भी प्राणियों से उसकी उत्पत्ति मानने पर ही मिल सकता है। उदाहरणार्थ, मनुष्य की कर्ण-पालियों में अल्पविकसित पेशियां होती हैं जबकि स्तनधारियों में वे कानों को गति प्रदान कर सकती हैं। कुछ लोगों में ये पेशियां अधिक विकसित रहती हैं और इनसे कानों में गति पैदा हो सकती है।

मनुष्य और मनुष्य सदृश बंदर की अत्यधिक समानता उनके घनिष्ठ संबंध का संकेत देती है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य और आधुनिक मनुष्य सदृश बंदरों के एक ही पुरखे – प्राचीन बंदर थे। काफ़ी समय हुआ ये लुप्त हो चुके हैं।

मनुष्य किस प्रकार बंदरों से उत्पन्न हुआ इस समस्या पर फ्रेड्रिक एंगेल्स ने विस्तृत रूप में प्रकाश डाला है।

प्राचीन बंदरों – मनुष्य के पुरखों – ने अपना वृक्षचर जीवन बदलकर स्थलचर जीवन अपनाया और पश्चांगों के सहारे चलना शुरू किया। अग्रांग स्वतंत्र हुए और बंदरों ने उनका उपयोग भोजन प्राप्त करने और लाठियों तथा पत्थरों के सहारे शत्रुओं से अपना बचाव करने के लिए करना आरंभ किया। मनुष्य के पुरखों ने विभिन्न प्राकृतिक चीज़ों का उपकरणों के रूप में उपयोग करना सीखा और फिर खुद ही उपकरण तैयार करने लगे। इस प्रकार मनुष्य ने श्रमात्मक क्रियाकलाप शुरू किये जो उसे प्राणियों से भिन्न दिखाते हैं। हाथों की बहुविध श्रमात्मक गतियों के कारण उनका और विकास हुआ और उनमें पूर्णता आयी।

मनुष्य के श्रमात्मक क्रियाकलापों के दौरान उसके सामाजिक जीवन और साथ साथ स्पष्टोच्चारित भाषण-क्षमता और बुद्धि का भी विकास हुआ। श्रम ने बंदर को मनुष्य बना दिया।

प्रश्न – १. प्राणि-पूर्वजों से मनुष्य की उत्पत्ति दिखानेवाले कौनसे चिह्न मनुष्य के भ्रूण में मिलते हैं? २. बालदार और पूंछदार लोगों के अस्तित्व का स्पष्टीकरण हम किस प्रकार दे सकते हैं? ३. मनुष्य के पुरखों ने खड़ी स्थिति में चलना शुरू किया इसका क्या महत्त्व है? ४. मनुष्य के विकास में श्रम का क्या महत्त्व रहा है?

§ ६८. मनुष्य द्वारा प्राणि-जगत् में परिवर्तन

प्राकृतिक नियमों का अध्ययन करके मनुष्य ने अपने हितार्थ प्रकृति का उपयोग करना सीखा। मनुष्य द्वारा प्राणि-जगत् सहित प्राकृतिक स्रोतों के कुशल और सक्षम उपयोग का विशेष स्पष्ट उदाहरण सोवियत संघ में किये गये प्राकृतिक परिवर्तनों में प्रतिबिंबित है।

सोवियत संघ में कृषि-नाशक प्राणियों और रोगों के उत्पादकों तथा वाहकों के विरुद्ध विस्तृत कार्यवाहियां की जाती हैं। इन कार्यवाहियों के फलस्वरूप सोवियत संघ में टिड्डियों का नामोनिशान लगभग मिट चुका है; बहुत-से स्थानों में मलेरिया के मच्छर नष्ट हो चुके हैं; ठप्पेदार गोफरों की संख्या काफ़ी घट चुकी है, इत्यादि।

व्यापारिक मछलियों, पक्षियों और फरदार प्राणियों की रक्षा के लिए विस्तृत कार्यवाहियां की जाती हैं। इसके फलस्वरूप जंगलों में गोज़नों, सैबलों, इत्यादि की संख्या बढ़ गयी है। प्राणियों के फैलाव और नये प्राणियों के ऋतु-अनुकूलन के फलस्वरूप प्रकृति में परिवर्तन किया जा रहा है। इस प्रकार बीवर अब केवल वोरोनेज के रक्षित उपवन में ही नहीं बल्कि २० से अधिक प्रदेशों और इलाक़ों में फैले हुए हैं। हमारे देश में लगभग ३० वर्ष पहले आयात किये गये ओंडाट्रा का शिकार अब कई प्रदेशों में किया जाता है। फ़रदार प्राणियों का पालन पशु-पालन की एक नयी शाखा है जो सोवियत संघ में विकसित हो रही है।

इ० व्ला० मिचूरिन

रुपहली-काली और आर्कटिक लोमड़ियां और सैबल अब पालतू प्राणी बन रहे हैं। इधर गोज़न पालतू बन चुका है।

इस प्रकार मनुष्य के योजनाबद्ध क्रिया-कलापों के फलस्वरूप प्राणि-जगत् समाज के लिए उपयुक्त रूप में परिवर्तित हो रहा है।

पालतू प्राणियों पर मनुष्य का प्रभाव विशेष सशक्त रहा है। मनुष्य ने न केवल उन्हें साध लिया, पर उनका स्वभाव ही बदल डाला। पालतू प्राणियों का सुधार बराबर जारी है। नयी और अधिकाधिक विकसित नस्लें संवर्द्धित की जा रही हैं।

नयी नस्लें सुप्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक मिचूरिन द्वारा प्रस्तुत की गयी पद्धति के आधार पर संवर्द्धित की जा रही हैं।

इवान व्लादीमिरोविच मिचूरिन (१८५५-१९३५) ने अपना समूचा जीवन फल-वृक्षों की नयी नयी किस्में विकसित करने में लगा दिया। उन्होंने ३०० से अधिक क़िस्में विकसित कीं। वह न केवल बाग़वान बल्कि एक सुविख्यात वैज्ञानिक थे और उन्होंने जीवधारियों के जीवन से संबंधित आम नियमितताएं खोज निकालीं। प्राणियों के नये बायोलोजिकल प्रकार उत्पन्न करने के संबंध में मिचूरिन द्वारा विकसित की गयी पद्धतियों का कुशलतापूर्वक उपयोग करनेवालों में से एक हैं म० फ़० इवानोव जिन्होंने उक्रइनी स्तेपीय सफ़ेद सूअरों की नस्ल पैदा करायी (§ ८९)।

इ० व्ला० मिचूरिन का आदर्श-वाक्य यह था – "हम प्रकृति की मेहरबानी की प्रतीक्षा नहीं करेंगे बल्कि खुद उसका ख़ज़ाना हासिल करेंगे"। यह अब प्रगतिशील जीव-वैज्ञानिकों का आदर्श-वाक्य बन गया है।